स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य

[प्रथमार्द्ध]

लेखक

डॉ० देवीप्रसाद गुप्त

एम० ए०, एल-एल० बी०, पी-एच० डी०

प्राध्यापक-स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग

गवर्नमेण्ट पोस्टग्रेजुएट डूंगर कॉलेज

बीकानेर (राजस्थान)



प्रकाशक

गाडोदिया पुस्तक भण्डार, बीकानेर

प्रकाशक
किशनलाल गाडोदिया
गाडोदिया पुस्तक भण्डार
फड बाजार
बीकानेर (राजस्थान)
फोन न० १०८०
ब्राच
स्टेशन रोड, चूरू (राजस्थान)

मुद्रक
राष्ट्रभाषा प्रेस
राजामण्डी
आगरा-२

डॉ० देवीप्रसाद गुप्त

मूल्य पैंतीस रुपये

प्रथम संस्करण : १९७३

SWĀTANTRYOTTRA HINDĪ MAHĀKĀVYA
(Part I)

A Critical Study of Hindi Epics of Post Independence Era]

By
Dr. Devi Prashad Gupta
M. A , LL. B., Ph. D.
GOVT. POSTGRADUATE DUNGAR COLLEGE
BIKANER (RAJASTHAN)

Price : Rs. Thirty Five Only

'सारथी' महाकाव्य
के
प्रणेता
डॉ० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'
को
सादर समर्पित

भूमिका

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य
विकासात्मक एवं प्रवृत्तिमूलक संचेतना

स्वातन्त्र्योत्तरकालीन हिन्दी साहित्यिक सरचना मे काव्य और कथा साहित्य के क्षेत्र मे गौरवान्वित कृतियो का प्रणयन हुआ है। काव्य-प्रभेदो मे महाकाव्यो की सृजन-परम्परा उल्लेखनीय है। आधुनिक हिन्दी महाकाव्य-परम्परा का समारम्भ सन् १९१४ मे कवि सम्राट हरिऔध कृत 'प्रियप्रवास' महाकाव्य के प्रकाशन से होता है। 'प्रियप्रवास' से स्वतन्त्रता-प्राप्ति तक जिन महाकाव्य-कृतियो की रचना हुई, वे हैं—साकेत, रामचरित चिंतामणि, तक्षशिला, नल-नरेश, कौशल-किशोर, कामायनी, नूरजहाँ, सिद्धार्थ, श्री राम चन्द्रोदय, वैदेही-वनवास, हल्दी-घाटी, पुरुषोत्तम, श्रीकृष्ण चरितमानस, कुरुक्षेत्र, आर्यावर्त्त, कृष्णायन, जौहर, साकेत-सन्त, महामानव आदि। इनमे शिल्पगत वैशिष्ट्य एव जीवन दर्शन सम्बन्धी उपलब्धियो की दृष्टि से प्रसादकृत 'कामायनी' को महाकाव्यालोचको ने एकमत से आधुनिक युग का सर्वोत्कृष्ट हिन्दी महाकाव्य स्वीकार किया है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् भी हिन्दी मे महत्वपूर्ण महा-काव्य-कृतियो की रचना हुई है जिनकी विकासक्रम (कालक्रमानुसार) की दृष्टि से सूची निम्नांकित प्रकार है—

महाकाव्य	महाकाव्यकार	प्रकाशन-तिथि
१. मेधावी	रांगेय राघव	१९४७
२. विक्रमादित्य	गुरुभक्तसिंह	१९४७
३. दैत्यवंश	हरदयालुसिंह	१९४७
४. रामकथा कल्पलता	नित्यानन्द शास्त्री	१९४९
५. अगराज	आनन्दकुमार	१९५०

३८	कालिदास	श्री तिलक	१९६५
३९	मानवेन्द्र	रघुवीर शरणमित्र	१९६५
४०	निराला	श्री तिलक	१९६६
४१	श्री गुरु गोबिन्दसिंह	श्याम नारायण प्रसाद	१९६७
४२	गाधी पारायण	अबिका प्रसाद दिव्य	१९६९
४३.	कैकेयी	चांदमल चन्द्र	१९६९
४४.	देव पुरुष गाधी	रमेशचन्द्र शास्त्री	१९६९
४५	कमला	परमेश्वर द्विरेफ	
४६	काव्य पुरुष	रमाशकर शुक्ल रसाल	
४७	छत्रसाल	लालधर त्रिपाठी	
४८.	जयमानव	ब्रह्मदत्त दीक्षित	
४९	परमज्योति महावीर	धन्य कुमार जैन	
५०	गाधी चरित मानस	विद्याधर महाजन	

स्वातन्त्र्योत्तर काल म प्रकाशित हिन्दी के उपर्युक्त महाकाव्यो की विस्तृत सूची देखकर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि हिन्दी म महाकाव्यो की रचना विपुल परिमाण मे हुई है। यही स्वभावत यह प्रश्न भी हो सकता है कि क्या ये सभी काव्यग्रन्थ सचमुच 'महाकाव्य' की सज्ञा से सम्बोधित किये जा सकते हैं ? इनमे से कौन से ग्रन्थ मात्र प्रबन्ध काव्य, एकार्थ-काव्य, तथाकथित महाकाव्य या वृहत खण्ड काव्य अभिधान के अधिकारी हैं ? वस्तुत ये प्रश्न अलग से विचारणीय हैं, क्योकि इनका सम्बन्ध महाकाव्य के रूपविधायक तत्वो, लक्षणो, परिभाषा एव रूप-सरचना से है। इस विषय पर मैंने अपनी पूर्व प्रकाशित तीन पुस्तको म विस्तारपूर्वक विवेचन भी किया है।* यहाँ यही निवेदन करूँगा कि महाकाव्य-रचना के परम्परागत मान्य प्रतिमानो तथा महाकाव्यालोचन के नवीन निकषो के समन्वित सैद्धान्तिक आधार पर उल्लिखित काव्य ग्रन्थो को सामान्यत महाकाव्य के रूप म स्वीकार किया गया है। समकालीन साहित्य की अन्य विधाओ की भाँति महाकाव्य की रूप रचना म भी आपातिक परिवर्तन हुआ है। इस परिवर्तन क्रम को महाकाव्यो की कथा सयोजन विधि, नायक की परिकल्पना, चारित्रिक विनियोजन, शैल्पिक

---

* १ हिन्दी महाकाव्य सिद्धान्त और मूल्याकन
२. आधुनिक प्रतिनिधि हिन्दी महाकाव्य
३ हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य (शोध प्रबन्ध)

३८.	कालिदास	श्री तिलक	१९६५
३९	मानवेन्द्र	रघुवीर शरणमित्र	१९६५
४०	निराला	श्री तिलक	१९६६
४१.	श्री गुरु गोविन्दसिंह	श्याम नारायण प्रसाद	१९६७
४२.	गांधी पारायण	अंबिका प्रसाद दिव्य	१९६९
४३.	कैकेयी	चांदमल चन्द्र	१९६९
४४.	देव पुरुष गांधी	रमेशचन्द्र शास्त्री	१९६९
४५	कमला	परमेश्वर द्विरेफ	
४६.	काव्य पुरुष	रमाशंकर शुक्ल रसाल	
४७	छत्रसाल	लालधर त्रिपाठी	
४८.	जयमानव	ब्रह्मदत्त दीक्षित	
४९	परम ज्योति महावीर	धन्य कुमार जैन	
५०.	गांधी चरित मानस	विद्याधर महाजन	

स्वातन्त्र्योत्तर-काल में प्रकाशित हिन्दी के उपर्युक्त महाकाव्यों की विस्तृत सूची देखकर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि हिन्दी में महाकाव्यों की रचना विपुल परिमाण में हुई है। यहीं स्वभावतः यह प्रश्न भी हो सकता है कि क्या ये सभी काव्यग्रन्थ सचमुच 'महाकाव्य' की संज्ञा से सम्बोधित किये जा सकते हैं? इनमें से कौन से ग्रन्थ मात्र प्रबन्ध काव्य, एकार्थ-काव्य, तथाकथित महाकाव्य या वृहत् खण्ड काव्य अभिधान के अधिकारी हैं? वस्तुतः ये प्रश्न अलग से विचारणीय हैं, क्योंकि इनका सम्बन्ध महाकाव्य के स्वरूपविधायक तत्वों, लक्षणों, परिभाषा एवं रूप-संरचना से है। इस विषय पर मैंने अपनी पूर्व प्रकाशित तीन पुस्तकों में विस्तारपूर्वक विवेचन भी किया है।* यहाँ यही निवेदन करूँगा कि महाकाव्य-रचना के परम्परागत मान्य प्रतिमानों तथा महाकाव्यालोचन के नवीन निकषों के समन्वित सैद्धांतिक आधार पर उल्लिखित काव्य ग्रन्थों को सामान्यतः महाकाव्य के रूप में स्वीकार किया गया है। समकालीन साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति महाकाव्य की रूप रचना में भी क्रान्तिक परिवर्तन हुआ है। इस परिवर्तन-क्रम को महाकाव्यों की कथा संयोजन विधि, नायक की परिकल्पना, चारित्रिक-विनियोजन, नैतिक

---

* १. हिन्दी महाकाव्य : सिद्धान्त और मूल्यांकन
२. आधुनिक प्रतिनिधि हिन्दी महाकाव्य
३. हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य (शोध प्रबन्ध)

प्रतिमानो की नवीनता, प्रतिपाद्य के वैशिष्ट्य और जीवन-दर्शन सम्बन्धी अवधारणाओ मे स्पष्टत देखा जा सकता है। वस्तुत. 'नवलेखन-युग' में रचे महाकाव्यो मे शिल्प-सगठना से अधिक महत्वपूर्ण उनका प्रतिपाद्य ही है। स्वातन्त्र्योत्तर कालीन महाकाव्यो की रचना विधि के परिवर्तित स्वरूप को देखते हुए महाकाव्यालोचन के मानदण्डो मे भी सशोधन परिवर्तन अपेक्षित है। नए महाकाव्यो के समीक्षण मे कथात्मक लोक विश्रुति, उदात्त चरित्र सृष्टि, छन्द-वैविध्य, वर्णन-वैचित्र्य, भाषा-सौष्ठव, शैलीगत गरिमा आदि से अधिक महत्व-पूर्ण महाकाव्यो की सृजन प्रेरणा के स्रोत, युग प्रेरक प्रवृत्तियो की समाहृति, युग जीवन के समुन्नत बोध का प्रतिफलन, मानवीय जीवन-मूल्यो की प्रतिष्ठा का काव्य-सकल्प, सामाजिक चेतना के गतिशील स्तरो के रूपाकन की अदम्य आकाक्षा, सास्कृतिक निष्ठाएँ तथा समकालीन जीवनादर्शों के अनुरूप युगीन प्रश्नो के समाधान की विराट चेष्टा का निदर्शन विवेचनीय और अनुसन्धेय होना चाहिए। वस्तुत महाकाव्यालोचन के नवीन निकष यही 'मानक विचार बिन्दु' बन सकते हैं। इन पक्तियो के लेखक ने स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्यो के मूल्याकन मे इसी प्रकार का विनम्र प्रयास किया है। इस प्रयास की सफलता-विफलता तथा उपलब्धियो-अभावो का निर्णय तो विज्ञ पाठक करेंगे; किन्तु मुझे इतना सतोष अवश्य है कि महाकाव्यालोचन के क्षेत्र मे यह प्रयास अपने ढग का है और समीक्षण-प्रविधि के नए आयाम उद्घाटित करता है। इस अध्ययन क्रम मे आलोच्य महाकाव्यो की जो सामान्य प्रवृत्तियाँ परि-लक्षित हुईं, वे इस प्रकार हैं—

१ स्वातन्त्र्योत्तर कालीन महाकाव्यो के इतिवृत्त-विधान के स्रोत इतिहास-पुराण और समकालीन जीवन रहे हैं। सरचना मे कथा-तत्त्व का अधिग्रहण आधार भूमि की निर्मिति हेतु ही किया गया है, कथा-कथन या आख्यान निरू-पण के लिए नहीं। काव्यो का कलेवर-विस्तार युग जीवन की आवश्यकता-नुसार प्रेरक-प्रसगो की परिकल्पना द्वारा किया गया है। महाकाव्यकारो की एतद्विषयक सूझ-बूझ का परिचय मौलिक घटनात्मक प्रसगो की सृष्टि मे सर्वत्र दृष्टिगत होता है। परम्परागत इतिवृत्त विधान से सर्वथा मुक्त काव्य का उदाहरण डॉ० रामेय राघव कृत 'मेधावी' महाकाव्य है। काल्पनिक कथा विस्तार की दृष्टि से 'एकलव्य', 'कालिदास', 'सारथी', 'लोकायतन' आदि महाकाव्य उद्धरणीय हैं।

२. आलोच्य महाकाव्यो मे अधिकांश चरित्रमूलक हैं। 'नायक की परिकल्पना' मे महाकाव्यकारों ने नितात प्रगतिशील किंवा क्रान्तिकारी रचना-

 69602

दृष्टि का परिचय दिया है। दैवी पात्रों के देवत्व का प्रक्षालन कर तथा दानवीय पात्रों के दानवत्व का परिष्कार कर उन्हें मानवीय धरातल पर अधिष्ठित किया गया है। धीरोदात्तता से च्युत, उपेक्षित एवं तिरस्कृत पात्रों पर महाकाव्य-रचना कर महाकाव्यकारों ने मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रभूत परिचय दिया है। अधिकांश महाकाव्य नायिका प्रधान होने के कारण नारी जागरण की जीवन्त चेतना को मुखरित करने मे सक्षम सिद्ध हुए हैं। चरित्र-निरूपण में मनोवैज्ञानिक संस्पर्श और पूर्वाग्रह मुक्त तटस्थ-मूल्यांकन-वृत्ति सामान्यतः सर्वत्र परिलक्षित होती है।

३. स्वातन्त्र्योत्तर कालीन महाकाव्यकारों ने परम्परित रचनादर्शों (यथा—सर्ग-संख्या, सर्गान्त-छन्द-परिवर्तन, छन्द वैविध्य, मंगलाचरण, वर्णन-वैशिष्ट्य, भाषात्मक-अलंकृति आदि) का बहिष्कार कर नवीन शैल्पिक प्रतिमानों का अधिग्रहण किया है जिसे मुक्त-छन्द—प्रयोग, अलंकरण-व्यामोह से मुक्त संप्रेषणीय भाषात्मक संयोजना, शैलीगत-ऋजुता, नाटकीय-तत्वों की समाहृति, भावर्तित कथा-प्रस्तुति, मनोवैज्ञानिक चरित्र विश्लेषण आदि में देखा जा सकता है।

४. आलोच्य महाकाव्यो मे आधुनिक युग की प्रमुख विचारधाराओं (यथा-समाजवाद, साम्यवाद, गांधीवाद, सर्वोदय, लोकतन्त्र, मानवतावाद आदि) तथा समुन्नत युग बोध के नाना रूपों का (यथा—आधुनिकता बोध, अस्तित्वबोध, मृत्यु बोध, कालबोध, क्षणबोध, यौनबोध, अहंबोध, नवीन भावबोध एवं सौन्दर्य बोध आदि) समकालीन जीवन की ज्वलन्त समस्याओं के निरूपण और निदान के परिप्रेक्ष्य में सशक्त प्रतिफलन हुआ है।

५. स्वातन्त्र्योत्तर कालीन महाकाव्यो की संरचना के मूल मे बलवती सृजन प्रेरणा और महती रचनात्मक सोद्देश्यता क्रियमाण रही है। उदाहरणार्थ—स्वदेश प्रेम और राष्ट्रीय-गौरव की व्यंजना, युगपुरुषों और लोकनायकों की चारित्रिक-गरिमा का निरूपण, मानवीय चेतना और संवेदना के गतिशील स्तरों का रूपाकन, चिरन्तन मानवीय जीवन-मूल्यों की प्रस्थापना का आग्रह, नारी-जागरण का उद्‌घोष तथा मानवता के परम मांगलिक एवं सुखद भविष्य की अदम्य आकांक्षा आलोच्य महाकाव्यों की संरचना के सम्प्रेरक तथा सर्जक तत्त्व रहे हैं।

६. आलोच्य महाकाव्यों की दार्शनिक पीठिका के परिनिर्माण में परम्परित दार्शनिक मतवादों के स्थान पर युग-जीवन के चिन्तन से प्रतिफलित

विचारधाराओं का विशेष अनुदान रहा है। इसीलिए इन महाकाव्यो की विचारणा को 'दर्शन' के स्थान पर 'जीवन दर्शन' अभिधान से अभिहित किया गया है। 'जीवन-दर्शन' की निर्मिति मे दर्शन के अतिरिक्त धर्म, सस्कृति, इतिहास, कला, मनोविज्ञान तथा शास्त्र (यथा—समाजशास्त्र, नीतिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नृतत्त्वशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति-शास्त्र, सगीतशास्त्र, धनुर्वेदशास्त्र आदि) की समन्वित भूमिका रही है। आलोच्य महाकाव्यो के समन्वित दार्शनिक अनुचिन्तन को सहज मे ही 'मानवतावादी जीवन-दर्शन' की सज्ञा प्रदान की जा सकती है।

७ स्वातन्त्र्योत्तर कालीन हिन्दी महाकाव्यो के रचयिता चाहे भारतीय परम्परा के वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, माघ, भारवि, श्रीहर्ष, अश्वघोष, स्वयभू, पुष्पदन्त, चन्द बरदाई, तुलसी, प्रसाद अथवा पाश्चात्य-परम्परा के वर्जिल, दान्ते, होमर, गेटे, मिल्टन, स्पेन्सर, एरिआस्टो, टैंसी आदि महाकाव्यकारो के समान मनीषी महाकवि न हो किन्तु वे सर्जनात्मक प्रतिभा एव प्रखर काव्य-मेधा से सम्पन्न सचेतन रचनाकार अवश्य हैं। इन महाकाव्यकारो की जीवन्त कला-चेतना और जागरूक काव्य मेधा का प्रमाण ऐतिहासिक पौराणिक कथानको के जर्जरित कलेवर मे युग जीवन के प्रखर चेतनालोक, समकालीन भावबोध की सदीप्ति, मूल्यगत सक्रमणशीलता के विघटनकारी तत्त्वो मे सर्जनात्मक सदर्भों की आयोजना तथा आणविक युग की विनाशकारी वैज्ञानिक उपलब्धियो मे मानवता के मांगलिक भविष्य की रचनात्मक सभावनाओ को साकार करने मे द्रष्टव्य है।

८. प्रवृत्तिमूलक वैशिष्ट्य एव रचनात्मक-गौरव के कारण स्वातन्त्र्योत्तर कालीन महाकाव्य-कृतियाँ हिन्दी महाकाव्य की सुदीर्घ गौरवान्वित परम्परा का अविच्छिन्न अग बन गई हैं। भारतीय जन-जीवन के चेतना-विकास को व्यापक युगीन सन्दर्भों म अवतरित करने के कारण इन कृतियो का महत्व साहित्यिक भी है और सास्कृतिक भी।

इस पुस्तक के 'प्रथमार्द्ध' मे स्वातन्त्र्योत्तर काल की जिन २० महाकाव्य-कृतियो का समीक्षात्मक मूल्याकन प्रस्तुत किया गया है, उनमे उल्लिखित प्रवृत्तियाँ उजागर हुई हैं। 'द्वितीयार्द्ध' मे शेष ३० महाकाव्य-कृतियो का मूल्याकन प्रस्तुत किये जाने की योजना है। स्वातन्त्र्योत्तर कालीन हिन्दी महाकाव्य के समष्टि परक व्यवस्थित मूल्याकन के इस विनम्र प्रयास से यदि हिन्दी महाकाव्यालोचन एव महाकाव्यानुसन्धान का पथ प्रशस्त हुआ तो मैं अपना श्रम सार्थक मानूँगा।

इस अवसर पर मैं अपने मित्र डॉ० पुष्कर दत्त शर्मा के प्रति उनके रचनात्मक सुझावों के लिए कृतज्ञता ज्ञाप्ति करता हूँ। मेरी सहधर्मिणी श्रीमती सरला गुप्ता ने 'घर-गृहस्थ' के सम्पूर्ण दायित्वों का स्वतः संवहन कर मुझे न केवल एकनिष्ठ लेखन का अवसर प्रदान किया अपितु वे निरन्तर सप्रेरिका भी बनी रही। उनकी सप्रेरक-निष्ठाएँ मेरे रचनाधर्मी प्रयासों का अभिन्न अंग बन गई हैं, अतः आभार प्रदर्शन व्यर्थ की औपचारिकता ही होगी। इस पुस्तक की सुरुचिपूर्ण प्रकाशन-व्यवस्था के लिए मैं श्री किशनलाल गाडोदिया एवं आकर्षक मुद्रण के लिए श्री रघुनन्दनसिंह चौहान के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

अन्त में अपनी त्रुटियों के प्रति विज्ञ पाठकों से क्षमा-याचना करते हुए अपनी श्रम-साधना का सुमन माँ भारती के महालय में अर्पित करता हूँ।

बीकानेर (राजस्थान) देवीप्रसाद गुप्त
२५वाँ स्वाधीनता रजत-जयंती पर्व
१५ अगस्त १९७२

अनुक्रम

१

'मेधावी' महाकाव्य

मानवीय-चेतना के गतिशील स्तरो का रूपांकन

आधुनिक हिन्दी महाकाव्य की परम्परा मे डॉ० रागेय राघव कृत 'मेघावी' प्रबन्ध काव्य का प्रणयन अनेक दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। मेधावी' का प्रकाशन हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद द्वारा भारत की स्वाधीनता प्राप्ति के वर्ष मे हुआ। यह विलक्षण सयोग है कि परोक्षत मेधावी' के कथ्य का सम्बन्ध मानवता के स्वातन्त्र्य सूर्य के चिरन्तन आलोक से विकीर्ण होने वाली चेतना-रश्मियो की विकास गाथा से है। 'मेधावी' काव्य की सृजन प्रेरणा के मूल मे कवि की वह अदम्य आकाक्षा क्रियमाण रही है जिसके द्वारा वह मानवीय चेतना के गतिशील स्तरो का रूपाकन इतिहास की महागति के परिसन्दर्भ म करना चाहता है। इतिहास के सत्य को कवि ने घटनात्मक तिथिक्रम की शृखलाओ मे ही निबद्ध नही माना वरन् अनुभूति और चिन्तन के धरातल पर अधिष्ठित कर सम्पूर्ण मानवीय ज्ञान विज्ञान की अभ्युत्थानमूलक गति से सम्बन्धित माना है। इसी-लिए उसने मानवता विकास की ऐतिहासिक गति के अन्तर्गत ही काव्य, कला, सगीत, भूगोल, समाजशास्त्र राजनीति, दर्शन तथा विज्ञान के क्षेत्र मे हुई प्रगति के अवश्यम्भावी परिणामो का भी मूल्याकन किया है। मानवता के आविर्भाव-काल से लेकर विभिन्न युगो म उसके सचेतन विकास तथा सभ्यता और सस्कृति के विभिन्न सोपानो पर सचरण करते हुए, वैज्ञानिक उपलब्धियो के परिप्रेक्ष्य मे उसके मागलिक भविष्य की कल्पनाओ को आलोच्य काव्य के विराट रचना फलक पर अकित किया गया है। 'मेधावी' की पात्र सृष्टि भी अमूर्त है। 'इतिहास' और 'गति' को कवि ने नायक और नायिका के रूप मे प्रतिष्ठित किया है। मानवीय चेतना के जिस उदात्त और विराट स्वरूप का महत्वाकन कवि का अभिप्रेत है, उसकी सिद्धि म सामान्य भौतिक व्यक्तित्व वाले नायक-

नायिका सहायक हो भी नही सकते थे। इस सम्बन्ध मे 'मेधावी' के रचनाकार का यह कथन उल्लेखनीय है कि—"प्रस्तुत काव्य इतिहास की तरह बद्ध नही है। अनुभूति और विचार के कारण कही कही इतिहास की तिथियो का ध्यान नही रखा गया क्योंकि तिथियो का महत्व भी स्वय अनुभूति मे है, इस प्रकार का काव्य लिखते समय मात्र। इतिहास, दर्शन, भूगोल, काव्य, समाजशास्त्र आदि सबका इसमे सम्मिश्रण है, अत इसकी भूमि बहुत विस्तीर्ण है। एक नायिका एक नायक के चरित्र मे इतना रूप समाना असभव है। इस काव्य के नायक-नायिका-इतिहास और गति हैं, और मेधावी के द्वारा वे प्रकट हुए हैं।"[1] नायक-नायिका के अतिरिक्त 'मेधावी' की चरित्र-सृष्टि मे अन्य पात्र हैं—तारे, सूर्य, पृथ्वी, छायापथ, शून्य, अग्नि, वायु, जल, उषा, समय, षट्ऋतुएँ, कवि, दार्शनिक, वैज्ञानिक और मानव। पात्रो और प्रतिपाद्य की भाँति ही 'मेधावी' की शिल्प सरचना मे भी वैशिष्ट्य है। 'मेधावी' के रचयिता ने महाकाव्य के रूप विधायक तत्त्वो को भी परम्परित ढग से समायोजित नही किया है। उदाहरणार्थ—'मेधावी' सर्गबद्ध होते हुए भी आख्यान-तत्त्व की पूर्वापर अन्विति की दृष्टि से विशृंखिल है तथा सुसगठित छन्द-योजना के साथ-साथ नाटकीय गद्यात्मकता से विन्यस्त है। कथ्यमूलक वैविध्य के कारण भावात्मक-सरचना, शब्द-विन्यास और शैलीगत समायोजन मे भी पर्याप्त वैषम्य है। किन्तु इस सबके बावजूद भी 'मेधावी' के कलेवर मे आद्यात अनुभूति और चिन्तन की गरिमा का ऐसा ऐक्य विद्यमान है, जो न केवल पाठक को अभिभूत किए रहता है वरन् इस काव्य की महार्घता का भी प्रतिपादक है। इस असाधारण वैशिष्ट्य के कारण 'मेधावी' को आधुनिक हिन्दी-महाकाव्य-परम्परा की 'कामायनी', 'कुरुक्षेत्र', 'उर्वशी', 'लोकायतन' सदृश्य श्रेष्ठ प्रबन्धकाव्य-कृतियो के साथ श्रेणीबद्ध किया जा सकता है।

'मेधावी' महाकाव्य का समारम्भ 'महागति' के स्वरूप-विवेचन, इतिहास की व्याख्या और सृष्टि-सरचना की सोद्देश्यता के सधान से होता है। काव्यारम्भ मे पूर्व प्रथम सर्ग का आख्यान-सकेत है—"एक दिन व्याकुल मेधावी बैठकर चिन्तन करने लगा। अपनी पृथ्वी की लघुता से ऊब कर उसने देखा अनन्त आकाश में करोड़ तारा नृत्य कर रहे थे।" मेधावी स्तब्ध, मौन, गहन, सुनसान गगन के दृश्य को देखकर 'महागति' के सम्बन्ध म चिन्तन करता हुआ कहता है कि—

---

[1] मेधावी—प्राक्कथन से उद्धृत

"महागति जिसका ओर न छोर
सृष्टि के जीवन का उल्लास
नाच री नाच सृजन की कोर
नाच रे नाच ध्वस के छोर
आत्मलय जग का बने विकास
मरण मे जन्म, जन्म मे मृत्यु
तिमिर का घन निस्तब्धता तोड
चमक उठ ओ चेतन कन जाग" (सर्ग १, पृ० २)

मानव की अपराजेय जीवन-शक्ति पर विचार करते हुए मेधावी ने कहा कि युगो से मानव एक ही खोज मे निरत है; वह है—मनुज का ध्येय और सृष्टि का उद्देश्य। किन्तु 'मैं' (अहकार) की मेधा से उद्दीप्त मानव आज तक यह नही जान पाया कि जीवन का सत्य और झूठ क्या है ? वास्तव मे विकल मैं' का उन्माद ही विश्व का केन्द्र और स्फूर्ति है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड की भी सापेक्ष स्थिति है। प्राण का छोटा सा दीप ही ब्रह्माण्ड के विराट रूप मे प्रकाशित है। 'महागति' का परिवर्तन ही 'अणु' को नाना रूपो मे अभिव्यक्त करता है। वही अणु जो अतीत मे सम्राट था, आज भिखारी के तन मे आबद्ध है। रागिणी; जो कल गीत थी आज अनुगूंज है। कल जो मतवाली चितवन थी, आज झुकी पलको का अभिशाप है। मुक्ति-बंधन तथा पाप-पुण्य का भेद भी 'महागति' का ही उच्छृखल श्वास है। मानव, जिसका दिशावधि विस्तार है और जिसने सिद्धार्थ और चगेज के रूप धरे है, वह भी 'महागति' के अनन्त सत्य और रहस्य को नही समझ पाया है। कवि की धारणा है कि मनुष्य का यह दम्भ अकारथ है कि वही सर्वशक्ति सम्पन्न है—

"अरे मानव क्यो इतना गर्व
कि तू ही है सबका चिर केन्द्र ?
बना कर परमेश्वर का दम्भ
कर रहा अपना तू अपमान ?
गए वह दिन जब ताराधूलि
देवताओ की छाया म्लान,
आज तो वह भी चलते भूत
कि जैसे पृथ्वी का अभिमार।" (सर्ग १, पृ० ६)

मेधावी के अनुसार निस्सीम नभ को कल्पना के पखों से मानव का ज्ञान-विहग नही तिर सकता है। शून्य ही शून्य का अपरिमित विस्तार है। इसमे

विज्ञान एक अवाक् शिशु की भाँति इसके अगणित रूपों के संधान मे प्रवृत्त है। अरबों वर्षों से सृष्टि का क्रम अविराम गति से चल रहा है और मनुष्य का दम्भ अनेक बार चूर्ण हुआ है। "मैं हूँ" के दम्भ-भाव ने उसे सन्ताप ही दिया है। परिवर्तन के सत्य से अनभिज्ञ मानव ने उससे संघर्ष भी किया; किन्तु उसे निराशा ही हाथ लगी। महासत्ता के डर से मनुष्य ने ईश्वर की सृष्टि की। वस्तुतः चिरन्तन सत्य दो ही हैं—

"और दो ही हैं शाश्वत सत्य
एक सत्ता का अविरत खेल
दूसरा परिवर्तन का नृत्य
उसी की महारीर मे मग्न
बही जाती है सृष्टि अबाध
× × ×
सभी तो गति की चिर स्वच्छन्द
प्रबल धारा का सुन्दर रूप
अस्ति है स्वय अस्ति का केन्द्र
नास्ति है केवल दृढ़ता शक्ति
ज्योति-तम का यह अविरत खेल
आत्मलय औ' विकास का मेल।" (सर्ग ४, पृ० ३६-३७)

चूँकि परिवर्तन की गति मे ही सृष्टि का अपार विकास निहित है, अतः परिवर्तन ही सर्वात्मरूप है। उसका नर्तन जग का विकास है तो उसी विराट का रुद्रक्रोध ही ज्वालामुखी के विस्फोट की भाँति क्रान्ति को उमडाता है जिससे भस्मीभूत करने वाला विध्वंस होता है और यह सृष्टि लय हो जाती है। *'परिवर्तन' के महाप्रसार का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—*

"तू अन्तराल का अट्टहास, तू वर्णहीन तू वर्णलास
तू पल पल के पुल पर चलता, है समय-सिन्धु कर रहा पार
अगनित स्वर्गंगा भानु अगन, तुझ मे से फूटे स्फुलिंग
तुझ मे अगनित नाटक हरे, तू महाशून्य का रगमच।"

(सर्ग ४, पृ० ३९)

मेधावी के अनुसार अब (वर्तमान), कल (भविष्य), ऋतुएँ, अब्द, कल्प, स्थिति, गति आदि सब परिवर्तन के नूपुर की ही मणियाँ हैं। पक्ष, मास, ऋतु आदि उसके अविरत नर्तन के सतत स्फुरण हैं। वन, आतर, शैल, गुहा, नदियाँ, द्यावा, मारुत, पर्जन्य, कुम्भ, लहरें, कोमल-मृदु ततु आदि परिवर्तन की

गरिमा की ही धूप छांह है। जन्म और मृत्यु चिर परिवर्तन के ही दो चरण हैं। सृष्टि के सचेतन विकास और विनाश का कारण भी परिवर्तन ही है—

"तेरे नर्त्तन से सृष्टि जरा, नव-नव प्रकाश मे चिर नवीन
तेरे चुम्बक से जाग्रति मे, है चिर सुषुप्ति का आदि लीन
तू अणु से फूट हुआ विराट, फिर भी विराट तू है अणु ही
तू चिर चेतन पदार्थ मे है, व्यस्तता, क्षोभ, मिश्रण, विनाश
जो आदि शून्य, वह अन्तशून्य, तू ही दोनो का एक सत्य
तू आत्म विकास अमर पुलकित, अन्तर्बाहर का एक सत्य।"

(सर्ग ४, पृ० ४४)

सृष्टि-रचना के क्रम मे सर्वप्रथम प्रकृति ने पुलक कर निर्माण किया। प्रकृति के कण मानव ने भी निर्माण प्रारम्भ किया और दोनो म द्वन्द्व बढा। सूर्य और नक्षत्र नभ मे दौडे, नदियाँ सागर की ओर चली। सागर बादल मे युद्ध हुए और बादल शैलो से टकराकर भू पर बरसे। मनुष्य ने पृथ्वी का लोहा पृथ्वी मे मार कर सोना और अन्न उत्पन्न किया और फिर निर्माण का जय गीत गूँजने लगा। गति रूपी महाशक्ति भी आगे बढी। इसी गति-शक्ति ने निर्माण के साथ नाश का बल सचित कर सृष्टि मे सतुलन स्थापित किया। 'गति' को व्याख्यायित करते हुए कवि कहता है—

"गति महानाद, गति ईमन ध्वनि
गति कालमयद, गति है जीवन
है कभी फूटकर सृष्टि बनी
इतनी गम्भीर इतनी विराट
× × ×
गति माया है गति उलझन है
गति भीरु हृदय की ज्वाला है
गति के अणु को, लय के स्वर को
गति जीवन है, उजियाला है।" (सर्ग ४, पृ० ४९-५०)

पचम सर्ग का आख्यान-सकेत है—"मेधावी ने देखा—आकाश के बीच महाशून्य म धीरे धीरे सौरचक्र बनने लगा और पृथ्वी सूर्य को देखकर मुस्कराने लगी।" महाशून्य मे विलोडन करता एक महाचक्र घूम रहा था जिससे अणु-अणु मे ज्योति जीवित थी। अग्नि रूप सा सूर्य धधकता हुआ अन्तराल मे घूम रहा था कि आकर्षण के कारण एक नक्षत्र टूटा और भिन्न गति से घूमने लगा। इस नक्षत्र की ऊष्मा भाप बनकर पिघली और जलरूप हो गयी।

कालान्तर मे जल की जडता ने धरती का रूप धारण किया। (सर्ग ५, पृ० ५७) षष्ठ सर्ग के आख्यान सकेत मे कहा गया है कि—"धीरे-धीरे पृथ्वी पर भूत का स्पन्दन हो उठा और जीव चलने लगा।" भूत के स्पन्दन से सृष्टि मे प्राणि-विकास का समारम्भ हुआ। सर्वप्रथम जल मे मृदु-कम्पन हुआ जिसके कारण युग-युगान्त से निष्प्राण जीवन जागा और फिर जलचर, थलचर, नभचर का क्रमिक विकास हुआ—

"जल मे आया मृदु मृदु कम्पन, रे जीवन का हो उठा घोष
स्वप्नो से पाषाणी जागी, जीवन-जीवन का हुआ तोष
× × × × ×
जलचर, नभचर, थलचर आये, क्रम-क्रम विकास रे हुआ सुमन
× × × × ×
वह स्थूल उठा छविमय रूप, चेतन की दृष्टि जगी दृग मे
चेतन का जीवन खेल उठा, हर तन्तु-तन्तु के अग-जग मे।"
(सर्ग ६, पृ० ६१-६२)

इस प्रकार परिवर्तन ने अरूप प्राण का रूप धरा। फिर सुख-दुख और राग-विराग की भावना जगी। प्रकाश की स्वर्णकिरण जागी जिससे मेघो ने झर कर सर्वत्र रस व्याप्त कर दिया। अन्धकार और प्रकाश ने दिन-रात के पट बुने। इसी से आगे चलकर मास, वर्ष, और युग बने। वस्तुत गति और परिवर्तन ही ऐसे दो सत्य हैं जो अनेक रूपो मे आविर्भूत होते हैं। कवि के अनुसार—

"रे जन्म मरण दो रहे सत्य
अन्तर्विकास औ' अन्तर्लय
रे बद्ध परस्पर चिन रहे
वह अन्धतमस औ' ज्योतिर्मय।" (सर्ग ६, पृ० ६२)

षष्ठ सर्ग मे ही सृष्टि-तत्त्वो की व्याख्या की गई है। ये तत्त्व हैं—अग्नि, वायु, जल, समय आदि। कवि के अनुसार 'समय' के कारण ही शैल मैदान और मैदान उपत्यकाओ तथा मरुभूमि मे परिवर्तित होते हैं। पता नही कब तक प्राण-तत्त्व सिन्धु-तल के गहन तिमिर मे विकल ऊर्म्मियो के घर्षण मे पोषित होता रहा। वही प्राणभूत तत्त्व विभाजित होकर बढता हुआ मत्स्य बना। जीव-विकास की प्रक्रिया मे जलचरो के पश्चात् सरीसृप और नभचर हुए। इसके पश्चात् कठोरचर्म और रोमराजि से आवृत्त प्राणी हुए। जैविक-विकास की यह अपराजित परम्परा जीवन की धारा के रूप मे निरन्तर

प्रवाहित होती रही है और प्राण-तत्व चिरन्तन होने के कारण सदैव अवस्थित रहता है—

"नही था मानव का जब स्वप्न
भूमि पर थे तब भी तो प्राण
अरे ! यह प्रबल विकास··
शक्ति का अनुवर्त्तन कर नित्य
बदलते रूप और आकार।" (सर्ग ६, पृ० ७५)

सप्तम सर्ग के आख्यान-सकेत के अनुसार—'मेधावी ने चकित होकर देखा मनुष्य का इतिहास कितना अल्प था, किन्तु अपने प्रति प्यार आन्दोलित हो उठा।" सृष्टि-सरचना के विकास के पश्चात् मेधावी की दृष्टि मानवता के इतिहास पर गई। एक दिन था, जब आर्य-विजय का घोष पहाडो मे गूँजता था और वृषभ घण्टध्वनि पर ऋचाओ का स्वर झूमता था। आर्य आनन्द-विभोर होकर गाते थे—'सत्य की ओर ! ज्योति की ओर'। फिर देवताओ की खोज और कर्मकाण्ड विकसित हुआ और तत्पश्चात् चार्वाक, कपिल, जाबालि, यास्क, मनु, गौतम आदि ने अपनी बात ससार के समक्ष रखी। किन्तु सुख की आशा मे विकल मानव ने सभी को अनसुना करके विजयोत्कण्ठा मे जीवन-सघर्ष किया। मानव मे 'अहबोध' इतना प्रबल रहा कि वह स्वय को ही नहीं जान पाया—

"अरे मैं हूँ 'चगेज' कठोर, अरे मैं हूँ 'तैमूर' प्रवीर
'सिकन्दर' 'नीरो' 'बाबर' आदि आज मुझ मे हैं उन्मुक्त
अलहजर' या 'नालन्दा' भव्य, कि विक्रम 'तक्षशिला' का ज्ञान
लिटता है लहरो सा स्फीत, महामेधा चरणो पर गूँज
आज मैं 'वाल्मीकि' का गीत, आज मैं 'ॐ' नाद का प्राण
× × × ×
आज मैं ! 'मैं' यह मेरा सत्य, आज 'तू' वह सापेक्ष पुकार
विश्व सत्ता मे मेरी लीन, किन्तु मैं क्या हूँ।"
(सर्ग ७, पृ० ८६)

कवि के अनुसार 'मैं क्या हू' का उत्तर यह है कि मनुष्य को 'जीवन' की महान् प्रगति को क्षणिक बनकर झुठलाना नही चाहिए। अज्ञानवश ही मनुष्य प्रकृति से सघर्ष करता रहा है। अविश्वासो का पाथय लेने के कारण ही उसे दिग्भ्रम हुआ। मृगतृष्णा मे हारकर वह अपना कुटिल कपाल टोरता है। गति की सत्ता का सत्य ही शाश्वत सत्य है, और रहेगा। क्योंकि—

"न कोई ईश्वर या छल छन्द
न कोई आत्मा या अमरत्व
कल रहा सत्य
आज भी सत्य
और यह गति के पल पल सत्य
राह के पथी पग पग सत्य
राह है नृत्य, नृत्य है सत्य ।" (सर्ग ७, पृ० ८८)

अस्तु, मनुष्य को अन्धनिष्ठाओं का परित्याग कर वर्तमान के प्रति आस्था रखनी होगी। कलुष की नींव को मिटाने पर ही मानव का ज्ञान प्यार की मृदु छाया में स्नात होकर ज्योतित रूपशिखा बन सकेगा। अष्टम सर्ग में बताया गया है कि आदिम मानव से धीरे-धीरे मनुष्य उन्नति की ओर बढ़ा और उसके ज्ञान का परिधि-विस्तार हुआ। आदिम-मानव की आचरण-पद्धति का बखान करते हुए कवि कहता है कि वह तपे हुए तावे से तन वाला, रोम-राजि से आवृत्त और चिबुक-माल से हीन वपुप धारण किए था। वह छोटे किन्तु सुदृढ़ हाथों से कच्चे पल्लव खाकर घरर-घरर की ध्वनि करता सा पानी पीता था। पलभर में वह लघु-पशु के पीछे टीले, खड्ड और समतल पर पीछा करता हुआ भागता और कच्चा मांस चर्वण करने लगता। उसके नग्न वपुप पर रुधिर टपकता था। 'आखेट-युग' के मानव की जीवन-चर्या का सविस्तार वर्णन करने के पश्चात् कवि ने स्त्री-पुरुष के उस उन्मुक्त यौन-संसर्ग का निरूपण किया है, जिससे सामाजिक भावना का उद्‌भाव हुआ—

"अरे नर नारी का संयोग
बन गया सुख का पहला केन्द्र
× × ×
और जब मन में उठती चाह
भुजाओं के बन्धन में भूल
घूमते थे वे नंगे गात
नग्न थे दोनों लज्जाहीन
परस्पर थे कितने अनिवार्य
सृष्टि का वह पहला भाव
जहां से सामाजिक उद्‌भाव
परस्पर द्वेष क्रोध से दूर
मानवों का आपस का प्यार।" (सर्ग ८, पृ० ९६)

आदि-मानव अधिकांशत. प्रकृति का दास बना हुआ रहता था। सहस्रो मनुष्य प्रकृति की बलिवेदी पर चढ जाते थे। प्राकृतिक आपदाओं से जूझता मानव फिर भी जीवित रहा। गुफाओ मे छिपकर, पल्लवो को ओढकर, शीत मे अग्नि से मैत्री कर उसने जीवन-रक्षा की। अग्नि के महत्व को जानते ही आदि मानव की जीवन-चर्या बदलने लगी। पाषाण-युग के मनुष्य ने अस्थियो और पत्थरों से नुकीले औजार बनाकर हिंस्र वन्य जीवो से अपनी रक्षा की। युगो के अन्वेषक प्रयत्नो और अनुभव के पश्चात् मानव बर्बर से सभ्य बना है। कवि के शब्दो मे—

"कितने युग-युग का अन्वेषण
कितने वर्षों का अनुभव कर
पाषाण धातु का कर प्रयोग
होगया सभ्य सा वह बर्बर।" (सर्ग ८, पृ० ११४)

जीवन के प्रति मानव की अडिग आस्था और विश्वास ने ही उसे महागति-प्रवाह मे सतरण की शक्ति दी और ज्ञान-कोष का अभिभावक बनाया—

"मैं देखूँगा वह गति प्रवाह, मैं कालसिन्धु का नाविक हूँ
मैं हूँ मानव की परम्परा, मैं ज्ञान कोष अभिभावक हूँ
× × × ×
पर हार नही पाया हूँ मैं, रोकर भी कब होता निराश
मैं खोल रहा धीरे-धीरे, युग-युग के वह अतिरुद्ध पाश।"
(सर्ग ८, पृ० ११६-११७)

नवम सर्ग का आख्यान सकेत है कि—"मेधावी ने देखा आकाश मे ऊषा फूट रही थी। पृथ्वी पर अपार सौन्दर्य फैल रहा था, वह उसमे लय हो गया किन्तु अचानक ही वह स्वप्न मग्न हो गया ।' (पृ० ११८) इस सर्ग मे प्रकृति के अनन्त विकास क्रम और सौन्दर्यमयी छवियो का हेमन्त, शिशिर, बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शीत नामक षड्ऋतुओ के माध्यम से रूपाकन किया गया है। उदाहरणार्थ शीत ऋतु का कथन द्रष्टव्य है—

"मै ज्योत्स्ना हासिनी अमल वसन
मैं महापूर्णिमा का हुलास, रे शुभ्र गगन मे दुग्ध श्वास
मधु श्वेत हस, शतदल सज्जित, तूँ स्वच्छ अक मे शांति लास
मैं वीणावादिनी इदु वदन
मै स्वर्णाचल से सिहर सिहर, मीठी शीतलता से मृदुतर
वन महा स्वप्न की दीर्घ प्रभा, मकरदो मे लुकती आतुर
मैं निर्मल यामिनी गन्ध सुमन।" (सर्ग ६, पृ० १२६)

मानव सभी ऋतुओ का अभिनन्दन करता है क्योंकि ये उसके जीवन मे नवल उत्साह का संचार करती है। ऋतुएँ; वनस्पति और अन्न उत्पादन मे सहायक बनने के अतिरिक्त जीवन-घटको को अमृत से भी भरती हैं। ऋतुओं ने आदि मानव को अनुपम वरदान दिए। हेमन्त ने मानव के जीवन मे नव-गाम्भीर्य जगाने, ग्रीष्म ने पीड़ा का शोषण करने, वर्षा ने जीवन-घट को रस से भरने तथा शरद ने तृष्णा कलुष को बुझाकर मानस-शतदल को मृदुमलयानिल से पुलकित करने का वरदान दिया। प्रकृति के वरदानों से मानव धन्य हो गया।

दशम सर्ग मे आर्यों के सिन्धु-संतरण तथा द्रविडो से उनके संघर्ष का चित्रण है। विभिन्न भूभागो मे जन्म लेने के कारण मनुज मे आकृति-भेद था, भाषा और सस्कृति की भी भिन्नता थी। इन्ही भिन्नताओ ने वर्गों और जातियो को जन्म देकर सामजस्य और सघर्ष दोनों ही प्रकार की स्थितियो को उत्पन्न किया—

"वर्ग मे मानव का विच्छेद, सर्पिणी सी करती निर्द्वन्द्व
अपरिचय का वह गहरा खड्ड, स्वार्थ श्रृंखल पर भरता रग
और अब काल शून्य के बीच, जातियो की कड़ियाँ निर्व्याज
बनाती हैं नव सामजस्य, अरे यह परम्परा का साज।"

(सर्ग १०, पृ० १४०)

आर्य, मंगोल, सिमेटिक, हेमेटिक; ईरानी, यूनानी; कैल्ट, टयूटन, स्लाव, तुखार आदि का भेद भौगोलिक भिन्नताओं का ही परिणाम है। आर्यों ने सप्त-सिन्धु प्रदेश मे पहुँचकर देव वन्दना के अमर गीत गाए। आर्यों के देव थे—इन्द्र, उषा, सूर्य आदि। आर्यों ने देव वन्दना द्वारा इस प्रकार वर-याचना की—

इन्द्र के प्रति—"ॐ इन्द्र उल्लास पुरुष जय
ॐ मानव के अभिमान विकट जय
ॐ दिवस पितर योद्धा पुरीष जय
शत्रु नष्ट कर, सुख दे, जय दे।"

(सर्ग १०, पृ० १४६)

उषा के प्रति— "आलोकिनि जय, सुन्दरि जय जय
तू अनुजा है सूर्य्य पुरुष की
वह जीवन दे तू प्रकाशिनी।"

(सर्ग १०, पृ० १४८)

सूर्य के प्रति— "आलोक पुरुष, हे स्निग्ध वपुष
चेतना फैला दो, जीवन मे ।"

(सर्ग १०, पृ० १४६)

इसके पश्चात् द्रविडो और आर्यों के सघर्ष का वर्णन है। इस सघर्ष मे आर्य ही विजयी हुए। सिन्धु से गगा तक आर्यों का निर्बाध आधिपत्य स्थापित हो गया—

"और बनकर जीवन की शक्ति, छीनकर उन द्रविडो की मुक्ति
छा गया आर्यों का वह त्रास, आर्य केवल आर्यों का पाश
शनै बसता था यह भूभाग, सिन्धु से गगा तक निर्बाध
गूँजती ऋचा प्रतिध्वनि डोल, बन गई जाति, बन गए वर्ण।"

(सर्ग १०, पृ० १५४)

आर्यों का आधिपत्य स्थापित हुआ किन्तु वर्ण भेद के पाश ने नवीन विडम्बनाओ को भी जन्म दिया। समय-समय पर अनेक महापुरुष और दार्शनिक अवतरित हुए जिन्होने कर्म, तप, दान, दया, ज्ञान और योग का उपदेश दिया। किन्तु मेधावी ने देखा कि मानवता आज भी सत्रस्त है—

"आज मैं देख रहा हूँ मौन, युगान्तर से मानवता त्रस्त
'द्रौपदी' सी लुटती असहाय, शक्तिशाली 'पाण्डव' हो मूक
मूर्ख है महापाश मे बद्ध, अध है स्वार्थ भरा वह न्याय
और दु शासन करते गरज, चीर हरने का निष्ठुर काम
धर्म की चाह रहा जो जीत, कृष्ण भी आदर्शों मे लीन
साम्य का देकर भी सदेश, न दे पाया मानव की मुक्ति
मुक्ति तो थी ईश्वर सान्निध्य, हत! यह क्या केवल उन्माद।"

(सर्ग १०, पृ० १६२)

एकादश सर्ग के आख्यान से ज्ञात होता है कि मानवता की दयनीय दशा देखकर 'मेधावी' व्याकुल हो उठा। तब 'समय' मे से प्रतिध्वनि आने लगी और उसने देखा " कि कालगति उसे मानवता विकास का बोध करा रही है। सम्पूर्ण एकादश सर्ग मे मेधावी और समय (कालगति) का गम्भीर सवाद प्रस्तुत किया गया है। समय' ने प्रश्न किया—

"कौन हो तुम उन्मत्त विभोर
दुखी होकर करते सघर्ष
युगातर से पथ पर चल किन्तु
रुद्ध हो जाता विकल अमर्ष।" (सर्ग ११, पृ० १६५)

'समय' की प्रतिध्वनि का उत्तर देते हुए मेधावी ने कहा कि 'मैं मानव हूँ', मैं अभिराम स्वप्नों का भार लेकर चला था, मैं पहाड़ो, मैदानों, नभ, सिन्धु सभी को छान आया हूँ किन्तु मुझे कहीं भी सुखसार नहीं मिला। मैं उस साधन का सधान नहीं कर पाया जिससे मानवता का कल्याण-पथ प्रशस्त हो। मेधावी ने निराशा भरे स्वर मे कहा—

"आह मैं मानव हूँ अभिभूत, विजय का करता हूँ अभिमान
रात का तम जाता क्यों भूल, जभी आता है दीप्त विहान
× × × ×
दूर तक भू के उर पर देख, छोड आया हूँ मैं पगचिन्ह
सतत चलता हूँ मैं निर्बोध, ध्वस, निर्माण आह कर खिन्न।"
(सर्ग ११, पृ० १६७)

'समय' ने कहा कि यह मानव अपनी 'गति के लास' से ही छल करता है और फिर शोषित होता है। यह स्वार्थ की कारा मे अभिशप्त होने के कारण घृणा से विद्ध रहता है। 'समय' ने बताया कि मानवता का मगल-विधान साम्य की भावना मे निहित है—

"साम्य-मानव की तृष्णा घोर, एक ही बिन्दु मिटाये आज
बिन्दु हर उर का सिन्धु समूह, किन्तु क्या मेधा का उपहार ?
समय श्रम का—जीवन का सत्य, यही से मानव का कल्याण
एक जग जिसमे दुःख हो स्वप्न, चूर हो वर्गों का अभिमान।"
(सर्ग ११, पृ० १६८)

इसके पश्चात् 'समय' ने विश्व इतिहास की कुछ प्रमुख घटनाओ का उल्लेख किया जो मानव की तृष्णा, घृणा, दम्भ, उन्माद, क्रूरता और शोषण की परिचायिका हैं। मिश्र की ममी, सिदवाद की यात्रा, अकेडियन, सेमेटिक और अमोराइट्स का गर्व, हिट्टाइटस का वर्बरध्वस, हिब्रूओ की शोषण-कथा, जेरुसलम, ईरान, यूनान, फोनेशिया की कथाएँ और दास प्रथा की बुराइयाँ बतायी तथा मनुष्य की उपलब्धियो का उपहास करते हुए कहा कि—

"अभी किया ही क्या मानव ने, अब तक लिपि निर्माण किया है
घर प्रासाद बनाये उसने, शस्य उगाये पान किया है
धातु बनाई, वस्तु बनाई, पोत बनाये, शस्य उगाये
अधिकारो के असतोष मे, अपने सचित कोष लुटाये
तारो की गति को आँका है, नारी को दासी ठहराया
और गुलामी में लाखो को, वर्गों के हित भरमाया।"
(सर्ग ११, पृ० १८०)

'समय' ने बताया कि मानव-समाज मे वर्ग-सघर्ष, दास प्रथा, शोषण, अनाचार और प्रभुत्व-कामना सभ्यता-विकास की प्रतिक्रियाएँ है, अन्यथा आदि-मानव का जीवन तो स्नेह, सद्भाव और सौमनस्य से परिपूर्ण था—

"आदि पुरुष जो सरल चित्त था, द्वेष-क्रोध से कही दूर था
उसका सामूहिक स्वरूप भी, साम्य शक्ति का प्रथम रूप था
सब उपजाते, सब ही खाते, गीत गुँजाते, नर्त्तन करते
नर नारी के सग प्रेम की, मुक्त धार मे हँस-हँस बहते।"

(सर्ग ११, पृ० १८५)

आरम्भिक समाज मातृ-सत्तात्मक था। नारी को धरती माँ की छाया माना जाता था। वह जननी और आदि-चेतना के रूप मे स्वीकृत थी। किन्तु जैसे ही पुरुष को यह बोध हुआ कि नारी तो भूमि है और बीज वीर्य है जिसके अभाव मे उत्पादन (प्रजनन) असभव है तो उसने नारी पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना प्रारम्भ किया और अन्तत नारी की दशा यह हुई कि—

"नारी नर की भोग्या बन गई, यौन योग की अमल मुक्ति भी
कलुषित बधो मे सड सडकर, उठा चली दुर्गंध क्रुद्ध सी
एक ओर जननी कह छलता, उधर बना देता वेश्या
बदिनी के आँसु ने बहकर, खीचा था सतीत्व का घेरा।"

(सर्ग ११, पृ० १८६)

मानवता-विकास के इतिहास की नृशसतापूर्ण गाथाओ को सुनते-सुनते मेधावी आकुल होकर चिल्ला उठा कि चुप हो जाओ। 'समय' ने कहा कि कवि व्यथित क्यो हो ? मैं कभी चुप नही होता, मेरा गीत अमर रागिणी है। तुमने कहा तो मैं ने बताया, अन्यथा मुझे क्या पडी थी कि मैं अतीत का पुनराख्यान करता। मेधावी तुम प्रयत्न करो कि मानव अपना रूप और कृत्य सुधारे।

द्वादश-सर्ग का आख्यान सकेत है—"मानव का इतिहास करवटें ले रहा था " मेधावी ने देखा कि व्योम का गहन चक्र काँप उठा, विकल विश्व डूब गया और महा-अन्धकार मे उसे अगणित चित्र दिखाई दिए। मानवता का इतिहास एक महानृत्य की भाँति नवल रूप मे नेत्रो मे खेल उठा। उसने अनुभव किया कि जाति, राष्ट्र और विगद देश की रेखाएँ दूर हट गयी हैं और उसने विस्मित भाव से देखा—

"तम गहन पसारे था अचल, निर्बंध अपरिमित विगत सार
जो अन्तराल मे काँप उठा, वह कैसी करुणामय पुकार

अतस को छूती आग बनी, धुएँ सी उठती घुमड लीक
वह व्यक्ति रूप की चेतनता, भरती युग-युग की एक टीस।"
(सर्ग १२, पृ० १६४)

सर्व प्रथम मेधावी ने देखा कि अन्तर्तम मे विजय-पिपासु वीर सिकन्दर की वाहिनी दुर्दान्त घोप करती जा रही थी। सैनिको के जाज्वल्यमान रक्तिम खण्डो से पृथ्वी काँप रही थी। अपने दुरभिमान से उन्होंने असख्य ललनाओ के आँसू बहाए। किन्तु पुरु प्रवीर से हुए सवाद से सिल्यूकस का मोह भग हुआ। इसके पश्चत् पियागोर, नचिकेता, चार्वाक, गौतम के सदेशो की अनुगूँज भी मेधावी ने सुनी। फिर मौर्य्य, कुशान, पल्लव, शक और गुप्त साम्राज्यो के उत्थान-पतन का क्रम उसे दृष्टिगत हुआ। मेधावी ने स्मृति मे कलिंग विजय, *अशोक-विराग, सघमित्रा की यात्रा, स्कन्दगुप्त का बलिदान, अदूरदर्शी बौद्धो के* सघारामो के कुचक्र, फानीशियन पोत पर पारसीक सैनिक, स्पार्टा के विद्वेषी जरक्सीज की विजय वाहिनी, ओलम्पिक का वैभव, रोम के विध्वस के समय फिडिल बजाते नीरो, सीजर और पोम्पिआई की रक्तिम गाथा, क्लियोपेट्रा की रूपशिखा, चीनी दार्शनिक कन्फ्यूशियस की वाणी, स्पार्टाक्स के ज्वलित नयन और यूरीपिडीज तथा 'वर्जिल की वाणी के दृश्यों को उभरते हुए देखा। इन दृश्यो की मेधावी के मनस् जगत मे यह प्रतिक्रिया हुई कि—

"यह चलचित्र देख लगता है, मानव है अभ्यास कर रहा
× × ×
क्यो है यह मानव गुलाम सा, पशु सा दरिद्रता से शोषित
क्या वैभव ही इनके श्रम औ' रुधिर नीव पर होता पोषित
मैं सभ्यता कहूँ फिर किसको, जब मार्ग का मार्ग अरुचिकर
स्वय बनाए दुःख ग्रसते हैं, स्वार्थों मे जीवन बन्दी कर
× × ×
क्या विचार भौतिक पथ तजकर, व्यक्ति रूप मे सुख पायेगा ?
भूत भूत की धूमिल छाया मे प्रकाश अब क्या पायेगा ?"
(सर्ग १२, पृ० २११-२१२)

मेधावी ने कहा कि वज्रयान की स्थविर कल्पना और शून्यवाद की खोखल माया मरघट को ही चरम लक्ष्य मानकर जीवन को सुखी मानती है। सिद्धो की अटपटी वाणी ने भी आत्मा और भौतिकता के सघर्ष चित्रो को अकित किया है। इस प्रकार मानव को अन्धतिमिर मे भटकते हुए कितना समय बीत

गया किन्तु मानव की सत्य ज्ञान की पिपासा अभी भी अशान्त है। और अन्तत असख्य प्रश्न मेधावी के मनस्-जगत मे उभरते हैं—

'मै मानव हूँ, मैं ईश्वर हूँ ?
निर्मित हूँ या निर्माता हूँ ?
पर मानव क्या ? वह तो निर्बल
ईश्वर क्या ? मेरा ही चिन्तन
क्या हूँ ? क्यो हूँ ?

मैं सागर हूँ, मैं जलधर हूँ
शैलो सा दृढ़ ज्वालामुखी हूँ
सतरण किये, नभ पार किए
सब की जय मे सन्तोष नही
क्या हूँ ? क्या हूँ ?

ऋषियो की वह गम्भीर गिरा
मिट्टी हूँ मैं अविनश्वर हूँ
मैं तो अगाध का क्षणभर हूँ
पर यह अगाध मेरा अणु है
मैं हूँ, यह मेरा सत्य अटल
सापेक्ष रूप का सत्य अमल
मैं अन्धकार, मैं महा ज्योति
छाया सा दोनो का विकास
मैं गति का अभिनायक द्वन्द्व
क्यो हूँ ? क्यों हूँ।" [illegible]

त्रयोदश सर्ग मे "अतृप्त मेधावी असन्तोष [illegible]" मेधावी के चेतना-पटल पर अतीत के [illegible] 'मक्का' पुण्य वीथि मे अगणित व्यापारी [illegible] मोल-भाव कर रहे थे। यह मानवता [illegible] स्थल पर गुलामो का मोल तोल [illegible] त्याग, मुहम्मद के शब्द और [illegible] खिलजी, सैयद, लोदी और [illegible] विश्व के इतिहास मे [illegible] है। किन्तु समय-समय [illegible]

का प्रतिकार भी अपनी शक्ति भर किया है। अस्तु, मानव-इतिहास मे क्रान्तिकारी परिवर्तन भी होते रहे। किन्तु जब तक शोषण-जर्जरित एक सस्था ढहती नही तब तक दूसरी का उदय हो जाता है। इसी कारण मानवता के प्रारम्भ से लेकर आज तक ऊँच-नीच और वर्ग भेद के आधार पर किसी न किसी प्रकार की व्यवस्था द्वारा शोषण होता रहा है। किन्तु वर्तमान-युग मे साम्य-भावना के प्रसार द्वारा विद्रोह की जो आग भडकी है, उसके कारण नव मानव को भुलावे मे नही रखा जा सकता—

"आज दुन्दभि बज गई है मनुज मे विद्रोह जागा
वास्तविक सुख शान्ति का सुपना नयन मे आज जागा
आज कोई भी भुलावा, भ्रष्ट पथ से कर न सकता
सृष्टि मे सब एक से हैं, बस यही कल्याण जगता।"
(सर्ग १३, पृ० २२८-२२९)

वर्तमान युग की जन-जागृति मे गैलीलियो, न्यूटन, कोलम्बस, लिंकन, हेगेल, फायरबाख, मार्क्स प्रभृति पाश्चात्य वैज्ञानिको, दार्शनिको और विचारको के आदान का कवि ने कृतज्ञतापूर्वक स्मरण किया है।

काव्य के अन्तिम अर्थात् चतुर्दश सर्ग का आख्यान-सकेत है—"अनन्त जीवन मे आज न्याय और अन्याय का घोर सघर्ष हो रहा था— और मेधावी देख देखकर मुस्करा उठा कि · " मेधावी ने देखा कि वर्तमान युग के मानव की सत्ता के भिन्न-भिन्न स्तर हैं, इन स्तरो से गुजरते सभी हैं किन्तु अपना-अपना दृष्टिकोण लेकर। एक होटल मे 'बाल-डान्स' और चुम्बन-आलिंगन हैं तो दूसरी ओर सती होती हुई नारियाँ हैं। एक ओर मांसल सौन्दर्य का प्रदर्शन और कटाक्ष करती सुन्दरियाँ हैं तो दूसरी ओर विधवाओ का तम-रेखाओ से पूर्ण विवश जीवन-यापन है। भोर से सध्या तक मशीनी चक्कियो मे पिसता मजदूर और कडकडाती सर्दी तथा लू से सतप्त किसान है तो मिल-मालिको और भूमि-पतियो की विलासितापूर्ण दैनिक चर्या भी है। सामाजिक-जीवन की विसगतियों का मूल कारण साम्राज्यवादी तथा पूँजीवादी व्यवस्था का विडम्बनापूर्ण ढाँचा है। धर्म और भाग्य की दुहाई देकर पूँजीपति समाज के निम्न मध्यमवर्ग पर अत्याचार करता है। इस वर्ग की चिन्तनीय दशा और पूँजीपतियो की नृशसताओं का निरूपण कवि ने इन शब्दो मे किया है—

"अरे दासो से शृखलाबद्ध, चले जाते पिसते मजदूर
पसलियो पर खाकर भी चोट, हाँफते श्रम मे निरत किसान

× × × ×

भूख से शैशव जाता बीत, भूख मे यौवन होता क्षीण
जरा का ही छाता अवसाद, जन्म से मृत्यु एक ही गीत
निरन्तर श्रम, उत्पादन घोर, सर्व रे सर्वनाश का घोर

× × × ×

इधर मरते हैं भूखे किन्तु, उधर सागर मे फसलें डाल
नफो पर करते हैं उद्धार, अरे ओ महापिशाच।"

(सर्ग १४, पृ० २५०-२५१)

कवि की धारणा है कि नये युग के आलोक से उद्दीप्त-मानव-समाज अब इन अत्याचारो को नही सहेगा। विगत शताब्दियों मे हुई राज्य-क्रान्तियाँ इसका प्रमाण हैं। संसार भर मे पूँजीवाद और साम्राज्यवाद की अति का भी वर्जन स्वत. हो जायगा, क्योकि—

"प्रकृति का नियम यही है एक
कि अति का होगा ही विध्वंस
युगो के शोषण का यह क्रोध
अरे! मानवता का विक्षोभ
सत्य के पथ का नव निर्माण
नही रुक सकता कभी अबाध
नही झुक सकता वह निर्बाध।" (सर्ग १४, पृ० २५३)

कवि ने फ्रास की राज्यक्रान्ति और लेनिन तथा गाधीजी के साम्राज्य विरोधी महाप्रयत्नो का स्मरण दिलाते हुए कहा कि पूँजीवाद की मीनार को श्रमिक आन्दोलन ही ध्वस्त कर देंगे। फासिस्टवादी सैन्य-शक्तियो से लोहा लेने के लिए कवि ने जनशक्ति का आह्वान किया है—

"हे जनशक्ति महान, जागो और जगाओ!
हम पृथ्वी स्वर्ग बनायेंगे, हम दुनियाँ नई बसायेंगे
हम महाजागरण गर्जन कर अविराम चेतना लायेंगे
हे मजदूर किसान, जागो और जगाओ!

× × × ×

हम श्रम का वन्दन करते है, मेधा का गायन करते है
हम मानव का निर्माण अमर, लक्ष कर सुख गर्जन करते हैं
हे जीवन अभिमान, जागो और जगाओ!

× × × ×

हम हैं नवयुग के अग्रदूत, हम काल-जलधि-नाविक अभूत
हम साम्य-दीप के नवप्रकाश, हम विजयोन्मादी शान्तिपूत
हे प्रदीप्त गतिमान, जागो और जगाओ !"

(सर्ग १४, पृ० २६०)

इसके पश्चात् कवि ने ओजस्वी वाणी मे हिन्द की हुँकार को शब्दबद्ध किया है। इस हुँकृति मे उद्घोष है कि हमारा राष्ट्र अपराजित है। जिस समय विश्व भर मे अन्धकार था, तब भी ज्ञान की ज्योति हिन्द-चीन ने जगाई थी। हमारे ही गीत की प्रतिध्वनि औरो के जीवन की रागिणी बनी थी। हमारा शक्तिचिह्न अंकित ध्वज सत्य, शान्ति और सौन्दर्य की विभा से जग को आलोकित करता रहा है। हमारे राष्ट्रोदधि मे अनेक सास्कृतिक धाराएँ प्रवाहित हुईं, किन्तु हमारा ध्येय विश्व शान्ति ही रहा। ससार मे जब-जब असत् पाशविक शक्तियाँ उन्नत होंगी, तब-तब हम अपनी सारी शक्ति से उन्हें पराजित कर मानवता के मगल-विधान का मार्ग प्रशस्त करेंगे। 'हिन्द की हुँकार' काव्याश का अन्तिम चरण है—

"जब जग भर होगा कुटुम्ब सा, जब समानता फैले सुन्दर
जब तारो मे कीर्ति मनुज की, गूँज उठेगी गगन भेद कर
तब भी हमी विश्व पथ दर्शक, तोडेंगे कलुषो की कारा!
हमने सूर्य्य बनें अब तक भी, जग भर को आलोक दिया है
अरे हमारे ज्ञान अन्न से, मानव अब तक पला जिया है
हम लाखो वर्षों के पथी, कभी न जीत सका अँधियारा!
अपराजित है राष्ट्र हमारा!!"

(सर्ग, १४, पृ० २६४)

इस प्रकार 'मेधावी' महाकाव्य का सर्ग क्रमानुसार अनुशीलन करने के पश्चात् यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि डॉ० रागेय राघव ने आलोच्य काव्य के माध्यम से मानवता के विकास का एक विराट रूपक प्रस्तुत किया है। पृथ्वी के प्रादुर्भाव और सृष्टि-सरचना के पूर्व तत्त्व को विकासवाद की महत् सैद्धान्तिक भूमिका और विराट् कल्पना के समन्वित आधार पर प्रतिष्ठित करते हुए मानवता-विकास के विभिन्न युगीन सोपानों का सजक्त चित्रण किया है। विश्व भर की सभ्यताओं और संस्कृतियों का मानवीय चेतना के विकास में क्या अनुदान रहा? इसे उजागर करने में कवि ने अपनी मौलिक सूझ-बूझ का परिचय

दिया है। ससार के महान् दार्शनिकों, राजनीतिज्ञों, कलाकारों, वैज्ञानिको और विचारको के व्यक्तित्व, कृतित्व और जीवन-दर्शन ने मानवीय चेतना की विकास-गति को जिन रूपो म प्रेरित, प्रभावित और आन्दोलित किया है उसके निरूपण मे भी 'मेधावी' के रचयिता का काव्य-कौशल अभिनन्दनीय है।' 'मनुज का ध्येय', 'सृष्टि-सरचना का उद्देश्य', 'इतिहास का सत्य', 'प्रकृति-रहस्य', 'जीवन की महागति', 'काल-चेतना', 'परिवर्तनशीलता', और दैवी सत्ता की सापेक्ष-स्थिति' सदृश्य प्रश्नों के परिसन्दर्भ में कवि ने 'मानवीय चिन्तन" के अनुदघाटित आयामो का सधान किया है। उल्लिखित प्रश्नो के परम्परा सवलित समाधान से पराङमुख होकर कवि ने जो नवीन विकल्प प्रस्तुत किये है, (आवश्यक नही कि उनसे सहमत हुआ जाय) वे 'मेधावी' के रचनाकार की गूढ तर्क-पद्धति, जागरूक चिन्तन शक्ति और प्रबुद्ध-मेधा की सराहना करने के लिए पाठक को बाध्य करते हैं। नव-युग-चेतना के आविर्भूत होने मे विश्व की राज्य क्रान्तियो, विप्लवी श्रमिक आन्दोलनो और वैज्ञानिक उपलब्धियो के पुष्कल प्रभाव का मूल्याकन कवि ने तटस्थ होकर किया है। मानवता के मगल-विधान हेतु उसने वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था मे जिन मूलभूत परिवर्तनो का प्रस्ताव किया है, वह भी कम महत्वपूर्ण नही है। सबसे बडी बात यह है कि सार्वभौमिक चेतना और विश्वमानवतावादी दृष्टिकोण का समीकरण कवि न राष्ट्रीय (भारतीय) जीवन मूल्यो से स्थापित किया है। ज्ञानालोक के प्रदाता के रूप मे भारत की गुरुता और सर्वोपरिता को सस्थापित कर कवि ने अपने राष्ट्रप्रेम का भी प्रभूत परिचय दिया है।

कथाकार के रूप मे डॉ० रागेय राघव की श्रमिक, पददलित और शोषित वर्ग के प्रति जो सहानुभूति और पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति जो आक्रोश बद्ध-मूल अवधारणाओं के रूप मे उनकी कथाकृतियो में यथाप्रसग उभरा है, उसका वैचारिक परिप्रेक्ष्य 'मेधावी' मे द्रष्टव्य है। 'साम्य भाव' के प्रति अगाध विश्वास का जो प्रत्यय काव्य मे स्थान-स्थान पर व्यजित हुआ है वह वादात्मक प्रभाव की अपेक्षा कवि की व्यापक प्रज्ञात्मक निष्ठाओ का ही द्योतक है। नारी-मनोविज्ञान का सूक्ष्म अन्वीक्षण और सामाजिक सन्दर्भो मे उसकी परिणतियो के विश्लेषण म कवि सफल रहा है। समष्टि रूप मे मानवीय चेतना के चिरन्तन विकास क्रम और उसकी ऐतिहासिक, सामाजिक, सास्कृतिक तथा वैज्ञानिक परिणतियो का विराट आख्यान होने के कारण 'मेधावी' वास्तविक अर्थो मे एक महाकाव्य है और काव्य की परिसमाप्ति पर मानवता के सुखद भविष्य

हेतु कवि का निम्नोद्धृत मंगलाकांक्षी संदेश निश्चयतः उसे मनीषी-कवि सिद्ध करता है—

"एक दिन मानव का श्रम श्वास
मिटा देगा यह पाप महान
विश्व होगा केवल सुख-स्थान
एक घर सी होगी यह भूमि
और भौतिक के दुख कर चूर
बनायें मानव वह पन्थ
जहाँ शोषण का रहे न नाम
जहाँ का सत्य वास्तविक सत्य
जहाँ स्वातन्त्र्य, साम्य, सुख-शान्ति
करेंगे निशदिन नृत्य
और परिवर्तन-पथ पर सतत
ज्ञान का पकड़े हाथ
चलेंगे जगमग मुक्त।" (सर्ग १४, पृ० २६५)

'अंगराज' महाकाव्य

प्रशस्त कर्मवीर का जीवन-काव्य

२

'अंगराज' महाकाव्य

प्रशस्त कर्मवीर का जीवन-काव्य

'महाभारत' की पात्र-सृष्टि में कर्मवीर कर्ण का चरित्र विलक्षण और गौरवान्वित है। महारथी कर्ण का चरित्र अद्‌भुत दैवीय विभूति तथा अनुपम मानवीय गुणों का सघात है। कर्ण चरित्र की प्रशस्ति से सम्बन्धित प्रकीर्ण उल्लेख यद्यपि सस्कृत और हिन्दी प्रबन्ध काव्य-परम्परा के अनेक काव्य ग्रन्थों में यथा प्रसग समुपलब्ध है, किन्तु कर्ण को काव्य-नायक के रूप में अधिष्ठित करके किसी स्वतन्त्र काव्य का प्रणयन आधुनिक-काल से पूर्व नहीं हुआ था। इसका एक कारण तो यह भी रहा कि काव्यशास्त्र की परम्परा के अनुसार केवल सुर, सद्‌वशीय अथवा ब्राह्मण-क्षत्रिय को ही महाकाव्य के नायकत्व-पद का अधिकारी माना जाता रहा। किन्तु आधुनिक काल में नवयुग चेतना के प्रसार और मानवतावादी चिन्तनधारा के द्रुतगामी प्रचार के कारण "परम्परा ने जिन्हें नायक के योग्य कभी नहीं समझा, उन्हीं अनादृत और उपेक्षित पात्रों को बीसवी सदी के कवियों ने महाकाव्य के सफल नायक पद पर सादर प्रतिष्ठित किया। ये व्यक्ति जाति-वश से हीन होकर भी चारित्रिक उत्कर्ष के कारण नायक माने गये।"[1] इस दृष्टि से 'एकलव्य', 'दैत्यवश' 'रावण', 'रश्मिरथी', 'सेनापति कर्ण', 'आर्यावर्त्त', 'युगद्रष्टा प्रेमचन्द' शीर्षक प्रबन्ध काव्यों के नाम उल्लेखनीय है, जिनमे चारित्रिक गरिमा के कारण ही नायकत्व प्रदान किया गया है। इसी परम्परा की काव्यकृति श्री आनन्द कुमार विरचित "अङ्गराज"-महाकाव्य है।

अङ्गराज के अतिरिक्त कर्मवीर कर्ण के यशस्वी चरित्र को आधार बनाकर दो और प्रबन्ध काव्यों का भी प्रणयन आधुनिक काल में हुआ है। ये

---

[1] डॉ० श्यामनन्दन किशोर : आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान, पृ० २१०.

काव्य हैं—श्री रामधारीसिंह दिनकरकृत 'रश्मिरथी' और श्री लक्ष्मी नारायण मिश्र कृत 'सेनापति कर्ण'। वस्तुतः पौरुष, पराक्रम, कर्तव्यपरायणता, मैत्री, विश्वास, औदार्य, स्वाभिमान, गुरुभक्ति और धर्मनिष्ठा आदि इतने उदात्त गुण कर्ण के चरित्र मे पुञ्जीभूत हैं कि उनको महाकाव्य के विराट कलेवर में ही विधिवत् विन्यस्त किया जा सकता था; और यह हर्ष का विषय है कि हिन्दी के समर्थ कविपुगवो की लेखनी कर्ण के प्रशस्य चरित्र का समाख्यान कर धन्य हुई है। कर्ण चरित्र पर काव्य-प्रणयन का औचित्य बताते हुए श्री रामधारी सिंह दिनकर ने कहा है कि—"कर्णचरित का उद्धार एक तरह से नई मानवता की स्थापना का ही प्रयास है।" क्योंकि—"यह युग दलितों और उपेक्षितो के उद्धार का युग है। अतएव, यह बहुत स्वाभाविक है कि राष्ट्र भारती के जागरूक कवियो का ध्यान उस चरित्र की ओर जाय जो हजारो वर्षों से हमारे सामने उपेक्षित एवं कलंकित मानवता का मूक प्रतिनिधि बनकर खड़ा रहा है। ....कर्ण चरित्र के उद्धार की चिन्ता इस बात का प्रमाण है कि हमारे समाज मे मानवीय गुणो की पहचान बढने लगी है। कुल और जाति का अहंकार विदा हो रहा है। आगे, मनुष्य केवल उसी पद का अधिकारी होगा जो उसके सामर्थ्य से सूचित होता है, उस पद का नही जो, उसके माता-पिता या वंश की देन है।"[२] इसके अतिरिक्त आधुनिक युग के—"महाकाव्यो के रचयिताओ को कर्ण मे आज के वर्ग-भेद और वर्णभेद से प्रपीड़ित समाज के प्रतिनिधि का रूप दिखाई दिया और उन्होने उसके जीवन-चरित्र को रश्मिरथी, अंग-राज, सेनापति कर्ण जैसे काव्यों मे ला उतारा।"[3] कर्ण को आधुनिक काव्यकर्त्ताओं द्वारा काव्यनायक के रूप मे स्वीकृति प्रदान करने का सबसे बड़ा कारण यही है कि—"महाभारत के पात्रो मे कर्ण अकेला पात्र है जो अपने पुरुषार्थ और पराक्रम के बल पर यशस्वी बनता है। कर्ण की महानता सस्कारजन्य, सद्-वंशीय अथवा राजपुत्र होने के कारण नही वरन् त्याग, पुरुषार्थ एवं दानशीलता आदि मानवीय गुणो के कारण है।"[४] अस्तु, श्री आनन्दकुमार ने कर्ण के प्रशस्य और महिमान्वित चरित्र पर काव्य-सरचना करके न केवल स्वकीय काव्य-मेधा और रचनाधर्मी-आयाम-विस्तृतों का परिचय दिया है अपितु हिन्दी

---

२ रश्मिरथी : भूमिका, पृ० ग—घ।

3 आधुनिक हिन्दी महाकाव्य : संस्कृत साहित्य के परिपार्श्व मे, पृ० ११९.

४ डॉ० देवीप्रसाद गुप्त : हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य, पृ० १७६.

महाकाव्य परम्परा की अपरिमित सृजन सम्भावनाओं को भी उजागर किया है, और इस दृष्टि से 'अङ्गराज' निश्चयत अभिनन्दनीय प्रयास है।

जहाँ तक 'अङ्गराज' महाकाव्य की सृजन-प्रेरणा और महत् प्रयोजनीयता का प्रश्न है, महाकाव्यकार ने 'भूमिका' मे 'काव्य-प्रयोजन', 'वीरकाव्य की समयिकता' और 'अङ्गराज का जीवन' शीर्षकों के अन्तर्गत इस पर विस्तार से विचार किया है। 'अङ्गराज' की रचनात्मक सोद्देश्यता के मूल मे सामाजिक जीवन की अखण्डता, जातीय स्वाभिमान, सस्कृति सरक्षण, अतीत का गौरव-गान और जीवन्त लोकादर्शों की प्रतिष्ठा कवि का अभिप्रेत रहा है। 'अङ्गराज' वीरकाव्य है, और वीरकाव्य की महत्ता का बखान करते हुए कवि ने कहा है कि—"वीर साहित्य से ही वाणी-प्रयोजन पूर्णत सार्थक होता है। उससे राष्ट्र के सामाजिक जीवन की अखण्डता बनी रहती है, जाति वृक्ष अपने मूल से सयुक्त होकर बढता है, सस्कृति और सभ्यता का सरक्षण होता है।. . वीरकाव्य से हमारा सोया हुआ जातीय स्वाभिमान जाग्रत होता है, हमे अपने लोकादर्श का ज्ञान होता है, भविष्य का कर्त्तव्य मार्ग दिखलाई पडता है .. वीर-वृत्तान्तो से लोक मे वीरधर्म की प्रतिष्ठा होती है। वीर धर्म का पालन रण-सैनिको के लिए ही नही, 'वीर भोग्या वसुन्धरा' के प्रत्येक महत्वाकांक्षी प्राणी के लिए आवश्यक है।" इसी क्रम मे वीरकाव्य-सृजन की सम-सामयिक उपादेयता पर मत प्रकट करते हुए 'अङ्गराज' के रचयिता ने लिखा है—"सभी दृष्टियो से प्राचीन वीरकाव्यो का अध्ययन और नवीन वीरकाव्यो का निर्माण आजकल के लिए समयानुकूल एव लोकोपयोगी सिद्ध होगा। शताब्दियो की पद-पद दलित जनता मे जो आत्मतुच्छता, चारित्रिक दुर्बलता और भीरता तथा अकर्मण्यता आ गई है उसका निराकरण ऐसे ही साहित्य से हो सकता है। ... आजकल अपनी हीन दशा पर बैठकर रोने की प्रेरणा देने वाला साहित्य सामयिक नही कहा जायगा। सामयिक वह होगा जो जीवन की अपूर्णता को पूर्ण करे, असयत को सयत करे, भूले भटके को रास्ते पर लाये। कायर को साहस भग्न निरीक्षक को कर्मोत्साह और हताश को धैर्य-विश्वास देने वाला साहित्य सामयिक होगा।"[४] उद्धृत मन्तव्य के परिप्रेक्ष्य मे 'अङ्गराज' की रचनात्मक सोद्देश्यता स्वत व्यजित है।

'अङ्गराज' का कथात्मक आधार 'महाभारत' है। किन्तु काव्य के घटनात्मक विनियोजन मे महाकाव्यकार ने मौलिकता का प्रभूत परिचय दिया है।

---

४ अङ्गराज—भूमिका, पृ० १३-१४

प्रस्तुत सन्दर्भ मे कवि का कथन है कि—"अङ्गराज स्वतन्त्र रचना है। इसकी कथा सम्पदा महाभारत की है, काव्य-सम्पदा मेरी है। वृक्ष व्यास जी के हैं, ऋतुएँ मेरी हैं, मूल उनका है फल फूल मेरे हैं, शाखाएँ प्राचीन हैं, लेकिन पल्लव दल नवीन हैं। महाभारत से बीज रूप मे मुझे जो मिला, उसको मैं ने स्वाभाविक रीति से अकुरित एव पुष्पित-पल्लवित किया है। 'अङ्गराज' मे मैं ने भारती-कथा के प्रचलित रूप का अन्धानुकरण नही किया है। इसमे महाभारत के पात्रो का स्वतन्त्र, स्वाभाविक और यथोचित व्यक्तित्व निरूपण किया गया है। घटनाओ के क्रम, वस्तु चित्रण और सवादो मे भी मौलिकता मिलेगी।"[६] यह सत्य है कि कवि ने कथाविधान मे मौलिकता दर्शायी है और कुरुराज तथा कर्ण के चरित्र निरूपण मे भी वह सफल रहा है किन्तु पाण्डवो, द्रौपदी, कुन्ती आदि के चरित्र चित्रण मे कतिपय बद्धमूल धारणाओ एव पूर्वाग्रहो के कारण तटस्थ नही रहा है। पाडवो को कापुरुष, क्लीव, धूर्त, क्रूर, अवसरवादी और दुर्व्यसनी तथा द्रौपदी को कामासक्त, सयमहीन, दम्भी, असभ्य, लण्डशीला के रूप मे अकित करना कवि की पाण्डवो के प्रति अनुदारता एव कौरवो के प्रति अतिरिक्त व्यामोह को प्रदर्शित करता है। एक महाकाव्यालोचक ने इस बिन्दु पर आपत्ति करते हुए लिखा है कि—'युधिष्ठिर अर्जुन, भीम और द्रौपदी के चरित्र को कवि ने गिरा दिया है। वस्तुत पाण्डवो के लोक प्रसिद्ध पावन चरित्र को गिरा कर दुर्योधन और उसके मित्र कर्ण को ऊपर उठाने मे कवि का दुस्साहस लक्षित होता है। कर्ण का चरित्र स्वयमेव इतना उदात्त और शक्तिशाली है कि धर्मराज युधिष्ठिर और सती साध्वी द्रौपदी के चरित्र को गिराए बिना भी उसे महत्ता मिल सकती थी। युधिष्ठिर को चरित्रहीन और द्रौपदी को पचायती पत्नी बताकर कवि ने चिर प्रतिष्ठित लोक धारणा का विरोध किया है।'"[७] कथा विन्यास की मौलिकता का प्रमाण काव्यारम्भ मे ही मिल जाता है। कथानक का समारम्भ सूर्य लोक मे होता है—

> "एक दिवस मगल प्रभात मे इसी देश मे।
> कर्ण सम रवि भ्रमण शील थे नित्य वेष मे॥
>
> × × ×
>
> आत्मरूप मे वे जग का आभास लिये थे।
> निज आकृति मे युग युग का इतिहास लिये थे॥" (सर्ग १, पृ० ६)

---

[६] अङ्गराज भूमिका, पृ० १५

[७] डॉ० गोविन्दराम शर्मा हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ० ४०३

कर्ण के साथ भ्रमण करते हुए भगवान भास्कर उसे दिव्य-दृष्टि प्रदान कर उसके पूर्व जन्म का सम्पूर्ण वृत्त दृश्य रूप मे दर्शाते हैं—

"देते है वरदान तुम्हे हम दिव्य-दृष्टि का ।
देखो उससे गुप्त रहस्य अनन्त सृष्टि का ॥
देखो सम्मुख खुला हुआ सारा अतीत है ।
भूतकाल भी वर्त्तमान होना प्रतीत है ॥
× × ×
यदि अभीष्ट हो तुम देखो सारा का सारा ।
व्यक्त मिलेगा यहाँ लोक वृत्तात तुम्हारा ॥" (सर्ग १, पृ० ६)

इस प्रकार कवि ने इतिवृत्तात्मक किंवा वर्णनप्रधान शैली का आश्रय न लेकर प्रत्यावर्त्तन शैली (फ्लैश बैक स्टाइल) को अधिगृहीत करते हुए नाटकीय ढग से घटना क्रम को प्रस्तुत किया है। सर्वप्रथम सूर्यदेव कर्ण को कीर्तिवती भारत-अवनी की रचना से अवगत कराते हैं। नगराज हिमालय, नदराज रत्नाकर, सुरसरिता, मनोज्ञ काश्मीर, मद्रदेश, कैकेय, सौराष्ट्र, द्वारिकापुरी, केरल, मलयाचल, रामेश्वर, सिंहल, विदर्भ, कामरूप, वगप्रात, मगध, अयोध्या, प्रयाग, नैमिष्यारण्य, कर्णपूर, ब्रजप्रदेश, मध्यदेश, मत्स्य आदि की शोभा का बखान करते हुए त्रिभुवन भास्कर पाचाल नगर, कुरुराज्य, इन्द्रप्रस्थ आदि के वैभव का सविस्तार वर्णन करते है। प्रथम सर्ग मे नगर, प्रदेश, पर्वत, नदियों आदि के वर्णन द्वारा कवि ने न केवल बृहत्तर भारत की भौगोलिक-सरचना को व्याख्यायित किया है, अपितु स्वराष्ट्र वदना द्वारा महाकाव्य की मगलाचरण विषयक काव्यशास्त्रीय रूढि का भी सफल निर्वाह किया है। इसके पश्चात् कर्ण के जन्म से लेकर युद्ध क्षेत्र मे उसके वीरगति प्राप्त करने तक के घटनाक्रम को अपेक्षित परिवर्तनो सहित प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ कवि ने कौरवो को कलकित करने वाले द्यूत-क्रीडा, लाक्षागृह-दाह, द्रौपदी-चीरहरण, पाण्डव दूत कृष्ण के कुरुराज द्वारा बाँधने के विफल प्रयास और विराट रूप दर्शन जैसे महाभारत के अनेक कथा-प्रसगो को कल्पना-शक्ति का प्रयोग करके नवीन रूप मे प्रस्तुत किया है। काव्यनायक कर्ण के चरित्रोत्कर्ष के लिए भी कवि ने कतिपय घटनाओ को अपेक्षित परिवर्तनो के साथ अकित किया है। कथानक मे कल्पना के प्रयोग के सम्बन्ध मे कवि का यह मन्तव्य उद्धरणीय है कि— "अङ्गराज का जीवन काव्य कल्पना प्रसूत नही, प्रमाण सिद्ध है। कल्पना का उपयोग केवल विषय को सरस और आकर्षक बनाने के लिये ही किया गया

है। कुरुराज का भारती नायक वास्तव में जैसा रहा होगा वैसा ही मेरा भारती नायक है।"[८]

वस्तुत उपर्युक्त कथन के आलोक मे हमे काव्यनायक कर्ण के चरित्र विश्लेषण मे प्रवृत्त होकर इन निष्कर्षों तक पहुँचना है कि आलोच्य महाकाव्य में कवि ने महाभारत से भिन्न कर्ण चरित के किन आयामो को उद्घाटित किया है ? दूसरे कर्ण का चरित्र वीरत्व के किन उच्चादर्शों, पौरुष के किन चिरन्तन प्रतिमानों, कर्त्तव्यनिष्ठा के किन उदात्त सकल्पो और किन महान् मानवीय गुणो से विभूषित है ? जो उसे लोकमान्य बनाते है। और तीसरे कवि ने कर्मवीर कर्ण के चरित्र में किन युगीन सभावनाओ को साकार किया है ? जिसके कारण वह आज प्रेरक है और भविष्य मे भी वरेण्य बना रहेगा। वस्तुतः इन्ही प्रश्नचिन्हो के परिसन्दर्भ मे 'अङ्गराज' का समीक्षण यहाँ अभीप्सित है।

द्वितीय सर्ग की घटनाओ से विदित होता है कि कर्ण का जन्म विलक्षण परिस्थितियों मे हुआ। उसकी जननी कुन्ती भोज की शकित, लज्जित और व्यथित कुमारी कन्या पृथा है जो विवश होकर मन मे ममता और कर्म मे निर्ममता लेकर देवी-देवताओ से उसके जीवन की मंगल कामना करती हुई उसे काष्ठमंजूषा मे रखकर अश्व-नदी मे प्रवाहित कर देती है। कवि ने तरगिता सरिता की तरंगमाल पर जीवन-मृत्यु के सगर मे जूझते हुए उस यशस्वी बालक को 'जीवन-रणयात्री' की संज्ञा उचित ही दी है। उस आत्मधन का परित्याग कर पृथा पुत्रवती से हतभागिनी बनी किन्तु अपनी लोल-लहरिका-अक मे धारण कर पयस्विनी सुतवती यशस्वनी हो गयी। उस चिरंजीवी कुमार को चर्मण्यवती के संगम पर राधा और अधिरथ नामक सूत दम्पत्ति ने सुतरत्न के रूप मे अधिगृहीत कर लिया। जन्मजात कवच-कुण्डल, सहज कातिमय चम्पक वर्ण शरीर, चपलपाणि, आजानुभुज और बलशाली सुवक्ष वाला वह बालक अवतारी की भाँति प्रतीत हो रहा था। उस दिव्य बालक के असाधारण व्यक्तित्व चिन्हों को देखकर सूत दम्पत्ति ने स्वय को सौभाग्यशाली और धन्य माना—

"दृष्टि निहित मगल, मस्तक पर विमल कलाधर।
सुक्र झलकता ज्यो इसके नासाग्र भाग पर॥
वज्र, ध्वजाकुश, छत्त, शंख, कूर्माम्बुज-अकित।
हस्त तलों इसको महानता करती व्यंजित॥

---

८ अङ्गराज : भूमिका, पृ० ४०

धन्य हुये हम प्राप्त ऐसे दिव्य कुमार को।
देता है सुतरत्न प्रभु, खोल भाग्य के द्वार को॥"
(सर्ग २, पृ० २२)

अधिरथ-गृहिणी देव-प्रसाद मानकर उस बालक को ले गयी। स्नेह राशि से सींच कर माता-पिता ने उसका पालन-पोषण किया तथा वसुषेण नामकरण किया। वसुषेण ने मनोयोगपूर्वक वेद-वेदांग, धर्म, लोकनीति की शिक्षा तथा शस्त्रास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया। विवाह-कर्म के पश्चात् वसुषेण धनुर्वेद की साधना के लिए पिता के साथ हस्तिनापुर गया। अधिरथ की विनय पर राजकृपा से वसुषेण को राजपुत्रों के साथ गुरुकुल में प्रवेश मिल गया। राजपुत्रों के साथ-साथ कर्ण ने भी मन्त्र-यन्त्र-संग्राम-शास्त्र, गुप्तास्त्र तथा व्यूहरचना का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर विदापूर्व ब्रह्मशर प्राप्ति की प्रार्थना की, किन्तु द्रोणाचार्य ने अनधिकारी कहकर उसे ब्रह्मास्त्र-ज्ञान से वंचित ही रक्खा। कर्ण के शस्त्रास्त्र-ज्ञान-कौशल का परिचय कुरुराज-भवन के रंगस्थल पर समायोजित राजवंश समारोह पर मिलता है। इस आयोजन में पार्थ ने अनुपम अस्त्र-कौशल का प्रदर्शन कर सभी को मनमुग्ध कर दिया। तभी माहेन्द्रकाय वसुषेण ने वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र, पर्वतास्त्र, वायव्य अस्त्र, भौमास्त्र, पर्जन्यास्त्र, अन्तर्ध्यानास्त्र आदि के अद्भुत प्रदर्शन द्वारा पार्थ को हतप्रभ कर दिया। अर्जुन ने अनामंत्रित हस्तक्षेप के लिए सूतपुत्र को अशिष्ट कहकर उसे दुस्साहस के लिए दण्डित करने के लिए कहा। प्रत्युत्तर में कर्ण ने पार्थ को द्वन्द्व के लिए ललकारते हुए कहा—

"यदि तुझको अभिमान है, निज पुरुषार्थ महत्त्व का।
सम्मुख आकर द्वन्द्व कर, दे प्रमाण निज स्वत्व का॥"
(सर्ग २, पृ० २८)

अर्जुन ने अपमानित अनुभव करते हुए रंगभूमि में रणोन्मुख होने का निश्चय किया। तभी कृपाचार्य ने मध्यस्थ बनकर कर्ण से कहा कि तू अनाधिकार चेष्टा कर रहा है क्योंकि राज्यशास्त्रवत् राजपुत्र का प्रतिद्वन्द्वी केवल समकक्ष ही हो सकता है। सुयोधन को वीरपुत्र का अनादर असह्य था, उसने कृपाचार्य के व्यवहार को अनुचित बताते हुए कहा—

"आर्य, वीर-प्रति आप का यह अनुचित व्यवहार है।
कभी न आर्य-समाज में होना जाति विचार है॥
परिचायक है आत्मिक तेज स्वनाम धन्य का।
स्वयमुज्ज्वल को नहीं चाहिए तेज अन्य का॥

जाति-वश-धन्य नही, पुरुप-पौरुष विचार्य हैं।
पच गुणी में जो गुणाढ्य है वही आर्य है ॥
महापुरुष ही मानिये गुण गरिमामय सूत को।
हीन न मानो भूलकर विकसित पक प्रसूत को ॥"

(सर्ग २, पृ० २६)

जब भीम आदि ने दुर्योधन के मत का विरोध किया तो उसने पाडवीय दर्प का दमन करने के लिए सूतपुत्र को अग-राज्य अर्पण कर कर्ण का मानवर्द्धन ही नही किया अपितु अपनी दूरदर्शिता और गुण-ग्रहण-क्षमता का भी परिचय दिया। कर्ण ने कृतज्ञतापूर्वक सुयोधन की मित्रता को स्वीकार किया तथा हर्ष-शोक में सच्चे मित्र के समान सुहृद् भाव के निर्वाह का सकल्प लिया—

"सूर्य रहे साक्षी सदैव हम हर्ष शोक मे।
सुहृद् रूप मे एक रहेगे एक लोक मे ॥
तुमने हमे ऋणी किया, अगराज्य देकर अभी।
हम होगे ऋण मुक्त, निज अग तुम्हे देकर कभी ॥"

(सर्ग २, पृ० ३१)

अगराज बनने के पश्चात् कर्ण जब अगनगरी पहुँचा तो जनता द्वारा उसका भव्य स्वागत किया गया। राज्याभिषेक के पश्चात् अगराज सूत-सदन पहुँचा जहाँ प्रतीक्षातुर राधा ने नरनाथ और प्रजा प्रभाकर कहकर अभिनदन किया, किन्तु कर्ण ने स्यन्दन त्यागकर किरीट को मातृ-पद मे रखकर श्रद्धावनत होकर कहा—

"और कहा जननी, हम तो वसुषेण वही हैं।
तब समीप हम अग-प्रधान कदापि नही हैं ॥
× × ×
हमे अन्य जन अगराज ही भले कहेगे।
किन्तु स्वय हम बने सदा राधेय रहेगे ॥"

(सर्ग ३, पृष्ठ ३५)

उपर्युक्त कथन कर्ण की मातृ-पितृ-भक्ति, विनयशीलता और उदात्त भावना का ही परिचायक है। राधा ने राधेय को हृदय के गहनतल से शुभाशीष दिए, उसके यशस्वी और सौभाग्यशील होने की मगलकामना की। इसी सर्ग मे कवि ने कर्ण की राज्यव्यवस्था और प्रशासनिक दक्षता का भी वर्णन किया है। नव-जनपति कर्ण ने अगराज्य म स्वराज्य की घोषणा कर जन-जीवन मे नवजागृति का सचार किया। दासता की मनोवृत्ति को विनष्ट कर प्रजापति ने प्रजातन्त्रीय

शासनपद्धति को संस्थापित किया। अबलाओं की दशासुधार, न्याय-धर्म के संस्थापन, विद्या-कौशल के देशव्यापी प्रचार, जनोत्थान के लिए राजकोष के व्यय, सैन्यशक्ति के पुनर्गठन, गढ़ों, देवालयों, उद्यान-सरोवर आदि का पुन-र्निर्माण कर्ण की प्रशासनिक व्यवस्था की उल्लेखनीय विशेषताएँ कही जा सकती हैं। कवि के शब्दों में—

> "नष्ट दासता-मनोवृत्ति करके जनता की।
> एक-एक में भरी भावना स्वतन्त्रता की ॥
> नव विधान से न्यायबद्ध करके शासन को।
> दिए तुल्य अधिकार प्रजापति ने जन-जन को ॥
> मिटी अबल-अबलाओं की निर्बलता सारी।
> समाधिकारी बने दरिद्र-धनी नर-नारी ॥"

(सर्ग ३, पृ० ३६)

इस प्रकार अंगराष्ट्र के शासन को सुव्यवस्थित करके कर्ण ब्रह्मसायक अर्जन एवं उच्चकोटि के शस्त्रास्त्र ज्ञानार्जन हेतु महेन्द्रगिरि पर परशुरामजी के आश्रम पर गया। कर्ण ने विप्र भेष धारण कर विशेष क्रियोद्योग द्वारा मुनीन्द्र को प्रसन्न कर मुख्य-शिष्यता प्राप्त कर सभी अनाज्ञात शस्त्रास्त्रों का ज्ञाना-र्जन कर लिया—

> "किया क्रियोद्योग विशेष कर्ण ने, अनर्घ्य विद्या ऋण राम से लिया।
> हुए प्रसादस्थ मुनीन्द्र देख के, महागुणोत्कर्ष नवीन शिष्य का ॥
> × × × ×
> महास्त्र विज्ञान महेन्द्रशास्त्र के, तथा धनुर्वेद, अथर्ववेद के।
> सभी अनाज्ञात रहस्य युद्ध के, उसे बताए कृतविद्य विप्र ने ॥
> दिया उसे कीर्तित भार्गवास्त्र भी, समन्त्र ब्रह्मायुध-दान भी किया ॥"

(सर्ग ४, पृ० ४३)

इसके पश्चात् एक दिन कर्ण की अविप्रता का रहस्योद्घाटन हो जाने पर परशुराम ने उसे घोर शाप दिया कि—

> "प्रहारकों में बन अप्रमेय तू, परास्त होगा न कदापि शत्रु से।
> परन्तु आकस्मिक रीति से कभी, अवश्य होगा हत वीर क्षेत्र में ॥
> प्रयुद्ध में तुल्य अराति-संग तू, प्रवृत्त होगा जब प्राण द्यूत में।
> व्यथार्त होगा, स्मृति भ्रष्ट सर्वथा, अशक्त ब्रह्मायुध के प्रयोग में ॥"

(सर्ग ४, पृ० ५२)

महर्षि महेन्द्र ने क्रोध म भयकर अभिशाप तो अगराज को दे दिया किन्तु बाद मे प्रकृतिस्थ होने पर उसे स्वकठ से लगाकर शुभाशीष देते हुए विदा किया—

"उसे लगा के ऋषि ने स्वकठ से विदा किया यो कह साधु-भारती।
सुपुत्र, जा तू अब लोक ग्राम को तुझे मनोवाछित कीर्ति प्राप्त हो॥
जहाँ रहे तू तुझ को मिले वहाँ, प्रधानता पौरुष-विक्रमार्जिता।
बने जय-श्रीप्रद लोक शक्तियाँ, सदैव तेरी चरणानुगामिनी॥
महायशस्वी बन सप्रभाव तू प्रशस्य हो भारत-भूमि-भानु सा।
रहे तुझे ध्यान मनुष्य सूर्य का, प्रताप सवर्द्धक आत्म-ताप है॥"
(सर्ग ४, पृ० ५३)

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि महर्षि परशुराम के आश्रम मे छद्मवेश मे शस्त्रास्त्र शिक्षा प्राप्त करना कर्ण के समुज्ज्वल चरित्र को गर्हित करता है यद्यपि उसने ऐसा महत्त्वाकाक्षा के वशीभूत होकर ही किया था। डॉ० गोविन्द राम के शब्दो मे—"सर्वगुण सम्पन्न कर्ण का द्विजवेश मे परशुराम के आश्रम म अस्त्र विद्या की शिक्षा प्राप्त करना उसके महिमामय उत्कृष्ट चरित्र क आघात अवश्य पहुँचाता है।"[1]

कर्ण के मैत्री-आदर्श और वीरत्व कौशल का परिचय पाँचवें और छठे सर्गो मे मिलता है। कलिगाधिप चित्रागद की राजकुमारी को स्वयम्वर से अपहृत करके दुर्योधन जब ले चला तो कलिग की विशाल वाहिनी और स्वयम्वर मे समागत नरेशो ने उसका पीछा किया। इस अवसर पर कर्ण ने अद्भुत साहस और शौर्य का प्रदर्शन कर राजाओ को रोका और मित्र के मार्ग को निरापद बनाया। कर्ण के युद्ध कौशल का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि—

"जिधर गया उद्दण्ड चण्डतम वह कोदण्डी।
पहन मुडमालिका उधर नाची रणचण्डी॥
जपाकुसुम वन सा क्षितितल शोणित रजित था।
अगराज-रणराग वहाँ मानो व्यजित था॥"
(सर्ग ५, पृ० ५८)

द्यूत क्रीडा मे सर्वस्व हारकर जब पाडव अज्ञातवास कर रहे थे, तब वे कौरवो क विरुद्ध नाना प्रकार की योजनाएँ बना रहे थे। कौरव समाज मे युद्ध

---

[1] हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ० ४०४

लोग पार्थ के पराक्रम, द्रुपदराज की शक्ति और कृष्ण की कूटनीति से आतंकित होकर कुरुराज को पाडवो से सन्धि करने का प्रस्ताव कर रहे थे। श्रोताओ मे भीष्म और द्रोण प्रमुख थे, किन्तु कर्ण ने सदर्प कहा कि कुरुजनो से भयवश प्रीति करना कायरता है। राधेय के रहते हुए कुरुराज का भयभीत होने की तनिक भी आवश्यकता नही। कर्ण के निम्नोद्धृत कथन मे उसका आत्मविश्वास और ओज द्रष्टव्य है—

"एक एक क्या कोटि कोटि हो, द्रुपद, कृष्ण, कौन्तेय।
भीत न होगा कुरुपति जब तक जीवित है राधेय॥"

(सर्ग ६, पृ० ८३)

कर्ण ने जो कहा वह कर भी दिखाया। कौरव-शक्ति के प्रभाव को जगत-विज्ञापित करने के लिए दुर्योधन ने जगद् विजय का प्रस्ताव किया। इस गुरुतर दायित्व को कर्ण ने सहर्ष संवहन किया। उसने चतुरंगिणी सेना लेकर पांचाल, मत्स्य, काश्मीर, शैलप्रस्थ, बंगदेश, मिथिला, मगध, कलिंग, उत्कल, कोशल, विदर्भ, केरल, चेदि, अवन्ती, मध्यदेश आदि प्रदेशो को वीरतापूर्वक विजित करके कुरु साम्राज्य के अधीनस्थ कर दिया। इन प्रदेशो को विजित करने में कर्ण ने अदम्य साहस, अपूर्व पराक्रम, अनन्त शौर्य और अद्भुत रणकौशल का परिचय दिया। उदाहरणार्थ दक्षिण प्रदेश के यवन-म्लेच्छ-बर्बर-समाज से संगरस्थ कर्ण के सम्बन्ध मे कवि का कथन है—

"स्यन्दनस्थ वसुषेण आर्यों के प्रदेश मे।
शख बजाता बढा वेग से रणावेश म॥
प्रथम आक्रमण से अरि-अग्रानीक भेदकर।
व्यूहित प्रतिबल अन्तराल मे गया वीरतर॥
सागराम्बरा वहाँ बन गई शोणितवसना।
रक्तप रण-क्षिति बनी यथा चण्डी की रसना॥
प्राची सदृश्य प्रदीप्त हुई रण दग्ध प्रतीची।
दण्ड-भीत रिपु-हेतु बनी पृथ्वी कालीची॥"

(सर्ग ७, पृ० ९१)

इस प्रकार सम्पूर्ण धराखण्ड को कुरुक्षेत्र के चरणाश्रित करके जब जगद्-विजेता कर्ण हस्तिनापुरी लौटा तो कर्ण और उसकी भारती-जयन्ती फहराती जयवन्ती पताकिनी का जनगण और नृपसमाज ने भव्य स्वागत किया। वसुन्धरा सम्राट सुयोधन ने कर्ण की जयी भुजा को जयकंकण से विभूषित किया,

मलयज कुंकुम से तिलक कर बलपति को विजय-किरीट धारण कराया। महा भाग धृतराष्ट्र ने महाबली कर्ण का अभिनन्दन करते हुए कहा—

"सर्वोपरि तुम आज राज-सम्मान-पात्र हो।
मानवेन्द्र, वसुधा वरेन्द्र तुम एक मात्र हो॥
अंगराज, तुमने हमको चिरऋणी किया है।
दे न सके जो भीष्म-द्रोण, वह हमें दिया है॥"

(सर्ग ७, पृ० ९३)

विष्णु-यज्ञ के याजक ने भी अंगराज को पुरुषेन्द्र मानकर उसका सविधि अग्रपूजन कर सम्मानित किया। जगद्-विजय सदृश्य महोद्योग की सिद्धि के अवसर पर कर्ण ने एक अभूतपूर्व प्रण किया, जिसके कारण वह कर्मवीर और युद्धवीर के साथ-साथ दानवीर के रूप में भी सुविख्यात हो गया—

"अंगराज ने सिद्धि प्राप्त महोद्योग में।
महादान-प्रण किया कीर्तिदायी सुयोग में॥
सुजन-अंकिचनगण का बन अभिमत वरदायक।
राज-सहायक कर्ण हो गया प्रजा सहायक॥"

(सर्ग ७, पृ० ९५)

इस प्रतिज्ञा के पश्चात् कर्ण नित्यप्रति रवि-वन्दन के अनन्तर गंगातट पर मुक्त कर से दीन जनों को दान देने लगा। वसुषेण लोक जीवन में इतना विश्रुत हो गया कि उसे 'अबल का बल' और 'अनाथ का नाथ' कहा जाने लगा। कर्ण के श्लाघनीय दातव्य-भाव का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि—

"बोला सबसे दानी प्रशस्त, है उठे हमारे वरद हस्त।
देकर याचित धन-धरा-धाम, हम तुम्हें करेंगे पूर्ण काम॥
देना भी हो यदि निज शरीर, व्रत विमुख न होगा दानवीर।
आशामय हो सब प्रकार, वर माँगो तुम स्वेच्छानुसार॥

× × × ×

देकर सुवर्ण-निधि राजरंग; कर दैन्य-निराश-निशा भंग।
पतितों में जागृति कर महान्, अभिवन्द्य हुआ वह रवि समान॥"

(सर्ग ८, पृ० ९८)

कर्ण के दानकर्म की अग्नि परीक्षा हेतु देवाधिराज द्वारकेश ने विप्रवेश धारण कर लिया। उन्होंने अंगराज के नवकुमार के मांस की याचना की और अप्रतिम महादानी ने कर में कृपाण लेकर पुत्र को विगत प्राण कर याचक को संतुष्ट किया—

"सुत-मांसपिण्ड को कर सखण्ड; निर्भग्न धैर्यवत् बन प्रचण्ड।
संस्कारित कर उसको यथेष्ठ, दाता ने द्विज को दिया भेंट॥"

(सर्ग ८, पृ० ६६)

कर्ण की दानशीलता, आत्मत्याग, उपकारवृत्ति और सत्यानुराग से प्रसन्न होकर श्री द्वारिकाधीश रंकवेष त्याग कर प्रकट हो गये और मनोवांछित वर प्राप्ति के लिए कहा। कर्ण ने इस अवसर पर जो वरदान मांगा वह उसकी उदात्तता और महानता का परिचायक है—

"यदि हैं प्रसन्न हे देव, आप; तो यह आशिष दे सप्रताप।
निर्धन सुपात्र-सेवा-प्रसग, हो सुलभ हमें इस विध अभंग॥

× × × ×

जब तक मम तन में रहे श्वास, हम मातृ भूमि में करें वास।
पालन करके निज आर्य धर्म; हम करें श्रेष्ठ कर्त्तव्य-कर्म॥"

(सर्ग ८, पृ० १०२)

अङ्गराज' के काव्यनायक की विलक्षण दानवीरता का प्रत्याख्यान नवम सर्ग में पुनः कवि ने किया है। कर्ण के आराध्यदेव भगवान भास्कर ने उसे छद्मवेशी सुरेन्द्र को अपने जन्मजात कवच और कुण्डल न देने के लिये सचेत किया। किन्तु कर्ण ने दानकर्म के प्रति अपनी अडिग आस्था को व्यक्त करते हुए कहा—

"परहित करना आत्मत्याग है आर्यजनों की रीति सनातन।
इस नश्वर जग में मरकर भी रहते अमर इसी विध सज्जन॥
वस्तुमात्र क्या यदि तन का भी साधु अकिंचन करे प्रयाचन।
देकर उसे सहर्ष करेंगे हम कीर्तद सत्कर्म फलार्जन॥"

(सर्ग ८, पृष्ठ १०६)

व्यास प्रणीत 'महाभारत' में भी कर्ण इसी प्रकार की भावाभिव्यक्ति करता है—

मद्विधस्य यशस्य हि न युक्त प्राणरक्षणम्।
युक्त हि यशसा युक्त मरण लोकसम्मतम्॥"

(महाभारत, कर्ण पर्व, ३००/२८)

दिननायक तो कर्ण को सचेत कर चले गये। आगामी दिवस इन्द्र ने विप्र-वेश में समुपस्थित होकर कर्ण से कवच-कुण्डल की याचना की। अंगराज ने साभिमान गात्र-सलग्न कवच और कुण्डलों को अपना वक्षस्थल विदीर्ण कर इन्द्र को समर्पित कर दिया। वक्षस्थल विदीर्ण कर अवतस कवच के उत्कर्तन के

कारण अगराज का शरीर रुधिर मज्जित हो गया। उस मर्म विदारक दृश्य को देखकर अचला सहित हिमाचल और सम्पूर्ण ग्रहमडल प्रकम्पित हो गया। कर्ण के पितृगण प्रसन्न होकर दिव्य कुसुम बरसाने लगे। कर्ण की कीर्ति प्रचारित करती हुई देव दुन्दुभियाँ बजने लगी। उस समय सर्वनमस्कृत सूतपुत्र सूर्य के समान विभासित हो रहा था। एकस्वर से देवता यशोगान करते हुए कह रहे थे—

"एक स्वर से कहा सुरो ने—अहो, शक्तिशाली है मानव।
स्वयमर्जित अमरत्व प्राप्त कर देता है जो हमें पराभव॥
आर्यो का वह देश धन्य है करके जहाँ तपोबल सचय।
विधि विधान विपरीत यशस्वी मर्त्यजीव बनता मृत्युजय॥
कर्म भूमि वह परम धन्य है होता जहाँ आत्म-उत्थापन।
अमरा से भी धन्य धरा है करते जहाँ देव भिक्षाटन॥"

(सर्ग ८, पृष्ठ १०८)

वसुषेण के महान त्याग से प्रसन्न होकर शक्र ने उसे दिव्यास्त्र प्रदान किया और शक्र ने ही उसे कर्ण नाम दिया। इस घटना के अनन्तर दानवृत्ति के कारण वसुषेण कर्ण नाम से सर्वत्र सुविख्यात हो गया। कवि के शब्दो मे—

'दुष्कर कर्म-सिद्धि-विज्ञापक सज्ञा यही शक्र से पाकर।
विदित हुआ वसुषेण जगत म कर्ण नाम से ही तदनन्तर॥
दिन-प्रतिदिन प्रख्यात हुआ वह दानी सत्य-प्रतीक शक्तिधर।
नित्य प्रवर्द्धित हुआ जनप्रिय उसका अक्षय कीर्ति सुधाकर॥"

(सर्ग ६, पृ० ११०)

कर्ण चरित्र की उत्कर्ष विधायक गुणात्मक विभूतियो मे मित्र धर्म का अनुपालन भी उल्लेखनीय है। कर्ण न अनक अवसरो पर अपने आचरण द्वारा मैत्री के उच्चादर्शो को प्रस्थापित किया। यही कारण था कि दुर्योधन अपने सम्बन्धियो और सभासदो मे सर्वाधिक सम्मान कर्ण का ही करता था। जिस समय श्री कृष्ण दूत के रूप मे पाण्डवो का सन्धि प्रस्ताव लेकर कुरुसभा मे समुपस्थित हुए तो कुरुराज ने भीष्म, द्रोण आदि महित सभी समासीन नरेशो और महारथियो का परिचय कृष्ण से कराया, किन्तु जिस गौरव और गरिमा से कर्ण का परिचय दिया, उससे कुरुराज का कर्ण के प्रति उच्च समादर-भाव प्रगट होता है। यह परिचय महाबली कर्ण के वैभव और विक्रम का भी परिचायक है। दुर्योधन ने कहा—

"समीप हो केशव, आप देखिए, विराजते वीर वीरेन्द्र अग के।
वसुन्धरा मे जिनकी प्रशस्त है, मनस्विता, अद्वय कर्मशूरता॥

स्वबाहु से, अर्जित राज्य कीर्ति के, स्वकर्म से सचित भाग्य के धनी ।
हठोद्य सत्य, पराक्रमी तथा, अनन्य दानी नरराज कर्ण हैं ॥
स्वय विधाता इनके ललाट की, अदृष्ट लेखा यदि मेटने लगे ।
कभी न होंगे मन में हताश ये, समर्थ जो है पुरुषार्थ-शक्ति से ॥
महान सहार कला प्रवीण ये, महारथी हैं जिनके प्रभाव से ।
विवर्ण होती मम शत्रु मण्डली, शशी यथा कुजर-कर्णताल से ॥"

(सर्ग १२, पृ० १२७)

दुर्योधन की प्रशसोक्तियो की सत्यता को कर्ण ने प्राणपन से अक्षरश प्रमाणित भी किया । कुरुसभा में ही जब माधव ने कुरुराज को पाडवो की युद्ध योजना से अवगत कराते हुए राज्य का कुछ भाग पाडवो को देकर वैर-विरोध समाप्त करने का परामर्श दिया, तो सुमेरु-शृ गोपम शीर्षखण्ड और सुवर्ण बाहु-दण्ड को उठाकर नर रत्न कर्ण ने ओजस्वी वाणी मे कहा—हे केशव ! गुणहीन व्यक्तियो की व्यर्थ प्रशसा न कीजिये । पाडव छत्र-भ्रष्ट है । वे महा-अकर्मण्य बने स्वपत्नी-अपमान देखते रहे, वसुधा-सतीत्व का सरक्षण किस प्रकार करेंगे ? स्वराष्ट्र-रक्षण सामर्थ्यवान् द्वारा ही होता है और इसके योग्य केवल कुरुराज हैं, पाडव नही । और पार्थ यदि युद्धाकाक्षी है तो रणक्षेत्र मे आए । हम दया या कृपा भाव के लिए राजधर्म का परित्याग नही करेंगे—

"स्वराष्ट्र के रक्षण हेतु सर्वदा, समर्थ का शासन सर्वमान्य है ।
सुयोग्य है कौरवराज सर्वथा, अत उन्हे है, अधिकार राज्य का ॥
यही कहेंगे हम स्पष्ट रूप से, प्रभुत्व है दुर्लभ कर्महीन को ।
विशेष हो समर व्यग्र पार्थ तो, सहर्ष आए बलिदान भूमि मे ॥
दया, कृपा भी मन मे लिए हुए, न त्याग देंगे हम राज धर्म को ।
कही हुई पाडव की प्रशस्ति से, न भीत होंगे हम अल्पमात्र भी ॥"

(सर्ग १२, पृ० १३२-१३३)

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने लौटते हुए एकात मे कर्ण को बताया कि अब भीषण युद्ध होना अनिवार्य है, मित्रवत् सम्भवत हम अन्तिम बार मिल रहे हैं । अब धर्मत सबके लिए कर्त्तव्य-प्रश्न विचार्य है । हे प्रज्ञ ! तुम निज जन्म-कथा से अनभिज्ञ होने के कारण भूल से भ्रम में पड़े हो । वसुषेण ! तुम राजवश-प्रसूत हो, कुन्ती तुम्हारी जननी और पाण्डव तुम्हारे अनुज हैं । श्रीपति ने कुमारी कुन्ती की सूर्योपासना, वरयाचना और कर्ण जन्म के इतिवृत्त को विस्तार पूर्वक बताकर अन्त मे कहा—

"कुलवान् गर्भेश्वर स्वय को मान सर्व प्रकार से ।
तुम राज्य लक्ष्मी मोग क्यो करते नही अधिकार से ।।
अब कौरवो को त्याग तुम निज राज्य लेकर हाथ मे ।
भोगो अनुजगण और श्यामा सुन्दरी के साथ मे ।।"

(सर्ग १३, पृ० १३९)

प्रत्युत्तर मे वसुषेण ने कहा—हरि ! मुझे वश-गौरव-प्राप्ति का मिथ्या लोभ नही है । पृथा से परित्यक्त होने के पश्चात् कौन्तेय के रूप मे तो मैं मृत हो गया हूँ । मुझे तो राधेय के रूप मे पुनर्जीवित किया गया है । धर्म से मैं पृथा का देव-प्रदत्त कुमार होकर भी मित्रघातक कर्म नही करूँगा । पाण्डवो के निमित्त मैं सुयोधन की मित्रता नही त्यागूँगा । क्योकि मेरे लिए बन्धुत्व से भी अधिक महत्वपूर्ण मानवता का सरक्षण है । कर्ण ने प्रखर होकर कहा—हे कर्मयोगी ! मुझे कर्मभ्रष्ट मत कीजिये । आप जिस प्रकार पार्थ के अनन्य स्नेही है, उसी प्रकार मैं कुरुराज का सुहृद्-सन्मित्र हूँ । जब मेरे दुःख के दिन थे और मैं निरुपाय था, तब मेरे एकमात्र सहायक कुरुराज ही बने थे । अब लोभवश उनका त्यागकर मैं मित्रघाती और कृतघ्न नही बनूँगा । कर्ण के अकाट्य तर्कों को सुनकर श्री हरि ने दूसरा प्रस्ताव किया कि महासग्राम होना तो निश्चित है अतः तुम तटस्थ और विरत हो जाओ क्योकि वैसे भी दैव-योग से (अभिशाप के कारण तुम विजयी तो हो नही सकते हो) और पार्थ सम्पूर्ण दैवी शक्तियों से युक्त होने के कारण अन्तत. विजयी होगा ही । यह सुनकर कर्ण उत्तेजित हो गया और उसने कहा—

"नदिका-विभव कहिए न केशव, भूलकर नदराज से ।।
जिस काल चिरवाछित समर होगा हमारा पार्थ का ।
तब देखिएगा आप अन्तर देवबल पुरुषार्थ का ।।
कर्त्तव्य वश का मान-मर्दित राजशत्रु-समाज का ।
हम मार्ग कर देंगे अकटक मित्रवर कुरुराज का ।।
यदि मित्र हित हमको मिलेगी अन्तगति ही अन्ततः ।
तब भी मिलेगी आत्मबलि से आत्म-जय ही पूर्णत. ।।"

(सर्ग १३, पृ० १४१)

महाभारत मे भी कर्ण इसी प्रकार का उदात्त मैत्री-भाव प्रकट करते हुए कहता है—

"कल्याणवृत्तः सतत हि राजा, वैचित्र्य वीर्यस्य सुतो ममासीत् ।
तस्यार्थ सिद्धयर्थं मह त्यजामि, प्रियान् भोगान् दुस्त्यजे जीवितं च ।।"

(महाभारत, कर्णपर्व, ३७/२६)

चतुर्दश सर्ग मे वर्ण-दम्पत्ति का सुन्दर परिसवाद है जिसमे कर्ण-भार्या प्रकृति की रमणीयता और सुन्दर दृश्यावली का मादक वर्णन करती हुई प्रेम-भाव प्रदर्शन करती है। प्रिया के प्रेमालाप से अप्रभावित रहकर अधिरथात्मज ने जो उत्तर दिया, वह उसकी कर्त्तव्यनिष्ठा और स्वाभाविक वीर-मनोवृत्ति का व्यजक है—

"सुख विलास तथा रसवाद से, हम विमुग्ध न हो सकते यहाँ।
अरुण के परमोज्ज्वल तेज को घनघटा न घटा सकती कभी॥
गृह विनोद सभी अब भूल के, समर है उनसे करना हमे।
भ्रमणशील अभी तक नित्य ये, वन वनीक, वनी-कपि तुल्य जो॥

× × ×

अब न हमको प्रियचन्द्र की रुचिरता, मृदुता, कलहासता।
हम उसे भजते जिस भानु की, किरण की रणकीर्ति प्रसिद्ध है॥"

(सर्ग १४, पृ० १५१–१५२)

यह कह कर कर्ण ने समर-प्रस्थान हेतु जब प्रिया से विदा करने को कहा तो कर्ण प्रिया बोली कि अब युद्ध अभीष्ट नही है। प्रकृति के सभी उपादान शान्ति-उपासना के लिए प्रेरित करते हैं। रण कर्म जन-विनाश का साधन होने के कारण ग्रहण योग्य नही है। युद्ध के परिणाम तो व्यथा, क्रन्दन, मृत्यु और कदर्थना हैं। गृह-समृद्धि और जन-सम्पदा का महानाश अवाछनीय है। अत सकल कौरव और पाडव वर्ग का हितैषी बनकर युद्ध की विभीषिका से सभी को बचाना चाहिए। किन्तु दृढव्रती कर्ण ने अपने निश्चय को इन शब्दो मे व्यक्त किया—

'जाना है हमको उसी कर्म भूमि मे मान से।
जीवन है मिलता जहाँ प्राणो के बलिदान से॥
यदि विजयी हम हुए मित्र का मान बढेगा।
कुरुपति-पद पर धर्मराज का शीष चढ़ेगा॥
यदि होगे रण-प्रहत, कहेगा लोक यही नित।
कर्ण धन्य था जो गतायु हो गया मित्र हित॥"
दोनो मे सतोष है, विजय मिले या वीरगति।
अमर रहेगी विश्व मे कीर्ति हमारी नित्य प्रति॥"

(सर्ग १४, पृ० १५३)

दृढ प्रतिज्ञता कर्ण चरित्र की ऐसी विशेषता है जो काव्य मे आद्यात दृष्टि-गत होती है। कृष्ण-प्रयाण के पश्चात् भारत के भवनीय महारण की परि-कल्पना से सबसे अधिक अधीर और सत्रस्त कुन्ती थी। पुत्र-स्नेह उसे व्यथित

किए था। अन्तत वह शोक निमग्ना प्रातकाल पूजा के समय कर्ण के समीप पहुँचकर आजीवन सहेजे रहस्य का उद्घाटन करती हुई बोली—

"सूत नही, मम गाल-प्रसूत कुलीनक हो तुम राज्य विधाता,
हो मम अग्रज, भूप-कुमार युधिष्ठिर के तुम अग्रज भ्राता ॥
लोकपिता रवि से जब हमने तव जीवन का दान लिया था।
और तुम्हे अविवाहित जीवन मे सुख पूर्वक जन्म दिया था ॥
किन्तु हमे जन-लोक प्रवाद-मनस्तप ने भयत्रस्त किया था।
त्याग तुम्हे हमने अतएव विषाद-हलाहल तीव्र पिया था ॥"

(सर्ग १५, पृ० १६२)

कुन्ती ने अनेकविध अनुनय विनय कर कर्ण से स्वकृत्य के लिए क्षमा याचना की तथा उसे महाभारत युद्ध मे कौरवो का सहायक न बनने की प्रार्थना की। कर्ण अपने जन्म के तथ्य से इत पूर्व ही अवगत हो चुका था। उसने आवेश मे आकर कुन्ती को उसकी स्वार्थवृत्ति के लिए धिक्कारा और कहा कि तुम जननी नही ठगनी हो। तुमने अपन आत्मज का जीवन ही अपने करो से नष्ट कर दिया था, आज उस मृत वालक के शव से क्या सहारा चाहती हो? जब मैं दुर्दिनग्रस्त था, तब तुम्हे मेरा ध्यान कभी नही आया। आज पच सुतो पर विपत्ति देखकर मुझे पुत्र कह रही हो। तुम्हे मेरा नही पार्थ का स्नेह यहाँ लाया है। मेरे प्रति तो तुम्हारा वात्सल्य भाव भी द्रोह और छल-छद्म से भरा है। अस्तु—

"आज अभीष्ट न है हमको कुल गोत्र तथा धन राज्य तुम्हारा।
सत्कुलवत हुए हम है निज कर्म—उपार्जित गौरव द्वारा ॥
आत्म गुणान्वित सानुज है हम, है मम सद्म धरातल सारा।
सिद्धि समृद्धि-प्रसिद्धि-प्रदायक है बस पौरुष-मात्र हमारा ॥
× × ×
वश समृद्धि प्रलोभन-ग्रस्त कभी हम अल्पकमात्र न होगे।
होकर मित्र-कृतघ्न कदापि अकीर्ति, अधोगति पात्र न होगे ॥"

(सर्ग १५, पृ० १६३-१६४)

साश्रु पृथा ने पुन कर्ण से स्वपुत्रो की प्राण रक्षा की याचना की और कहा कि तुमने नित्य ही सहस्रो को दान देकर कृतार्थ किया है, अत जननी को निराश मत करो। अन्तत कर्ण का हृदय द्रवित हो गया और उसने कुन्ती को यह वर दिया कि अर्जुन के अतिरिक्त वह किसी भी पृथा-पुत्र का वध नही करेगा। और वह स्वय बच गया तो युद्धापरात कुन्ती का पुत्र बन जायेगा—

"वीरप्रसू इससे तव वीर सुत-द्वय-कीर्ति-प्रसारक होगा।
एक किसी सुत का जयलाभ सदा तव गौरव-कारण होगा॥
× × × ×
अर्जुन के अतिरिक्त किसी तव आत्मज का हम प्राण न लेंगे॥
पार्थ हुआ विजयी यदि तो सुत-सत्त्व सभी तव शेष रहेंगे।
मृत्यु मिली उसको यदि तो हम निश्चय ही तव पुत्र बनेंगे॥"

(सर्ग १५, पृ० १६५)

यह सुनते ही कुन्ती ने स्नेह विमुग्ध होकर कर्ण को कण्ठ से लगा लिया। कर्ण ने भी सादर शीश झुकाकर बद्धकरों से प्रेम और ममत्व का अवलम्बनीय भाव-प्रदर्शन किया। कुन्ती को वर देना तथा उसके प्रति सम्मान व्यक्त करना कर्ण की सदाशयता और औदार्य का ही परिचायक है। इस कृत्य से कर्ण का चरित्र मानवीय-आचरण की उदात्त भूमिका पर अधिष्ठित होने का अधिकारी बनता है। कर्ण और कुन्ती के स्नेह विमुग्ध भाव-मिलन को कवि ने इस प्रकार शब्द-बद्ध किया है—

"होकर स्नेह-विमुग्ध वहाँ उसने सुत को निज कण्ठ लगाया।
भूपति ने अति आदर से उसके चरणों पर शीश झुकाया॥
× × × ×
भूल गया वसुषेण स्वयं उस काल विचार सभी प्रभुता के।
मानस में उसके जननी-प्रति भाव-स्वभाव जगे शिशुता के॥
आनन मस्तक, बद्ध कर द्वय व्यंजक थे उसकी लघुता के।
लोचन-प्राण कृतार्थ हुए अवलोक इसे नृप भोज-सुता के॥"

(सर्ग १५, पृ० १६५)

'अंगराज' महाकाव्य के 'द्वितीय खण्ड' में दस सर्ग हैं। सोलहवें से पच्चीसवें सर्ग तक में यथाक्रम में महाभारत के युद्ध और उसमें महारथी कर्ण की गौरवान्वित भूमिका का कलात्मक महत्वांकन है।

षोडश सर्ग में महाभारत-युद्ध की साज-सज्जा का वर्णन है। देश-देश के नरनेतागण मन में रणोत्साह लेकर कुरुराज के आमन्त्रण पर राजागण में एकत्र हुए। कुरुवाहिनी के सेनापतित्व के लिए जब परिसंवाद आरम्भ हुआ तो भीष्म ने अंगाधिराज को महारथ होने के कारण सेनापति बनाने पर आपत्ति की। कर्ण ने स्वेच्छा से युद्ध-नीति के हित में चमूपति-पद से स्वयं को ...
लिया। भीष्म को यद्यपि वयोवृद्ध होने के कारण कुरुवाहिनी-पति

गया, किन्तु दुर्योधन ने अंगपति की निन्दा को अक्षम्य मानते हुए भीष्म पितामह से स्पष्ट शब्दो मे कहा —

"क्षमा सभी है, पर अक्षम्य है निन्दा यहाँ अंगपति की।
सभी मानते है प्रधानता जिस मनुजेन्द्र महामति की॥
उचित इसी प्रारब्धि केतु को प्रथम बलाग्र बनाना था।
इसी दिग्जयी के आश्रय मे कुरुक्षेत्र को जाना था॥
पर वयस्कता देख आपकी वृद्धजनो के आग्रह से।
दी है पद मुख्यता आपको हमने जाति-अनुग्रह से॥"

(सर्ग १६, पृ० १७५)

दुर्योधन के उद्धृत कथनसे ज्ञात होता है कि कर्ण का कुरुसमाज मे कितना समादर-सम्मान था। सत्रहवें सर्ग मे कुरुक्षेत्र के लिए प्रस्थान करती हुई विशाल वाहिनी और वाहिनी-पतियों का प्रभावशाली वर्णन है। इसी क्रम मे कर्ण का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

"और सुनो वह मनोभिमानी अंग देश का राजा कर्ण।
पतझड बन जो सदा गिराता शत्रु-शिरो को यथा प्रपर्ण॥
होती जिसकीध्वजा देखकर दिग् गयन्द बन्धन भय मुक्त।
नाग-श्रृंखला-केतु उड़ाता जाता यथा नाग निर्मुक्त॥
× × ×
चाप किणकिन हैं जिसके कर श्रम चिन्हांकित जिसका भाल।
वह काल सा बली उठा है लेकर कालपृष्ठ विकराल॥"

(सर्ग १७, पृ० १८३)

सर्ग अठारह मे भीष्म के सेनापतित्व में कुरुवाहिनी और पाडवचमू मे हुए संगर का रोमांचक वर्णन है। दसवें दिन प्रातसैन्य का नेतृत्व शिखण्डी को करते हुए देखकर भीष्म पितामह की दृष्टि झुक गई; तभी अर्जुन ने शिखण्डी के रथ के ओट से प्रहार कर उन्हे धराशायी कर दिया। रणोपरान्त रात्रि के समय शर-शय्या पर शयन करते हुए भीष्मपितामह के प्रति सम्मान प्रगट करने के लिए जब कर्ण उनके समक्ष श्रद्धावनत हुआ तो भीष्म ने जो उद्‌गार व्यक्त किए, उनसे ज्ञात होता है कि कर्ण के प्रति उनके मन मे उच्च भावनाएँ थीं। भीष्म ने कहा—

"तुम हो वीर जगत के नेता। पुरुष रत्न, संसार विजेता॥
तुम कीर्तिन हो अनुपम दाता। कृष्णार्जुन सम रण-विज्ञाता॥
विदित हमे तव गुणवत्ता है। स्वीकृत तव अनन्य सत्ता है॥
देख रूप-गुण-कर्म तुम्हारे। पुलकित होते प्राण हमारे॥

जिससे नृप परिवार मे, बढे न बन्धु विरोध।
तुम पर करते थे प्रगट, हम निज कृत्रिम क्रोध ॥"

(सर्ग १८, पृ० १६६)

उद्धृत काव्यांश 'महाभारत' मे भीष्म के निम्नांकित कथन से तुलनीय है—

"जानमि समरे वीर्यं शत्रुभिर्दुःसहमुवि।
ब्रह्मण्यता च शौर्यं च दाने च परमास्थितिम् ॥
न त्वया सदृशः कश्चित्पुरुषेष्वमरोपम।
कुल भेद भयाच्चाह सदा पुरुष मुक्तवान् ॥"

भीष्म के पतन के पश्चात् द्रोणाचार्य को यद्यपि सेनानायक नियुक्त किया गया था, किन्तु पार्थ से सत्रस्त सैनिक और महारथी व्याकुल होकर कर्ण के नेतृत्व की आकाक्षा कर रहे थे। कवि के अनुसार—

"कहते थे सब एक स्वर से—कर्ण कहाँ हैं ?
महाशक्तिधर देवेश्वर से—कर्ण कहाँ हैं ?
रण प्रलयकर वीरेश्वर से—कर्ण कहाँ हैं ?
पार्थ-भुजग-हित वीर धर से—कर्ण कहा हैं ॥"

(सर्ग १६, पृ० १६८)

द्रोणाचार्य के दिवगत होने के पश्चात् कुरुवाहिनी का नेतृत्व महारथी-महाबली अगराज कर्ण ने सम्भाला। कर्ण ने भयकर प्रहारो से पाण्डवो की सैन्य-सरचना को ध्वस्त कर दिया। एक अवसर पर वह युधिष्ठिर का वध ही कर देता किन्तु कुन्ती को दिए गए जीवन-रक्षा-वर का स्मरण आते ही उसे छोड़ दिया। कर्ण के युद्ध-कौशल का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

"किया घोर संहार कर्ण ने वैरी हुए परास्त दृष्टिगत।
शत्रु-घटाएँ नष्ट हो गईं, प्रखर-बाण-झझानिल आहत ॥

× × ×

अधिरथयुत अधिरथसुत अधिरथ, अधिरथ कर्ण लिए निज अधिरथ।
प्रतिरथियो को भीमरथी मे, बना अधिरथी सम अप्रतिरथ ॥
एक एक को बाण विद्ध कर, महारथो का मान-विमर्दन।
प्रहत पराहत उन्हें बनाकर उसने किया सिंहवत् नर्दन ॥"

(सर्ग २०, पृ० २१४-२१५)

कर्ण द्वारा कि जा रहे नर सहार को देखकर कृष्ण की सम्मति से पार्थ, भीम आदि प्रमुख योद्धागण उसे मण्डलाकार घेर कर शस्त्रास्त्रो का प्रहार

करने लगे। किन्तु सभी देख रहे थे कि अगराज प्रतिपक्षियो की सभी योजनाओ को असफल बनाता हुआ घातक प्रहार कर रहा था। कवि के शब्दो मे—

'देखा सभी ने प्रभुता दिखाता, ब्रह्माण्ड पृथ्वी तल को कँपाता।
निर्द्वन्द्व था लक्ष्य-समीप जाता, अङ्गार आमान्वित अङ्गराजा ॥
गोविन्द के गौरव को मिटाता, मद्रेश था स्यन्दन को चलाता।
यानस्थ था कीर्ति केतु-नाशी, नागेन्द्र-शिञ्जाकित-केतुशाली ॥"

(सर्ग २०, पृ० २१८)

कर्ण की सबसे बडी विशेषता यह रही कि वह युद्ध क्षेत्र मे प्रतिकूल परिस्थितियो मे भी कभी हतोत्साहित नही हुआ। एक अवसर पर कर्ण के सारथी मद्रेश्वर ने कहा कि अङ्गराज पार्थ ऐसा पुरुपेन्द्र है कि जिसकी रक्षा सभी लोक शक्तियाँ कर रही हैं। वह पुरन्दर-पुत्र है जो सम्पूर्ण सरायुधो से सज्जित है, और उसके सारथी चक्रपाणि हैं। उस शूर ने भीष्म द्रोण सदृश्य युद्ध-दुर्दम-महारथियो को भी विजित किया है। अब उसका कमाल तुम कपालिका को क्या भेंट करोगे? कही वह ही तुम्हारा भाल शृगाल को न दे दे। मद्रराज शल्य की व्यग्योक्तियो को सुनकर अगराज ने कहा—

"पार्थ हो समृद्ध भले शिक्षित प्रसाधनो से,
सर्वसिद्धिदायक हमारा पुरुपार्थ है।
आत्मशक्ति के सहारे हम बार-बार,
देवबल-रक्षित सुरायुधी अराति को—
द्वन्द्व के निमित्त ललकारते हैं किन्तु वह,
भीरु मम सम्मुख न आ रहा है आज भी ॥"

(सर्ग २१, पृ० २२१)

कुरुक्षेत्र मे कर्ण ने न केवल स्वकीय युद्ध कौशलसे प्रतिपक्षियो को सन्त्रस्त कर रखा था, अपितु अप्रतिम सेनानायक की भाँति वह अपने सैनिको को सम्यक् उद्बोधन द्वारा समुत्साहित करता हुआ, प्रयाण के लिए प्रेरित कर रहा था। कवि के अनुसार—

"अदम्य अगराज ने प्रयाण वेग से किया।
अराति दण्ड चक्र को स्ववाम पार्श्व मे लिया ॥
पुकार के कहा—बढो सशस्त्र राज सैनिको!
करो विनष्ट भूमि-भ्रष्ट धृष्ट शत्रु-सैन्य को ॥
बढो सगर्व अङ्गराजपुत्र शीघ्र दौडते।
बढो बलाधिकार से समर्थ्य व्यूह तोडते ॥

बचे न दृष्टिमार्ग में अमित्र शेष एक भी।
बढ़े चलो स्वदेश शत्रुहीन हो, रुको तभी॥
महारथी, विलम्ब आज हो न सम्प्रहार में।
विपक्ष को करो विलीन काल अन्धकार में॥
बचे न एक शत्रु भाल जो न वाण-विद्ध हो।
प्रयोग है वही प्रशस्य जो सकाल सिद्ध हो॥"

(सर्ग २१, पृ० २२८)

बलाग्र कर्ण के निदेश से कुरुवाहिनी सवेग बढ़ चली। उस अवसर पर धरा-सिन्धु प्रकम्पित हो रही थी। जैसे तरंगिता-तरंगिणी उमंग से बढ़ती है वैसे ही अमग्न भारती-सेना प्रयाण कर रही थी। कुरुराज की विशाल वाहिनी ने पृथाज की समस्त व्यूह-रचना को अस्त व्यस्त कर दिया। इसके पश्चात् कवि ने पार्थ और कर्ण के लोमहर्षक संगर का वर्णन किया है। वसुषेण ने कोटि-कोटि शोणित महास्त्रों का प्रयोग करके धर्मराज को वेध दिया, अर्जुन भी रुधिराक्त हो गया। कुपित पार्थ ने भी अपने दिव्यायुधों के विस्मयकारी प्रयोगों द्वारा कुरुचमू को सन्त्रस्त कर दिया। उस युद्ध-मेदिनी में शत्रुवाहिनी के प्रवेग को देखकर कर्ण ने अपने सारथी शल्य से कहा कि तुम मेरा स्यन्दन उस स्थल पर शीघ्र पहुँचाओ जहाँ हरि-रक्षित पार्थ-ध्वजा उड़ रही है—

"शल्य करो रथ की गति तीव्र महारण आज धरा पर होगा।
भीषण वाण-प्रवर्षण-घर्षण-घोष-प्रघोष निरन्तर होगा॥
ध्वंसक, लोमप्रहर्षक कर्ण-धनञ्जय का अब समर होगा।
भारत-वीर-समाज समक्ष अभी कुरुभूमि-स्वयंवर होगा॥
घात-विघात-प्रघात-प्रबोधक दारुण दृश्य महायम देखें।
भीति विभासक भैरव भी मम भैरव-नृत्य-रणोद्यम देखें॥
श्री प्रलयंकर रुद्र भयंकर संहृति-कृत्य मनोरम देखें।
बन्धरवीर, धुरन्धर-धीर पुरन्दर सत्य पराक्रम देखें॥"

(सर्ग २१, पृ० २३५)

'महाभारत' में भी मद्रराज के समक्ष सेनापति कर्ण का यही वीरोचित स्वाभिमान प्रकट हुआ है—

"नहि कर्णः समुद्‌भूतो भयार्थ मिह मद्रक।
विक्रमार्थमहं जातो यशोर्थं च तथात्मन॥"

(महाभारत—कर्ण पर्व; ४३-६)

महारथी कर्ण सम्पूर्ण युद्ध क्षेत्र पर छाया हुआ था। उसका एकमात्र लक्ष्य शत्रुपक्ष की व्यूह रचना को ध्वस्त करना था। एक स्थल पर कुरुराज को सकटापन्न स्थिति मे फँसे देखकर जब वह उस स्थल पर जा रहा था तो बीच मे ही उसे स्वपुत्र सुषेण का वीरगति प्राप्त शव दृष्टिगत हुआ। किन्तु कर्ण विचलित हुए बिना यह कहता हुआ आगे बढ गया कि—

"पुत्र हानि क्षोभ से न भूलें हम प्रण को।।" (सर्ग २१, पृ० २३७)

और निश्चयत यह प्रण अपने मित्र सुयोधन की प्राणरक्षा और मान-रक्षा का ही था। किन्तु इस प्रणपूर्ति मे कर्ण ने कही भी अनीति का आश्रय नही लिया। एक अवसर पर पार्थ ने महाचाप से वरुणास्त्र और रुद्र महास्त्र का प्रहार कर्ण पर किया। कर्ण ने उन महास्त्रो को प्रभावशून्य बनाने के लिए जिन शरो का प्रयोग किया, उससे अर्जुन मूर्च्छित हो गया। इस अवसर पर दुर्योधन ने अर्जुन के वध करने का परामर्श कर्ण को दिया, किन्तु महारथी कर्ण ने इसे धर्म प्रतिकूल कहकर टाल दिया—

"मूर्च्छित पृथाज हुआ, बोला कुरुराज तभी,
मित्र, इसे मार दो उठे न यह स्वाप से।
रोक प्रहार कर्ण बोला—हमे इष्ट नही,
धर्म-प्रतिकूल स्वार्थ सिद्धि कभी पाप से।।"
(सर्ग २१, पृ० २५०)

उद्धृत कथन से महाबली कर्ण के चरित्र की महानता ही व्यजित होती है। एक अन्य अवसर पर पुन व्याल कर्ण को सुझाव देता है कि मुझे बाणस्थ कर घातक प्रहार करो, जिससे निश्चयतः पार्थ हतप्राण होगा, किन्तु वहाँ पुन अगराज धर्ममय युद्ध का ही समर्थन करता हुआ कहता है कि—

"यह सत्य समर है नागराज। है सत्यव्रती यह अङ्गराज।।
हो जाय भले वह प्राण मुक्त। पर कर्म करेगा धर्म युक्त।।
कर के दूषित शर का प्रयोग। हम नही चाहते विजय भोग।।
हो यहाँ हार या मिले जीति। होगी न कुटिल मम युद्धनीति।।"
(सर्ग २१, पृ० २५६)

किन्तु विडम्बना यह है कि उस महाव्रती कर्ण का वध अनीतिपूर्वक पार्थ ने किया। 'रश्मिरथी' प्रबन्ध काव्य मे श्री दिनकर जी ने भी यही दर्शाया है कि युद्ध क्षेत्र मे कर्ण के रथ का एक पहिया फँस गया था और जब वह पहिया निकाल रहा था, तभी कृष्ण के आदेश से अर्जुन ने कर्ण का वध

कर दिया।[10] वस्तुत अर्जुन ने अधर्म और अनीतिपूर्वक निशस्त्रावस्था मे ही कर्ण का वध किया।[11] कर्ण के निधन पर कवि ने उसकी चारित्रिक गरिमा का वर्णन करते हुए पश्चाताप के स्वर मे कहा है कि—

"मानवीय शक्ति का प्रतीक भारतीय वीर,
कर्ण शस्त्र पूत होके वीर लोक को गया।
दीन-हीन प्राणियो का चिन्तामणि रत्न था,
रत्नवती-रत्न नर-रत्नराज खो गया।
सज्जनों का कल्पवृक्ष मूल से विनष्ट हुआ,
जागरूक द्वारप स्वतन्त्रता का सो गया।
हो गया अजीव राज-अग अगराज बिना,
और अगराज-दिनराज अस्त हो गया॥"

(सर्ग २१, छन्द २२५)

पाडव पुत्रो सहित श्रीकृष्ण जब युद्ध क्षेत्र का परिभ्रमण कर रहे थे, तभी मृत-कर्ण-भाल को लक्षित कर उन्होने पृथाज से कर्ण के अपरिमित शौर्य का प्रत्याख्यान करते हुए कहा कि—

"जयाधिकारी वसुषेण-मृत्यु से, हुआ महाभारत ही समाप्त है।
यही बली था जिस के त्रास से, प्रवास मे द्वादश वर्ष रात्रि मे॥
प्रजागर ग्रस्त नरेश आप थे, तथा किरीटी हम भी सशक थे।
किरीटधारी प्रति-भूप भाल को, झुका दिया था इसी मानवेन्द्र ने॥
न स्वप्न मे परवीर त्रास से, झुका कभी मस्तक अगराज का।
नृलोक मे एक यही ललाट था, महामनस्वी इस शौर्य मूर्ति का॥
हुआ न आनत दीन भाव से, कभी किसी के चरणारविन्द मे।

(सर्ग २१, पृ० २६८)

बाईसवें सर्ग मे कवि ने कर्णप्रिया के मर्मस्पर्शी करुण विलाप का वर्णन किया है। कर्ण-भार्या प्राणेश्वर के खडित भाल को अक म लेकर उसे बारम्बार विलोकती हुई करुण क्रन्दन कर रही थी। वह अश्रुस्नाता अपनी मर्मव्यथा को अभिव्यक्त करते हुए कह रही थी कि हे चिरसगी! तुम स्वप्न मे भी मेरे साथ थे। आज निर्मोही की भाँति प्रणय बधन तोड कर कहाँ चले गए

---

[10] रश्मिरथी—सप्तम् सर्ग, पृ० १८७ से १९९

[11] हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य, पृ० १७८.

हो। तुम्हारा तो यह प्रण था कि जब तक नभ मे चन्द्र-तारे है, हम साथ है और रहेगे। सुखमय अतीत का स्मरण करती हुई वह कुलाङ्गना चन्द्रमा की ओर इंगित कर कहने लगी कि यह मदनमित्र हमारे मधुमय-मिलन का साक्षी है। अहो, वह सुधासिक्त रजनी कितनी सुखदायी थी, जब नभ मे चन्द्र और अपने समीप तुम्हारा मुखचन्द्र देखकर मेरे अन्तस्तल मे पीयूषधार प्रवाहित हो रही थी। हे वीरव्रती उठो और अरिमर्दन करो। इस प्रकार निरन्तर आर्त्तनाद करती हुई कर्णवामा को धैर्य धारण कराने के लिए गगनध्वनि हुई जिसमे उसने सुना कि—कोई कितना भी महान् नेता या विश्वविजेता हो किन्तु काल से तो वह भी परास्त होता है। उदय-अस्त और उत्थान-पतन तो नित्य-नियति का सतत म्रियमाण अबाध क्रम है जिसका कोई अतिक्रमण नहीं कर सका? कर्ण महान् वीर था और उसे देवोपम अमरत्व प्राप्त हुआ है। उसके समान कीर्ति कलेवरधारी प्राणी जग मे मिलना दुर्लभ है। तुझे हृदय की जड़ता और व्याकुलता का परित्याग कर अपने दिवंगत पति की वीरता को भूलकर उसकी दैवीय विभूतियो का पुण्य स्मरण करना चाहिए—

"कर्ण वीर था, महावीर था देवोपम वलधारी।
पुण्यशील मानी सदय था अनुपम परोपकारी॥
किन्तु उसे भी काल-नियम-वश प्राण त्याग करना था।
कर्मवीर था अत कर्म करते-करते मरना था॥
× × ×
कौन भाग्यशाली नर होगा जग मे उससे बढके।
परमोन्नति जो करे स्वनिर्मित सोपानो पर चढके॥
परमाहव मे विजित नहीं, पर जयी हुआ तव स्वामी।
मरके वह परमत्व प्राप्त ही हुआ स्वर्ग-पथगामी॥
× × ×
मिली परम गति अंगराज को अन्तिम जीवन रण में।
एकाकी वह सफल हुआ है स्वाभिमान रक्षण मे॥"

(सर्ग २७, पृ० २७२-७३)

गगन गिरा से कर्ण-वामा यद्यपि आश्वस्त हुई किन्तु उसके सन्ताप का एक मात्र कारण यह था कि छल प्रयोग तथा हरि-योग से शत्रु ने प्राणनाथ का वध किया, अन्यथा तो वे अजेय थे। कर्ण-प्रिया की मनोव्यथा विरही

यथार्थ और तलस्पर्शी प्रतीत होती है, जब वह कहती है कि कुरु-अधीन भारत-राज्य की दक्षिण बाहु ही कर्ण निधन से कट गई है—

"कुरु कुलाश्रित भारत राज्य की, कट गई अब दक्षिण बाहु ही ।
वहन था करता नृपराजता, वह महीभुज ही भुज शक्ति से ॥"

(सर्ग २२, छन्द ४२, पृ० २७६)

चौबीसवें सर्ग मे हम धर्मराज युधिष्ठिर को भी महारथी कर्ण के निधन पर मानसिक सन्ताप और आत्मिक सम्मान प्रकट करते हुए पाते हैं। जिस समय गगातट पर कुलाग्रणी पाडवराज सभी मृतजनो का शास्त्रोक्त विधान से दाह-सस्कार एव तर्पणकर्म कर चुके तो कुन्ती ने कर्णजन्म का रहस्यपूर्ण वृत्तान्त बताते हुए धर्मराज से कर्ण का तर्पण करने के लिए अनुरोध किया। इस रहस्यमय इतिवृत्त का परिज्ञान होते ही युधिष्ठिर पश्चातापपूर्ण मुद्रा मे कहने लगे कि यदि पहले ज्ञात हो गया होता कि कर्ण हमारे अग्रज है, तो हम युद्धकामी न होते, क्योकि—

"अगेश के दर्शन से हमारी, होती सदा थी बलवान श्रद्धा ।
विलोकते ही पदश्री उसकी विनीत होते हम सर्वदा थे ॥
होता जहां था वह कोपशाली, होते वहां थे हम गुप्त-स्नेही ।
विचार होता मन मे यही था, सुसह्य है पूज्य मनुष्य वाणी ॥"

(सर्ग २४, पृ० २९२)

काव्य की परिसमाप्ति मार्तण्ड के कर्ण के प्रति इस कथन से होती है कि—

"आत्म विजय ही सत्य विजय है, हुई तुम्हे जो प्राप्त ।"

(सर्ग २४, पृ० २९९)

इस प्रकार 'अङ्गराज' महाकाव्य के माध्यम से कर्ण-चरित की जो विभूतियां व्यंजित हुई है, उनके कारण कर्ण सचमुच 'भारती-नायक' सिद्ध होता है। कर्ण के चरितमूलक गुणात्मक उत्कर्ष का अनुमान तो इसी बात से लगाया जा सकता है कि उसकी प्रशसा कृष्ण, अर्जुन, युधिष्ठिर प्रभृति विपक्षियो ने भी मुक्त कठ से की है। विरोधियो द्वारा कर्ण की प्रशस्ति 'अङ्गराज' के कवि ने ही नही अपितु 'महाभारत' मे महर्षि व्यास ने भी करायी है। उदाहरणार्थ 'महाभारत' मे श्रीकृष्ण स्पष्ट शब्दो मे अर्जुन से कहते हैं कि मैं कर्ण को तुम से श्रेष्ठ महारथी मानता हूँ—

"कर्णो हि बलवान्दृप्त कृतास्त्रश्च महारथ. ।
कृती च चित्रयोधी च देश कालस्य कोविद ॥

बहुनात्र किं युक्तेन सक्षेपाच्छृणु पाण्डव ।
त्वत्सम त्वद्विशिष्ट वा कर्ण मन्ये महारथम् ॥"

(महाभारत, कर्ण पर्व)

एक अन्य स्थल पर कृष्ण कर्ण की शक्तिमत्ता और कृतास्त्रता के सम्बन्ध मे अर्जुन से कहते हैं कि युद्ध मे उसे तुम गाण्डीव से और मैं सुदर्शन चक्र से भी जीतने मे समर्थ नही हो सकते—

"गाण्डीव मुद्यम्य भवाश्चक्र चाऽह सुदर्शनम् ।
न शक्तौ स्वोरणे जेतु तथा युक्त नार्षभम् ॥"

(वही, कर्ण पर्व)

महाभारत-युद्ध के प्रेक्षक-वक्ता सजय ने तो धृतराष्ट्र को यहाँ तक कह दिया कि युद्धक्षेत्र मे भीष्म, द्रोण या अन्य कोई भी वीर कर्ण के समान पराक्रम का प्रदर्शन नही कर सका—

"नैव भीष्मो न च द्रोणो नान्ये युधि च तावका ।
चक्रुस्म तादृश कर्म यादृश वैकृत रणे ॥"

(वही, कर्ण पर्व)

इस दृष्टि से 'अङ्गराज' के रचयिता का यह कथन सर्वथा सत्य प्रतीत होता है कि—"कौरव समाज मे ही नही, महाभारत काल के समस्त मानव-समाज मे सबसे प्रभावशाली एव स्वतन्त्र व्यक्तित्व अगराज कर्ण का ही मिलता है।"[11] आलोच्य काव्य मे कर्ण के अनेक नाम यथा—वसुषेण, कर्ण, वृष, जीव आदि प्रयुक्त हुए हैं। ये सभी नाम कर्ण की गुणवत्ता का द्योतन करने वाले हैं। जन्म जात कवच-कुण्डलधारी होने के कारण सूत अधिरथ ने उसे वसुषेण कहा, शरीर से कवच-कुण्डल का उच्छेदन कर दान करने के कारण पुरन्दर ने उसे कर्ण कहा और ब्रह्मण्य, सत्यवादी, तपस्वी, व्रती और रिपु के प्रति भी दयावान् होने के कारण उसे वृष अभिधान दिया गया। श्रीकृष्ण के अनुसार—

"ब्रह्मण्य सत्यवादी च तपस्वी नियतव्रत ।
रिपुष्वपि दयावाश्च तस्मात्कर्णो वृष स्मृत. ॥"

(महाभारत)

वस्तुत: कर्ण का व्यक्तित्व और कृतित्व 'यथानाम तथा गुण.' वाली उक्ति के अनुसार गुणाभिभूत था। कर्ण के चरित्र मे वीरत्व मे उत्कर्ष विधायक आदर्श त्रैत (धर्मवीर, युद्धवीर, दानवीर) की अद्भुत समाहृति परिलक्षित

---

[11] अगराज—भूमिका, पृ० २८.

होती है। 'अङ्गराज' के रचयिता ने कर्ण के उत्सर्गमय निधन के कारण उसे महान् कर्मवीरों की कोटि में परिगणित करते हुए लिखा है कि—"जहाँ दधीचि ने तप करके अस्थिदान किया वहीं कर्ण ने तप करके जीवन दान किया। कर्मयज्ञ की पूर्णाहुति प्रायः कर्मवीर के बलिदान से होती है। कृष्ण, कर्ण, दयानन्द, गांधी के जीवन से यही सिद्ध होता है।" (भूमिका, पृ० ३९ से उद्धृत) उद्धृत मन्तव्य अतिरंजित नहीं है, क्योंकि इसकी प्रामाणिकता आलोच्य काव्य के घटनाक्रम और चरित्र-विकास द्वारा सिद्ध हो चुकी है। निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि कर्ण का चरित्र महान् मानवीय गुणों, उपार्जित दैवीय विभूतियों, कर्त्तव्यनिष्ठा के उदात्त आदर्शों, अनीति-विरोधी संघर्षों तथा कौलिन्य-दर्प की विडम्बनाओं से उत्पीड़ित-शोषित मानवता का सशक्त प्रतिनिधित्व करने के कारण निश्चयनः महार्घ, युगप्रेरक और वरेण्य है। श्री आनन्दकुमार ने कर्ण के महान् चरित्र पर 'अङ्गराज' महाकाव्य की रचना द्वारा भारती के भण्डार की गौरवपूर्ण अभिवृद्धि की है, अत उनकी यह काव्य-कृति सर्वथा अभिनन्दनीय है।

'रावण' और 'दैत्यवंश' महाकाव्य
मानवीय जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा के काव्य संकल्प

३-४

'रावण' और 'दैत्यवंश' महाकाव्य

मानवीय जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा के काव्य संकल्प

पौराणिक युग के कलंकित, तिरस्कृत एवं उपेक्षित पात्रों के उचित मूल्यांकन और सम्यक् समालोचन की प्रवृत्ति हिन्दी के साहित्यकारों ने बंगला के मानवतावादी लेखकों और युगद्रष्टा कवियों से प्राप्त की। महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के 'काव्येर उपेक्षिता' लेख ने श्री मैथिलीशरण गुप्त को 'साकेत' और श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' को 'ऊर्मिला' महाकाव्य लिखने की प्रेरणा दी। इसी प्रकार माईकेल मधुसूदनदत्त के 'मेघनाद-वध' महाकाव्य मे तिरस्कृत और कलंकित पात्रो को मानवीय दृष्टि और युगीन सन्दर्भों मे अवलोकन की काव्य-दृष्टि प्रदान की। हिन्दी में श्री हरदयालुसिंह विरचित 'दैत्यवंश' और 'रावण' नामक महाकाव्य इसी प्रेरणा के परिणाम हैं। मानवतावादी जीवन-दृष्टि से प्रेरित होकर ही सूतपुत्र कर्ण पर श्री दिनकर ने 'रश्मिरथी' और निषाद-पुत्र एकलव्य पर डॉ० रामकुमार वर्मा ने 'एकलव्य' नामक महाकाव्यो की रचना की है। प्रसन्नता का विषय है कि इस कोटि के काव्यों में कृतिकार की मेधा और अनुभूति युग-चेतना से अनुरंजित होकर मुखरित हुई है। ऐसे कवियो का प्रयास मानवता के पुरातन कलको का पूत-प्रक्षालन है, ऐतिहासिक त्रुटियो का सम्मार्जन है, चिरन्तन सत्य का अनुसन्धान है और साहित्य मे मानवतावाद की महान् उद्घोषणा है।

हिन्दी महाकाव्य-लेखन की सुदीर्घ परम्परा मे 'दैत्यवंश' और 'रावण' का उल्लेखनीय स्थान है; क्योकि इन महाकाव्यो मे प्रथम बार एक कवि ने दैत्य और दानव कहे जाने वाले पात्रो मे दैवीय गुणो और मानवीय विशेषताओं का सन्धान किया है। श्री सिंह का यह प्रयास सर्वथा अभिनन्दनीय है।

'दैत्यवंश' की रचना कालिदास कृत 'रघुवंश' महाकाव्य की शिल्प-विधि के आधार पर हुई है। 'दैत्यवंश' का इतिवृत्तात्मक संयोजन 'श्री मद्भागवत-

महापुराण' तथा 'रावण' का 'वाल्मीकि-रामायण' के आधार पर हुआ है। 'दैत्यवश' मे दैत्यकुल के हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, विरोचन, बलि, बाण और अस्कन्दकुमार नामक छ राजाओ की कथा का वर्णन है। 'रावण' महाकाव्य मे पुलस्त्य ऋषि के वश का (विश्रवा से लेकर अक्षयकुमार-अरिमर्दन तक) वर्णन है। दोनो महाकाव्यो का कथात्मक आधार पौराणिक होते हुए भी नवीन प्रसगोद्भावनाओ द्वारा कवि ने कथा-चयन मे मौलिकता का परिचय दिया है। उदाहरणार्थ, 'दैत्यवश' के प्रथम सर्ग मे वराह द्वारा हेमलोचन की पुष्प-वाटिका उजाडना, चतुर्थ सर्ग मे सिन्धुसुता के स्वयवर मे सरस्वती द्वारा विभिन्न देवो और अदेवो का परिचय देना, सप्तम सर्ग मे इन्द्र का हस द्वारा शची को सन्देश भेजना, दशम सर्ग मे वामन के जन्म तथा बाललीलाओ का चित्रण और त्रयोदश सर्ग मे चित्ररेखा द्वारा अनिरुद्ध का हरण मौलिकता-पूर्ण है। इसी प्रकार 'रावण' महाकाव्य मे रावण के देव-विरोध का कारण, षष्ठ सर्ग मे पुत्र प्राप्ति के लिए मन्दोदरी द्वारा पार्वती-पूजन, सप्तम सर्ग मे सुलोचना और मेघनाद का गन्धर्व-विवाह, सीता-हरण का कारण, विभीषण के चरित्र मे बन्धु-द्रोह एव विश्वासघात तथा १५वें व १६वें सर्गों का सम्पूर्ण कथा-विधान कवि-कल्पना-प्रसूत है। कथा-सयोजन मे कवि ने परम्परा-प्रख्यात कथानक के स्वरूप की रक्षा करते हुए युगीन सन्दर्भों के अनुरूप कथासूत्रो को सँजोया है। 'दैत्यवश' मे बलि की राज्य व्यवस्था का वर्णन मेरे कथन की पुष्टि मे द्रष्टव्य है।

वस्तुतः 'दैत्यवश' और 'रावण' चरित्र-प्रधान महाकाव्य हैं। अदेव, राक्षस और असुर कहे जाने वाले पात्रो की चरित्रगत विशेषताओ का मानवता-वादी परिप्रेक्ष्य (Humanitarian Perspective) मे प्रदर्शन इन महाकाव्यो की रचना का मुख्य प्रयोजन है। इन महाकाव्यो के चरित्र-विश्लेषण से पूर्व यह समझ लिया जाय कि देव और दानव कौन है? क्या देव और दानव मानवेतर जातियाँ हैं। यदि हाँ, तो उनका मानवीय दृष्टि से मूल्याकन कैसे किया जा सकता है? प्रतीक दृष्टि से देवत्व और दानवत्व मानवीय वृत्तियाँ है। श्री उमेश मिश्र के अनुसार—'मानव का अविकसित या अपविकसित रूप दैत्य और सुविकसित रूप देव है। फलत. दैत्य प्रकृति का आदि मानव-रूप कहा जा सकता है, जिसमे शारीरिक बल प्रचुर मात्रा मे मौजूद है, क्योंकि यह प्रकृति की सीधी देन है। परन्तु मस्तिष्क बल उसमे अधिक नहीं है। शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ प्राय: एक-से अनुपात मे किसी वर्ग मे नहीं पायी जाती। विकासक्रम मे यह भी देखा गया है कि किसी वर्ग मे जैसे-जैसे

मस्तिष्कीय शक्तियों का विकास होता है, शारीरिक बल का ह्रास भी होता जाता है। छल, प्रपंच, धूर्तता, विश्वासघात आदि मस्तिष्क के विकास के आवश्यक परिणाम हैं। दैत्य शारीरिक बल में बढ़े-चढ़े हैं पर उनमें सरल विश्वास, सत्यनिष्ठा और सिधाई विद्यमान है। देवगण शरीर बल में निर्बल हैं, पर चतुर अधिक हैं, वे बात-बात में दैत्यों को धोखा देते हैं और उनकी सरल प्रकृति से लाभ उठाकर उन्हें छल लेते हैं।"[1]

उपर्युक्त विवेचन के आलोक में यदि हम देव और दानव के प्रश्नों पर विचार करें तो पायेंगे कि जिन्हें हम दानव कहकर तिरस्कार और उपेक्षा की दृष्टि से देखते आये हैं, वे अनेक मानवीय गुणों और विभूतियों से उपेत हैं। पौराणिकता के प्रभूत प्रभाव, रूढ़िबद्ध मान्यताओं की अन्ध स्वीकृति, अवतारवाद की परिकल्पना के व्यामोह एवं तथाकथित धार्मिक प्रतिबद्धता के कारण हमारा दृष्टिकोण अवैज्ञानिक और अमानवीय रहा है। यदि हम निरपेक्ष वैज्ञानिक दृष्टि और आग्रहमुक्त तटस्थ भाव से देव-दानव संघर्ष के इतिहास का अध्ययन करें तो पायेंगे कि इस अनादि संघर्ष के लिए दोनों ही उत्तरदायी हैं। यह बात दूसरी है कि इसके दायित्व का कितना प्रतिशत देवों पर है और कितना अदेवों पर। देव-दानव-विरोध के कारणों की 'रावण' और 'दैत्यवंश' के आधार पर खोज की जा सकती है।

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के पुत्र मरीचि थे। मरीचि के पुत्र कश्यप हुए। इन्हीं कश्यप ऋषि की दिति नामक पत्नी से दैत्य और अदिति से देवता उत्पन्न हुए। इस प्रकार देव और दानव एक ही पिता की सन्तान थे। दैत्यवंश में हिरण्याक्ष शक्तिशाली और पराक्रमी था। देवताओं का उससे बस न चला तो उन्होंने विष्णु से प्रार्थना की। विष्णु ने वराह रूप धारण कर हिरण्याक्ष की वाटिका को उजाड़ दिया। फलस्वरूप, संघर्ष हुआ जिसमें वराह रूपधारी विष्णु ने हिरण्याक्ष को मार डाला। इसी प्रकार हिरण्यकशिपु का वध भी उन्होंने किया। दैत्यवंश के राजाओं में बलि सबसे चतुर था। राज्यासीन होते ही उसने सैन्य-संगठन किया तथा प्रजाहित के कार्य किये। उसने ९९ अश्वमेध यज्ञ किये। बलि के उत्कर्ष को देखकर देवता मन-ही-मन कुढ़ते थे। उन्होंने छद्मपूर्ण सन्धि-प्रस्ताव करके दैत्यों के सहयोग से समुद्र-मन्थन किया। सागर से निकले अमृत को देवता छलपूर्वक अकेले पी गये। यद्यपि

---

[1] दैत्यवंश, भूमिका, पृ० ६-७.

सागर-मन्थन मे दैत्यों का ही श्रम अधिक था। फलस्वरूप, युद्ध हुआ जिसमे बलि ही विजयी हुआ। तदन्तर बलि ने इन्द्रासन की प्राप्ति के लिए सौवा अश्वमेत्र यज्ञ प्रारम्भ किया। तभी वामन रूप धरकर विष्णु ने तीन पग पृथ्वी माँगकर बलि का सर्वस्व अपहरण कर लिया। बलि ने दो पगों में सम्पूर्ण पृथ्वी और आकाश देकर तथा तीसरे पग में अपना हिमगिरि के समान उच्च और दर्पित शीश अर्पित करके दानशीलता का अन्यतम उदाहरण प्रस्तुत किया। बलि का पुत्र बाण भी महान् पराक्रमी था। उसने दिग्विजय कर जीवन के अन्तिम चरण मे राज्य पुत्र को सौप शिवाराधन के लिए वन-गमन किया। बाण का पुत्र अस्कन्दकुमार भी प्रजारक्षक था। उसने प्रजाहित के लिए गुरुकुलो, यज्ञशालाओ, राजमार्गों, वनवीथियों और ग्रामो का पर्यवेक्षण किया तथा समाज के विभिन्न वर्गों से सम्पर्क स्थापित किया। इसी प्रकार 'रावण' महाकाव्य को देखें तो ज्ञात होगा कि रावण का देवो से जन्मजात वैर न था। एक दिन पुलस्त्य ने बताया कि देवताओ के अनुरोध से विष्णु ने नानामाली को मार डाला था। यही से रावण देव-विरोधी हो गया। उसने देवकुल के सहार का निश्चय किया। अपने शौर्य और पराक्रम से रावण ने त्रैलोक्य मे विजय का झण्डा फहरा दिया। राम से रावण के द्वेष का कारण यह था कि राम राक्षसकुल के अनिष्ट के लिए तप कर रहे मुनियों के सहायक हुए। राम ने ताडका का वध किया। जनस्थान की 'गवर्नर' शूर्पनखा ने जब यज्ञो पर प्रतिबन्ध लगा दिया तो मुनियो ने उसका विरोध किया। फलस्वरूप, खरदूषण को ससैन्य भेजा गया। उनका भी राम ने वध कर दिया। लक्ष्मण ने शूर्पनखा के नाक-कान भी काट दिये। प्रतिरोध की भावना से रावण ने सीता का हरण किया, जो अन्तत: राम-रावण युद्ध का कारण बना।

दोनों महाकाव्यो की प्रमुख घटनाओ के विहंगावलोकन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि देव-दानव सघर्ष के मूल मे देवो का ईर्ष्याभाव और छल-छद्मपूर्ण व्यवहार प्रमुख रहे हैं। इसके विपरीत, दैत्यों और राक्षसों के चरित्र में दानशीलता, शौर्य, साहस, पराक्रम, तपश्चर्या, तेजस्विता, शिवाराधन-निष्ठा, प्रशासनिक योग्यता जैसे गुण निहित हैं, जिनकी पूर्वाग्रही दृष्टिकोण के कारण सदैव उपेक्षा की गयी है। अब हम राक्षसो और दैत्यो के गुणों का विवेचन करेंगे।

बलि ने राज्यपदासीन होते ही प्रजाहित के अनेक कार्य प्रारम्भ कर दिये :

"सोने गुरकुल अमित सर्वनि विद्या पढवाई,
सैनिक सिच्छा काज व्यवस्था सकल कराई।
× × ×
कियो स्वास्थ्य रक्षा हित भूपति अमित उपाई,
दीन्हो नगरनि माहि, औषधालय खुलवाई।
× × ×
कृषि विभाग को भूप अमित सम्पन्न बनायो,
अरु सहकारी कोष खोलि उन्नति करवायो।"[1]

दैत्यवंश के राजाओं में अस्कन्दकुमार ने तो राज्य-कार्य मन्त्रियों को सौंपकर एक-एक गाँव का भ्रमण किया और प्रजा के दुःख-सुख की बातें सुनी—

"खेती सारे ग्राम की, सब निरख्यो नरनाह,
कृषिकन को दुख-सुख सुन्यो सब महं अमित उछाह।"[2]

दैत्यवंश के राजा प्रजाहितैषी होने के साथ-साथ अपार दानी भी थे। गुरु शुक्राचार्य के समझाने पर भी कि वामन बटु के रूप में विष्णु आये हैं, राजा बलि ने उन्हें तीन पैर पृथ्वी दान देना स्वीकार कर लिया और अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया।[3] दैत्य जितने भोग विलासी थे उतने ही त्यागी, तपस्वी और वैरागी भी। वाणासुर ने विश्वविजय की, अपार वैभव से सम्पन्न सोनपुर नगर बसाया, अनन्त ऐश्वर्य-सुख का भोग किया। यही वाणासुर वृद्धावस्था आते ही पुत्र को राज्य-पद सौंप कर शिवाराधन के लिए चला गया। कठोर तप करते हुए बाण ने शरीर त्यागा—

"खडो एक पग रह्यो व्योम दिसि हाथ उठाये,
सिव-सिव निज मुख कहत भानु दिसि दीठि लगाये।
यहि विधि करि तप घोर दिवस वितये नर त्राता,
गयो सुखाय सरीर सहत हिम आतप वाता।
× × ×

---

[1] दैत्यवंश, सर्ग २, पृ० २५-२६
[2] वही, सर्ग १८, पृ० २५५
[3] वही, सर्ग १२, पृ० १८४.

सूख गयो नृप गात विसाल,
रही ठठरी तन मे अवसेखी ।
फोरि के ब्रह्म के रन्ध्रहि प्रान,
मिल्यौ शिव शंकर मे सविसेखी ।
यौं तन जोगु की आग मे जारि,
गयौ सिवधाम बनौ हर वेखी ।"[५]

बाण ने यह कृच्छ्र तप-साधना किसी भौतिक ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए नहीं की, वरन् इस तपश्चर्या द्वारा उसने आश्रम धर्म की व्यवस्था का विधिवत् अनुपालन कर उच्चतम आदर्श प्रस्तुत किया। कठोर तप-साधना सभी दैत्यवंशी राजाओं ने की। 'रावण' महाकाव्य मे कैकसी अपने पुत्रों (रावण, कुम्भकरण, विभीषण आदि) को तप के लिए प्रेरित करती हुई कहती है :

"तप बल ही सौं रचत विश्व प्रपंच विधाता,
तप बल ही सौं बनत विस्नु वाको परित्राता ।
तप बल ही सौं रुद्र ताहि पल में बिनसावैं,
तप की महिमा और कहाँ लौं तुमहि सुनावैं ।

× × ×

अब विलम्ब जनि होय करहु तप हेतु तयारी,
बसहु जाय बन माँहि सिद्धि दैहैं त्रिपुरारी ।"[६]

रावण और कुम्भकरण की कठोर तप-साधना का वर्णन कवि ने निम्नांकित प्रकार से किया है :

"दीरघ दाघ निदाघ पंचागिनि तापि बितायौ,
बहु दारुण हिम राति सहे जल माँहि गंवायौ ।
अरु बीरासन बैठि कष्ट बरषा को झेल्यौ,
इमि तप के धटकरन आपु प्रानन पै खेल्यौ ।
इन्हू ते अति कठिन उग्र दसमुख तप कीन्ह्यौ,
निज नव सीसन काटि होम हुतभुक मह दीन्ह्यौ ।"[७]

---

५ दैत्यवंश, सर्ग १७, पृ० २२१.
६ वही, सर्ग ३, पृ० ६७.
७ वही, पृ० ६९.

इसी तप-साधना के बल पर दैत्य और राक्षस अमोघ शक्ति प्राप्त करते थे। उनके अनन्त शौर्य और पराक्रम का परिचय हमे देवासुर सग्रामो मे मिलता है।

दैत्यो के समान उनकी स्त्रियाँ और कन्याएँ भी गुणवती थी। बाणासुर की पुत्री उषा असाधारण सुन्दरी बाला थी। वह चौदह कलाओ की ज्ञाता और सगीतशास्त्र मे प्रवीण थी। उसका विवाह श्रीकृष्ण के पुत्र अनिरुद्ध से विधिवत् सम्पन्न हुआ।[8] षोडशी उषा का रूपचित्र कवि के शब्दो मे द्रष्टव्य है .

"या विधि षोडस वर्ष गये,
अधरानि पैं बाके ललाई लसैं लगी।
चन्दन हू के लगाये बिना,
सबैं अगनि सौरभ सी सरसैं लगी।
अजन-रजन कीन्ही नही
चख काजर रेख दरसैं रागी।
बाल के आनन सौं मुसकानि,
सुधा घनसार घनी बरसैं लगी।"[9]

इसी प्रकार, पतिपरायणा के रूप मे 'रावण' महाकाव्य की मन्दोदरी और सुलोचना, वात्सल्यमयी माँ के रूप मे कैकसी और राजनीति-विशारद कुलबाला के रूप मे शूर्पनखा के चरित्र द्रष्टव्य हैं।

मन्दोदरी मय दानव की पुत्री थी जो हेमा नामक अप्सरा की कोख से उत्पन्न हुई थी। कवि ने उसे अनिंद्य सुन्दरी के रूप मे अंकित किया है। उसकी रूप-छटा मानसरोवर मे खिले हेम सरोज की सुषमा और नीलाम्बर मे कलाधर की जुन्हाई के समान थी। मन्दोदरी के जावक से रगे पकज-पदो की शोभा के समक्ष जपादल, विद्रुम और बधूकन की प्रभा भी मन्द पड जाती थी।[10] पार्वती को पूजन-अर्चन से प्रसन्न कर उसने मेघनाद के समान बलशाली पुत्र प्राप्त किया।[11] इसी प्रकार विश्रवा ऋषि को प्राप्त करने के लिए रावण की

---

[8] दैत्यवश, सर्ग १३, पृ० १९६.
[9] वही, सर्ग १३, पृ० १९६.
१० रावण, सर्ग ६, पृ० ९०.
११ वही, पृ० ९१.

माँ कैकसी वल्कलवसना तपस्विनी बनी।[११] वर्षों की कठोर साधना के बाद कैकसी को विश्रवा से मानसपुत्र-प्राप्ति का वरदान मिला। शूर्पनखा राजनीति में निपुण थी। इसीलिए उसे नृपदूत नियुक्त किया गया। अपनी योग्यता के कारण ही वह जनस्थान मे चौदह हजार राक्षसो की सेना की अध्यक्षा बनायी गयी।[११] इस प्रकार तटस्थदृष्टि से देखा जाय तो दैत्य और राक्षस कुल की नारियो मे हम स्त्रियोचित सभी गुण और विशेषताएँ पाते हैं। इन नारियो के चरित्र मे भारतीय नारी के नाना रूपों (पुत्री, पत्नी, माता, भगिनी आदि) की गौरवपूर्ण झाँकियाँ हैं।

चरित्र-विश्लेषण के अनन्तर यदि आलोच्य महाकाव्यो मे दैत्यो और राक्षसो के रीति-रिवाजो और सास्कृतिक परम्पराओ का अध्ययन किया जाय, तो भारतीय सस्कृति की आधारभूत मान्यताएँ उनमे प्रतिपादित मिलेंगी। शिवाराधन, यज्ञ विधान, आश्रम-धर्म की मर्यादा का पालन, तपश्चर्यापूर्ण जीवन, सन्तान की नाना कलाओ और शास्त्र-शस्त्र मे शिक्षा-दीक्षा, जन्म विवाह, मृत्यु आदि सस्कारो का विधिवत् सम्पादन दैत्यों और राक्षसों को भारतीय सस्कृति का अभिन्न अग सिद्ध करता है।

अस्तु, 'रावण' और 'दैत्यवंश' के रचयिता ने दैत्य और राक्षस कहे जाने वाले जिन पात्रो का चारित्रिक औदात्त और सास्कृतिक निष्ठा से पूर्ण आचार-व्यवहार प्रस्तुत किया है, वह काव्य-लेखन की एक क्रान्तिकारी एव प्रगतिशील परम्परा का जन्मदाता है। इस प्रयास मे कवि की विशेषता यह रही है कि उसने अपने नायको का उत्कर्ष दिखाने के लिए प्रतिनायको का अपकर्ष नहीं दिखाया है। वास्तव मे महाकाव्य-रचना का सर्वप्रमुख प्रयोजन ही यह होता है कि उसके माध्यम से युग-जीवन की चेतना प्रतिफलित हो। इस दृष्टि से विचार करें तो 'रावण' और 'दैत्यवंश' हमारे आधुनिक हिन्दी साहित्य और साहित्यकारो की उस जीवन्त आस्था और चेतना के प्रतीक हैं, जो मानवतावादी जीवन-दृष्टि से प्रेरित होकर सृजनोन्मुख हुई है, यही इन दोनों महाकाव्यो की रचना की सबसे बड़ी सिद्धि है। मानव मूल्यो की महिमा से मण्डित ये महाकाव्य हिन्दी महाकाव्य परम्परा की महत्वपूर्ण उपलब्धि के रूप में सदैव मान्य रहेंगे।

---

[११] रावण, सर्ग २, पृ० ५५.

[११] यही, सर्ग १०, पृ० १४७.

'जयभारत' महाकाव्य
कथाशिल्प : संयोजन विधि का वैशिष्ट्य

५

'जयभारत' महाकाव्य

कथाशिल्प : संयोजन विधि का वैशिष्ट्य

महाकाव्य के रचना-विधान मे सर्वप्रमुख स्थान कथानक का है। महाकाव्य-सृजन मे कथा-तत्त्व की महत्ता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि आचार्यों ने महाकाव्य का विवेचन करते समय उसे 'कथाकाव्य' अभिधान दिया है। पाश्चात्य विद्वानों ने सर्वत्र ही महाकाव्य (Epic) को कथा काव्य (Narrative Poetry) का पर्याय कहा है। मायर ने एक स्थान पर लिखा है कि—"महाकाव्य शब्द का व्यवहार सभी समालोचकों द्वारा कथात्मक साहित्य के अर्थ मे किया गया है।"[१] बावरा ने महाकाव्य की परिभाषा देते हुए कहा है कि—"महाकाव्य बृहदाकार कथात्मक काव्य-रूप है।"[२] साहित्य-विश्वकोश मे महाकाव्य का अर्थ एक कथात्मक कविता ही दिया गया है।[३] श्री कोकिलेश्वर शास्त्री ने महाकाव्य का विकास कथात्मक आख्यानो से ही माना है।[४] डॉ० उमाकान्त गोयल का मत है कि—'महाकाव्य अन्तत कथा काव्य है।'[५]

---

1 "Epic is a term applied by them (Critics) all to Narrative Literature The fundamental distinction of the epic from other species of Literature is that upon which they all agree—its narrative form."

—I. T Myers, *A Study in Epic Development—Introduction*, p. 32

2 C. M Bowra, *From Virgil to Milton*, p. 1.

3 Cassell's *Encyclopaedia of Literature*, Vol I, p 195

4 Kokileshwar Shastry, *A Brief History of Sanskrit Literature*, (Vedic & Classical), p 19

५ डॉ० उमाकान्त गोयल, मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता, पृ० १२६

उपर्युक्त मतो से स्पष्ट है कि कथातत्त्व महाकाव्य का अपरिहार्य अग है। महाकाव्य मे कथातत्त्व के सयोजन की निश्चित शिल्प-विधि भी है। साहित्याचार्यों के अनुसार, महाकाव्य का कथानक लोकविश्रुत या प्रख्यात होना चाहिए। दण्डी, विश्वनाथ आदि आचार्यों का मत है कि महाकाव्य का कथानक इतिहास उद्भूत होना चाहिए।[६] रुद्रट के अनुसार, महाकाव्य की कथावस्तु उत्पाद्य (काल्पनिक) और अनुत्पाद्य (प्रसिद्ध) दोनो ही प्रकार की हो सकती है।[७] किन्तु एबरक्रॉम्बी का मत है कि महाकाव्य की मुख्य विषयवस्तु वास्तविक होनी चाहिए, काल्पनिक नही।[८] यह मत उचित भी है। वस्तुत: महाकाव्य जैसे काव्य का गुरुत्व और गाम्भीर्य लोकविख्यात कथानक के अभाव मे सम्भव भी नही है। हाँ, महाकाव्यकार को इतिहास-पुराण-प्रसिद्ध कथानक मे युग-जीवन की प्रवृत्ति के अनुकूल परिवर्तन-परिवर्द्धन का अधिकार अवश्य होना चाहिए। इस परिवर्तनक्रम मे वह अपनी कल्पनाशक्ति का भी परिचय दे सकता है। इसके अतिरिक्त उल्लिखित नियमानुसार महाकाव्य की कथावस्तु का विनियोजन भी विशेष विधि से होना चाहिए। कथावस्तु मे पच-सन्धियो की योजना और सर्गक्रमानुसार विभाजन होना चाहिए। सर्गक्रम घटनान्विति की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। मुख्य-कथा से अवान्तर कथा-प्रसगो का सुसम्बद्ध रहना भी आवश्यक है। नवीन मान्यताओ के अनुसार, महाकाव्य की कथावस्तु मे यद्यपि सन्धियों का निर्वाह और सर्ग-सख्या आदि के नियमो का कठोरता से अनुपालन नही किया जाता है, तथापि कथावस्तु का समुचित विकास करने की दृष्टि से घटनाओ की पूर्व प्रसगानुसार अन्विति एव प्रस्तुतीकरण-कौशल भी

---

६ (अ) "इतिहास कथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्।" दण्डी, काव्यादर्श, १/१५
(आ) "इतिहासोद्भव वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।
—विश्वनाथ, साहित्य दर्पण, ६/३१८

७ "सन्ति द्विधा प्रबन्धा: काव्य कथाख्यायिकादय: काव्ये।
उत्पाद्यानुत्पाद्या महल्लघुत्वेन भूयोऽपि॥"
—काव्यालंकार, अ० १६

८ The prime material of epic-poet must be real and not invented·······The reality of the central subject is of course, to be understood broadly. It means that the story must be founded deep in the general experience of men."
—L. Abercrombie, *The Epic*, p. 55.

वाछनीय है। कथा-योजना मे मार्मिक प्रसगो की सृष्टि और नवीन प्रसगोद्-भावनाएँ महाकाव्यकार के कथा विधान कौशल का सशक्त प्रमाण होती है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त विरचित 'जयभारत आधुनिक युग का महाकाव्य है। प्रस्तुत प्रसग मे 'जयभारत' के कथा-शिल्प पर उपर्युक्त परिसन्दर्भों मे विचार अभीप्सित है।

'जयभारत' की कथा का मुख्य आधार व्यासरचित 'महाभारत' है। महाभारत आख्यानो और उपाख्यानो का विराट वन है जिसके एक-एक प्रसग को लेकर सस्कृत और हिन्दी मे अनेक महकाव्यो की रचना हुई है। 'जयभारत' के रचयिता श्री गुप्त जी ने कौरव-पाण्डवो के आख्यान को प्रस्तुत महाकाव्य की रचना के लिए ग्रहण किया है। राजा नहुष के वृत्त से लेकर यदुकुरु वशो के वर्णन, कौरव-पाडवो के जन्म से लेकर स्वर्गारोहण तक की समस्त घटनाएँ और कथा-प्रसंग 'जयभारत' मे सकलित हैं। गुप्तजी ने 'महाभारत' की उन्ही घटनाओ और प्रसगो को ग्रहण किया है जो कौरव-पाण्डवो की मूलकथा से सम्बन्धित हैं। कवि ने अन्य प्रसगो को छोड दिया है—यथा सत्यवान सावित्री, नल दमयन्ती, शकुन्तला आदि के उपाख्यान।

'जयभारत' का सम्पूर्ण कथानक ४७ सर्गों मे विभाजित है। प्रत्येक का नामकरण प्रतिपाद्य अथवा पात्रो के आधार पर किया गया है, जैसे—नहुष यदु और पुरु, योजनगधा, बन्धु-विद्वेष, एकलव्य परीक्षा, लाक्षागृह, हिडम्बा, लक्ष्यभेद, इन्द्रप्रस्थ, वनवास आदि।

'महाभारत' के विशाल कथानक को 'जयभारत' के रूप मे महाकाव्योचित गरिमा प्रदान कराने मे गुप्तजी की प्रबन्ध क्षमता वास्तव मे सराहनीय है। उन्होंने कौरव पाण्डवो की मुख्य कथा से सम्बन्धित कथा-प्रसगो को चुनकर 'जयभारत' म सुनियोजित किया है। इस प्रयास मे गुप्तजी को अपेक्षित सफलता भी मिली है। किन्तु अनेक महत्त्वपूर्ण प्रसगो को सक्षिप्त करने के प्रयास मे, उन्हे छोडना भी पडा है। उदाहरणार्थ, नल दमयन्ती, सत्यवान सावित्री, शकुन्तला दुष्यन्त आदि के मनोरम उपाख्यानो को कवि ने छोड दिया है। इसके कारण 'जयभारत' मे कही कही इतिवृत्तात्मक रुक्षता भी आ गई है। इसका एक कारण यह भी रहा है कि सम्पूर्ण काव्य का रचनाकाल एक नही है। 'जयभारत' के 'निवेदन' मे कवि ने इस तथ्य को स्वीकार भी किया है। 'जयभारत' के ही रचनाकाल मे कवि ने 'महाभारत' के कथा-प्रसगो पर अन्य काव्यो की रचनाएँ भी की, किन्तु उनका उपयोग इस काव्य मे न कर उनका

उसने पुन सृजन किया। उदाहरण के लिए, 'जयद्रथ वध'। कवि ने इस पुन सृजन को अपनी लेखनी का विकासक्रम कहा है। सत्य यह है कि गुप्तजी की प्रबन्ध शैली मे निरन्तर विकास भी होता रहा है। 'जयभारत' की अभिव्यजना-शैली मे इस विकासक्रम को हम स्पष्ट रूप मे देख सकते हैं। 'जयभारत' के आरम्भिक सर्गो मे वर्णनात्मकता की अधिकता है, किन्तु मध्य-भाग के अनन्तर के प्रकरणो मे समास शैली को ग्रहण किया गया है, जिसके कारण वाक्य रचना म कसाव और विचार-गाम्भीर्य आ गया है।

'जयभारत' के कथानक की मुख्य विशेषताएँ निम्नाकित हैं

१ 'महाभारत' के कथा-प्रसगो की अलौकिकता का प्रक्षालन कर कवि ने उन्हे युग की भावना और प्रवृत्ति के अनुरूप प्रस्तुत किया है। ऐसा करने मे गुप्तजी ने नवीन कथा-प्रसगो की सृजना की अपेक्षा प्राचीन आख्यानो को ही नवीनता प्रदान की है। उदाहरणार्थ, द्रौपदी-चीरहरण, हिडम्बा का रूपाकन, कीचक-वधा, युद्धक्षेत्र की घटनाएँ आदि द्रष्टव्य हैं।

२ पौराणिक आख्यानो को अपनी कला और कल्पनाशक्ति के उपयोग से बुद्धिजीवी पाठक के लिए सहज ग्राह्य बनाया गया है। द्रौपदी-चीरहरण के समय कृष्ण द्वारा चीर बढाने का उल्लेख 'महाभारत' म है। वहाँ दु शासन थककर लज्जित हो बैठ जाता है

"यदातुवाससा राशि सभामध्ये समाचित ।
तदा दु शासनो श्रान्ती व्रीडित समुपाविशत् ॥"

किन्तु 'जयभारत' मे द्रौपदी को करुण क्रन्दन करते हुए दिखाया गया है। वह असहायावस्था मे दु शासन को धिक्कारती हुई उसके मन मे पाप का भय जागृत कर देती है। द्रौपदी की आर्त वाणी से दु शासन भीतिमान होकर चारो ओर अन्धकार-ही अन्धकार देखता है और अन्तत स्तम्भित होकर बैठ जाता है

"सहसा दु शासन ने देखा अन्धकार सा चारो ओर ।
जान पडा अम्बर-सा वह पट जिसका कोई ओर न छोर ॥
व्याकर अकस्मात अति भय-सा उसके भीतर बैठ गया ।
कर जड हुए और पद काँपे, गिरता-सा वह बैठ गया ॥"[१]

इसके बाद गाधारी ने सभा मे प्रवेश कर सबको इस कुत्सित आचरण के लिए

---

१ जयभारत, द्यूत सर्ग, पृ० १४८

धिक्कारा। गाधारी के शब्दो मे उसके कातर भाव की चरम व्यजना हुई है, जब वह कहती है

"हाय लोक की लज्जा भी अब नही रह गई रक्षित क्या ?
आज वह था तो कल मेरा कटिपट नही अरक्षित क्या ?"[१०]

'महाभारत' मे धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को कोसा था, किन्तु उसका अपेक्षित प्रभाव न पड़ा था। यहाँ गाधारी के वचन मे नारीत्व की मर्म-वेदना अधिक सक्षमता से साकार हुई है। उपर्युक्त कथा प्रसग को गुप्तजी ने बड़े मार्मिक और मनोवैज्ञानिक ढग से प्रस्तुत किया है।

इसी प्रकार 'महाभारत' म हिडम्बा का स्वरूप पाठक के मन मे विकर्षण का भाव भरता है। हिडम्बा और भीम के विवाह का महाभारत' के रचयिता ने सामाजिक मर्यादा का उल्लघन बताया है। किन्तु जयभारत' मे हिडम्बा को गुणवती सुन्दरी के रूप मे चित्रित किया है। गुप्तजी का कवि मानवतावाद का प्रतिष्ठाता है। अन्य काव्यो की भाँति 'जयभारत' का उद्घोष मानव धर्म की जय है। अस्तु, हिडम्बा और भीम के वार्तालाप मे मानव-मूल्यो की सुन्दर व्याख्या हुई है। हिडम्बा तो यहाँ तक कहती है कि

"यदि तुम आर्य हो तो दो हमे भी आर्यता ?
अपनी ही उच्चता मे कैसी कृतकार्यता ?
× × ×
होकर मै राक्षसी भी अन्त मे तो नारी हूँ,
जन्म से मैं जो भी रहूँ, जाति से तुम्हारी हूँ।"[११]

इसी प्रकार अज्ञातवास के समय कीचक द्वारा अपमानित होने पर द्रौपदी ने जाकर विराट की सभा मे प्रार्थना की। उसका धर्म विरुद्ध आचरण की निन्दा करना और राजा के अधिकारो को एक दासी द्वारा चुनौती देना वर्तमान युग की जनतन्त्रीय भावना का प्रतीक है

'लज्जा रहती अति कठिन है कुल वधुओ की भी जहाँ
हे मत्स्यराज, किस भाँति तुम हुए प्रजारजक यहाँ।
× × ×

---

[१०] जयभारत, पृ० १४६.
[११] वही, हिडम्बा सर्ग, पृ० ८३

तुम मे यदि सामर्थ्य नही है जब शासन का,
तो क्यो करते नही त्याग तुम राजासन का ?
करने मे यदि दमन दुर्जनो का डरते हो,
तो छूकर क्यो राजदण्ड दूषित करते हो ?
तुमसे निज पद का त्याग भी भली-भाँति चलता नही,
अधिकार रहित इस छत्र का भार तुम्हे खलता नही।"[१]

द्रौपदी के इन शब्दो मे युग-धर्म की मर्मस्पर्शी व्यजना है। ऐसे अनेक प्रसगो का चयन गुप्तजी ने अपनी कल्पनाशक्ति से किया है।

३. 'जयभारत' के कथानक के समस्त पात्रो या चरित्र-विधान भी नवीन ढग से किया गया है। 'साकेत' और 'यशोधरा' काव्य मे उनकी पात्र-रचना देखी जा चुकी है। गुप्तजी ने पौराणिक पात्रो को भी युग-भावना के अनुरूप ही ढाला है। पात्रो की योजना कथा-चयन की सार्थकता को लक्ष्यगत करके हुई है। 'महाभारत' की चरित्र-योजना मे से गुप्तजी ने कतिपय को ही ग्रहण किया है। उन चरित्रो का परिष्कार करके ही प्रस्तुत किया गया है।

४. 'जयभारत' के इतिवृत्त मे महाकाव्य-वस्तु की गम्भीरता और व्यापकता भी है। वह कथा-परिधि सरक्षित होते हुए भी जीवन की समग्रता का अकन करने मे सक्षम है। काव्य का मूल प्रतिपाद्य मानवीय महिमा की प्रतिष्ठा और धर्म की जय है। इस लक्ष्य की प्राप्ति की दृष्टि से ही कथा को विस्तार दिया गया है।

५. 'जयभारत' के कथा-सयोजन का सबसे बडा अभाव यह है कि विभिन्न प्रकरणो मे अन्विति के समृद्ध रूप का अभाव है। कथा-वर्णन मे वह वेगवान प्रवाह नही है, जो महाकाव्य मे होना चाहिए और जिसमे मैथिलीशरण जी की लेखनी अत्यन्त समर्थ है। खण्ड रूप मे लिखी हुई वस्तु मे प्रवाह आना सम्भव भी नही है।"[२] कवि ने प्रकरणो के नाम के अनुरूप अपने ढग से कथा को विस्तृत किया है। इस कारण कथान्विति मे व्यवधान अवश्य आया है किन्तु इससे प्रबन्धात्मकता खर्व नही हुई है, क्योकि पूर्वापर सम्बन्ध-निर्वाह किसी-न-किसी रूप मे होता रहा है।

---

[१] जयभारत, सैरन्ध्री सर्ग, पृ० २६८.

[२] डॉ० नगेन्द्र, विचार और विश्लेषण, पृ० १२३.

जयभारत' और 'महाभारत' की इतिवृत्त-विधान की दृष्टि से तुलना

'महाभारत' का कथानक महान, समृद्ध और शक्ति समन्वित है। उसमे भारतीय जीवन और संस्कृति की विराट योजना है। उसके वस्तु-विस्तार मे समस्त व्यावहारिक नीति, जीवन दर्शन, धर्म बोध और परम्पराओ का समाहार हो गया है। 'जयभारत' के कथानक मे वह गुरुत्व गाम्भीर्य नही है। 'जयभारत' का एक निश्चित लक्ष्य है। उसमे नारायण नही, नर की महिमा का गौरव गान है। इसीलिए 'जयभारत' मे असम्भाव्य और अलौकिक घटनाओ को स्थान नही मिला है। जयभारत' के रचयिता के कथा-चयन का आधार पौराणिक उपाख्यान होते हुए भी उसका स्वरूप मनोवैज्ञानिक, युगीन और बौद्धिकतापूर्ण है। 'जयभारत' का कथानक पाठक को उसकी व्यावहारिक उपलब्धियो एव सामयिकता के कारण ग्राह्य है जबकि 'महाभारत' के कथानक को पाठक श्रद्धा (पौराणिक-आस्था), कौतूहल या औत्सुक्य के कारण ग्रहण करता है। 'जयभारत मे भारतीय सस्कृति का उत्कर्ष और प्रकर्ष समसामयिक जीवन परिवेश म चित्रित किया गया है।

समष्टि रूप मे, 'जयभारत' का कथानक महाकाव्योचित गरिमा से पूर्ण है। उसमे पौराणिक उपाख्यानो का नवीन निरूपण ही नही, अपितु मौलिक उपलब्धियाँ भी है। उसमे धारावाहिकता का एक सीमा तक अभाव होते हुए भी कथानक की सम्पूर्ण अन्विति प्रसगगत सुसम्बद्धता के कारण अक्षुण्ण रही है। सबसे बडी बात कथा महाकाव्य के मूल मन्तव्य की प्राप्ति मे सहायक है। गुप्तजी ने 'जयभारत मे कथानक को युद्ध सर्ग तक ही समाप्त न कर, स्वर्गारोहण प्रकरण तक पहुँचाकर अन्तिम सर्ग को विशेष ढग से प्रतिपादित कर कथा के उपसहार को भी पूर्ण गौरव के साथ अकित किया है।

'पार्वती' महाकाव्य
मानवतावादी संस्कृति की युगीन अवधारणाएँ

६

'पार्वती' महाकाव्य
मानवतावादी संस्कृति की युगीन अवधारणाएँ

वैज्ञानिक युग मे काव्य-लेखन एक सास्कृतिक प्रयास है। इस लक्ष्य से विरहित होकर किया गया काव्य-सृजन हमारे युग की वैज्ञानिक प्रगति और गद्यात्मक विधाओ के विकास की अपूर्व गति मे पिछड ही नही जायेगा, वरन् अपने अस्तित्व को उतना ही क्षणिक, निरुद्देश्य, अनपेक्षित और एकागी बना देगा जैसा कि आज अधिकाश हिन्दी कविता के नाम से प्रकाशित होने वाली काव्य-रचनाओ के विषय मे चरितार्थ हो रहा है, अर्थात् प्रकाशन, प्रचार, विक्रय और विनाश। काव्य के स्थायित्व और चिरन्तनत्व का प्रश्न जीवन-मूल्यो की शाश्वत कल्पना से जुडा है। वही काव्य वाड्मय की स्थायी निधि बन सकते हैं जो मानवीय चेतना के विकसनशील स्तरो को रूपायित करने मे सक्षम तथा सामाजिक जीवन-मूल्यों के सगठन, विघटन और सन्तुलन को साकार करने की अपूर्व शक्ति सधारण किये रहते हैं। इस शक्ति को ही युग-जीवन का अमित प्रवाह कहा जाता है।

युग-जीवन की स्फूर्ति (शक्ति) की व्यजना साहित्य और काव्य के विभिन्न रूपो मे होती है। किन्तु जीवन मूल्यो के व्यापक विकास का चित्राकन करने की सबसे अधिक क्षमता महाकाव्य नामक काव्य रूप मे होती है। महाकाव्य सच्चे अर्थों मे जातीय जीवन और सामाजिक चेतना के आकलन का सास्कृतिक प्रयास है। सृजन के उपकरणो, अर्थात् जीवन्त कथानक, महान् नायक, गरिमामयी उदात्त शैली, महत् उद्देश्य, युग-जीवन के व्यापक चित्रण, गम्भीर अभिव्यजना-शक्ति, रस परिपाक, विराट् कल्पना और जीवन-दर्शन की वलवती प्रेरणा के कारण महाकाव्य निश्चय ही सर्वोपरि काव्य-रूप है। इसीलिए रामायण, महाभारत, कुमारसम्भव, रघुवश, किरातार्जुनीय, शिशु-

पाल वध, नैषधीय चरित, रामचरितमानस, पृथ्वीराजरासो कामायनी आदि भारतीय वाङ्मय की चिरन्तन निधि बन सके है।

आज गद्य का युग है। गद्य युग का महाकाव्य उपन्यास ही कहा जाता है। प्रो० टिलयार्ड का अभिमत है कि अठारहवी शताब्दी से महाकाव्य-लेखन की परम्परा ही लुप्तप्राय हो गयी थी। मानव-ज्ञान के चेतना-स्तरो का इतना व्यापक प्रसार हुआ कि होमर और दांते जैसे महाकाव्यकारो की भांति समस्त समाज का चित्रण दुःसाध्य हो गया। साहित्य के व्यापक-से व्यापक रूप मे भी जीवन के विशेष पक्ष का ही चित्रण सम्भव हो सका। मध्ययुगीन समाज का चित्राकन उपन्यास मे हुआ। १९वी शताब्दी मे महाकाव्य का रूप उपन्यास मे ही परिवर्तित हो गया।[1] फिर भी बहुत बडी सख्या मे महाकाव्यो का सृजन हो रहा है। सन् १९१४ से अद्यावधि हिन्दी मे ही अनेको महाकाव्य लिखे गये है।[2] यद्यपि इनमे से अधिकाश केवल नाम के ही महाकाव्य हैं।

---

1 "A certain epic tradition expired in eighteenth century the possibility of epic writing in a different tradition was shut out What happened in 18th century (if not in the second half of the seventeenth) was this hip had become so complicated, so much has been added to the stock of human learning, there was so much ecumenical freedom to exchange ideas, that the epic spanning a total society, like Homer's or Dante's, became impossible Any great work of literature, however ambitious of universality, was forced to be in some degree specialist Now the speciality that turned out most propitious for the epic was middle class novel that began to flourish in the 18th century By the nineteenth century, the real course of the epic had forsaken the tradition for the novel."

—E M. W Tillyard, *The Epic Strain in English Novel*, pp 530-31.

2 (१) प्रियप्रवास (२) साकेत (३) कामायनी (४) वैदेही-वनवास (५) कृष्णायन (६) साकेत-सन्त (७) सिद्धार्थ (८) दैत्यवंश (९) नूरजहाँ (१०) नलनरेश (११) अंगराज (१२) वर्द्धमान (१३) जयभारत (१४) पार्वती (१५) रश्मिरथी (१६) मीरा (१७) एकलव्य (१८) ऊर्मिला (१९) तारक वध (२०) सेनापति कर्ण (२१) कुरुक्षेत्र

दूसरे शब्दो मे इन काव्यो के रचयिताओ ने महाकवि की उपाधि के लिए कतिपय रूढ शास्त्रीय लक्षणो का सफल निर्वाह कर रचना को महाकाव्य कह दिया है। तथापि इसी युग मे उत्कृष्ट कोटि के महाकाव्य भी लिखे गये हैं। कविवर जयशकरप्रसाद कृत 'कामायनी' महाकाव्य इस युग की अनन्यतम कृति है, जिसमें, मानवता के जनक मनु के पौराणिक इतिवृत्त को सूत्र रूप मे लेकर विराट कल्पना और काव्य-प्रतिभा के प्रश्रय से, मानवोत्पत्ति एव विकास का अद्‌भुत चित्राकन हुआ है। 'कामायनी' काव्य समय के परस्पर विरोधी प्रश्नो के समाधान की चेष्टा है, इसमे मानव-मन के अन्तर्द्वन्द्व, हृदय-बुद्धि के सघर्ष, प्रकृति के प्रेम और प्रकोप, वृत्तियो के स्वार्थ और प्रवचना, अर्थलोलुपता और काम-वासना, शोषण और द्रोह, नारी दौर्बल्य एव अदम्य उत्साह आदि अनेक युगीन समस्याओं का समुचित समाधान एव व्यावहारिक निदान प्रस्तुत किया गया है। इसीलिए प्रसादजी हमारे युग के महान् काव्यकार और 'कामायनी' महान् रचना मानी जाती है।

डॉ० रामानन्द तिवारी 'भारतीनन्दन' विरचित 'पार्वती' महाकाव्य भी इसी समृद्ध साहित्यिक परम्परा की रचना है। इस काव्य मे भी युगीन जीवन-चेतना की विराट व्यजना हुई है। 'पार्वती' मे भारतीय सस्कृति के आदर्श स्वरूप का व्यापक चित्रण हुआ है। पार्वतीकार ने विज्ञान युग की दिग्भ्रान्त मानव जाति के प्रति शिव-सस्कृति का सन्देश प्रसारित कर स्वस्थ मानवतावादी जीवन-मूल्यो की स्थापना का सफल प्रयास किया है। धर्म और नीति अर्थात् सत्व, शील और नय भारतीय सस्कृति के अनिवार्य उपकरण हैं। 'पार्वती' काव्य मे इन स्थायी जीवन-मूल्यो (सत्व, शील और नय) का महिमामय महत्त्वाकन और प्रतिपादन हुआ है।

आधुनिक युग के हिन्दी महाकाव्यो मे आकार की दृष्टि से 'पार्वती'

---

(२२) हल्दीघाटी (२३) आर्यावर्त्त (२४) विक्रमादित्य (२५) जननायक (२६) महामानव (२७) जगदालोक (२८) जौहर (२९) देवार्चन (३०) दमयन्ती (३१) उर्वशी (३२) सारथी (३३) प्रेमचन्द (३४) श्रीरा[illegible]न्द्र (३५) रामचरित चिन्तामणि (३६) कृष्णचरित चिन्तामणि ([illegible] की रानी (३८) अनग (३९) रामराज्य (४०) विश्वज्योति [illegible] मेधावी (४२) कालिदास (४३) गुरुगोविन्दसिंह (४४) [illegible] लोकायतन (४६) मानवेन्द्र (४७) प्रियमिलन (४८) बाणाम[illegible] पुरुष गाधी (५०) चन्द्रगुप्त मौर्य (५१) निराला।

व्यापक वृहदाकार रचना है। 'पार्वती' महाकाव्य का कथात्मक मूल आधार शैव पुराण हैं। कथात्मक सयोजन की दृष्टि से पार्वतीकार ने कालिदास के 'कुमारसम्भव' का अनुकरण किया है। 'पार्वती' के प्रथम १७ सर्गों मे 'कुमार-सम्भव' के १७ सर्गों की सम्पूर्ण कथा गृहीत की गयी है। 'पार्वती' महाकाव्य के प्रथम १७ सर्गों को काव्य का पूर्वार्द्ध कह सकते हैं। उत्तरार्द्ध खण्ड मे प्रौढ कवि-कल्पना, विलक्षण काव्य-प्रतिभा, भाव-सौन्दर्य, रस-परिपाक, कलात्मक कौशल और प्रबन्धत्व प्रवाह आदि दृष्टव्य हैं। साथ ही मौलिक सृजन-प्रतिभा, कलात्मक औदात्त, वैचारिक निधि और भाव-गाम्भीर्य की दृष्टि से भी काव्य का उत्तरार्द्ध (सर्ग १८ से २७) महत्त्वपूर्ण है। 'पार्वती' महाकाव्य के अन्तिम १० सर्ग निश्चय ही कवि की चरम साधना के ज्वलन्त प्रतीक हैं। इन सर्गों मे कवि के अध्ययन, मनन और चिन्तन ने जीवन-दर्शन के रूप मे ढलकर बलवती प्रेरणा का रूप ग्रहण कर लिया है। शैवागमो के निगूढ अध्ययन और तत्त्व चिन्तन ने शिव सस्कृति के रूप मे एक महान् उपलब्धि करायी है। पार्वतीकार की शिव सस्कृति विषयक परिकल्पना नितान्त मौलिक, उपादेय एव युगानुरूप है।

'पार्वती' महाकाव्य के १७वें सर्ग मे पार्वतीपुत्र सेनानी कार्तिकेय द्वारा तारकासुर का वध हो जाता है। यहाँ तक का वस्तु-विधान 'कुमारसम्भव' पर आधारित है।

१८वें सर्ग मे जयन्त अभिषेक और १९वें सर्ग मे विजय-पर्व के आयोजन के साथ-साथ तारक के तीन पुत्रो का तप तथा ब्रह्माजी द्वारा वरदान देने का वर्णन है। सर्ग २०, २१ और २२ मे राजतपुर, आयसपुर एव काचनपुर नामक त्रिपुरो का बडा सजीव वर्णन है। उदाहरणार्थ—

"राजतपुर मे ज्ञान-धर्म का सूक्ष्म छद्म बन करुणा-मीति,
फलित हुआ कमलाक्ष कूट की बन अधर्म की रुचिर अनीति;
शक्ति और वैभव से मोहित दुर्बल, दीन, अकिंचन ज्ञान,
बन अज्ञान बना जीवन का मायामय नय-धर्म विधान।

× × ×

आयसपुर में दर्प-रोष से उन्मद भय से कुण्ठित काम,
फलित हुआ विद्युन्माली के बल-वैभव मे फिर उद्दाम,
अज्ञ, दीन, बल हीन प्रजा की अल्पदृष्टि मे बनकर शान्ति,
प्रकट हुई शासन सेवा की पद नियमों की भूषित भ्रान्ति।

× × ×

कांचनपुर में भय-करुणा औ क्रोध-दर्प का द्वन्द्व विकार,
शान्ति, समृद्धि और सुख का बन छद्म हुआ सहसा साकार,
जिसकी माया के विमोह में स्वप्नों के स्वर्णिम प्रासाद,
कर निर्मित, श्रम और सेवा का वहन कर रहे जन अवसाद।"

(सर्ग २३, पृष्ठ ४७०)

त्रिपुरों के इस घोर अनर्थ से सकल लोक व्याकुल हो उठे, जीवन-सत्य को तथाकथित धर्म, शक्ति और माया के आडम्बर ने आच्छन्न कर लिया। तारक-वध से जो देव संसृति को प्रसन्नता हुई थी, शोक में परिवर्तित हो गयी :

"धर्म शक्ति, धन की माया में हुआ सत्य जीवन का लुप्त,
उगल रहे थे विष अनर्थ का कौन अनर्गल विषधर गुप्त,
हुआ विषाक्त वायुमण्डल था सिसक रहे जीवन के प्राण,
विकल हुए अपनी कृतियों से भक्त, भूप, श्रीपति भगवान्।

× × ×

त्रिपुरों के अनर्थ उपचय से विकल हो उठे तीनों लोक,
देवों का जय-हर्ष अन्ततः बना हृदय का नूतन शोक।"

(सर्ग २३, पृ० ४१७)

त्रिपुरों के अत्याचारों से उत्पीडित होकर जयन्त ब्रह्माजी के पास गया। ब्रह्माजी ने जो त्रिपुर-उपचार बताया वह भी महत्वपूर्ण है। ब्रह्माजी ने त्रिपुर-उपचार के लिए प्रेम और शिवत्वबोध का मार्ग सुझाया। प्रेम-मार्ग और शिवत्वबोध आज के विश्व-जीवन की विडम्बना का भी महत्वपूर्ण निदान है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पार्वतीकार की त्रिपुर-उपचार की परिकल्पना की कामायनीकार (प्रसादजी) के त्रिपुरदाह की संयोजना से पूर्ण संगति बैठती है। प्रसादजी ने त्रिपुरों की विडम्बना का वर्णन 'रहस्य' सर्ग में किया है :

"यही त्रिपुर है देखा तुमने, तीन बिन्दु ज्योतिर्मय इतने,
अपने केन्द्र बने दुःख-सुख में, भिन्न हुए है यह सब कितने।"

(कामायनी, रहस्य सर्ग)

'कामायनी' का त्रिपुर रूपक मानव-सृष्टि के सन्दर्भ से इच्छा, ज्ञान और क्रिया की दूरी है अर्थात् असामजस्य है :

"ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सके, यह विडम्बना है जीवन की॥"

(वही, रहस्य सर्ग)

इन तीनों के समजन का उपाय तीनों में सामरस्य (समन्वय) की स्थापना है। 'पार्वती' महाकाव्य का त्रिपुर रूपक भी हमारे युग-जीवन के सन्दर्भ में धर्म, शक्ति और धन की माया का संघर्ष है।

जयन्त त्रिपुर-उपचार के उपाय पूछने ब्रह्मा, शिव और पार्वती के पास गया। तीनों ने बड़े सुन्दर उपाय बताये :

ब्रह्मा—"असुर-शक्ति के तप के बल से हुआ तात ! इनका निर्माण,
है निमित्त भर सर्ग-नियम का मेरा अवधि-पूर्ण वरदान
एकाकी तारक का सम्भव शक्ति-योग से था संहार,
पर त्रिपुरों का नहीं शक्ति से सम्भव है करना प्रतिकार।

× × ×

सर्ग-नियम में नहीं अनय का सम्भव है कोई प्रतिरोध,
है उसका उपचार शक्ति से अन्वित शिव का शाश्वत बोध।"

(सर्ग २३, पृष्ठ ४७४)

पार्वती—"सुन जयन्त के वचन उमा ने कहा दृगों में भरकर स्नेह,
तात ! त्रिपुर के जन जीवन है शोचनीय अति निस्सन्देह,
कर न सकी यदि शक्ति तुम्हारी सरक्षित जीवन का क्षेम,
ज्ञान शक्ति की स्फूर्ति चाहती अभी कान्ति सा कोमल प्रेम।

× × ×

इसी प्रेम के बिना बन गया राजतपुर का ज्ञान विमोह,
इसी प्रेम के बिना छा रहा आयसपुर में बल विद्रोह,
इसी प्रेम के बिना स्वर्णपुर पाल रहा केवल व्यापार,
बिना प्रेम के ज्ञान, शक्ति औ अर्थ सहज बनते अविचार।

× × ×

एक पाशुपत ही कर सकता त्रिपुरों का युगपत संहार,
कर सकती है विश्व जागरित केवल डमरू की झंकार।"

(सर्ग २३, पृष्ठ ४७६-७७)

शिव—"शिव बोले गम्भीर शान्तिमय वचन स्नेह से पूर्ण उदार—
प्रकृति और प्रतिरोध मार्ग से चलता यह अपूर्ण संसार,
ज्ञान-शक्ति संयोग विश्व का रक्षित करता पावन क्षेम,
त्रिपुरों से उद्धार विश्व का कर सकता पर जाग्रत प्रेम ॥"

(सर्ग २३, पृष्ठ ४७९)

इसी क्रम में शिव का महत् सन्देश है। इस सन्देश के एक-एक शब्द में मानवतावादी स्वरोद्घोष है, सजीवनी शक्ति और अमरत्व है। विस्तार-भय से कतिपय पंक्तियाँ ही उद्धृत की जा रही हैं :

"जन-जन के जाग्रत गौरव से कम्पित होगी अन्ध अनीति,
दम्भ, दर्प, अतिचार आदि की प्रलय बनेगी भीषण भीति।
धर्म धुरन्धर अन्ध पुजारी मद-विभोर शासक सामन्त,
धन-कुबेर, श्रीमान्, दानपति सबका क्रान्ति करेगी अन्त।

× × ×

माँगेंगे जाग्रत मानव से वे जीने का बस अधिकार।

× × ×

जाग्रत मानव की करुणा से माँगेंगे वे जीवन दान।

× × ×

जाग्रत मानव से माँगेंगे वे केवल श्रम का वरदान।

× × ×

मानव की संस्कृति का गौरव होगा नारी का सम्मान,
नारी के स्वतन्त्र जीवन का स्नेह बनेगा चिर वरदान।

× × ×

प्रति मानव के शीष और मुख होंगे जब द्विज वेद-प्रवीण,
प्रति मानव के बाहु बनेंगे क्षत्र शक्ति के रक्षा-लीन।
प्रति मानव की जघाएँ जब होंगी अर्थ-काम से पुष्ट,
सेवा-श्रम से प्रति मानव के पावन पद होंगे सन्तुष्ट।

× × ×

तब मानव मानव बन मन से औ तन से बन देव समान,
होगा नये विश्व का स्रष्टा औ पालक अनन्त भगवान।
ज्ञान, शक्ति, श्रम और स्नेह से कर सुन्दर का चिर निर्माण,
नव-जीवन के पल-पर्वों में नित्य करेगा हर्ष-विधान।"

इस नव्य-मानवतावादी संसृति के निर्माण से युगो की संचित भ्रान्ति का विनाश और नव-चेतना का विकास होगा :

"जब जन-जन के उर मे पावन आत्मा का उज्ज्वल आलोक,
होगा उदित स्नेह-करुणा का बन कर शुचि मंगलमय श्लोक।
जब जन-जन के तन औ मन मे छिपी संघ की शक्ति अपार,
जाग्रत हो मांगेगी सहसा जीवन का गौरव-अधिकार।

× × ×

तब नव चेतनता से होगी भग युगो की संचित भ्रान्ति,
नवयुग का निर्माण करेगी श्रेयमुखी जीवन की क्रान्ति।"

(सर्ग २४, पृष्ठ ४८३)

'त्रिपुर-उद्धार' नामक २४वें सर्ग मे शिवत्वबोध और नय से अनय रूपी त्रिपुरो का उद्धार वर्णित है। यही मानवता को स्वबल-वैभव की चेतना से जागृत भी किया गया है :

"मानव हो, अपने जीवन के गौरव को पहचानो,
नर हो, तुम अपने पौरुष के वैभव को पहचानो।"

इस चेतना-आह्वान ने जन-जन के जीवन मे जागरण की लहर दौड़ा दी

"बोल उठे सब एक कण्ठ से 'मानवता की जय हो',
गूंज उठा स्वर अन्तरिक्ष मे 'अन्त समस्त अनय हो'।

× × ×

जीवन का श्रम, श्रेय और सुख चिर अधिकार हमारा,
करना हमको सिद्ध संघ के शक्ति मन्त्र के द्वारा।"

(पृष्ठ ४९६)

त्रिपुर उद्धार के उपरान्त नये सर्ग की सृजन ध्वनि शिव के डिम्ब-निनाद से नि सृत हुई

'विश्व भारती के मंगल-सा शिव का डमरू बोला,
शिव ने आज नवीन सर्ग का सूत्र मर्ममय खोला।

× × ×

अन्तरिक्ष मे उगा ज्ञान का सूर्य अनामिल छवि से,
गन्धकोप निज खोल कली ने कहा जागरित रवि से—

आज न कलियों के कानों में केवल मधुरस घोलो,
नये सर्ग के बीज मन्त्र की भव्य अर्गला खोलो।
(सर्ग २४ पृष्ठ ५०६)

इस नवीन सर्ग (संसृति) की संस्कृति भी आदर्श और महान् थी। त्रिपुर-दाह शिवत्वबोध के कारण हुआ, अतः नवीन सृष्टि में जिस धर्म, नीति और संस्कृति का विकास हुआ, वह शिवमय थी। 'पार्वती' महाकाव्य के २५, २६ और २७वें सर्गों में शिव-धर्म, शिव-नीति और शिव-संस्कृति का वर्णन है। इन सर्गों का सृजन नितान्त मौलिक और नवीन है।

'शिव धर्म' नामक सर्ग में धर्म के जिस स्वरूप का निरूपण हुआ है, वह शैव सम्प्रदाय की किसी सैद्धान्तिक दुरारूढ़ कल्पना का प्रस्तुतीकरण नहीं, वरन् मानवतावादी कल्याणमय (शिवम्) धर्म की स्थापना का प्रशंसनीय प्रयास है

शिव धर्म में—

"मानव ही रह गया एक ईश्वर की आशा,
जीवन ही बन गया धर्म की नव परिभाषा,
आत्मा का परमार्थ अर्थ में अन्वित होता,
आत्मा का परमार्थ काम से सरसित होता।
(सर्ग २५, पृ० ५१७)

मानवता ही सर्वस्व थी—

'मानवता थी मानदण्ड नूतन संस्कृति का,
आत्मभाव था मूल मन्त्र नूतन संसृति का,
नहीं मनुज को मनुज मानते जो अतिचारी,
उनको काल कृतान्त बने अन्तिम त्रिपुरारी।'

नारी का बहुमान—

'नारी का बहुमान बना संस्कृति की वेला,
जीवन सागर रहा शान्त जिसमें अलबेला,
मानवता की मर्यादा थी निर्मल नारी,
शक्तिमती श्रीमूर्ति मनोहर औ सुकुमारी।
× × ×
वह युग युग की आतंकित औ लांछित नारी,
महिमा मण्डित हुई प्राप्त कर गरिमा सारी।'
(सर्ग २५, पृ० ५१८)

यही नही—

"मानवता ही था बना विश्व का नया विधाता,
मानवता का बना नया मानव निर्माता,
मानव मे साकार हो गये विधि, हरि, हर थे,
वे अदृष्ट के रूप अयुत जीवित सुन्दर थे।

× × ×

नारी मे साकार हुई थी वीणा-पाणी,
नारी मे ही मूर्त्त हुई लक्ष्मी कल्याणी,
हुई उमा की तप. शक्ति से जाग्रत नारी,
ज्ञान शक्ति, श्रीनारी मे अन्वित थी सारी।"

(सर्ग २५, पृ० ५२६)

२६वें सर्ग मे उल्लिखित शिव-नीति का स्वरूप भी श्लाघनीय है—

"धर्म अर्थ औ काम मुक्ति का अन्वय-पूर्ण विधान,
करता था मानव समाज मे शिवनय का निर्माण,
ज्ञान, शक्ति, तप, क्षेम आदि का श्रेयान्वित उद्योग,
करता था कृतार्थ मानव का जीवन-साधन-योग।"

(सर्ग २६, पृष्ठ ५४६)

काव्य के अन्तिम सर्ग मे शिव-सस्कृति के आनन्दवादी स्वरूप की विशद व्याख्या है। कवि ने नारी को सस्कृति और सृष्टि की सधारिणीशक्ति कहा है। मानव के मगल-विधान और विजय-पर्व की प्रतीक नारी ही है। इस मूल सत्य की स्वीकृति इस २७वें सर्ग की अन्यतम विशेषता है :

"वह सिहवाहिनी कोटि-अस्त्र-कर धारी,
मानव सस्कृति की निकष निर्मला नारी।

× × ×

वह मधुर वसन्ती यामा की उजियारी,
विसराती स्वर्ग-विभूति भूमि पर सारी।

× × ×

बन वीर बन्धु की बहन निर्मला नारी,
बनती सस्कृति की सुषमा ग्राम-कुमारी।

× × ×

उस ज्योति पर्व की पुण्य निर्मला ऊषा,
पावन भावों की मधुर मुक्त मंजूषा।
× × ×
वह शक्ति भूमिका तेजमयी कल्याणी,
हो रही सफल पाकर जीवन की वाणी।"

कवि ने नारी के सम्मान को सांस्कृतिक विकास का आधारमान भी माना है :

"नारी का नय औ मान, माप संस्कृति का,
पथ उसका शुचि संस्कार निसर्ग प्रकृति का।"

(पृ० ५५९)

महाकाव्य की इतिश्री पर भी कवि मानवता का मंगलकामी रहा है। देखिए यह गीत

"जग में मंगल दीप जलें।
जीवन के ध्रुवतारे बनकर स्नेह-प्रदीप जलें।
पूर्ण सत्य की प्रभा विश्व में निर्मल बिखरे,
ज्योति पर्व में स्नात रूप मानव का निखरे,
सत्य, शक्ति, शिव औ सुन्दर के पथ में लोक चलें।
× × ×
हो शिव का साम्राज्य विश्व में मंगलकारी,
ज्ञान शक्ति-युत बने श्रेय का चिर प्रतिहारी,
शिव-जीवन की कल्पलता पर श्री-आनन्द फलें।"

इस प्रकार 'पार्वती' महाकाव्य में भारतीय संस्कृति के विराट् रूप को अंकित करने की भव्य चेष्टा हुई है। आज के विश्व-जीवन में मानव की संकटापन्न स्थिति, कुण्ठित आत्म-चेतना और भयावह वातावरण का मूल कारण मानवीय चिन्तन बोध के स्तरों में विशृंखलन और बौद्धिक अन्तर्विरोध है। इस परिस्थिति-द्वन्द्व का विधायक मानव का अहंबोध है। इस अहंबोध को व्यावहारिक दृष्टि से विज्ञान के दुर्वह आणविक अनुसन्धानों का स्वच्छन्द विकास, बौद्धिक अति या चेतना का व्यतिक्रम भी कहा जा सकता है। हमारे युग-जीवन में भौतिकवादी मूल्यों की अन्ध पराकाष्ठा ने मानव की आध्यात्मिक आस्थाओं को आहृत कर युग-सत्य की स्वीकृति से भी पराङ्मुख कर दिया है। स्व और अहं की अर्थ-साधना में लिप्त चेतना हतप्रभ और विकृत होते-होते

विघटनकारी तत्त्वों पर अवलम्बित रहने लगी है। परिणामस्वरूप, समग्र सामाजिक संगठन में विघटनकारी स्वार्थसाधक शक्तियाँ परम्पराओं से स्थापित मूल्यों के मूलोच्छेदन में अनवरत रत हैं। समाज के विघटनकारी तत्त्वों ने सांस्कृतिक जीवनादर्शों की अवहेलना भी प्रारम्भ कर दी है। और यही कारण है कि हम सन्मार्ग के अनुसरण में असमर्थ हो रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में साहित्य क्या कर सकता है ? एक प्रश्न है। अस्तु—

वैज्ञानिक युग के इस परिस्थिति-द्वन्द्व में सचेतन साहित्यकार, जागरूक कलाकार और अन्तश्चेतना के अनुसन्धाता कवि का कर्त्तव्य शाश्वत जीवन बोध या दिशा-निर्देश कर दिग्भ्रमित मानवता को प्रगति पथ पर गतिमान करना है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व इस देश की पराधीन, हतप्रभ और विवेकशून्य सांस्कृतिक चेतना को स्वाधीनता संग्राम के लिए आह्वान कर विजय-सन्देश-प्रसारण की आवश्यकता थी। इस गुरुतर दायित्व का भार-वहन तत्कालीन साहित्यकारों ने किया। प्रसादजी के ये स्वर मेरे कथन की पुष्टि करेंगे :

"शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त,
विकल बिखरे हैं हो निरुपाय।
समन्वय उनका करे समस्त,
विजयिनी मानवता हो जाय।"

(कामायनी, श्रद्धा सर्ग)

तत्कालीन परिस्थितियों में समाज के शक्ति अंगों के समन्वय की आवश्यकता थी। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् जीवनादर्शों के संगठन की समस्या बलवती होती जा रही है। सामाजिक जीवन-मूल्यों के सुदृढ़ संगठन के लिए संस्कृति रूपी वट-वृक्ष के अतिरिक्त सुखद और शीतलच्छाय स्थल की कल्पना नहीं की जा सकती। भारतीय समाज और जीवन की विविधताओं (Diversities) का संगम संस्कृति ही बन सकती है। धर्म, जाति, वर्ग, प्रान्त, भाषा या यथावत संगठन आज के संघर्ष-युग में ऐक्य के प्रतीक (*Symbol of Unity*) नहीं बन सकते। वैसे संस्कृति में इन सब इकाइयों (*Unities*) का भी समन्वय हो जाता है। डॉ० रामानन्द तिवारी 'भारतीनन्दन' ने 'पार्वती' महाकाव्य में उसी सांस्कृतिक वट-वृक्ष की छाया प्रदान की है। उनका सांस्कृतिक निरूपण विघटित मानव-मूल्यों के संगठन का प्रशंसनीय प्रयास है। सत्य, शिव,

सुन्दरम् जीवन के शाश्वत मूल्य हैं। सत्य, शील और नय भारतीय संस्कृति के अमोघ अस्त्र रहे हैं। डॉ० तिवारी ने इन्ही चिरन्तन सगठन-तत्त्वो का युगानुरूप पुनर्मूल्याकन किया है। पौराणिक कथा-सत्य को उन्होंने युग-सत्य और सामयिक परिस्थितियों के अनुकूल ही चित्रित किया है। 'पार्वती' महाकाव्य का शिव संस्कृति-निरूपण उनकी काव्यकला, चिन्तनशक्ति और प्रखर मेधा का सबल प्रमाण है। इस दृष्टि से 'पार्वती' महाकाव्य की रचना 'मानस' और 'कामायनी' जैसे विश्व महाकाव्यो की परम्परा मे ठहरती है। 'पार्वती' सच्चे अर्थों मे महाकाव्य ही नही, अपितु महान्‌काव्य भी है—ऐसी मेरी विनम्र दृढ़ धारणा है।

'कालिदास' महाकाव्य
मानवीय वेदनाओं के गायक की गौरव-गाथा

७

'कालिदास' महाकाव्य

मानवीय संवेदनाओं के गायक की गौरव-गाथा

भारत की सांस्कृतिक चेतना का प्रतिनिधित्व करने वाली गौरवान्वित काव्य-कृतियों के प्रणेताओं के रूप में वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, तुलसीदास, रवीन्द्रनाथ टैगोर और जयशंकर प्रसाद प्रभृति कवि पुंगवों के नाम चिर-स्मरणीय हैं। इन प्रबुद्ध रचनाकारों ने अपने गौरव-ग्रंथों में भारतीय मनीषा के निरन्तर विकासशील स्तरों का रूपांकन करते हुए काव्य, कला, साहित्य, शास्त्र, संगीत, संस्कृति, दर्शन, इतिहास एवं अन्य ज्ञान-विज्ञानों के नाना क्षेत्रों में किए गए विराट मानवीय प्रयत्नों का युगीन महत्वांकन किया है। मनीषी-कवियों की परम्परा में ऐतिहासिक दृष्टि से महाकवि कालिदास का विशिष्ट स्थान है। कालिदास की काव्य-साधना मानवीय-संवेदनाओं को कलात्मक-स्तरों पर साकार करने वाली चेष्टाओं से परिपूर्ण है। इतिहास, पुराण और कल्पना के समन्वित आधार पर महाकवि ने ऐसे गरिमापूर्ण काव्य-भवनों का निर्माण किया है, जो आज अनेक शताब्दियों के पश्चात् भी शैल्पिक-संरचना के प्रतिमानों एवं प्रतिपाद्य के आयामों की दृष्टि से अतुलनीय हैं। महाकवि कालिदास के काव्य का रचनाफलक इतना विराट एवं वैविध्यपूर्ण है कि मानवीय-चेतना के सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं गूढ स्तर उसमें सहज ही समाविष्ट हो गए हैं। 'रघुवंश', 'कुमार सम्भव', 'मेघदूत', 'विक्रमोर्वशीय', 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' आदि काव्य एवं नाट्य-ग्रन्थ महाकवि की चिरन्तन कीर्ति के अक्षय-स्रोत हैं। अकेले 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' का कलात्मक-वैभव एवं रचनात्मक औदात्त समादृत स्वदेशी एवं विदेशी विद्वानों को गत अनेक दशाब्दियों से इतना

अभिभूत किए रहा है कि उन्होने मुक्त कठ से कालिदास को 'विश्व कवि' की सज्ञा दी है। ऐसी गौरवान्वित कृतियो के यशस्वी प्रणेता कालिदास का जीवन अनेक विस्मयकारी घटना-प्रसगो का सघात रहा है और उनका जीवन-दर्शन मानवतावादी चिन्तनधारा से अनुस्यूत होने के कारण नितान्त स्पृहणीय एव वरेण्य है। समष्टि रूप मे महाकवि कालिदास का व्यक्तित्व, कृतित्व और जीवन-दर्शन अत्यन्त प्रेरक होने के कारण समालोचको एव शोधकर्ताओ के समीक्षण और अनुसधान का विषय तो था ही, वर्तमान-युग मे एक महाकाव्य के कलेवर मे भी निबद्ध हुआ है। आधुनिक हिन्दी-महाकाव्य के सरचना क्रम मे आलोच्य महाकाव्य के प्रकाशन से पूर्व तीन महान् रचनाकारो की जीवन गाथा को आधार बनाकर निम्नांकित महाकाव्यो का प्रणयन हुआ—

१ गोस्वामी तुलसीदास पर श्री करील द्वारा सन् १९५२ मे 'देवार्चन' महाकाव्य।

२ उपन्यास-सम्राट प्रेमचन्द पर श्री परमेश्वर द्विरेफ द्वारा सन् १९५६ मे "युगद्रष्टा प्रेमचन्द" महाकाव्य।

३. बाणभट्ट पर पोद्दार रामावतार अरुण द्वारा सन् १९६१ मे "बाणाम्बरी" महाकाव्य।

इसी क्रम की रचना विहार के उदीयमान कृतिकार श्री तिलक का 'कालिदास' महाकाव्य है, जिसका प्रकाशन सवत् २०१८ मे हुआ।

'कालिदास' महाकाव्य मे कुल १९ सर्ग हैं। प्रथम सर्ग मे महाराज शरदानन अपनी पुत्री विद्योत्तमा से प्राकृतिक-सुषमा पर हुए वार्तालाप मे पुत्री के वाक्-चातुर्य एव कला नैपुण्य से मुग्ध होकर मन ही मन किसी अत्यन्त बुद्धिमान वर से उसके विवाह करने का सकल्प करते है। द्वितीय सर्ग मे विद्योत्तमा की रूप-माधुरी का वर्णन है। विद्योत्तमा मन ही मन अपनी रूपगध से आकुल होकर प्रियतम के भुजपाश मे निबद्ध हो जाने की कल्पना करती है। उसकी मनोदशा का विश्लेषण करते हुए कवि ने लिखा है कि—

"मन में कितने रगीन स्वप्न आकर उसको दुलराते हैं,
जीवन के भावी साथी का, नव रूप मधुर दिखलाते हैं।
नयनों में आँक रही अपने वह प्रियतम का छवि-सम्मोहन,
लगता उसको ज्यो गूँथ रहा, कोई कुन्तल मे फुल्ल-सुमन॥"
(सर्ग २, पृ० ८, ९)

तृतीय सर्ग मे देश के कोने कोने से विद्योत्तमा के स्वयम्वर म शास्त्रार्थ हेतु मूर्धन्य विद्वानों के आगमन का वर्णन है। चतुर्थ सर्ग मे समागत दस सहस्र

विद्वानो से विद्योत्तमा यथोचित उत्तर की उपेक्षा करती हुई अनेक गूढ़ प्रश्न करती है। उसके प्रश्न थे—जीवन का अर्थ क्या है ? विश्व मे सबसे बडा कौन है ? विश्व भर मे सबसे सुन्दर कौन है ? विश्व मे सबसे बडा दान क्या है ? विश्व मे सबसे बडा बलवान कौन है ? आदि। पण्डितो ने अपनी मति अनुसार इन प्रश्नो के उत्तर दिए, किन्तु विद्योत्तमा किसी भी उत्तर से आश्वस्त नहीं हुई। उसने स्वय सभी प्रश्नो के विद्वत्तापूर्ण उत्तर देकर सभी को हतप्रभ कर दिया। विद्योत्तमा ने जीवन का अर्थ जनहित के लिए जीना, विश्व मे सबसे बडी माता, प्रेमपूर्ण हृदय वाले व्यक्ति को सबसे सुन्दर, काल को महाबलवान और विश्व का सबसे बडा दान विद्या को बताया। विद्योत्तमा की ज्ञान-गरिमा से विद्वन्मण्डली यद्यपि अभिभूत थी किन्तु स्वय को अपमानित मान कर प्रतिशोध के लिए भी कटिबद्ध थी। अत उन्होंने एक ऐसे महामूर्ख व्यक्ति को खोज लिया जो जिस डाल पर बैठा था, उसी को काट रहा था। विद्योत्तमा ने अगुलि-सकेत से समुचित परीक्षण के पश्चात् उस मूर्ख व्यक्ति को पति रूप मे वरण कर लिया। सप्तम सर्ग मे रूप राशि विद्योत्तमा सज-धज कर प्रियतम से मिलन के लिए प्रस्थान करती है। अभिसार सज्जिता विद्योत्तमा की सौन्दर्य-सुषमा का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

"भावो से पुलकित मसय-गात,
ज्यो खिला प्रात मे अम्बुजात।
छवि के जल से हो रहा स्नात,
अधरो से खुलती नहीं बात॥" (सर्ग ७, पृ० ४१)

पूनम की मधुमयी यामिनी मे प्रथम-मिलन के हेतु उमगो का तूफान लिए विद्योत्तमा जब अभिसार-भवन पहुँची तो उसने अपने प्रियतम को पृथ्वी पर सोते हुए पाया। पति के भोलेपन पर रीझ कर विद्योत्तमा ने सुरभित-पाटल का जल श्वेत-कमल से बरसाकर अपना चदन-चर्चित गात प्रिय के चरण-तल मे रख दिया। मूर्ख नीद से हडबडा कर उठ खडा हुआ। उसने पण्डितो के आदेश पर जो स्वाग भरा था, उसका भी रहस्योद्घाटन कर दिया। विद्योत्तमा पण्डितों की चाल समझकर खिन्न हो उठी। क्रोध के आवेग मे उसने मूर्ख को खिडकी से ढकेल दिया। इस दुर्व्यवहार से मूर्ख के मन मे ऐसी असीम वेदना जगी जिसने उसकी ज्ञान-चेतना को जागृत कर दिया। वह सोचने लगा कि मैं पण्डित भी तो हो सकता हूँ। कवि के अनुसार—

"जब लगी चोट उस मूरख को, मन मे असीम वेदना जगी,
युग से सोई उसके मन की, नव-ज्ञान-दीप्त चेतना जगी।

× × ×

'मैं मूरख हूँ' यह प्रथम वार, उसके मन मे आभास हुआ,
'मैं पण्डित भी हो सकता हूँ', उसको मन मे विश्वास हुआ ।।"
(सर्ग ८, पृ० ५६)

वह तुरन्त मां काली के मन्दिर मे पहुँचा । उसका मन कह रहा था कि रोना पागलपन है । मनुष्य सब कुछ कर सकता है । मूर्ख के अन्तर्जगत में अनन्त मानवीय सामर्थ्य का भाव प्रादुर्भूत हो गया । वह सोचने लगा—

"मानव ही है जो पत्थर को भगवान बना रख देता है,
मानव ही है जो मुट्ठी मे निर्माण छिपा रख लेता है ।
मानव ही है जो सांसो मे तूफान छिपाए रहता है,
मानव ही है जो अन्तर मे दिनमान छिपाए रहता है ।।"
(सर्ग ८, पृ० ५६)

काली मन्दिर के पुजारी ने मूर्ख को श्लोक-वाचन का अभ्यास प्रारम्भ कराया । मूर्ख की वाणी मे सरस्वती अधिष्ठित हो गई । एक वर्ष की कठोर साधना ने अलौकिक ज्ञान की दीप्ति से युगो से सुप्त मन को आलोकित कर दिया । पण्डित ने उसे कालिदास नाम दिया जिसे गुरु आज्ञा मानकर उसने स्वीकार किया । एक दिन स्वप्न मे माँ काली ने कालिदास को परिश्रमपूर्वक काव्य-सुमनों से सरस्वती का श्रृंगार करने का अनुपम वरदान दिया—

"जाओ अब कवि तुम घूम-घूम कर वाणी का भण्डार भरो,
कविता के नव-नव फूलो से वाणी का नित श्रृंगार करो ।
जिसने श्रम का सम्मान किया वह व्यक्ति बना जग मे महान्,
गूँजी उसके श्रम की महिमा जग-जग मे बन कर अमर गान ।।"
(सर्ग ८, पृ० ६०)

अब कालिदास के मन मे स्वर्णिम भविष्य की रङ्गीन कल्पनाएँ साकार होने लगी । प्रकृति का कण-कण कालिदास को सृजन की प्रेरणा प्रदान करने लगा । ऊषा की मधुमय लालिमा मे कवि का जीवन-हास झलकता दिखाई दिया । पक्षियो का कल-कूजन सुन उसके मन-प्राण सिहर उठे । निर्झर का कल-कल-रव उसके प्राणो को उल्लसित करने लगा । लहलहाते खेतों की हरीतिमा उसके मन मे बस कर नयी-नयी कल्पनाएँ जगाने लगी । ज्योत्स्ना उसके प्राणो मे गीत, और स्वर मे सगीत भरने लगी । चन्द्रपूर्णिमा के सग वह रात-रात भर जाग कर काव्य-गीत रचने लगा । आषाढ के प्रथम दिन, पावस की रिम-झिम और पतझर की सूनी सांझ ने उसे मिलन और विरह के

"क्षमा कर देंगे मुझे जरूर, नहीं है उनको तनिक गरूर।
कि शरणागत को करते क्षमा, यही विद्वानों का दस्तूर ॥
× × × ×
क्षमा कर अपनाएँगे मुझे, मुझे विश्वास, अटल विश्वास।
न मुझको रोने देंगे और, न होने देंगे और निराश ॥"
(सर्ग ११, पृ० ७६–७७)

उधर कवि चुपचाप सोच रहा था कि वह रूप का अम्बार और यौवन की मदिरा लिए कौन आई थी ? उसने भौंहों के सुरचाप पर नयनों के बाण से ऐसा प्रहार किया कि मेरे मन प्राण घायल हो गए। उमंगों सी सुंदर विहगों सी चंचल, प्रीत सी नव-आकर्षणमयी तथा जलद सी करुण-तरल वह कौन थी ? मधु ऋतु की प्रथम बहार, यौवन के प्रथम उभार, कवि के पहले उद्गार और उर में अपरिमित मधुर-दुलार लिए वह सुकुमारी कौन थी ? सुरधनु सा सुंदर हास, नई किरणों का मृदु उल्लास, स्वरों में गीत, नूपुरों में संगीत और अलकों में सुवासित मलय बयार लिए वह कौन थी ? कवि यह सोचने को विवश था कि—

'रूप का ऐसा मादक ज्वार, आज देखा बस पहली बार।
देखते ही वह रूप अपार, झन्न कर उठे हृदय के तार ॥
× × ×
कौन वह छवि की नई बहार सुषमाओं का आगार।
रूप के आगे जिसके स्वयं, गया सौन्दर्य कभी का हार ॥'
(सर्ग ११, पृ० ७६)

काली मन्दिर के पास अढोल के पेड की एक डाल पकडे कवि यह सोच ही रहा था कि उस पायल की मधुर झंकार सुनाई दी और थोडी देर में वह कल्पना छवि कवि के पास करुण-उच्छ्वास छोडती हुई मौन गम्भीर समुपस्थित हो गई। कवि विस्मय से भर गया। उसने आगन्तुक को लक्ष्य कर प्रश्नों की झडी बांध दी—

'कौन तुम छवि निर्मित नव वेश ? लजाता जिसको लख राकेश।
कौन तुम सपनों सी सुकुमार, लिए यौवन का यह उन्मेष ॥
कौन तुम लिए सुरभिमय हास, छुपाए नयनों में आकाश।
आज क्यों आधी रात को देवि ! खडी आकर हो मेरे पास ॥
कौन तुम रूप सिन्धु छविमान ? कौन तुम ? सुषमा की मुस्कान।

कौन तुम मधु के स्वर्ण विहान ? कौन तुम ? उपमा के उपमान ।।
कौन तुम वाल्मीकि के श्लोक ? कौन तुम ? जीवन के आलोक ?
कौन तुम सामवेद के गान ? चांद भी तुमको रहा विलोक ।।
कौन तुम ? कवि की क्या कल्पना ? गायकों की तुम क्या साधना ?
भक्त जन की तुम क्या वन्दना ? शिल्पकारों की क्या सर्जना ?
कौन तुम ? मैं अब तक अनजान, कौन तुम ? किस कुल का अभिमान ?
कौन तुम ? किस माँ का वरदान ? कौन तुम ? किस भाई की शान ?"

(सर्ग ११, पृ० ८४-८५)

कवि की मीठी-वाणी सुनकर सौन्दर्यमयी रमणी कवि के पाँव पर गिर पड़ी और अपने अश्रुकणों से पदतल को निमज्जित करने लगी। कवि ने उस छवि-सुषमा की बाँह-मृणाल को पकड़ कर उठाया। स्पर्श से कवि का गात सिहर उठा, भाल पर पसीना भर गया और मन में रंगीन वासनाएँ साकार हो उठीं। रूप का छविमान सागर कवि के इन्सान और ईमान को चुनौती दे रहा था। किन्तु कवि अडिग रहा; उसने पुन. गम्भीरता से प्रश्न किया कि—

"कौन तुम ? गंगाजल-सी-स्वच्छ !
कौन तुम ? वाणी-जैसी दक्ष !
कौन तुम ? सागर-सी गम्भीर !
कौन तुम ? पूर्ण-विराम-सुलक्ष !"

(सर्ग ११, पृ० ८७)

कवि की रसमयी-वाणी को सुनकर उस छवि ने सुधा-स्नात स्वर में अतीत की घटनाओं का बखान कर पश्चाताप प्रकट किया और अपने अभद्र कृत्य के लिए क्षमा-याचना करते हुए महाकवि के चरणों में शरण माँगी। कवि ने कुछ नहीं कहा, किन्तु दो कदम पीछे हटकर अपनी मौन-अस्वीकृति का बोध विद्योत्तमा को करा दिया। विद्योत्तमा मलिन-उदास होकर लौट गई।

आलोच्य महाकाव्य के द्वादश सर्ग में विद्योत्तमा की विरह-वेदना का निरूपण हुआ। विद्योत्तमा का मुख-कमल मुरझा गया, उसका छविमान गात धूमिल हो गया। शीतल-मन्द-मलय-वातास, रजनीगंधा का सुवास और कुमुद-कुसुमों का हास उसका ज्वलित उपहास कर रहे थे। अनुराग-भाव काला नाग बन कर उसे डँस रहा था। आज पक्षियों की सुरीली-तान, सरिता का कल-कल-गान और मधुर अरुण स्वर्ण-विहान उसके लिए शापमय वरदान बन गया था। विद्योत्तमा बुझे हुए दीपक के धूम के समान विकल थी। वह पीले चांद

सी छविहीन तथा भोर के समय डूबते उड्डीन के समान मलीन दिखाई दे रही थी। जीवन उसके लिए असह्य बोझ बन गया था। उसके नेत्रो मे अश्रुओ का पारावार उमड रहा था। मेघ-मण्डित-आकाश को देखकर वह नि श्वास छोडती थी। कवि के अनुसार विद्योत्तमा का जीवन निरुपाय हो गया था—

"आज नयनो मे तिमिर साकार, शून्य सा लगता उसे ससार।
बन गई आज वह निरुपाय, सह नही पाती व्यथा सुकुमार।
× × ×
जा रहे बीते दिवस औ' मास, किन्तु उसका एक सा इतिहास।
लौटकर आया न उसके पास, फिर कभी मादक मदिर मधुमास॥"

(सर्ग १२, पृ० ९८-९९)

उधर कालिदास का मन विषाद पूरित हो गया था। एक दिन माँ काली को प्रणाम कर वे अज्ञात दिशा मे बढ गए। कवि के शब्दो मे—

"वह पार कर रहा नगर-ग्राम,
वह पार कर रहा तीर्थ-धाम।
वह बढा जा रहा लक्ष्यहीन,
मिलता न कही उसको विराम॥"

(सर्ग १३, पृ० १०३)

कालिदास ने काश्मीर, अल्मोडा, कौसानी, धवलगिरि, कचनजंघा, काठमाडू, वैशाली, जीरादेई पाटलीपुत्र, सिमरिया, जोडासाँ, बङ्ग प्रान्त, महिषादल, केन्दुबील, काशी, इलाहाबाद, झाँसी, राजस्थान, काठियावाड, सोमनाथ, साबरमती और मालवा नामक स्थानो का देशव्यापी परिभ्रमण किया। यही उसने प्राकृतिक सुषमा का साक्षात्कार किया तो यही प्रतिमाओ के दर्शन से सृजन की दैवीय प्रेरणा प्राप्त की। काश्मीर और हिमगिरि की स्वर्गिक-शोभा लखकर महाकवि ने नवीन उपमाएँ सजोयी। सौन्दर्य विभासित कौसानी प्रदेश के सुषमामय हरिताचल ने कवि को युग स्रष्टा के आकर्षण से परिचित कराया। धवलगिरि और कचनजघा के रजत शिखरो की स्वर्णाभा का अवलोकन कर महाकवि का मन हर्ष पुलक से सिहर उठा। महाकाव्यकार के शब्दो मे—

"वह भूल गया जीवन का गम;
युग मे फूटा युग का सरगम।

आनन्द विभोर हुआ जाता,
बढता जाता रुक कर थम-थम ।।"

(सर्ग १३, पृ० १०८)

काशी पहुँच कर कालिदास के मन मे उदात्त-भाव-जागरण हुआ । महाकवि ने पतित मानव के अभ्युत्थान करने का पुनीत सकल्प किया । उसने कहा कि मैं मानव की मगल-कामना के चिरन्तन-गीत गाऊँगा । ऐसे गीत जो—

"मानव का जो कल्याण करे, मन मे उसके सम्मान भरे ।
है गीत वही जिससे मानव, सच्चे पथ की पहचान करे ।।
जो मानव मन मे ज्ञान भरे, सत्, चित्, आनन्द विधान करे ।
है गीत वही जिसमे मानव, नित नूतन अनुसन्धान करे ।।"

(सर्ग १६, पृ० ११६-११७)

इलाहाबाद मे त्रिवेणी के सगम पर अक्षय वट के नीचे महाकवि के मन ने साधना की महत्ता का अनुभव किया । कवि कृत-सकल्प हुआ कि उसे मानवीय-अभ्युदय के लिए नि स्वार्थ साधना मे निरत होना ही होगा—

"साधना निरत रहना होगा, हिम-सा मुझको गलना होगा ।
मानव को अगर उठाना है, तो जीवन भर जलना होगा ।।
साधना कीर्ति का सर्वनाम, साधना मोक्षदायी ललाम ।
साधना बनाए देती है, मानव को जग मे पूर्णकाम ।।"

(सर्ग १३, पृ० ११६)

मानवता के चिर-कल्याण और विराट निर्माण का पुनीत सकल्प लिए कवि कालिदास निरन्तर अग्रसर हो रहे थे । झाँसी नगरी की मिट्टी मे उन्हे उत्सर्ग की आग और देशभक्ति के अनुराग का अपूर्व दर्शन हुआ । इस वीर-प्रसूना मृत्तिका के कण-कण मे शौर्य, ऐश्वर्य और सौन्दर्य को देखकर कवि ने कहा—

"यह मिट्टी वीरो की जननी, यह मिट्टी कवियो की जननी,
इस मिट्टी पर है न्योछावर, मेरे मन की ममता अपनी ।
इस मिट्टी को मेरा अर्जन, इस मिट्टी को मेरा वन्दन,
मेरे कवि का सौन्दर्यमयी इस मिट्टी को सौ बार नमन ।।"

(सर्ग १३, पृ० १२१)

राजस्थान की वीर-भोग्या वसुन्धरा में पहुँच कर कवि वहाँ के लोक जीवन की रगरेलियों से अभिभूत हो गया। उसने देखा कि—

"घुंघरू बाँध कर पग निज द्वय, नाचते पुरुष के दल तन्मय।
होली में वे घीदड़ा नृत्य, गाते विरहा भरकर स्वर लय॥
'ढप जानि बजाव बलम रसिया, डोले जियरा ओ' मनबसिया'
गाती नारियाँ उमगों से, 'बाजूबन्ध देउ गढ़ाय रसिया'॥"

(सर्ग १३, पृ० १२३)

गुजरात में सोमनाथ महालय के विशाल भवन और अस्सी मन सोने के महाघट को देख कर कवि के मन में उदार कलाकार के प्रति प्रशस्ति-भाव जगा। उसने सोचा सच्ची कलाकृति ही कलाकार को मृत्युंजयी बनाती है। सच्चा कलाकार हिम के समान अहर्निश गल-ढल कर सृजन करता है। महान् कलाकार के सम्बन्ध में कवि का निम्नोद्धृत कथन कितना सटीक है कि—

"पाषाणों में युग-प्राण भरे, चट्टानों में युग-गान भरे।
वह कलाकार जो पत्थर में, मानव-मन का निर्माण करे॥
× × ×
नित नूतन अनुसन्धान करे, मिट्टी में नव-सम्मान भरे।
वह कलाकार जो मिट्टी से, युग-मानव का निर्माण करे॥"

(सर्ग १३, पृ० १२८-१२९)

अन्ततः महाकवि उज्जैन में महाकाल के विशाल मन्दिर में पहुँचे। वहाँ भगवान विश्वनाथ (महाकाल) के दर्शन कर कवि को शिवत्व-बोध हुआ। कवि ने 'शिवत्वभाव' के सम्बन्ध में चिन्तन प्रारम्भ किया कि 'शिव' जीवन का शुभ्र प्रकाश, मानव की महानता का दिव्य रूप और कर्म का चन्द्रहास है। 'शिव' ही मानव का सम्पूर्ण ज्ञान, कर्मयोग का महाप्राण और मन का स्वामिमान है। शिव की जाज्वल्यमान महाशक्ति ही मानव को विषम गरल-पान की सामर्थ्य प्रदान कर सकती है। जन्म-मरण, अनल-पवन, और अजय-काम को शिव शक्ति ही विजित करती है। शिवभाव के सृष्टि व्यापी प्रसार का अमित-आख्यान करते हुए कवि ने कहा—

"शिव-मानव की साधना अटल, शिव मानव की प्रार्थना विमल,
शिव मानव की निष्काम भक्ति, शिव मानव की कामना सफल।
× × ×

शिव मानव-मन का आत्म-ज्ञान, शिव मानव-मन का महागान।
शिव मानव का है पूर्ण रूप, शिव मानव का नैतिक प्रमाण।।"
(सर्ग १३, पृ० १३५-१३६)

कवि जिस क्षण शिव की व्यापक सकल्पना से अभिभूत हो रहा था कि गणिकाएँ छूम-छनन करती हुईं मन्दिर के प्रांगण में नृत्य करने लगीं। उपस्थित भक्त जनो की दृष्टि देव से वेश्याओ पर केन्द्रित हो गई। कवि को यह देखकर ठेस लगी। वह नारी के वारङ्गना रूप को धिक्कारते हुए, नारी की असहाय स्थिति पर विचार करने लगा कि नारी को जग-जननी, आदि शक्ति के अभिधान से अभिषेकित करने के स्थान पर उसे वासनापूर्ति का तुच्छ साधन माना जाता है। कवि ने आवेशपूरित स्वर में कहा कि—'बस बन्द करो यह छूम-छनन, यह शास्त्र विरुद्ध नहीं शोभन' और उसने उद्बोधन के स्वर में गणिकाओं को कहा कि—

"तुम आदिशक्ति तुम जग जननी, यद्यपि तुम माँ, श्रेष्ठा, भगिनी,
आत्मा में छिपी असीम शक्ति, नारी तुम भूल गयी अपनी।

× × ×

तुम आदि शक्ति तुम जग जननी, तुम जीवनदायक पयस्विनी;
तुम आदि-अन्त तुम मणि-गर्भा, तुम नहीं सिर्फ हो कामायनी।
तुम से दिनकर है मासमान, तुम से मयंक है सावधान;
पाई असीमता सागर ने, तुमसे नारी लो इसे मान।
तुमने सागर को दिया गान, अम्बर को नवछवि का वितान;
तुमने वसुन्धरा को गति दी, दे दिया सृष्टि को अमर प्राण।।"
(सर्ग १३, पृ० १३९-१४०)

महाकवि के प्ररक वचनो को सुनकर प्रश्नोत्तर के पश्चात् गणिकाओ ने अपने जीवन क्रम को परिवर्तित करने का प्रण किया। इस प्रकार भारत-भ्रमण कर ज्ञान-प्रेरणा और अनुभूति तत्त्व सचित कर कालिदास ने काव्य-सृजन प्रारम्भ किया। उनके गीतो का सौरभ सम्पूर्ण मालव प्रदेश मे फैल गया। उनके गीतो का माधुर्य-भाव अधिग्रहण करने के लिए अपार जन-समूह उमड पड़ा। कवि-कुटी तीर्थ-धाम बन गई। चतुर्दश सर्ग मे बताया गया है कि महाराज विक्रमादित्य काव्य-रसिक थे। वे कवियो को अनुदान मे असख्य मुद्राएँ प्रदान किया करते थे। एक दिन उनके मन्त्री ने निवेदन किया कि कवि

का कर्म ऐसे नवगीत का सृजन है जो मानवता को नया विश्वास प्रदान करें—

"नया गीत देता मानव को नया नया विश्वास,
नया गीत भरता जीवन मे, नया नया उल्लास।
नया गीत देता मानव को, नित नूतन सन्देश,
नया गीत जीवन का कर देता पूरा उद्देश्य।
× × ×
नया गीत मानवता कर करता नूतन शृंगार,
नया गीत देता जन-जन को जीने का अधिकार।
× × ×
नया गीत लाता बसुधा पर, युग का नया प्रभात,
नये गीत के स्वर किरणो से, खिलता युग-जलजात।"
(सर्ग १४, पृ० १४६)

मन्त्री ने प्रार्थना की कि यदि महाराज का आदेश हो तो यह घोषणा कर दी जाय कि नव गीत के सर्जक को एक लक्ष मुद्राओ का अनुदान दिया जायगा। महाराज विक्रमादित्य ने महामन्त्री के प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान करते हुए कलाकार की महत्ता को इन शब्दो मे प्रकट किया—

"कलाकार पैदा करता है मिट्टी से इन्सान।
× × ×
कलाकार पाषाणो मे भी भर देता है प्राण।
× × ×
कलाकार ही किसी राष्ट्र का करता है निर्माण।"
(सर्ग १४, पृ० १५१)

यह विचित्र घोषणा सुनकर कालिदास महाराज विक्रमादित्य के दरबार मे पहुँचे और अपनी सद्य नवीन रचना सुनाकर महाराज को मन्त्र मुग्ध कर दिया। पुरस्कार मे प्राप्त एक लक्ष मुद्राओं को भी कवि ने जनहित म सर्व करने का अनुरोध किया। महाकवि की काव्य-मेधा और समुन्नत विचार-दर्शन से प्रभावित होकर विक्रमादित्य ने उन्हे राजकवि का सम्मान प्रदान किया। उधर महाराज विक्रमादित्य की पुत्री प्रभावती कालिदास के व्यक्तित्व की गरिमा और चिन्तन की उदात्तता मे अभिभूत होकर सोच रही थी कि—

"कितना महान् कवि कालिदास, नयनो मे चिर उज्ज्वल प्रकाश,
अधरो पर उसके मधुर-हास, अन्तर मे छवि-ज्योत्स्ना वास;
वाणी मे सौरभ की मिठास, जन-जन के जीवन का विकास,
× × ×
कितना उन्नत कितना उदार, जन-जन का उर मे भरा प्यार,
अपने से उनको नही मोह, जन के जीवन से अधिक छोह,
वे वीतराग, वे महाभाग, वैभव से चिर उनको विराग।"
(सर्ग १५, पृ० १५६-१५७)

कालिदास को प्राप्त करने के लिए प्रभावती ने कवि से कविता-करना सीखना प्रारम्भ किया। वह रूपको के माध्यम से कविता की वाणी मे कवि से कहती कि वल्लरियाँ तरु से लिपट कर किस इच्छा को प्रकट कर रही हैं? परवाने लौ को चूम कर क्या सकेत करते हैं? चातकी रात भर गाकर क्या कहती है? वन मे फूली पीली सरसो की सुषमा का रहस्य क्या है? आदि। प्रभावती के अलको की मलयज मधुर गध, अधरो का पाटल रगा हास, भौहो का सुरधनु सम विभास और कजरारे नयनो का विलास कवि के मन मे वासना की प्यास उत्पन्न करने लगा। प्रभावती की रूप-माधुरी को देखकर कवि सोचने लगा कि—

"जीवन का सच्चा यही स्वर्ग,
यह सृष्टि काव्य का मधुर सर्ग।
वरदानो का यह प्रथम वर्ग,
इससे ही जगती का निसर्ग॥"
(सर्ग १५, पृ० १६३)

महाकवि के मन मे एक ओर अमद वासना जल रही थी तो दूसरी ओर विवेक कह रहा था—'मन बनो अन्ध'। कवि के अन्तर्जगत मे द्वन्द्व मच गया। अन्तत दिव्य-ज्ञान ने उसे सतर्क किया कि सच्चे कलाकार को रूप से अकथ प्यार होता है किन्तु वह ललाम छवि को लख कर डगमगाता नहा है, क्योंकि—

"कवि तो होता खुद रूपकार,
कवि छवि को छवि देता निखार।
छवि कवि के ढिग आँचल पसार,
माँगती सदा से रूप ज्वार॥
कवि के पैरो छवि सदा गिरी,
छवि से कवि की लेखनी बढी।

जो करती छवि की मूर्ति खड़ी;
जिसको लख आँखें हुईं हरी ।।"

(सर्ग १५, पृ० १६१)

कवि के मनस् जगत मे वासना और विवेक का यह द्वन्द्व चल ही रहा था कि प्रभावती ने अपने गोरी बाँहो की माल कवि के कंठ मे डाल दी और लज्जा से लाल हो गई। कालिदास ने बाँहो की माला को तोड़कर कलाइयो को झकझोर दिया। तिरस्कृता और अपमानिता प्रभावती ने जाकर अपनी माँ से कालिदास के कुकृत्य की झूठी कथा कहकर उसे राज्य-निष्कासित करा दिया।

जीवन की सघर्षपूर्ण परिस्थितियो से जूझता कवि कालिदास नर्मदा के तट पर बैठकर जगत के मृदु-कटु अनुभवो को कविता की भाषा मे प्रकट कर रहा था। कवि गा रहा था कि जीवन की राहे टेढ़ी-मेढ़ी और पंकिलपूर्ण हैं, किन्तु चलने वाले को मजिल मिल ही जाती है। जीवन-उपवन मे फूल और काँटे, चाँदनी और अँधियारी, हार और जीत तथा पतझर और बसन्त दोनो हैं। तूफानो मे अपने पर काबू पाने तथा ज्वारो के थपेड़ो को सह लेने वाला ही सच्चा मानव है। मानव ही सर्वोपरि है। मन की सीमाओ से उठ कर इन्सान ही भगवान बनता है और इन्सान से बढ़कर कुछ नही है—

"मानव से बढ़कर चाँद नही हरगिज सुन्दर,
मानव से बढकर कभी असीम नही सागर।
मानव-मन का हुँकार सिन्धु का गान बना,
मानव-मन का अगार बना नभ का दिनकर ।।"

(सर्ग १६, पृ० १७१)

अपनी कविता के अन्य छन्दो मे कवि ने कहा कि श्रम, मानव के तन का शाश्वत आभूषण है। श्रम की ज्वाला मे प्रदग्ध और श्रम के साँचे मे ढला हुआ व्यक्ति ही प्रगति-पथ पर अग्रसर होता है। मानव-जीवन की महिमा सत्य के सरक्षण मे है। सत्यवादी मनुष्य धरा को आलोकित कर अमरत्व प्राप्त करता है। कालिदास का ध्यान जैसे ही कविता से हटा तो उसने अपने समक्ष एक रूपसी को पाया। उसे देखकर कवि ने मन-ही-मन प्रश्न किया कि—

"लिए भौहें सुरधनुषाकार, लिए नयनो मे मदिर खुमार,
दृगो मे नील नील आकाश, कौन ? से मधु का पहला प्यार।

कल्पना कर छवि का शृंगार, भावनाएँ लेकर मनुहार,
रागिनी अपना रूप संवार, आज आई क्यों मेरे द्वार ।।"
(सर्ग १६, पृ० १७३)

उधर रूपसी ललना सोच रही थी कि यह कौन विश्व-कवि का अवतार लेकर साकार-गीत की भाँति नदी के तीर पर समुपस्थित है। यह कौन है ? जो हृदय मे जग का प्यार भरे इतना अधिक उदार होकर वाणी के फूलो से जगत को सुवासित कर रहा है। वार्तालाप के मध्य सुन्दरी ने बताया वह मालती है और कवि के गीत की मधुरिमा से अभिभूत होकर बरबस चली आई है। तत्पश्चात, वह चली गई और उसने जाकर राजकुमारी मल्लिका को कालिदास के गीतो की गरिमा का बखान करते हुए कहा कि—

"गीतो मे भरी अमृत की धार, गीत मे भरा हृदय का प्यार,
गीत मे कान्हा की बांसुरी, बज रही ले उर की झङ्कार।
गीत सुन झूम रहे तरुपात, झूमती और मलय की वात,
गीत सुन रही लहरियाँ नाच, गीत सुन खिल जाता जलजात ।।"
(सर्ग १६, पृ० १७६)

मल्लिका ने मालती को स्वर्णिम उपहार का प्रलोभन देकर कालिदास को राज महल मे लाने को कहा। मालती के अनुनय-विनय पर मालिन के वेश मे कवि राजमहल पहुँचा। मल्लिका ने कवि से प्रार्थना की कि मुझे ऐसे गीत सुनाओ जिससे मेरे तन-मन-प्राण तृप्त हो जायें, मेरे नयनो मे मधुमास छा जाए, मेरे निष्क्रिय जीवन मे उल्लास का भाव जगे। राजकुमारी ने ऐसे गीत सुनने की कामना की, जिनसे—

'तिमिर मे जागे ज्योतिर्हास, धरा पर झुक आए आकाश,
स्वर्ग का मोह सदा को त्याग, हृदय मे भर कर प्रेम सुवास।
मनुज पर करे मनुज विश्वास, मनुज पर टिके मनुज की आस,
मनुज के प्राणो की आवाज, पहुँच जाए प्राणो के पास।
धरा से मानव का हो प्यार, करे धरती का वह शृंगार,
नवल अंकुर बन फूटे सदा, हृदय के मानव का उद्‌गार।
गीत सुन रुक जाए तूफान, गगन मे थम जाए दिनमान,
पिघल जाए निर्मम पाषाण, झुके गिरि का झूठा अभिमान।
ज्योत्स्ना से धरती हो स्नात, झरे रिम-झिम की मधु बरसात,
गीत की किरणो से प्रस्फुटित, विश्व का हो मुरझा जलजात।

हृदय मे उठे प्रीत का ज्वार, ज्वार से प्लावित हो ससार,
मिले मानव से मानव गले, प्रेम से ईर्षा-द्वेष बिसार।"
(सर्ग १६, पृ० १८

महाकवि कालिदास ने मल्लिका के आग्रह पर अनेक मधुर गीत सुनाए
जिनकी प्रथम पंक्तियाँ अविकल रूप से निम्नोद्धृत हैं —

१. चाँद को देखूँ मैं या कि देखूँ तुम्हे,
बोल दो रूप की उर्वशी बोल दो ॥
(सर्ग १६, पृ० १८४)

२. फैल गया शरद हास।
अब न गगन तिमिर वास ॥ (सर्ग १६, पृ० १८५)

३. मुझे स्वर्ग की नही कामना, मुझे मही से प्यार।
लहराता है जहाँ अहर्निश सुख का पारावार ॥
(सर्ग १६, पृ० १९०)

४. गीत दो ऐसा मुझे जो गा सकूँ।
प्रश्न जीवन के कठिन सुलझा सकूँ ॥
(सर्ग १६, पृ० १९२)

५. विष के घूंट पियो तो जानें।
औरो के सुख स्वार्थ लिए तुम,
सचमुच अगर जियो तो जानें ॥ (सर्ग १६, पृ० १९३)

६. श्रम की ज्योत्स्ना से जग का आगन ज्योतिर्मय हो।
श्रम पूजित हो देवो से बढ़, श्रम की सदा विजय हो ॥
(सर्ग १६, पृ० १९४)

७. तुम मेरे गीतों को समझो या मत समझो।
आने वाली पीढ़ी तो इनको समझेगी ही ॥
(सर्ग १६, पृ० १९५)

८. समय की शिला पर लिखे गीत मैंने।
धुलेंगे नही जो मिटेंगे नही जो ॥
(सर्ग १६, पृ० १९६)

९. दर्द से भींगे हुए गीत स्वरों में एक दिन।
गीत की बेला; कि हँसना चाँद अनमना ॥
(सर्ग १६, पृ० १९७)

१०. ग्रामीण नववधू की शर्मीली पलकों सी।
उतरी नभ से यह पावस की साँझ मदभरी ॥
(सर्ग १६, पृ० २०२)

११. विषम गरल भी पी लेना आसान बात है।
नील कंठ जो सुधा उगलता पी हालाहल।
(सर्ग १६, पृ० २०४)

कालिदास की गीत-सुधा का पान कर मल्लिका सहित समस्त समुपस्थित राज-समाज गद्-गद् हो उठा। कवि की सभी ने मुक्तकंठ से भूरि-भूरि प्रशंसा की। सिंहल के राजकुमार कुमारदाससिंह ने कवि को सिंहल आने के लिए सादर आमन्त्रित किया। कालिदास की ख्याति सर्वत्र सौरभ की भाँति फैल गई। महाराज विक्रमादित्य ने सहस्र दूत भेजकर कालिदास को ढूँढ निकाला प्रभावती ने अपने दुष्कृत्य पर पश्चाताप प्रकट करते हुए क्षमा-याचना की तथा महाराज ने कालिदास को पुन राजकवि का सम्मान प्रदान किया। किन्तु स्वाभिमानी कवि ने नम्रता-पूर्वक क्षमा याचना कर ली। अष्टदश सर्ग मे महाकवि को विद्योत्तमा के प्रति स्वकृत अनुदार व्यवहार पर पश्चाताप होता है और वे महानता की सजीव प्रतिमा विद्योत्तमा से क्षमा याचना करने उसके द्वार पहुँचे। विद्योत्तमा अब ककालवत् थी। उसने कवि से प्रार्थना की कि अब तुम सम्पूर्ण विश्व को काव्य का प्रकाश प्रदान करो।

विद्योत्तमा ने कहा—

"अब बाँधूगी मैं नही तुम्हे मोह के पाश,
तुम्हे विश्व कवि देखकर होगा मुझे हुलाश।
तुम से सारा विश्व ये पाये नित आनन्द,
मेरी आकाक्षा यही जाओ प्रभु सानन्द ॥"
(सर्ग १८, पृ० २१०)

पति की चरण-धूलि लेकर विद्योत्तमा ने पति को सादर विदा किया। ऊनविंश सर्ग मे कविश्री तिलक ने 'मेघदूत', 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' और 'कुमार सम्भव' की सृजन-प्रेरणा के स्रोतो का वर्णन किया है। इसके पश्चात् कवि की सिंघल यात्रा का उल्लेख है। एक दिन कवि ने स्वप्न मे सिंघल मे धधकती हुई चन्दन-चिता देखी। उन्हें सिंहल-नरेश कुमारदास सिंह के आमंत्रण का स्मरण हो आया और वे चलते हुए सिंहल पहुँचे। वहाँ एक नर्त्तकी का आतिथ्य ग्रहण कर कवि ने रात्रि को उसके वहाँ विश्राम किया।

सिंहल नरेश ने एक समस्यापूर्ति के उपलक्ष में आधा राज्य देने की घोषणा की थी। समस्या थी—

"कमल में खिलते कमल कहते सभी,
पर नहीं देखा गया ऐसा कभी।"

(सर्ग १६,पृ० २३२)

उस रूपबाला नर्त्तकी को कवि ने सहज भाव से इस समस्या की पूर्ति बता दी—

"मुख कमल में खिल रहे दृग के कमल,
देखते हम प्यार से जिन को विमल।"

(सर्ग, १६, पृ० २३२)

नर्त्तकी ने राज्य-प्राप्ति प्रलोभन में सोते हुए कवि कालिदास का तलवार से वध कर दिया। और महाराज कुमारसिंह के यहाँ पहुँच कर समस्यापूर्ति कर दी। किन्तु महाराज को नर्त्तकी की मेधा पर विश्वास नहीं हुआ। अन्ततः उन्होंने नर्त्तकी से घटित वृत्तात को जान लिया। महाराज कुमारसिंह ने चन्दन की चिता बनाकर महाकवि का ससम्मान दाह-संस्कार किया। महाराज इतने खिन्नमन. हो गये थे कि वे स्वयं भी उसी चिता में कूद कर भस्मसात हो गए। इसके पश्चात् नर्त्तकी भी चिता की लपटों में कूद कर राख हो गई। इस दृश्य की विडम्बना पर 'कालिदास' महाकाव्य के रचयिता का निम्नोद्धृत कथन कितना सार्थक प्रतीत होता है कि—

"अगरु चन्दन की चिता पर जल रही विश्व-कवि की लाश,
आग की लपटें विहँस कर रही मनुज का परिहास।
जीत लो चाहे भले तुम जल-गगन-पवमान;
जीत पाओगे स्वयम् को पर न तुम इन्सान।

(सर्ग १६, पृ० २३५)

इस प्रकार आलोच्य महाकाव्य के माध्यम से महाकवि कालिदास की सम्पूर्ण जीवनी का काव्यात्मक-समाख्यान प्रथम बार प्रस्तुत किया गया है। कालिदास की इतिहास-सम्मत प्रामाणिक जीवनी तो अनुपलब्ध है; फिर भी भारतीय जन-जीवन में प्रचलित किंवदंतियों, ऐतिहासिक अनुश्रुतियों एवं लोकचेतना से समुपलब्ध तथ्यों का समाकलन कर कल्पना मिश्रित आधार पर श्री तिलक ने प्रस्तुत महाकाव्य का इतिवृत्तात्मक संयोजन किया है। मार्मिक प्रसंगों की सृष्टि, मौलिक उद्भावनाओं तथा सर्गबद्धता के कारण 'कालिदास' काव्य का कथा-विधान महाकाव्योचित गरिमा से पूर्ण है। कालिदास के चरित्र में जिस

नैतिक-दृढता, कर्त्तव्यनिष्ठा, स्वाभिमान, आत्म-गौरव, सजगता, विचार-गाम्भीर्य और भाव प्रवणता का उन्मेष कवि ने दर्शाया है, उसके कारण महाकवि का चरित्र नितान्त प्रेरक और स्पृहणीय बन पडा है। विद्योत्तमा, प्रभावती, मालती प्रभृति रूपसी कुल ललनाओ के परिसन्दर्भ मे महाकवि के चरित्र-विकास मे अन्तर्द्वन्द्व की अवतारणा और अन्य मनोवैज्ञानिक सस्पर्श 'कालिदास' के रचयिता की चरित्र-विश्लेषण सम्बन्धी मौलिक सूझ-बूझ के परिचायक हैं। सयोग-शृ गार की परिदृश्य योजना मे कवि सिद्धहस्त रचनाकार प्रतीत होता है, क्योंकि प्रत्येक मिलन प्रसग को उन्होने नितान्त आकर्षक एव प्रभावपूर्ण ढग से समायोजित किया है। काव्य की भाषा सम्प्रेषणीय और भावाभिव्यजक तथा शैली प्रसगानुकूल माधुर्य एव ओजगुणमयी रही है। शब्द-चयन मे परिष्कार की अपेक्षा कवि से की जा सकती है। क्योंकि कहीं कही ठेठ उर्दू की शब्दावली के साथ सस्कृत गर्भित पदावली का प्रयोग अवाछनीय ही कहा जायगा। किन्तु ऐसे स्थलो पर भी भाषा भाव-सवहन करने मे सर्वथा समर्थ रही है। शिल्प-सरचना के अन्य उपकरणो (यथा छन्दविधान, बिम्ब-योजना, प्रतीक-सयोजन, वर्णन कौशल, प्रकृति चित्रण आदि) की दृष्टि से भी आलोच्य कृति पूर्ण है। सृजन-उद्देश्य की महार्घता का उल्लेख तो प्रारम्भ मे ही किया जा चुका है। भारतीय सास्कृतिक चेतना के अग्रदूत और मानवीय-संवेदनाओ के अमर गायक के रूप मे महाकवि कालिदास की जीवन गाथा भी उतनी ही प्रेरक है जितनी कि उनकी काव्य कृतियाँ। मानवतावादी-विचारदर्शन की मूलभूत उपपत्तियो एव अवधारणाओ को कवि ने सहृदतापूर्वक काव्य के कलेवर मे आग्रहयुक्त होकर सन्निविष्ट किया है और इसके कारण काव्य का वैचारिक स्तर समृद्ध हुआ है। समष्टि रूप मे महाकाव्य-सरचना के रूप-विधायक तत्त्वों की दृष्टि से 'कालिदास' एक सफल काव्यकृति है।

'झाँसी की रानी' महाकाव्य

अप्रतिम शौर्य की आग्नेय हुँकृति

८

'झाँसी की रानी' महाकाव्य
अप्रतिम शौर्य की आग्नेय हुँकृति

विश्व भर के महाकाव्यों के विकास-क्रम एवं संरचनात्मक प्रवृत्तियों के अनुशीलन-परिशीलन से ज्ञात होता है कि महाकाव्यों की रचना का मौलिक आधार वीरगाथाएँ थीं, जिन्होंने कालान्तर में गाथाचक्रों (Cycles of Ballads) का रूप ग्रहण किया और जिनसे महाकाव्य का मौलिक रूप निर्मित हुआ। वीर-गाथाओं में वीरों का प्रशस्ति-गान होता था। भारतीय वाङ्मय के अन्तर्गत वेदों में इन्द्र एवं अन्य शक्तिशाली देवों (वीरों) के कार्यों की गीतात्मक प्रशस्तियाँ मिलती हैं जिन्हें दान-स्तुति, गाथा-नाराशंसी और कुन्ताप सूक्त कहा गया है। विन्टरनित्स प्रभृति विद्वानों के मतानुसार प्रशंसात्मक सूक्तों से ही महाकाव्यों का प्रादुर्भाव हुआ है।[1] भारत ही क्या ? प्रत्येक देश के साहित्येतिहास में आरम्भिक युग, वीर-युग (Heroic Age) के रूप में ही जाना गया है और वीरता की भावना तथा वीर पुरुषों का काव्यात्मक समाख्यान इस युग की काव्य-कृतियों का मूल प्रतिपाद्य रहा है। इस दृष्टि से भारत के आर्ष महाकाव्यों (रामायण और महाभारत), हिन्दी के आदि महा-

---

1 "The songs in praise of man probably soon developed into epic poems of considerable length, i e., heroic songs, and into entire cycles of epic songs entering around one hero "—M. Winternitz, *A History of Indian Literature*, Vol I, Page 314

काव्य (पृथ्वीराज रासो) तथा वीरगाथाकालीन काव्यकृतियों को उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है, जिनमे वीरत्व का स्वर एक उद्‌घोष के रूप मे प्रतिध्वनित हुआ है। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के हल्दीघाटी, आर्यावर्त, जौहर, विक्रमादित्य, दैत्यवश, अगराज, जयभारत, रश्मि-रथी सेनापति कर्ण, तारकवध, चन्द्रगुप्त मौर्य, गुरुगोबिन्दसिंह शीर्षक महाकाव्यों में वीरो के अनन्त शौर्य, पराक्रम और पुरुषार्थ के रोमाचक आख्यान विनियोजित हैं। इन वीर-रसात्मक महाकाव्यो मे इतिहास प्रसिद्ध और लोकविख्यात नरपुगवो के पराक्रम, पुरुषार्थ, शौर्य, स्वाभिमान और बलिदान की गौरवगाथाएँ ही सकलित है। इसी परम्परा की काव्यकृति श्री श्यामनारायण प्रसाद कृत 'झाँसी की रानी' महाकाव्य है जिसमे महारानी लक्ष्मीबाई की अप्रतिम शौर्य सम्पन्न लोक विश्रुत उत्सर्गमयी जीवन-गाथा को महाकाव्योचित गरिमा से मडित करके बाईस हुँकृतियो (सर्गो) मे प्रस्तुत किया गया है। काव्यारम्भ से पूर्व 'परिचय' खण्ड के अन्तर्गत महारानी लक्ष्मीबाई के महिमामय व्यक्तित्व का निरूपण करते हुए कवि ने उचित ही कहा है कि वह स्वतन्त्रता के ध्वज को फहराने वाली रणचण्डिका थी। महारानी ने बुन्देलखण्ड मे नव-जागरण का महान् उद्‌घोष करके झाँसी के निद्रा-निमग्न जन-जीवन मे नयी चेतना का सचार किया तथा मातृ-भूमि की अर्चना मे अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया—

"लेकर स्वतन्त्रता के ध्वज को निर्मम फहराने वाली थी।
रणचण्डी के क्रोधानल सम बनकर लहराने वाली थी॥
वह राज योग की भस्म लगा, नित अलख जगाने वाली थी।
रण भेरी के रव मे स्वर भर, वह वीर बनाने वाली थी॥
'तुम जागो वीर बुन्देलखण्ड,' यह मन्त्र फूँकने वाली थी।
निज मातृ भूमि के अर्चन मे, यह नहीं चूकने वाली थी॥
निद्रित झाँसी के कण-कण मे, नवशक्ति जगाने वाली थी।
इस वीर भूमि की पूजा मे, सर्वस्व चढाने वाली थी॥
(परिचय, पृ० ७)

'झाँसी की रानी' महाकाव्य के सम्पूर्ण कलेवर मे महारानी लक्ष्मीबाई की आग्नेय दृष्टिकोण का ही प्रतिध्वनन है। भारतीय इतिहास की गौरवपूर्ण परम्परा मे महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, गुरुगोविन्दसिंह, धोपा बाप्पा, पन्नाधाय महारानी पद्मिनी, हाडारानी, कर्णवती, ताराबाई जैसे अनेक युगान्तरकारी

व्यक्तित्व हुए हैं जिन्होंने जातीय-स्वाभिमान, राष्ट्रीय-गौरव और मातृभूमि के हितरक्षण मे अपना सर्वस्व समर्पित करके उत्सर्ग के उच्च कीर्तिमान स्थापित किए हैं किन्तु महारानी लक्ष्मीबाई का यशस्वी चरित्र तो बलिदान का ऐसा देदीप्यमान आलोक-स्तम्भ है, जिसके ज्योतिर्मय विकीरण से असख्य प्रसुप्त जनो मे नव-चेतना का आविर्भाव हुआ । ऐसी 'नवचेतना' जिसने सहस्राब्दियो से पराधीन जनगण को स्वाधीनता के महायज्ञ मे प्राणो को आहूत कर देने के लिए अनुप्रेरित किया । भारतीय राष्ट्रीय-स्वाधीनता-आन्दोलन की विप्लवी-भूमिका के निर्माण मे सन् १८५७ की क्रान्ति अविस्मरणीय घटना है और इस क्रान्ति की अग्रदूतिका और प्रेरणादात्री के रूप मे महारानी लक्ष्मीबाई का बलिदान निश्चयत. अद्वितीय है । झाँसी की रानी ने अँग्रेजी-साम्राज्यवाद से उस समय टक्कर ली जब उनका शासन-सूर्य मध्याह्न के प्रखर-तेज से दीप्तिमान था ; बड़े-बड़े राजे-महाराजे श्रद्धानवत होकर समुद्र पार बैठी महारानी विक्टोरिया का यशोगान करते हुए 'यूनियन-जैक' को अपनी राज-ध्वजा के साथ फहराते थे । अँग्रेजी साम्राज्य की अपरिमित शक्ति-सामर्थ्य का रानी ने सीमित-साधनो किन्तु असीमित पराक्रम और स्वाभिमान के बल पर लोहा लेकर अँग्रेजी-शासन की नींव को झकझोर कर ऐसा जर्जरित कर दिया कि सन् १९४७ मे वह ढह ही गया । इसीलिए भारत के स्वाधीनता-सगर मे महारानी झाँसी के अवदान का पुण्य स्मरण करते हुए मनीषी कवि ने कहा है कि—

"रानी का रण-हुंकार प्रबल, नभ में है अब भी गूँज रहा ।
रानी का जय-जयकार सतत, भारत-मानस मे गूँज रहा ।।
रानी है अब भी डोल रही, कण-कण मे नूतन शक्ति बनी ।
× × ×
नश्वर तन से है दूर, किन्तु, जिह्वा पर अमर कहानी है ।
स्वातन्त्र्य वरस कहता रहता, माँ झाँसी वाली रानी है ।।"
(परिचय, पृ० ८)

'झाँसी की रानी' महाकाव्य के समारम्भ मे कवि ने काव्य की सृजन-प्रेरणा पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि रानी की अमर-कहानी यद्यपि बीते हुए युग की बात है किन्तु यह वह वीर मन्त्र है, जिसके द्वारा भारत का कण-कण जगाया जा सकता है । जर्जरित जवानियो, रो रही आर्यभूमि और सो रहे गुरुद्वारो का एक मात्र सहारा यही गौरव-गाथा है । लक्ष्मीबाई के जन्म को कवि ने दैवी-शक्ति का आविर्भाव कहा है । मोरोपन्त की गर्भिणी पत्नी ने स्वप्न मे देखा कि कोई गर्भस्थ-शक्ति उनसे कह रही है कि निराश मत हो, मैं पृथ्वी

पर आकर जन-जन मे ज्योति जगाऊँगी। अवला को सवला बनाकर भारत की ईति-भीति को दावाग्नि के समान जला दूँगी। लक्ष्मीवाई के प्रसव को कवि मे महाशक्ति का भू पर अवतरण ही माना है :—

"वह एक शक्ति भू पर आई,
सहसा विपदा-घन-पटल चीर।
उस व्रती विप्र की दुहिता बन,
लक्ष्मी-लक्ष्मी बन कर आई॥"

(पहली हुँकार, पृ०४०)

मनू (महारानी लक्ष्मीवाई का बचपन का नाम मनू था, उसे छबीली भी कहते थे) के जन्म के चौथे दिन ही माँ का निधन हो गया। कुछ समय पश्चात् मोरोपन्त के आश्रयदाता चिमा जी भी स्वर्ग-सिधार गए। तभी बाजीराव पेशवा के निमन्त्रण पर मोरोपन्त पुत्री सहित काशी छोड़कर बिठूर चले गए। शैशवावस्था से ही मनू निर्भीकता और अटूट धैर्य का परिचय देने लगी थी। एक दिन बिठूर के बाहर नाना साहब और राव साहब के साथ मनू घोडे पर सवार होकर जा रही थी, तभी घुड़दौड़ मे नाना साहब घोडे से गिर कर घायल हो गए। मनू नाना साहब को अपने घोडे पर बैठा कर द्रुत गति से किले मे ले आयी और अपनी अश्वारोहण-कला का प्रभूत परिचय दिया। घायल नानासाहब को देखकर मनू ने करुणा-विगलित भाव-प्रदर्शन के स्थान पर उद्‌बोधनात्मक-स्वर मे कहा कि—

"नाना साहब! क्यो सोते हो, बलहीन बने हो मर्दाने।
क्या इसी भुजा का बल लेकर, थे चले गगन पर भू लाने॥
× × ×
जागो-जागो हे मौनव्रती! अभिमान शान की रक्षा कर।
नर के मुण्डो की रक्षा कर, गौ के झुण्डो की रक्षा कर॥"

(दूसरी हुँकार, पृ० ५४-५५)

घायल नानासाहब को देखकर सभी लोग बहुत घबराए हुए थे किन्तु मनू अपने पिता मोरोपन्त से कह रही थी कि जरा सी चोट लगने से ही लोग इतने व्यग्र और चिन्तालीन क्यों हैं? शोणित देखकर घबरा जाना क्षत्रिय-धर्म नही है। क्षत्रिय का तो अग-अग भी कट जाय तो भी उसे आगे ही बढ़ना चाहिए—

'यह है क्षत्रिय का धर्म नहीं, शोणित को लख घबरा जाना।
उसका तो यह बाना ही है, निर्भय अन्तस से नट जाना॥

अवयव-अवयव भी कट जाए, पर गरज-गरज आगे बढना ।
शस्त्रो से रिपु को मार-मार, जयमन्त्र सतत पढते रहना ।।'

(दूसरी हुँकार, पृ० ५७)

प्रत्युत्तर मे मोरोपन्त ने कहा, बेटी ! नाना का घाव दो अगुल बडा था, न जाने कितना रक्त-स्राव हुआ होगा ? यह सुनकर छबीली ने कहा, तात ! मुझे तो सागर को शोणित से भर लडने वाले वीरो का इतिहास सुनाते थे । आपने ही शोणित से पिचकारी भर कर फाग खेलने वालो और शरीर पर अस्सी घाव लगने वाले पौरव नरेश का आख्यान सुनाया था, तो नाना साहब के लिए इतनी चिन्ता क्यो ? मोरोपन्त ने कहा—नाना साहब सोलह वर्ष का बालक है, वह इतना घातक घाव नही सह सकता । यह सुनकर छबीली ने आवेश पूरित स्वर मे कहा कि सोलह वर्ष के वीर बालक अभिमन्यु ने चक्रव्यूह को खण्ड-खण्ड किया था । मोरोपन्त ने पुन कहा कि बेटी ! अब वह समय नही है । ये कथा-आख्यान बीते युग के आदर्श थे । आज तो स्थिति यह है कि—

'अब अँग्रेजो के वैभव का, है सूर्य गगन मे चमक रहा ।
जिससे हत होकर देश-तेज, भूतल मे सोया दमक रहा ।।'

(दूसरी हुँकार, पृ० ६१)

यह सुनकर मनू उत्तेजित हो गई और बोली कि आपने कायर उर की बात कही है । मैं अपने जीवन मे कर्णवती, ताराबाई, हाडारानी और जीजाबाई के आदर्शो का अनुकरण करूँगी । मैं कभी भी विघ्न बाधाओ से डर कर शत्रु के आगे नतमस्तक नही होऊँगी—

'मैं डरने वाली नही तात !
विघ्नो के तप्त अगारो से ।
यह सिर न कभी झुक सकता है,
बैरी के तीखे वारो से ।।'

(दूसरी हुँकार, पृ० ६२)

पिता-पुत्री के उद्धृत परिसवाद से स्पष्ट है कि महारानी लक्ष्मीबाई बाल्यावस्था मे ही वीरता के जीवन्त आदर्शो को अपने व्यक्तित्व और चिन्तन मे आत्मसात् कर चुकी थी । झाँसी-नरेश गगाधर राव से विवाह हो जाने के पश्चात् मनू महारानी लक्ष्मीबाई बन गई । वैवाहिक-जीवन की साज-सज्जा और हास विलास ने सुख-समृद्धि के स्थान पर महारानी के मन मे एक विचित्र द्वन्द्व को जन्म दिया । वह सोचने लगी कि इस भव्य-भवन मे बैठ कर मैं भारत के उद्धार का कोई ठोस प्रयत्न नही कर सकती । भोगमय जीवन की साज-

मज्जा मेरे पौरुष का परित्याग करा रही है। मेंहदी रचे हाथ चपल तुरग की वल्गा पकड़ने से वर्जित कर रहे हैं। आज भारत के नभ पर काले मेघ घहरा रहे हैं। भारत-वसुन्धरा पर भूचाल आया हुआ है। देश के जन-जीवन मे पतझड़ का निवास है और मैं दासियो के बीच बैठी सुखपूर्वक शृंगार-प्रसाधनो द्वारा रूप-सज्जा मे व्यस्त हूँ। जब बहिनो का अरुण-सुहाग धुल रहा हो तो मैं फाग और बहार का आनन्द कैसे लूट सकती हूँ—

'धुले बहनो का अरुण-सुहाग, मचा हो भूतल पर चीत्कार।
नित्य मैं खेलूं हँस-हँस फाग और लूटूँ व्यजन-बहार।।'
(पाँचवी हुँकार, पृ० ६०)

यह सोचते-सोचते रानी अधीर हो गई। उसकी बाँहे असि-धारण की उत्कट आकाक्षा से फड़कने लगी। किन्तु वह विवश थी। पति-आज्ञा का निर्वाह और विवाह का धर्ममय बधन उसे इस ओर बढने से रोक रहे थे। महारानी अनुभव कर रही थी कि मानो महल का कण-कण नित्य उसका उपहास कर रहा है। इसी अवसर पर तीन दासियो ने प्रवेश किया। रानी ने दासियो से उनकी दिनचर्या एव जीवन-लक्ष्य के सम्बन्ध मे अनेक प्रश्न किए, जिनके उत्तर मे दासियो ने सीधे-साधे शब्दो मे कहा कि उनका स्वर्ग अपवर्ग सेवा कर्म मे निहित है। यह सुनकर महारानी लक्ष्मीबाई ने दासियो को उद्बोधन करते हुए नारी की गौरव-गरिमा एव शक्तिमत्ता से अवगत कराके उन्हे देश-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत किया। महारानी ने कहा कि क्या तुमने कभी समर देखा है? कभी स्वदेश-अनुराग के लिए कोमल-तन को तपाया है? क्या तुमने वीरो की जयकार की है? घोडो पर आरूढ होकर कभी तीरो से लक्ष्य भेद किया है? आदि। महारानी की प्रश्नावली सुनकर दासियो मे हर्ष छा गया। उनकी प्रसुप्त-चेतना नव्य उत्कर्ष-भाव से भर गई। तभी महारानी लक्ष्मीबाई ने नारी-सेना सगठित करने का उदात्त सकल्प किया—

"जगाऊँगी फिर नारी-जाति, करूँगी सेना को तैयार।
चढाकर मुण्डो का नवहार, करूँगी माता का शृंगार।।
भले ही हो दुःखो का घात, किन्तु नस-नस मे फहरे केतु।
चढाऊँगी अरि-उर का रक्त, बना नारी-सेना का सेतु।।
× × ×

जगाया जा सकता है आज, पुनः सतियों का पावन त्याग।
लगाई जा सकती है आज, पुन पतितों के उर मे आग॥
बनाकर मातृ-भूमि को मुक्त, किया जा सकता है उत्थान।
उडाया जा सकता है दिव्य, अन्य देशो मे अरुण-निशान॥"

(पाँचवी हुँकार, पृ० ६४-६५)

महारानी ने निश्चय किया कि मैं किंकरियों को तलवार सिखाकर कुशल घुड़सवार बनाऊँगी। जिस तन को ये फूलो से सजाती है, उसे निषग, कटार और भाले से सज्जित कराऊँगी। रनिवासो को शस्त्रागार मे बदल दूँगी। रानी ने दासियों से यह शपथ ग्रहण करने को कहा कि—

'शपथ खाओ छोडोगी राग,
शपथ खाओ कर दोगी त्याग।
शपथ लो अर्पित कर निज प्राण,
जगाओगी इस भू का भाग॥'

(पाँचवी हुँकार, पृ० ६६)

महारानी की इच्छानुसार दासियाँ कृत-सकल्प हो गई। रनिवास के रग-ढग मे इस आपातिक परिवर्तन को परिलक्षित कर महाराज गगाधर राव ने महारानी लक्ष्मीबाई से कहा, प्रिये! तुम प्रतिपल युद्ध विद्या का ज्ञान सखियो को व्यर्थ ही कराती हो। इनका कर्त्तव्य तो गृहिणी-धर्म का पालन करना है। यह सुनकर महारानी ने रूपनगढ की राजसुता, कर्णवती, हाडारानी आदि कुल-ललनाओ की वीरगाथाओ को उदधृत करते हुए स्पष्ट शब्दो मे कहा—

'देश भक्ति का मानदण्ड है,
ललनाओ की जीवित शक्ति।
ललनाओ की सुदृढ भक्ति ही,
विमल देश की है शुभ-भक्ति॥'

(छठी हुँकार, पृ० १०६)

पिता मोरोपन्त और पति गगाधर राव से हुए परिसवादो के उपर्युक्त उद्धृत अशो से स्पष्ट है कि कन्या और कुल-ललना दोनो ही रूपों में हम महारानी लक्ष्मीबाई की वाणी मे वीरत्व-भाव की आग्नेय हुँकृतियों का उद्घोष पाते हैं। काव्य की सातवी हुँकार (सप्तम सर्ग) मे महारानी का मातृ-रूप द्रष्टव्य है। माता-लक्ष्मीबाई अपने नन्हे शिशु को लोरी सुनाते हुए वीर-भावनाओ की ही अभिव्यक्ति करती है। वह कहती है—

"चुटकी बजा बजा कर कहती लाल ! बड़े हो जाओ तुम।
वीर शिवा, राणा प्रताप सा कर्म क्षेत्र अपनाओ तुम ॥
पार्थ-पुत्र से होकर प्यारे ! नित्य अनीति मिटाओ तुम।
माता का शृंगार पुन ह लाल ! प्रसन्न सजाओ तुम ॥
बरछी भाले, तीर, कटारी फिर ले विहँस जगाओ तुम।
लाल धरा पर पूर्व काल सा, गौरव-गान सुनाओ तुम ॥"

(सातवी हुँकार, पृ० १४४)

अपने पुत्र के भावी जीवन के सम्बन्ध मे महारानी कल्पना करती थी कि इसे गीता पढाऊँगी और बाल्यावस्था से ही घोडे पर चढना सिखाऊँगी । छोटी सी तलवार थमा कर इसे लडना और समरागण मे शत्रु दल पर प्रहार करने की कला म पारगत करूँगी । कुरुक्षेत्र के वीरो की गौरव-गाथा सुनाकर इसे सत्य, स्वत्व और स्वदेश-रक्षण-हेतु बलिदान होने के लिए प्रेरित करूँगी । किन्तु दुर्भाग्यवश महारानी की आशाएँ धूल-धूसरित हो गयी । महारानी की आँखो का तारा तीन मास की आयु मे ही चल बसा । कवि के शब्दो मे—

"हाय ! लाल तीन मास मे,
शून्य गोद करके जाना ।
वश दीप पूजा से पहले,
झिल-मिल करके बुझ जाना ॥"

(सातवी हुँकार, पृ० ११७)

'आठवी हुँकार' मे हम रानी को शोक सतप्त पाते हैं । किन्तु शोकातुर महारानी भी भारत के गौरवमय अतीत का ही पुण्य स्मरण कर रही थी । महल के भीत चित्रो को देखकर वह सोच रही थी कि यह कैसा विधि का विधान है ? जिस भारत भूमि का यश फारस ईरान तक फैला हुआ था, वही आज हताश पडी है । रास का आगार ब्रजधाम, काशी, चित्रकूट और धीर भूमि मेवाड सभी मे सत्रस्त नीरवता का साम्राज्य है । महारानी पद्मिनी, देवल देवी, कर्णवती, ताराबाई, दुर्गावती, हाडारानी और सारन्धा की दिव्य मूर्तियो ने महारानी का देशोद्धार के लिए प्रेरित किया । उसने डलहौजी की राज्य हडपने की नीति को असफल बनाने के लिए दामोदर को गोद ले लिया । दूरदर्शी महारानी ने दामोदर के यज्ञोपवीत के मिस सभी नरेशो को निमत्रित कर, उनसे देश की राजनीतिक स्थिति पर परामर्श करने का अवसर ढूँढ निकाला । कवि के शब्दो मे—

"यज्ञोपवीत का उत्सव तो, केवल अतिव्याप्त बहाना था।
अरि की आँखो मे धूल झोक, भारत को पुन जगाना था॥

× × ×

रिपु-दल की कड़ियाँ तोड तोड, माता को मुक्त कराना था।
अपना प्रसिद्ध वह गौरव ध्वज, फिर से जग मे फहराना था॥"

(नवी हुँकार, पृ० १३३-१३४)

दामोदर के यज्ञोपवीत के अवसर पर दिए गए वक्तव्य मे महारानी लक्ष्मीबाई की हुँकार पुन सुनाई देती है। महारानी ने ओजपूर्ण शैली मे कहा कि वीरो! अब सोने का समय नही है। यह समय हृदय के रक्त से मातृ-भूमि के पाद-प्रक्षालन का है। भीष्म पितामह की भाँति दृढ प्रतिज्ञ हो जाओ। कुम्भज ऋषि के समान गण्डूलि पर रखकर हँसते हुए समर सिन्धु का पान करो। सघन-वन सदृश्य अरि-दल को दावानल बनकर ध्वस्त कर दो। हिमालय के सिर पर स्वतन्त्रता का राज्यकेतु फहरा दो। यह समय रनिवासो मे केलि क्रीडाओ का नही अपितु स्वाधीनता सगर मे जूझने का है। अपनी वक्तृता को समाप्त करते हुए रानी ने कहा—

"अब समय आ गया है रिपु को सगर का पाठ पढाने का।
माता के मदिर मे हँस कर अब प्राण-प्रसून चढाने का॥
भूलें न कभी यह वीर वेष, वीरो मे भरी जवानी है।
कण कण मे गूँज रही प्रतिपल, राणा की गाथा मानी है॥"

(नवी हुँकार, पृ० १३६)

महारानी की ओजस्वी वक्तृता सुनकर समस्त राज समाज तमतमा उठा। दीवान जवाहरसिंह, रघुनाथसिंह आदि नरेशो ने अरि दल के अत्याचारो से लोहा लेने की प्रतिज्ञा की। महारानी लक्ष्मीबाई ने इस अवसर पर गगाजल लेकर वीरो की तलवारो का जय मत्रोच्चार करते हुए अभिषेक किया और जय निनाद से सारा गढ गूँज गया।

दसवी हुँकार मे कवि ने अँग्रेजी शासन की नृशसताओ का निरूपण किया है। बीबीगढ मे मृत गोरो का बदला लेने के लिए अँग्रेजो ने द्विजो को पकड-पकड कर उनसे मृतो का शोणित चटवाया। अजनाले मे छयासठ बच्चो को एक गुम्बद मे बद करके तडपा-तडपा के मार डाला। फर्रुखाबाद के नवाब को शूली पर लटका दिया। अवध मे माँ-बहनो की लाज से फाग खेला गया। रगून भी रक्त रजित हो गया। कवि के अनुसार—

"जाति-धर्म पर ऐसा सकट, माँ-बहनो का हा हा कार ।
जलते हुए घरो के भीतर, बूढ़े बच्चो का चीत्कार ॥
जलती हुई लाज की होली, जलता मिटता अपना देश ।
अपने बच्चो के शोणित से, रगा हुआ माता का वेश ॥

× × ×

भूल जायें सब मन्त्र ऋचाएँ, भूलें कलमा और कुरान ।
भूलें सांख्य योग का पढना, भूलें पोथी और पुरान ॥
भूले हिन्दू जप, तप, व्रत को, मुस्लिम रोजा और नमाज ।
मसजिद मे सूखे पैगम्बर, मन्दिर मे रोएँ सुरराज ॥"

(दसवी हुँकार, पृ० १४६-१४७)

महारानी आए दिन अँग्रेजो के अत्याचारो के विवरण सुन रही थी । उसका खून खौलता था । उसने नागिन सी तलवार लेकर प्रतिज्ञा की कि मातृ-भूमि का सम्मान बचाने के लिए मैं अरि-मुण्डों का अपूर्व दान करूँगी । जन-कष्ट-निवारण हेतु महारानी ने सागरसिंह डाकू से लोहा लेकर उसे हराया और फिर उसका हृदय परिवर्तन कर देश सेवा के लिए वचनबद्ध किया । (ग्यारहवी हुँकार, पृ० १६५) अन्तत महारानी ने निश्चय कर लिया कि अँग्रेजो से लोहा लेना ही होगा । अत उसने युद्ध-सज्जा के हेतु दुर्ग की व्यवस्था और जन-गण सगठन का गुरुतरकार्य अहर्निशजुटकर प्रारम्भ कर दिया । छत्र-पति शिवाजी और महाराणा प्रताप की दुहाई देकर रानी ने जन-जीवन मे नव चेतना प्रादुर्भूत की । महारानी ने अपने सदेश मे कहा—

'हे भारत के नव गौरव ! मेरा सदेश यही है ।
तृण से लेकर भूधर को मेरा आदेश यही है ॥
यह धरणी है धीरो की, वीरों की यह जननी है ।
इसलिए आज तन मन से इसकी रक्षा करनी है ।"

(बारहवीं हुँकार, पृ० १७५-१७६)

महारानी की गतिविधियो पर अँग्रेजी शासन की कडी नजर थी । अन्तत महारानी की योजनाओ को ध्वस्त करने के लिए गोरी सेना ने झांसी के दुर्ग पर धावा बोल दिया । महारानी के लिए यह आक्रमण अप्रत्याशित या अनाहूत नही था । अरिदल को देखकर महारानी के लोहित-ललाट पर रौद्र रूप साकार हो उठा । वह मन ही मन खिल उठी कि आज जन्म-भूमि को

प्राण-प्रसून चढ़ाने, रणचण्डिका को जी भरकर रक्त पिलाने तथा खप्पर वाली को अरि-मुंडमाल पहनाने का अपूर्व अवसर मिला है। महारानी ने शपथ ली कि—

"झाँसी मेरी है मैं न कभी,
अरि को यह गढ लेने दूँगी।
है मातृ-भूमि की शपथ आज,
अरि को न कभी सोने दूँगी॥"

(तेरहवी हुँकार, पृ० १८१)

महारानी के कुशल नेतृत्व, दूरदर्शी युद्ध सज्जा, सुसंगठित सैन्य-सचालन और जनता के उच्च मनोबल के कारण अँग्रेजी सेना त्राहि-त्राहि कर उठी। कवि के अनुसार—

"गोरी-पल्टन शोणित से तर कहती यह कैसी रानी है?
हो गया आज से दुर्लभ अब वह टेम्स नदी का पानी है॥
अब लौट न पायेंगे घर को यह रानी बनी भवानी है।
इसके आगे हम लोगों की अबला-सम बनी जवानी है॥
ये नही जानते भारत की नारी मे अभी रवानी है।
अब भी यमुना की धारा से सुन पड़ती वीर कहानी है॥
तो कभी नही हम पद रखते यह वीर देश अभिमानी है।
नारी में जब यह शक्ति भरी, तो नर की कौन कहानी है॥"

(तेरहवी हुँकार, पृ० १८८)

और इस प्रकार महारानी विजय-श्री को वरण करने ही वाली थी कि दो गाँवो की जागीर-प्राप्ति के लोभ मे देशद्रोही दूल्हाजी और पीर अली ने मध्यरात्रि के समय अँग्रेज सेनापति रोज को गढ का सम्पूर्ण रहस्य बता दिया तथा दुर्ग द्वार खोलने का जघन्य कृत्य करना भी स्वीकार कर लिया। इसी बीच स्टुअर्ट नयी सेना लेकर आ धमका। शत्रु-दल ने षड्यन्त्रकारी योजना के अनुसार दुर्गद्वार से ही गढ पर भयंकर आक्रमण किया और फाटक को चूर करती हुई सेना अन्दर प्रविष्ट हो गई। अँग्रेजो की भयकर गोलाबारी से गढ के भवन, अस्तबल, पुस्तकालय, मुहल्ले, दूकानें धू-धू कर जलने लगे। महारानी के वीर सैनिक अरिदल को गाजर-मूली की तरह काट रहे थे। रक्त के परनाले बह रहे थे। महारानी रौद्र रूप धारण किए शत्रु-वाहिनी का सहार कर रही थी। कवि के शब्दो मे—

"रानी अरि-गर्दन काट-काट,
उड़ रही पवन मे फर, फर, फर।
लप लप करती असि-जिह्वा से,
शोणित बहता था तर, तर, तर॥"

(पन्द्रहवी हुँकार, पृ० २११)

शत्रु-सेना समुद्र की भाँति उमड रही थी। एक के बाद एक गढ़ के मोर्चे टूटते जा रहे थे। कुशल तोपची गौस खाँ के निधन से महारानी को भयकर आघात लगा। शत्रु ने सब ओर से गढ मे प्रवेश पा लिया, तो भी रानी अधीर नही हुई। उसने कहा कि विधाता हमसे वाम है और जयलक्ष्मी दूर है। बचे हुए वीर सैनिको को गढ के गुप्त-पथ से बचकर निकल जाना चाहिए और शत्रु को परास्त करने की नयी योजना बनानी चाहिए। मेरे तन को शत्रु स्पर्श भी नही कर सकता। मैं स्वय किले के बारूद भण्डार को आग लगा कर भस्म हो जाऊँगी—

"है भरा हुआ बारूदो से इस वीर किले का वक्षस्थल।
जिससे रिपुदल की छाती मे धडकन होती रहती प्रतिपल॥
अब जाकर उसमे आग लगा, मैं स्वय भस्म हो जाऊँगी।
युग के बिछुडे निज पितरो के पद-पङ्कज मे मिल जाऊँगी॥"

(पन्द्रहवी हुँकार, पृ० २२२)

यह सुनकर झाँसी दुर्ग की रुद्राणी को धर्म पुरोहित ने कहा कि जिस महारानी ने स्वराज्य की वेदी पर मर-मिटने का सकल्प लिया है, उसे इस प्रकार कायरो की भाँति प्राण-बलि नही देनी चाहिए। यद्यपि दिल्ली विजित हो गई है, कानपुर का भी पतन हो गया है किन्तु विन्ध्य-अवध और महाराष्ट्र अभी स्वतन्त्र हैं। इन प्रदेशो मे शक्ति-सगठन करके शत्रु से फिर लोहा लेना चाहिए। पुरोहित ने परामर्श दिया कि गढ के गुप्त-मार्ग से नहीं अपितु शत्रु-सेना को चीरते हुए महारानी यहाँ से बचे हुए सैनिको के साथ प्रस्थान करे और कालपी मे पेशवा की सेना को जूझने के लिए सन्नद्ध किया जाय। महारानी ने धर्म पुरोहित और सेनापतियो के परामर्श के अनुसार गढ को कुशलता से पार किया और पथ के सकटो को झेलती हुई कालपी पहुँची। महारानी के कालपी मे पदार्पण करते ही मातृभूमि की स्वतन्त्रता की कल्पना वहाँ के जन-जीवन मे जाग उठी। जन-जन मे देश प्रेम और जातीय स्वाभिमान जाग उठा। कवि के शब्दो मे—

"जग उठी प्रजा नवीन भाव मुस्करा उठे।
एक साथ ही सहस्र-ओठ फर-फरा उठे ॥
जग उठे स्वजाति के दबे-व्रती जवान भी।
जग उठे स्वतन्त्र-आर्य-धाम के निशान भी ॥

× × ×

जग पडा स्वदेश-प्रेम, तरु, पवन, पहाड मे।
जग उठी नवीन-शक्ति आर्य हाड-हाड मे ॥
जग पडी स्वतन्त्र-शब्द सिंह की दहाड से।
जग पडा त्रिपुण्ड स्वस्ति मन्त्र की पुकार से ॥"

(उन्नीसवी हुँकार, पृ० २५३)

कालपी नगर के जन-जन और कण-कण मे महारानी ने स्वदेश-प्रेम का महान् मन्त्र फूँक दिया। महारानी ने कहा कि स्वदेश प्रेमियो सिंहनाद करते हुए बढो। मर्त्य देह का मोह त्याग कर सत्य-साधना मे जुट जाओ। सामने खडे पहाड श्रृग को धूल कण समझ कर रौंद दो। काल के कराल वक्ष पर सहर्ष चढ जाओ। सप्त सिन्धु गर्जना को अपना गान मानकर प्रचण्ड वायु और प्रलयकर रुद्र के समान शत्रु पर टूट पडो। स्वधर्म के प्रकाश और स्वदेश की ध्वजा को उडाने के लिए निरन्तर बढते रहो। महारानी ने हुँकार किया कि—

"रोक दे समुद्र तो अगस्त्य सा बनो बढो।
टोक दे नगेन्द्र तो प्रचण्ड वज्र सा बढो ॥
सामने अनीति हो कडी कडी मरोड दो।
सामने कुरीति को तृणालि तुल्य तोड दो ॥

× × ×

कर्मवीर हो प्रसन्न कर्म-क्षेत्र मे बढो।
धर्मवीर हो प्रसन्न धर्म-क्षेत्र मे बढो ॥"

(उन्नीसवी हुँकार, पृ० २५४)

महारानी ने पुनः कहा कि यदि देश के जवान झुक गए तो देश ही झुक जायगा। यदि जवान रुक गए तो स्वदेश रुक जायगा। जवानो के शस्त्र रखते ही देश का गौरव और स्वाभिमान धूल मे मिल जायगा। इसलिए—

"इसलिए महान् यश है विलास त्याग दो।
नाशवान है सुरग मोहपाश त्याग दो॥
एक हो बढो जयी! सुकीर्ति ही महान् है।
आज देशबन्धुओ! स्वधर्म ही महान् है॥"

(वही, पृ० २५५)

महारानी के अमर सदेश ने कालपी के जन-गण मे स्वदेश-प्रेम का मधुर गान गुंजा दिया। नौजवानो ने कृपाण लेकर मातृ-भूमि-रक्षण की शपथ ली। उधर लुहारीगढ को जीतने के पश्चात् सेनापति रोज के नेतृत्व मे अंग्रेजी सेना ने बुन्देलखण्ड पर आक्रमण कर दिया। कालपी मे लोमहर्षक युद्ध हुआ। बुन्देलखण्ड के नौजवानो ने अद्भुत शौर्य और पराक्रम का परिचय दिया। महारानी समर-भवानी बनी हुई कालपी-युद्ध का कुशल सचालन कर रही थी। वह दाँतो मे घोडे की लगाम दबाकर दोनो करो मे कृपाण धारण किए हुए रण-मतवाली चण्डिका की भाँति अरि-मर्दन कर रही थी। बीच-बीच मे अरि-व्यूह को चीरती हुई महारानी वीरो के मध्य उपस्थित होकर उनमे प्राणोत्सर्ग का महामन्त्र फूंक रही थी। रानी कहती थी—

"क्या देख रहे हो हे वीरो! रणभूमि नही सोने को है।
भारत-जननी का पद-पकज, अरि-शोणित से धोने को है॥
इसलिए बढो, चिन्ता न करो, रचक इन नश्वर प्राणो की।
बैरी की छाती पर गरजो, कुछ भीति न हो अरि-बाणो की॥
अरि की तोपो के मुँह मे ही विकराल बाहु दो अभी डाल।
अपनी सेना के सम्मुख अब रुक जाये आकर महाकाल॥"

(इक्कीसवी हुँकार, पृ० २६४)

महारानी की आग्नेय हुँकृति से अनुप्रेरित वीर काली के दूतो के समान प्राणो का मोह त्याग कर दुर्गम गोलो की मार मे भी आगे बढकर प्रहार कर रहे थे। बुन्देलखण्ड की मेदिनी लाशो से पट गई, आकाश प्राणो से भर गया और गोलो के गर्जन से पवन जर्जरित हो उठा। रणधीरो की भीषण ललकारो से दिशाएँ भी कम्पित हो गई। 'युद्ध-क्षेत्र का यह नाटकीय परिवर्तन देखकर अंग्रेज सेनापति रोज भी घबडा गया। इसी बीच स्टुअर्ट नयी विशाल वाहिनी लेकर आ पहुँचा। रानी को यद्यपि विजय की आशा थी किन्तु विशाल वाहिनी के समक्ष वह विवश थी। रानी का तन घावो से जर्जरित हो रहा था। घोडे के शरीर से भी शोणित झर रहा था। रानी फिर भी

निराश नही हुई। वह अमराई मे बैठकर अपने पाँचो सरदारो के साथ आगामी युद्ध की योजना बना रही थी कि सूचना मिली, पुन शत्रु ने भयकर आक्रमण कर दिया है। रानी ने कहा कि आज अतिम सग्राम होगा। अत अपने पुत्र को वीर कुवर रघुनाथ सिंह को सौंपकर उसने कहा कि—

"यदि जयलक्ष्मी ही रूठ जायें,
तो सुत का प्राण बचा लेना।
अरि से छिप दक्षिण भारत मे,
रक्षित इसको पहुँचा देना।।"

(बाईसवी हुँकार, पृ० २६०)

यह कह कर राजमर्दानी ने जननी का जय-जयकार किया। इसी बीच महारानी की सखी मुन्दर अस्तबल से नया चचल घोडा ले आयी जो रूप, रग और फुर्ती मे बेजोड था। घोडे को देखते ही रानी ने कहा कि यह तो अडियल घोडा है। इतना समय नही था कि घोडा बदलकर लाया जाता, अत रानी उसी घोडे पर सवार होकर आजादी के दीवाने सरदारो को साथ लिए शत्रुओ पर टूट पडी। भीषण तोप के गोलो की अनदेखी करके रानी दोनो हाथो से तलवार चलाती हुई अरि-मुण्डो को काट-काट कर धरती पाट रही थी। रानी के केवल चार ही साथी शेष बचे थे किन्तु फिर भी वह निर्भीकता से लोहा लेती हुई आगे बढ रही थी। इतने मे रानी के वक्षस्थल के नीचे सगीन का प्रहार हुआ। इसी बीच घोडा अडकर खडा हो गया और रानी की बायी जघा पर गोली लगी। रानी फिर भी जूझ रही थी। इसी बीच रानी पर पीछे से असि-प्रहार हुआ जिससे उसके सिर का बायाँ भाग नेत्र समेत कट कर गिर गया। अब तो विकराल कालिका के समान रानी ने दो प्रहार कर रहे गोरो को काट दिया और जैसे ही लडखडा कर घोडे से गिर रही थी कि रघुनार्थसिह ने रानी को बीच मे ही थाम कर अपने घोडे पर बैठा लिया। रघुनार्थसिह महारानी को उसी दशा मे लेकर बाबा गगादास की कुटिया पर छिपते छिपाते पहुँचा। रानी की साँस धीरे धीरे चल रही थी, उसके होंठ हिल रहे थे। रानी के उर में मर्माघात था और जीवन-दीप का प्रकाश मन्द होता जा रहा था। कवि के शब्दो मे महारानी मानो सोच रही थी कि—

"अमर शौर्य का अम्बर मे फहरेगा अरुण-निशान ?
क्या स्वातन्त्र्य-भवन का फिर से होगा प्रभु ! उत्थान ?

× × ×

गूँज उठेगा कण-कण में है विश्व पूज्य यह देश ?
चमकेगा स्वातन्त्र्य-भवन के आँगन में वर-वेश ?'

(महाप्रस्थान सर्ग, पृ० ३०७)

इसी अवसर पर बाबा गंगादास ने महारानी के मुख में गंगाजल डाला जिसका पान करते ही रानी का जीवन-दीप अनन्त-तम में लीन हो गया और पार्थिव-शरीर प्रचण्ड पावक की अर्चियों में समा गया। कवि के अनुसार चिता के स्फुलिंगों में मानो देश-हित में तन-मन धन समर्पित करने वाली वीराङ्गना का यशस्वी स्वरूप ज्योतिर्मय होकर आविर्भूत हो रहा था।

इस प्रकार 'झाँसी की रानी' महाकाव्य में भारतीय इतिहास की एक ऐसी नारी के चरित्र का महत्वांकन हुआ है, जिसका जीवन आद्यांत आग्नेय हुँकृतियों से परिपूर्ण था। कन्या, कुमारी, कुल ललना, माता, राजमाता आदि नाना रूपों में महारानी लक्ष्मीबाई ने अनन्त शक्ति, अप्रतिम शौर्य, अदम्य-उत्साह और अपराजेय उत्सर्ग-भाव का परिचय दिया। झाँसी की रानी की जीवन गाथा तत्कालीन जन-चेतना की क्रान्तिमत्तता का सच्चा प्रतिनिधित्व करती है। झाँसी की रक्षा के लिए जन गण द्वारा किए गए अपूर्व बलिदान का शब्द चित्र इस दृष्टि से उद्धरणीय है—

'प्यारी झाँसी की रक्षा की वीरों ने सिर की माला से।
धनिकों ने द्रव्य निधानों से, दीनों ने उर की ज्वाला से॥
जननी ने वीर सपूतों से, सतियों ने अचल सुहागों से।
ललनाओं ने गढ़ रक्षा की, निज राग-रंग के त्यागों से॥"

(पन्द्रहवीं हुँकार, पृ० २८८)

मरण को महोत्सव मानकर वरण करने की अदम्य आकांक्षा सैनिकों में महारानी झाँसी ने ही भरी थी। महारानी ने अपने आत्मोत्सर्ग द्वारा भारतीय जन-मानस में स्वातन्त्र्य-प्रेम, स्वजातीय स्वाभिमान और राष्ट्रीय सम्मान का ऐसा चिरन्तन कीर्तिमान सस्थापित किया जो भारतीय स्वाधीनता संग्राम में जूझने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का अक्षय स्रोत बना। इस दृष्टि से कविवर श्री श्यामनारायण प्रसाद ने आलोच्य महाकाव्य की रचना करके न केवल महारानी लक्ष्मीबाई के गरिमापूर्ण चरित्र को चिरन्तन बनाया है अपितु आधुनिक हिन्दी महाकाव्य-परम्परा में भी एक अनुपम काव्यकृति की अभिवृद्धि की है, जो सर्वथा श्लाघनीय है।

'दमयन्ती' महाकाव्य

नलोपाख्यान के विकास-क्रम में एक काव्योपलब्धि

९

'दमयन्ती' महाकाव्य

नलोपाख्यान के विकास-क्रम में एक काव्योपलब्धि

महाभारत के सभी उपाख्यानों मे नल-दमयन्ती का आख्यान सम्भवत सर्वाधिक लोकप्रिय एव सुप्रसिद्ध है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दो मे—"महाभारत की मूल कहानी कुरु पाण्डव युद्ध है जो सभवत. प्राचीन कुरु-पाञ्चाल युद्ध का किंचित परिवर्तित रूप था। परन्तु इस कहानी के इर्द गिर्द अनेक प्राचीन उपाख्यान आ जुटे हैं, जिन्होने इस ग्रन्थ को सहिता (सग्रहीकृत) का रूप दिया है। इन कहानियो म से कई तो योरोपियन देशो मे इतनी प्रिय हुई हैं कि एक ही कहानी के एक ही भाषा मे तीन-तीन चार-चार अनुवाद भी हुए हैं। नल-दमयन्ती का उपाख्यान ऐसा ही मोहक कथानक है जो मूल-कथा से सम्बद्ध नही पर योरोप की भाषाओ मे कई बार अनूदित हो चुका है। और भारतीय साहित्य के कई काव्यो और नाटको को प्रेरणा दे चुका है। ऐसे उपाख्यानो को योरोपियन पडितो ने महाकाव्य के भीतर महाकाव्य (Epic within Epic) नाम दिया है।[१] अनेक विद्वानो ने नलोपाख्यान की भूरि-भूरि प्रशसा की है। श्री एफ० बप्प न लिखा है कि—'मैं सिर्फ इतना ही कहूँगा कि मेरी समझ मे करुणा तथा आवेगो की दृष्टि और भावो की कोमलता तथा विमोहक शक्ति के ख्याल से नल दमयन्ती का आख्यान अद्वितीय है।'[२] राजा नल की कथा भारतीय समाज और साहित्य मे सनातन काल से प्रचलित रही है। भारतीय वाङ्मय के प्राचीन और अर्वाचीन ग्रथो मे नलोपाख्यान के कथासूत्र सर्वत्र उपलब्ध हैं।

---

[१] डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, विचार के प्रवाह, पृ० ७.

[२] वही, पृ० ३.

नलोपाख्यान का सविस्तार निरूपण महाभारत वनपर्व मे अध्याय ५३ से ७६ तक हुआ है। महाभारत के अतिरिक्त कथासरित्सागर,[3] और बृहत्-कथामञ्जरी[4] आदि ग्रन्थो मे भी नलोपाख्यान सूत्र उपलब्ध हैं। वाल्मीकि रामायण मे सीता ने अशोक-वाटिका मे राक्षसियो को सम्बोधित करते हुये जो कुछ कहा है उसमे नल की चर्चा आती है। वे कहती हैं—"दीन हो या राज्यहीन हो, जो मेरा पति है वही मेरा गुरु है। उसमे मैं उसी भाँति आसक्ति रखती हूँ जैसे सूर्य मे सुवर्चला। दमयन्ती जिस प्रकार अपने पति नैषध (नल) मे अनुरक्त थी, वैसे ही मैं इक्ष्वाकुकुल के शिरोमणि श्रीराम मे अनुरक्त हूँ।'[5] मत्स्यपुराण मे इक्ष्वाकुवश-वर्णन के प्रसग मे नल का उल्लेख है।[6] स्कन्दपुराण मे भी एकाधिक बार नल का उल्लेख हुआ है। नल जब दमयन्ती को त्याग कर हाटकेश्वर क्षेत्र पहुँचे और उन्होने चर्ममुडादेवी की स्थापना की और उसी के समीप जिस शिवलिंग को स्थापित किया वह नलेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुआ।[7] इसी पुराण मे बडे सक्षेप मे कहा गया है कि प्राचीनकाल मे वीरसेन के पुत्र राजा नल हुए। वे सर्वगुण-सम्पन्न तथा शत्रुओ का नाश करने वाले थे। उनकी प्राणप्रिय पत्नी दमयन्ती थी जो विदर्भ नरेश की कन्या थी।[8] लिंगपुराण मे सूर्यवशी राजा ऋतुपर्ण का वर्णन करते हुए उनके मित्र

---

३ कथासरित्सागर, लम्बक ९, अलंकारवती, तरंग ६, श्लोक २३७ से ४२४

४ बृहत्कथामजरी, लम्बक १५, श्लोक ३३१ से ३७१

५ दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरः।
तं नित्यमनुरक्तास्मि यथा सूर्यं सुवर्चला॥
नैषधं दमयतीव भैमी पति मनुव्रता।
तथा इमिक्ष्वाकु वर राम पति मनुव्रता॥
—वाल्मीकि रामायण, सुन्दर काण्ड, २४-९-१२

६ 'नलो द्वावेव विख्यातौ वशे कश्यपसम्भवे।
वीरसेन सुतस्द्मनैषधश्च नराधिपः॥'
—मत्स्य पुराण, अध्याय १२—५६.

७ स्कन्द पुराण, खण्ड ६, अध्याय ५४, ३—४.

८ 'वीरसेन सुनः पूर्वं नलो नाम महीपतिः।
आसीत् सव गुणोपेनः सर्वं शत्रुक्षमावहः॥
नार्यानस्य भवत् साध्वी प्राणोभ्योऽपि गरीयसी।
दमयन्तीति विख्याता विदर्भाधिपतेः सुता:॥'
—स्कन्द पुराण, खण्ड ६, अध्याय ५४—३४

वीरसेन के पुत्र निषधपति नल का भी उल्लेख हुआ है।[९] कूर्मपुराण में सूर्यवंशी नल का वर्णन है।[१०] अग्निपुराण में भी उल्लेख है।[११] भागवत पुराण में यदु के पुत्रों में एक 'नल' की भी गणना की गई है।[१२] शिवपुराण की ज्ञान संहिता में नल का उल्लेख है।[१३]

नलोपाख्यान को लेकर संस्कृत साहित्य में भी अनेक ग्रन्थों की रचना हुई है। दशम शताब्दी के प्रारम्भ में त्रिविक्रम भट्ट ने नल-चरित्र को लेकर 'नलचम्पु' की रचना की।[१४] नलचरित्र से सम्बन्धित संस्कृत के महाकाव्यों में श्री हर्ष प्रणीत 'नैषध-चरित्र' (१२वीं शताब्दी), वसुदेव कवि रचित 'नलोदय' (१४ शताब्दी) और वामभट्टकृत 'नलाभ्युदय' (१५वीं शताब्दी) के नाम उल्लेखनीय हैं।[१५] हिन्दी में जयपुर निवासी पुरोहित प्रताप नारायण जी कविरत्न ने 'नल नरेश' नामक उन्नीस सर्गों के महाकाव्य की रचना संवत् १९९० में की जिसकी भूमिका कवि सम्राट श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔधजी ने लिखी।[१६] इस प्रकार नलोपाख्यान का महाभारत से लेकर अद्यावधि पुराणों एवं काव्यों के माध्यम से निरंतर विकास होता रहा है। वस्तुत नलोपाख्यान प्रेम, कर्तव्य और त्याग की त्रिवेणी है। यह आख्यान

---

९ 'पुत्रोऽयुतायुषो धीमान ऋतुपर्णो महायश।
दिव्याक्ष हृदयज्ञो वै राजा नल सखो बली॥
नलो द्वावेव विख्यातौ पुराणेषु दृढ व्रतो।
वीरसेन सुतश्चान्यो यश्चेक्ष्वाकु कुलोद्भव॥'
—लिंग पुराण, अध्याय ६६, श्लोक २३-२४

१० 'अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तत् सुतोऽभवत्।
नलश्च निषधस्यासीत् नभास्तस्माद्जायत॥'
—कूर्म पुराण, अध्याय २१

११ अग्नि पुराण, अध्याय २७३, श्लोक ३६.

१२ "यदो सहस्रजित् क्रोष्टानलो रिपुरितिश्रुत॥"
—भागवत पुराण, ९, २६–२०

१३ शिव पुराण, ज्ञान संहिता, अध्याय ६२

१४ डॉ० चण्डिप्रसाद शुक्ल, नैषधपरिशीलन, पृ० ५८.

१५ वाचस्पति गैरोला, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ८६८.

१६ नलनरेश, गंगा ग्रंथागार, लखनऊ से प्रकाशित

हमारे जातीय-जीवन का गौरव और सांस्कृतिक चेतना का अनन्त स्रोत होने के कारण भारतीय जनमानस को प्रेरित करता रहा है और इसीलिये विंशति शताब्दी मे भी नलोपाख्यान काव्य-रचना के लिये वरेण्य हुआ है। श्री ताराचन्द्र हारीत कृत 'दमयन्ती' महाकाव्य की रचना इसका ज्वलन्त प्रमाण है।[१०]

नलोपाख्यान के विकासक्रम मे 'दमयन्ती' महाकाव्य के प्रणयन का अनेकविध विशेष महत्व है। 'दमयन्ती' महाकाव्य की रचना मे नलोपाख्यान की ऐतिहासिकता की रक्षा करते हुए अनेक मौलिक प्रसंगोद्‌भावनाएँ की गई है। 'दमयन्ती' महाकाव्य के कथा विधान मे परम्परा की शास्त्रीय रूढ़ियों का सफल निर्वाह करते हुए कथा मे युगीन-परिवेश को प्रतिफलित किया है। प्रस्तुत सदर्भ मे 'दमयन्ती' महाकाव्य के कथा-विधान की इन्हीं विशेषताओं को सप्रमाण उद्‌घाटित किया जा रहा है।

सर्गक्रमानुसार 'दमयन्ती' महाकाव्य का कथासार

'दमयन्ती' महाकाव्य का सम्पूर्ण कथानक चौदह सर्गों मे विभाजित है प्रथम सर्ग का आरम्भ भारत मा और महाकवि व्यास की वदना से होता है। तत्पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर की मनोव्यथा का वर्णन है। उन्हे पुरोहित नलोपाख्यान सुनाकर धैर्य धारण करने को कहता है। कथारम्भ राजा भीम (दमयती के पिता) के उद्यान वर्णन से होता है जहाँ दमयती सखियो सहित सरोवर मे स्नान करके शृगार करती है। तभी केशिनी राजा नल के यशोबल की चर्चा करती है जिसे सुनकर दमयती के हृदय मे प्रेम भाव का उद्वेलन प्रारम्भ होता है। द्वितीय सर्ग में नैषध राज्य के अपार वैभव का वर्णन है। इसी सर्ग मे नारदजी दमयती के सौन्दर्य और गुणो का वर्णन कर राजा नल के हृदय मे प्रेमाकुर पल्लवित कर देते है। तृतीय सर्ग मे राजा नल मृगया के समय एक घायल हस को प्राणदान कर मैत्री स्थापित कर लेते हैं। हस राजा नल का प्रेम सदेश लेकर दमयती के पास कुन्दनपुर जाता है। चतुर्थ सर्ग मे राजहस नल के पौरुष, शील, सौन्दर्य आदि गुणो की प्रशसा दमयती से करता है जिसे सुनकर दमयती प्रेम विह्वल हो नल के पास प्रेम सदेश प्रेषित करती है। पचम सर्ग मे नल ससैन्य दमयती

---

[१०] दमयन्ती, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली से सन् १९५७ मे प्रकाशित।

स्वयम्वर के लिये प्रस्थान करते हैं। मार्ग में इन्द्रादि देवता छद्म पूर्वक नल से वचन लेते हैं कि वह देवदूत बनकर दमयती के पास जाय और उसे देवों के साथ परिणय करने के लिये तैयार करे। नल खिन्न मनः चल देते हैं। षष्ठ सर्ग मे नल कुन्दनपुर पहुँचकर दमयती को देवो से परिणय करने के लिये कहते हैं, किन्तु दमयती नल से ही परिणय के लिये कृत संकल्प रहती है। देवता नल पर प्रसन्न होकर उसका सहायक होने का वरदान देते हैं। सप्तम् सर्ग मे दमयंती स्वयम्वर और उसके नल से परिणय का वर्णन है। यहाँ कलि नल-दमयती के विरुद्ध देवताओ को भडकाता भी है। नवम् सर्ग मे नल द्यूत क्रीड़ा मे अपने अनुज से सब कुछ हार कर, पुत्र-पुत्री को विदर्भ भेजकर स्वयं चौदह वर्षों के लिये वनगमन करते हैं। दशम् सर्ग मे नल दमयती की वन-गमन की यातनाओ का वर्णन है। विदर्भ नगर के समीप दमयती को एकांत सोती छोड़कर चल देता है। एकादश सर्ग मे दमयती के सतीत्व के प्रभाव से व्याध भस्म हो जाता है। अन्ततः अनेक आपदाएँ सहती हुई दमयती चेदि जनपद मे अपनी मौसी के पास पहुँच जाती है। द्वादश सर्ग मे नागराज कर्कोटक को दवाग्नि से बचाता है। कर्कोटक राजा नल को काया परिवर्तन की जड़ी बताता है। नल रूप बदलकर अयोध्यानरेश के यहाँ हय-शाला के अध्यक्ष बनकर रहने लगते हैं। त्रयोदश सर्ग मे दमयती कुन्दनपुर आकर अपने परिवार मे मिल जाती है। अततः नलानुज भी आकर क्षमा याचना करता है। चतुर्दश सर्ग मे दमयती नल का पता लगाने के उद्देश्य से स्वयम्वर आयोजित करती है। साकेतराज ऋतुपर्ण को दमयती के स्वयम्वर की सूचना एक दिन पूर्व ही प्राप्त होती है। बाहुक (नल) ऋतुपर्ण को समय से पूर्व ही कुन्दनपुर रथ मे पहुँचा देता है। वहाँ स्वयम्बर की कोई व्यवस्था न देख ऋतुपर्ण को निराशा होती है किन्तु नल को सदेह हो जाता है कि दमयती ने कहीं अश्वपरीक्षा के निमित्त से मुझे पहचानने के लिये नहीं बुलवाया। अन्ततः रहस्योद्घाटन हो जाता है। दमयंती भाव विह्वल होकर पुत्रों सहित नल से मिलती है। नलानुज भी क्षमा याचना करता है। साकेतराज और भीम भी आते है। नलनरेश देव कृपा के लिये उनका गुणानुवाद करते हैं।

'दमयंती' महाकाव्य के कथा-विधान में मौलिक प्रसंगोद्भावनाएँ

'दमयती' महाकाव्य के उपर्युक्त कथासार को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि 'दमयती' महाकाव्य के रचयिता ने कथाचयन की दृष्टि से महाभारत और हर्ष प्रणीत 'नैषधीय चरित्रम्' को आधार रूप मे ग्रहण किया है। काव्यारम्भ

मे ही महाभारत के प्रणेता व्यासजी की वदना करके कवि ने उनके प्रति आभार प्रकट किया है—

'धन्य महाकवि व्यास ! प्रणति तुमको शत शत है ।
धन्य लेखनी मुने, तुम्हारी विश्वादृत है ।।'

आर्षग्रथो को आधारभूत सामग्री के रूप मे ग्रहण करते हुए भी हारीतजी ने मौलिक प्रसगोद्भावनाओ तथा नवीन कथाप्रसगो मे यथोचित युगीन परिवर्तनो द्वारा अपनी कल्पना-शक्ति एव सृजन सामर्थ्य का अपेक्षित परिचय दिया है । इस दृष्टि से 'दमयती' महाकाव्य के निम्नोद्धृत स्थल उल्लेखनीय हैं —

१. काव्यारम्भ मे मगलाचरण महाकाव्य-रचना की शास्त्रीय रूढि है जिसे वर्तमान युग के महाकाव्यो मे किसी न किसी रूप मे स्थान दिया जाता है । दमयती के कवि ने काव्यारम्भ भारत-भू की वदना से करके राष्ट्रीय भावना का परिचय दिया है । कवि के शब्दो मे—

धन्य धन्य हे अम्ब ! भारत भू तुम हो धन्या,
है मा ! तुमसी नही विश्व मे कोई अन्या ।
मुकुट तुम्हारा हिम गिरि से शोभित होता है,
पाद तुम्हारे स्वय, अम्बु अबुधि धोता है ।' (पृष्ठ १)

२ चतुर्थ सर्ग मे हस द्वारा नल का दमयती को परिचय दिये जाने वाले प्रसग मे भी मौलिकता का परिचय कवि ने दिया है । महाभारत मे हस सीधे सीधे शब्दो मे बिना किसी भूमिका के इतिवृत्तात्मक शैली म नल का परिचय देता है । यथा—

'मानुषोगिर कृत्वा दमयती मथाब्रवीत ।
दमयन्ति नलो नाम निषधेषु महीपति ।।' (वनपर्व, ५३/२६)

'दमयन्ती' महाकाव्य म दमयती ज्योही हस को पकडने आती है कि हस व्यजनापूर्ण शैली मे कहता है —

'हाँ मुझे पकडना व्यर्थ बताता हूँ मैं,
जो तुम्हे पकडना उचित जताता हूँ मैं ।
सुन्दरि ! नल नृप का हाथ पकडलो जाकर,
हो जाओ सुमुखि ! कृतार्थ उन्हे तुम पाकर ।
अगणित हैं उनके भृत्य हस मुझ जैसे,
रहते हैं उनके पास विहग वर जैसे ।' (सर्ग ४, पृ० ५)

३ षष्ठ सर्ग मे राजा नल के दमयती के पास देवदूत बनकर जाने वाले कथा प्रसग मे पुन मौलिक उद्भावना दृष्टिगत होती है। महाभारत मे नल के अन्त पुर पहुँचने पर दमयन्ती प्रश्न करती है कि हे सुन्दर ! मेरे मदन को दीप्त करने वाले तुम कौन हो ? हे निष्पाप ! तुम देवता की तरह यहाँ आये हो, मैं तुम्हारा परिचय पाना चाहती हूँ—

"कस्त्व सर्वानवद्याङ्ग मम हृच्छ्र वर्द्धना।
प्राप्तोऽस्य मसद्वीर ज्ञातु मिच्छा मितेऽनघ॥"

(वनपर्व, ५५/२०)

प्रत्युत्तर मे नल एक भोले भाले व्यक्ति की भाँति कह देते है कि मैं नल हूँ और यहाँ देवदूत बनकर आया हूँ। इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम ने तुम्हें प्राप्त करने की इच्छा से मुझे तुम्हारे पास भेजा है। यथा—

"नल मा विद्धि कल्याणि देवदूत मिहागतम्।
देवास्त्वा प्राप्तुमिच्छन्ति शक्रोग्निर्वरुणोयम।"

(वही, ५५/२२)

महाभारत का यह सवादस्थल बडा हास्यास्पद है। एक प्रेमी अपनी ही प्रेमिका को दूसरे को वरण करने की बात कहे, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह बात बडी असगत लगती है।

इसी प्रसग को 'दमयन्ती' महाकाव्य के रचयिता ने बडे सुन्दर ढग से प्रस्तुत किया है। यहाँ नल अपने को देवदूत ही कहते हैं और अन्त तक देवदूत धर्म का निर्वाह भी करते हैं। वे एक ओर इन्द्रादि देवो का विस्तार से वैभवपूर्ण परिचय देते हुए जहाँ कर्त्तव्यपालन करते हैं वही गुप्त भेष मे अपने प्रति दमयती की निष्ठा का भी परिचय पा लेते हैं। दमयन्ती के निम्नोद्धृत शब्द नल को निश्चय ही प्रभावित करते हैं—

"आर्याओ का यह कर्म नही, सकल्प छोडना धर्म नही।
वर चुकी जिसे वे एक बार, जीवन भर उसको करें प्यार।
× × ×
सुख स्वर्ग न मुझको लुभा सकें, आवें देखें वे सभी थकें।
मैं मोद मान मर सकती हूँ प्रण भग न पर कर सकती हूँ।
दे कर तन मन धन रूप मूल्य, पूजा देवो को पिता तुल्य।
वे वर न मुझे क्यो त्यो देते, सब पिता सुताहित ज्यो देते।"

(सर्ग ६, पृ० १०८, १०९)

इस दृढ सकल्प भाव को देखकर नल अपने आप को छद्मवेश से मुक्त कर देते हैं। यहाँ हम नल को कर्त्तव्य पथ से च्युत नही कह सकते। वस्तुत

नल के चरित्र का यह मानवीय पक्ष है। जहाँ मनुष्य प्रेम और करुणा से विगलित हो जाता है। यहाँ यदि नल प्रकट न होते तो उनका चरित्र मानवीय न होकर दैवीय कोटि मे परिगणित होता। जो वर्तमान युग की भावना और प्रवृत्ति के अनुरूप न होता।

४ आलोच्य महाकाव्य के सातवें सर्ग मे दमयती के स्वयम्बर की भी योजना पर्याप्त मौलिकतापूर्ण है। महाभारत मे कहा गया है कि दमयती को नल के समान आकृति वाले पाँच पुरुष दिखाई देते हैं—

"ददर्श भैमी पुरुषान पञ्चतुल्याकृतीनिह" (वही, ५७/१०)

दमयती जिसे भी देखती है नल ही समझती है—

"य य हि ददृशे तेषा तेत मे ने नल नृपम्।" (वही, ५७/११)

ऐसी परिस्थिति मे दमयती देवो से अपना रूप प्रकट करने की प्रार्थना करती है जिससे वह नल को पहचान सके।[१८] श्री हर्ष प्रणीत 'नैषध चरित्र' मे देवता दमयनी की प्रार्थना पर उसे सरस्वती के श्लोक का श्लेषमय अर्थ समझने की बुद्धि प्रदान करते हैं और वह पाँचवें नल को निषधेश्वर समझ लेती है।[१९]

'दमयती' महाकाव्य मे स्वयम्बर मे राजाओ का परिचय दमयती की सहेली केशिनी देती है। जो महाभारत और नैषधचरित दोनो से भिन्न है। दूसरे नल तुल्य पाँच आकृतियो को देखकर दमयती उनकी चाल समझ जाती है। वह प्रथम तो देवो की मर्मस्पर्शी शब्दो मे प्रार्थना करती है—

"मैं सर्वदा सद्भाव से प्रभु, पूजती तुम को रही,
हे देव! फिर क्या विघ्न करना, या तुम्हे समुचित कहीं।
× × ×
जग याद करता है तुम्हें जब विघ्न पडते हैं कहीं,
अब याद मैं किस को करूँ जब विघ्न हो तुम स्वय ही।"
(सर्ग ६, पृ० १३३)

किन्तु जब देवताओ ने दमयती की आर्तवाणी न सुनी तो कारुण्य के स्थान पर क्रोध के आवेश मे भर कर वह कहने लगी—

---

१८ महाभारत, वनपर्व, ५७, १६-२१

१९ नैषधप्रकाश, टीका सहित १४/६ (निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९४२)

"रे पातकी ! देवी अहिल्या सी तुम्ही ने भ्रष्ट की,
कितनी न जाने, साध्वियो की साधुता है नष्ट की।
कब देख कर सौन्दर्य तुम निज पर नियन्त्रण रख सके,
मैं प्राण तजती हूँ अभी पर वचन तज सकती नही।
पीछे मरूँगी किन्तु पहले शाप मैं दूँगी तुम्हे,
काली मसी से जो तुम्हारे, मुख पुते दीखें हमे।"
(वही, पृ० १३६)

दमयती ने यहाँ तक कहा कि तुम अपनी सुता से विवाह करना चाहते हो। कपट रूप धारण करके मेरा अपहरण करना चाहते हो। यह विश्व जल जायगा, तुम्हारी श्वास से ही तुम्हारा अमरत्व गल जायगा। जब पिता ही पति बनना चाहे तो यह धरा कैसे सहेगी, जल कर राख हो जायगी।[1] यह कह कर भूखी सिंहनी की भांति दमयती वरमाला लिये जैसे बढी तो देखा कि निषधराज (नल) अकेले ही बैठे है। इस कथा-प्रसग की आयोजना मे कवि ने न केवल मौलिकता का परिचय दिया है वरन् दमयती की महानता किंवा भारतीय नारी के विराट गौरव का भी मूल्याकन किया है।

५ चतुर्दश सर्ग मे बाहुक के वेश मे नल के राजा ऋतुपर्ण के साथ कुन्दनपुर आने पर केशिनी द्वारा रहस्योदघाटन के प्रसग को भी यथेष्ट परिमार्जित करके सयोजित किया है। महाभारत मे (वनपर्व, अध्याय ७५,७६) केशिनी तीन बार जाकर सीधे शब्दो मे कहती है कि आप अयोध्या से चलकर यहाँ कितने समय मे पहुँचे। 'दमयती' महाकाव्य मे केशिनी प्रथम बार मे ही नल को चतुर प्रश्नावली करके पहचान लेती है। केशिनी नल के परिवार आदि के विषय मे पूछती है। (सर्ग १४, पृ० २६७)

इसी प्रकार के अन्य अनेक स्थलों पर भी 'दमयती' महाकाव्य के प्रणेता ने कथाविधान मे नवीन प्रसगोद्भावनाएँ की हैं। धार्मिक स्थलो की कवि को पूरी पहचान है और उनकी योजना मे वह पूर्ण सफल भी रहा है।

शास्त्रीय विधान

जहाँ तक कथानक के शास्त्रीय विधान का प्रश्न है, 'दमयती' महाकाव्य के कथानक का मूल्यांकन काव्यशास्त्रीय लक्षणो के आधार पर भी सुविधा पूर्वक किया जा सकता है। इस महाकाव्य की कथावस्तु इतिहासपुराण प्रसिद्ध नलोपाख्यान है।अस्तु, अनुत्पाद्य है। कथानक मे यत्र तत्र नवीनप्रसगोद्-

---

[1] दमयन्ती, सप्तम सर्ग, पृ० १३७

भावनाएँ करके भी कवि ने कथानक की ऐतिहासिकता को कहीं भी खंडित नहीं किया है। कथानक के फल का अधिकारी राजा नल है, इसलिये आधिकारिक वस्तु नल दमयंती की कथा है। नारद-आगमन, हंस का प्रेम दूतत्व, देवताओं एवं कर्कोटक का मिलन, कलि आदि के कथानक प्रासंगिक वस्तु के अन्तर्गत आते हैं जो मूल कथा के विकास में सर्वथा सहायक रहे हैं। कथानक में संधियों और कार्यावस्थाओं की स्थितियाँ स्पष्टतः परिलक्षित होती हैं। पाश्चात्य परम्परा की दृष्टि से 'दमयन्ती' महाकाव्य के कथा-विकास क्रम में प्रथम दो सर्गों में नल-दमयन्ती का प्रेमाकर्षण 'प्रारम्भ', तृतीय से सप्तम सर्ग तक हंसदूत के द्वारा दोनों के प्रणय सम्बन्धों की पुष्टि 'विकास', अष्टम सर्ग में विवाह एवं पुत्र प्राप्ति 'चरमसीमा', नवम् से त्रयोदश सर्ग तक दैवी प्रकोप एवं विछोह आदि घटनाएँ 'नियति' तथा चौदहवें सर्ग में पुनर्मिलन 'अन्त' नामक स्थितियाँ द्रष्टव्य हैं। कथानक का सर्गक्रम घटनान्विति की दृष्टि से सर्वथा महत्वपूर्ण है। काव्य का नामकरण एवं सर्ग-संख्या शास्त्रीय दृष्टि से सर्वथा उपयुक्त है। कथानक में घटनाक्रम का विकास स्वाभाविक है। राजा नल के जीवन का वृहदांश समाविष्ट होने के कारण कथावस्तु का रूप व्यापक एवं महाकाव्योचित गरिमा के अनुरूप है। कथानक में प्रकृति, पुर, राज्य आदि के विविध वर्णन भी हैं।

इस प्रकार नलोपाख्यान के विकास क्रम में हारीत कृत 'दमयंती' महाकाव्य का प्रणयन निश्चयतः महत्वपूर्ण है। 'दमयन्ती' की रचना द्वारा जहाँ एक ओर प्रेम, कर्त्तव्य और त्याग के आदर्शों से पूरित एवं जीवन प्रेरक कथा के क्रम में एक नवीन अध्याय जुड़ता है वहीं कथा-विधान में मौलिक एवं नवीन प्रसंगोद्-भावनाओं ने नलोपाख्यान की सृजन संभावनाओं एवं युगवरेण्यता को भी सिद्ध किया है। इस दृष्टि से 'दमयन्ती' महाकाव्य की रचना एक अभिनन्दनीय प्रयास कहा जायगा। प्रस्तुत काव्य की कथावस्तु के अभाव के रूप में जिस बिन्दु की ओर मैं संकेत करना चाहूँगा वह यह है कि 'दमयन्ती' के रचयिता ने अति प्राकृत एवं अलौकिक कथाप्रसंगों को युगीन सन्दर्भों के अनुरूप संशोधित किंवा बुद्धिग्राह्य नहीं बनाया है। इस प्रकार के कथाप्रसंगों में देवों के वरदान, अभिशाप एवं कर्कोटक मिलन आदि उल्लेखनीय हैं। इस दृष्टि से हरिऔध प्रणीत 'प्रियप्रवास' के कृष्ण द्वारा गोवर्द्धन धारण एवं कलियनाग दमन जैसे प्रसंग स्मरणीय हैं जिन्हें बुद्धिग्राह्य रूप में हरिऔध जी ने संयोजित किया है। 'दमयन्ती' के कवि ने कथाप्रसंगों की पौराणिकता के प्रक्षालन को उपयुक्त

नही समझा है । समवत इसके मूल मे कवि की पौराणिक कथाओ के प्रति अनन्य आस्था विद्यमान रही है ।

महाकाव्यत्व

'दमयन्ती' महाकाव्य मे रूढ काव्यशास्त्रीय लक्षणो का सामान्यत निर्वाह हुआ है, किन्तु साग्रह या प्रयत्नज नही, स्वाभाविक रूप मे । सम्पूर्ण काव्य १४ सर्गों मे विभाजित है । कथानक पुराणसम्मत है । नाटकीय सन्धियो की सफल योजना है । बीच-बीच मे अवान्तर कथा-प्रसग भी प्राप्य हैं । महाकाव्य का नायक राजकुलीन नलनरेश है । यद्यपि दमयन्ती के चरित्र-विश्लेषण की दृष्टि प्रमुख होने से नायिका का व्यक्तित्व ही अधिक मुखरित हुआ है । प्राकृतिक सौन्दर्य और जीवन के विभिन्न व्यापारो और परिस्थितियो का भी सुन्दर चित्रण हुआ है । पौराणिक इतिवृत्त होने के कारण अतिप्राकृत कथातत्वो की भी अधिकता है । अलकार विधान, भाव-सौष्ठव, रूप सगठन और शिल्प-प्रयोग परम्परित और नवीन दोनो ही हैं । मगलाचरण, छन्द-विधान (सर्गान्त छन्द परिवर्तन) चतुर्वर्ग-फल-प्राप्ति, सज्जन स्तुति, दुर्जन निन्दा आदि महाकाव्य रूढियो का भी विधिवत् पालन किया गया है । रस-परिपाक और भाव-चित्रण-कौशल भी सुन्दर बन पडा है । करुण रस के कतिपय प्रसग बडे हृदयद्रावक हैं । साराशत 'दमयन्ती' महाकाव्य काव्यशास्त्रीय लक्षणो की दृष्टि से सफल रचना है । किन्तु किसी भी महाकाव्य का उपर्युक्त मूल्याकन परिवर्तित काव्यशास्त्रीय मानदण्डो और युगीन काव्यादर्शों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नही, अपूर्ण है । आज के महाकाव्यकार का दायित्व युग-जीवन की चेतना को आत्मसात् कर जीवन्त कथानक, महत्त्वपूर्ण नायक गरिमामयी उदात्त-शैली और गम्भीर रचना-शिल्प के माध्यम से महदुद्देश्य की सिद्धि है । हमारे युग-जीवन की समस्याओ का सास्कृतिक समाधान और युगीन प्रश्नो का निदान आज के महाकाव्यकार की चेतना के मूल स्वर होने चाहिए । विज्ञान-युग के आणविक वैभव में काव्य-रचना एक सास्कृतिक प्रयास बनकर ही अपना अस्तित्व-रक्षण कर सकती है । अन्यथा प्राचीन आख्यानो की पुनरावृत्ति आत्म-प्रवचना के अतिरिक्त कुछ नही है । काव्य को सस्कृति की उच्च भूमिका पर प्रतिष्ठित करने के लिए महती काव्य-प्रतिभा, बलवती सृजन प्रेरणा, समाज-चेतना और जीवन-साधना की आवश्यकता होती है, जैसी कि कविवर जयशकर के व्यक्तित्व मे थी । इसीलिए वह यन्त्र-युग की त्रस्त और परमाणु-युद्ध के भय से आक्रान्त मानवता को 'कामायनी' महाकाव्य के माध्यम से समरसता

और आनन्दवाद का अमर सन्देश प्रदान कर सकें। हम इन्ही प्रतिमानो के आधार पर 'दमयन्ती' के महाकाव्यत्व का परीक्षण करेंगे। मूल्याकन के लिए हमारे पास तीन प्रमुख रचना-उपकरण हैं—कथातत्व, शिल्प विधि और वैचारिकता। प्रश्न यह है कि इन उपकरणो के सगठन मे हारीतजी ने किस सीमा तक पूर्ववर्ती लेखको का अनुगमन किया, कहाँ तक वह असम्पृक्त रहे और किस कोटि की मौलिक सूझ-बूझ का उपयोग कर उन्होने अपनी प्रतिमा का परिचय दिया।

ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि 'दमयन्ती' महाकाव्य का कथात्मक आधार प्रसिद्ध पौराणिक वृत्त (नलोपाख्यान) है। अत वस्तु अनुत्पाद्य है। किन्तु वस्तु के सयोजन एव चयन मे कवि की कल्पनाशक्ति सर्वथा श्लाघनीय है। घटना व्यापार और सर्ग-विधान मे परस्पर अन्विति और पूर्वापर प्रसग-सम्बद्धता है। कथारम्भ युधिष्ठिर और पुरोहित के सवाद से होता है। धर्मराज अपनी व्यथा की चर्चा कर स्वय को ससार का सबसे अभागा और दुर्दैवग्रस्त व्यक्ति कहते हैं। तभी पुरोहित नलराज की कथा का आरम्भ करते हैं। काव्य के आरम्भ की शैली पौराणिक है। काव्य का मगलाचरण मातृभूमि की वन्दना से हुआ है जिससे कवि की राष्ट्रीय भावना प्रदर्शित होती है

"धन्य धन्य हे अम्ब, भरत भू तुम हो धन्या।
हे माँ! तुम सी नही विश्व मे अन्या॥
मुकुट तुम्हारा हिमगिरि से शोभित होता है।
पाद तुम्हारे अम्ब स्वय अम्बुधि धोता है॥
(प्रथम सर्ग, पृ० १)

तदनन्तर कवि विश्व-जीवन की परिस्थितियो का उल्लेख करता हुआ निर्माण की प्रतिज्ञा करता है।

मानसकार तुलसी की भाँति कवि ने आर्य कवि-वन्दना, दैन्य-प्रदर्शन, रचना उद्देश्य आदि रूढियो का निर्वाह भी किया है।

"धन्य! महाकवि व्यास! प्रणति तुमको शत-शत है,
धन्य लेखनी मुने! तुम्हारी विश्वादृत है।
× × ×
किन्तु हुए जो मनुज, विपद मे पड ऊने से,
पढ़कर यह आख्यान, अभाव भरे यदि उनका।
दूँगा मैं कृतकृत्य, दुखौघ हरे यदि उनका॥"
(प्रथम सर्ग, पृ० ३, ६)

कथानक मे वास्तविक गति पचम सर्ग के उपरान्त आती है। सुरपति और अन्य देवगण नल को ससैन्य दमयन्ती के स्वयवर के लिए जाते देखकर मार्ग मे उससे इस बात का वचन ले लेते हैं कि वह उनका दूत बनकर दमयन्ती के पास जाय और उसे देवताओं को वरण करने के लिए प्रेरित करे। सत्यव्रती और धर्मनिष्ठ नरेश धर्म सकट मे पड जाता है। मन सघर्ष करता, परिस्थिति-द्वन्द्व से जूझता वह दमयन्ती के पास जाकर सभी देवताओं के वैभव का विराट वर्णन कर दमयन्ती को देवो को वरण करने का आग्रह करता है। किन्तु दमयन्ती दृढप्रतिज्ञ रहती है। तदोपरान्त स्वयवर हो जाता है। नल ही दमयन्ती को पाते है। कलि इसे देवापमान समझकर नरेश के सर्वनाश पर तुल जाता है। फिर द्यूत क्रीडा मे छद्म से नल को राज्य से निर्वासित होना पडता है। आगे की सारी कथा गतानुगतिक है। कथानक मे पौराणिक मान्यताओ को ज्यो-का-त्यो ग्रहण किया गया है। जैसे कठिन से कठिन विपत्ति मे भी नरेश को धर्मनिष्ठ तथा दमयन्ती को कर्त्तव्यपरायण चित्रित किया गया है। सत्य, धर्म और कर्त्तव्य की त्रिवेणी का समस्त काव्य के कलेवर मे अपूर्व प्रवाह है। नल का व्यक्तित्व भी महान् है—

"देव सम उसका कान्त शरीर, सकल गुण मुक्त धीर, वर-वीर,
वृहद् युग लोचन विस्तृत भाल, युगल भुज हैं आजानु विशाल।
बने वे बल के अनुपम कोष, वक्ष, हिम गिरि सा है निर्दोष,
हृदय है अतुल धैर्य का स्थान, और ग्रीवा है सिंह समान।
(द्वितीय सर्ग, पृ० २३)

दमयन्ती के नख-शिख-वर्णन मे उपमाएँ परम्परित ही हैं—

"नाक शुक सी, बदन मध्य रदावली,
भर रही ज्यो शुक्ति मे मुक्तावली।
चिबुक परम मनोज्ञ विस्तृत भाल है,
अक्षियों पर पक्ष्म का घट जाल है।
पूर्ण मुख, पूर्णेन्दु सा लगता अहा,
है सुधा सौन्दर्य, जो बरसा रहा।"
(प्रथम सर्ग, पृ० ९, १०)

नख शिख-वर्णन की अपेक्षा प्रकृति-वर्णन मे कवि अधिक सफल रहा है। प्रकृति को मानवीय, उपदेशात्मक, उद्दीपन, आलम्बन आदि सभी रूपो मे चित्रित किया गया है। एक उदाहरण देखिए—

"चल पडी रात नभ वदन हुआ पीला-सा,
पृथ्वी अचल पर हरित हुआ गीला-सा।
वह सुअभिसारिका गई, चिन्ह ये छोडे,
हृतप्रभ से तारे उसे पकडने दौडे।
मूर्च्छित सा विधु हो गया न वह सह पाया,
आ पहुँचा मन्द समीर देख मुसकाया।
वह व्यजन डुलाने लगा गन्ध से सींचा,
हो विवश तिमिर ने हाथ धरा से खींचा।
उदयाचल पर रवि चढे दृष्टि दौडायी,
तब गीली आँखे उन्हें धरा की पायी।
मुख पोछ दिया कर बढा धरा मुसकायी,
खोयी-सी अपनी शक्ति शीघ्र ही पायी।"

(चतुर्थ सर्ग, पृ० ५८)

प्रकृति के ऐसे ही सुन्दर और सुरम्य दृश्य काव्य के कलेवर मे आद्योपान्त उपलब्ध हैं। निषध देश एवं कुण्डिनपुर आदि के वर्णन मे कवि ने विशेष कौशल का परिचय दिया है।

भाषा के सम्बन्ध मे प्रस्तुत काव्य के प्रस्तावना लेखक सुप्रसिद्ध कवि श्री गोपालदास 'नीरज' का यह कथन सत्य है—"भाषा पर तो कवि का ऐसा पूर्णाधिकार है कि वह उसे जब जिस रूप मे चाहे मोड लेता है। प्रकृति-चित्रण मे उसकी भाषा सगीतात्मक और कोमल हो जाती है, सवादो मे सिक्त एव प्रभावपूर्ण दिखाई देने लगती है और तथ्य-वर्णन मे सहज, मन्थर, गज-गामिनी।" हाँ, कुछ प्रयोगो में पुनरुक्ति दोष अवश्य आ गया है। 'नरी' शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है। अकेले तरणि के रूपक की योजना कवि ने दस-पन्द्रह बार से भी अधिक की है जिससे इस प्रयोग मे नीरसता आ गयी है। छन्द-विधान विविधता लिए हुए हैं। सस्कृत शब्दो का प्रयोग भी खूब हुआ है। काव्य मे अनेक स्थानो पर नाटकीय शैली के सफल प्रयोग, अलकार-विधान एव वाग्वैदग्ध के कारण मर्मस्पर्शी स्थलो की योजना हो सकी है। अन्य रसों के प्रासगिक सयोजन के साथ-साथ करुण रस की अपूर्व धारा काव्य के उत्तरार्द्ध मे प्रवहमान है। द्यूत-क्रीडा प्रसग के पश्चात् यद्यपि सभी प्रसंग मारणीय हैं, किन्तु दशम् सर्ग मे दमयन्ती को बीहड वन में सोते छोडकर चले जाने पर उसका विलाप हृदयविदारक बन जाता है। पतिपरायण दमयन्ती के चरित्र की यह स्थिति सीता, सावित्री, राधा, यशोधरा, किसी भी

नारी की सकटापन्न अवस्था से अधिक गम्भीर एव दु सह है। कवि ने बडे धैर्य से इस प्रसग का मनोवैज्ञानिक एव परिस्थितिजन्य समाहार किया है। यहाँ दमयन्ती के चरित्र की महानता स्पष्ट हुई है।

काव्य मे भाग्यवाद एव दैववाद का स्वर बडा प्रबल रहा है। नल की द्यूत-क्रीडा, नलानुज पुष्कर का दुर्व्यवहार, विरह-व्यथा एव तथावत् अन्य घटनाओ को कवि ने भाग्य की तुला पर तोलने का प्रयास किया है। पौराणिक इतिवृत्तात्मक प्रसगो के यह भले ही अनुकूल हो, किन्तु विज्ञान-युग के प्रबुद्ध पाठक को द्यूत-क्रीडा नल का व्यसन ही लगेगा, न कि भाग्य की विडम्बना। काव्य मे पात्रो की प्रवृत्तियो का युगानुरूप बौद्धिक समाधान प्रस्तुत नही किया गया है। गाधीवादी विचारधारा के अहिंसा, प्रेम, अस्पृश्यता-निवारण, समानता आदि सिद्धान्तो का सफलता के साथ निर्वाह हुआ है। 'साकेत' की भाँति यहाँ भी राजकुलीन पात्रो ने प्रजातन्त्र के महत्त्व को समझा है। नल के ये शब्द :

"है प्रजा धरोहर मात्र राज्यसिंहासन,
सग्रह से अत्युच्च, त्याग का आसन।"

युग के अन्य नायिका-प्रधान महाकाव्यो ('प्रियप्रवास', 'साकेत, 'कामायनी', 'ऊर्मिला', 'वैदेही-वनवास', 'पार्वती', 'नूरजहाँ', 'मीरा', 'झाँसी की रानी', 'उर्वशी' आदि) की भाँति प्रस्तुत महाकाव्य (दमयन्ती) मे नारी-चेतना एव जागरण के महान् स्वरो का उद्घोष भी हुआ है। जैसे :

"शक्ति का नारी है अवतार,
उससे ही चेतन है ससार।"

(द्वितीय सर्ग, पृ० ३९)

अथवा

"विधि की सर्वोत्कृष्ट सृष्टि पुरुषत्व यहाँ है,
उसी शक्ति पर पूर्ण विजय नारीत्व रहा है।
अबला हो तुम किन्तु, विपद मे बल हो तुम ही,
विश्व मरु-स्थल है इसमे जल हो तुम ही।"

(दशम सर्ग, पृ० २२०)

अथवा

"उपभोग्य वस्तु है नारि केवल नर की ?
वह कल्याणी है प्रथम, मातृ भर जग की।"

(चतुर्दश सर्ग, २८५)

दमयन्ती के चरित्र-विश्लेषण द्वारा लेखक ने वर्तमान युग की नारी-चेतना को मुखरित कर एक आदर्श स्थापना का स्तुत्य प्रयास किया है। युग के विरोधी प्रश्नों के सम्यक् समाधान, नारी चेतना की अभिव्यक्ति, सत्य एव सतीत्व के धर्मादर्शों की स्थापना, सामयिक विचारधाराओं की सफल व्यजना, उदात्त-शैली, महत् काव्यादर्श एव जीवन दर्शन की बलवती प्रेरणा निश्चय ही 'दमयन्ती' काव्य की वह विशिष्ट उपलब्धियां है जो उसे महाकाव्य का पद प्रदान करती हैं।

'रश्मिरथी' महाकाव्य
युग-चेतना का शाश्वत उद्घोष

१०

'रश्मिरथी' महाकाव्य
युग-चेतना का शाश्वत उद्घोष

रश्मिरथी' की रचना का उद्देश्य जैसा कि काव्य के रचयिता ने 'भूमिका' मे स्वीकार किया है—'कर्ण चरित्र का उद्धार है।' कवि के शब्दो मे—"कर्ण चरित्र का उद्धार एक तरह से नयी मानवता की स्थापना का ही प्रयास है।"[१] इस सकेत के आलोक मे यदि 'रश्मिरथी' काव्य के जीवन-दर्शन सम्बन्धी मन्तव्यो पर विचार किया जाय तो हम पायेंगे कि इस काव्य का जीवन-दर्शन मानवतावादी है। मानवतावादी जीवन-मूल्यो की प्रतिष्ठा का प्रयास यो तो दिनकरजी ने 'कुरुक्षेत्र' काव्य मे भी किया है, किन्तु उसके एतद्विषयक चिन्तन की चरम परिणति और विचार-दर्शन का प्रौढतम स्वरूप 'रश्मिरथी' मे ही प्राप्त होता है। डॉ० सत्यकाम वर्मा के शब्दो मे—'कुरुक्षेत्र" के बाद आने वाला यह महाकाव्य सच्चे अर्थों मे केवल महाकाव्य ही नही बल्कि कवि की दार्शनिक, सास्कृतिक, कवित्वमय, धर्म सम्बन्धी और रचनात्मक चेतना का सबल और सतर्क प्रमाण भी है। यह अकेला काव्य ही कवि की सम्पूर्ण चेतना और शक्ति का प्रतीक कहा जा सकता है। कवि का जो जीवन-दर्शन 'हुंकार' से जागा और जिसकी पूर्णता 'परशुराम की प्रतीक्षा' मे हुई, उसी का केन्द्र-यह 'रश्मिरथी' है। इसमे मानवतावाद का एक ऐसा ज्वलन्त सत्य केन्द्र-बिन्दु के रूप मे प्रमुख होकर चला है, जिसने उसे विचारक कवि और दार्शनिक से ऊपर उठाकर महानतम मानवतावादी सिद्ध किया है।"[२] सच तो यह है कि 'रश्मिरथी' के कवि ने अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए एक ओर परम्परा-

---

१ रश्मिरथी, भूमिका, पृ० घ

२ डॉ० सत्यकाम वर्मा, जनकवि दिनकर, पृ० ९३

पोषित एव जर्जरित रूढिवादी मान्यताओ का खण्डन किया है तो दूसरी ओर युग सापेक्ष प्रगतिशील जीवन मूल्यो की प्रस्थापना पर बल दिया है। उसने सामाजिक अन्याय के कारण उच्च कुल की झूठी मान-मर्यादा और जातिवाद के दम्भ की भर्त्सना की है, किन्तु श्रम, पुरुषार्थ, तपस्या, दान, मैत्री, सत्त्व, शील आदि मानवीय गुणो (जीवन मूल्यो) की महत्ता को सराहा और स्वीकारा है। काव्यारम्भ मे ही कृपाचार्य के जाति-विषयक प्रश्न पूछने पर कर्ण ने जो उत्तर दिया है। उसमे तथाकथित उच्चकुलीन मान मर्यादा एव जातिवाद का विखण्डन किया गया है :

"जाति, जाति रटते, जिनकी पूँजी केवल पाषण्ड,
मैं क्या जानूँ जाति ? जाति हैं ये मेरे भुजदण्ड।
× × ×
पाते हैं सम्मान तपाबल से भूतल पर शूर,
जाति-जाति का शोर मचाते केवल कायर क्रूर।
× × ×
बडे वश से क्या होता है, खोटे हो यदि काम ?
नर का गुण उज्ज्वल चरित्र है नही वश धन धाम।[३]

काव्य के चतुर्थ सर्ग मे देवराज इन्द्र से वार्तालाप करते हुए कर्ण ने कहा है कि—'एक नया सन्देश विश्व के हित वह भी लाया है'।[४] और वह सन्देश है कर्त्तव्यपरायण एव पुरुषार्थी बनकर सत्पथ पर बढते रहना। जीवन की जय इसी कर्त्तव्यपालन मे निहित है। पुरुषार्थ के बल पर पुरुष नियति के भाल पर पाँव रखकर चल सकता है। चाहे विश्व रिपु हो जाय, धर्म दगा दे और पुण्य ज्वाला बरसाये, किन्तु मनुष्य को सत्पथ से विचलित न होना चाहिए। कर्त्तव्यपरायणता की यह शक्ति किसी वश या कुल की धरोहर नही, वरन् वह वीर पुरुषो के पृथुल वक्षस्थल मे रहती है।[५] वशगत उच्चता और कुलीनता के नाम पर शताब्दियो से मानवता का जो तिरस्कार किया जाता रहा है, 'रश्मिरथी' के कवि ने उसका प्रखर शब्दो मे प्रतिकार किया है। इसीलिए काव्य का नायक कर्ण उनका आदर्श बनकर अवतरित हुआ है जिन्हे

---

३ रश्मिरथी, प्रथम सर्ग, पृ० ४, ५, ७
४ वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० ७२
५ वही, पृ० ७३

कुल-गौरव की प्रताड़ना सहनी पड़ी है, नीचवंशजन्मा कहकर जग ने जिन्हे धिक्कृत किया है और समाज की विषमता-वह्नि से जो विदग्ध हैं। कर्ण के शब्दों में .

> "मैं उनका आदर्श, जिन्हे कुल का गौरव ताड़ेगा,
> नीचवंशजन्मा कहकर जिनको जग धिक्कारेगा।
> × × ×
> मैं उनका आदर्श कहो जो व्यथा न खोल सकेंगे,
> पूछेगा जग, किन्तु, पिता का नाम न बोल सकेंगे।
> × × ×
> मैं उनका आदर्श, किन्तु, जो तनिक न घबरायेंगे,
> निज चरित्र बल से समाज मे पद विशिष्ट पायेंगे।
> सिंहासन ही नही, स्वर्ग भी जिन्हे देख नत होगा,
> धर्म हेतु, धन, धाम लुटा देना जिनका व्रत होगा।"[६]

अस्तु प्रकट है कि 'रश्मिरथी' काव्य का उद्देश्य और सन्देश मानवतावादी दृष्टिकोण से प्रेरित है।

'रश्मिरथी' काव्य के जीवन-दर्शन की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता उसका युगीन स्वरूप है। काव्य मे जिन व्यापक मानवीय-विश्वासो और आदर्शों, आध्यात्मिक निष्ठाओं और मान्यताओ तथा चिन्तनीय समस्याओ और धारणाओ का प्रतिपादन किया गया है, उन सबका आधार हमारे युग का उन्नत विचार दर्शन है। इस विचार दर्शन को एक शब्द म मानवतावाद अभिधान दिया जा सकता है।

आध्यात्मिक मान्यताएँ

आध्यात्मिक मान्यताओ के प्रतिपादन म कवि का दृष्टिकोण नितान्त युगीन और प्रगतिशील रहा है। नियति, भाग्य, धर्म आदि आध्यात्मिक विषयो की विवेचना कवि ने युग-जीवन के सन्दर्भ मे की है। केवल श्रीकृष्ण के सम्बन्ध (उन्हे ईश्वर मानने मे) म उसके विचार, मूल, चिन्तनधारा का अपवाद कहे जा सकते हैं।

ईश विषयक धारणा और श्रीकृष्ण

दिनकर का कवि आस्तिक है। ससार की सचालिका अनन्त शक्ति मे

---

६ रश्मिरथी, चतुर्थ सर्ग, पृ० ७३ ७४

उसे पूर्ण विश्वास है। इस अनन्त शक्ति को ईश, जगदीश, भगवान, विधाता आदि कहकर उसने सम्बोधित किया है तथा अदृश्य और सर्वज्ञ माना है :

"पर हँसते कहीं अदृश्य जगत के स्वामी,
देखते सभी कुछ को तब भी अन्तर्यामी।"[७]

श्रीकृष्ण को 'रश्मिरथी' में ईश्वरत्व से सम्पन्न चित्रित किया गया है। वे ईश्वरीय शक्ति से सम्पन्न होने के कारण विलक्षण एवं गरिमापूर्ण व्यक्तित्व वाले हैं। कौरवों और पाण्डवों में सद्भाव स्थापित कराने के उद्देश्य से वे हस्तिनापुर से पाण्डवों का मैत्री सन्देश लेकर दुर्योधन के पास आते हैं। दुर्योधन उनके सद्परामर्श को न मानकर उलटा उन्हें बाँधने का उपक्रम करता है। [illegible]मी कृष्ण कुपित होकर भीषण हुँकार करते हुए अपना विराट रूप दिग्दर्शित करते हैं। श्रीकृष्ण का वह रूप ब्रह्माण्डव्यापी था। उस स्वरूप में उदयाचल भाल, भूमण्डल वक्षस्थल और मैनाक मेरु-चरण थे। सम्पूर्ण चराचर सृष्टि, कोटि कोटि सूर्य, चन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दिनेश, रुद्र, लोकपाल आदि उसमें व्याप्त थे। उनकी जिह्वा से भयकर ज्वालाएँ निकल रही थीं। त्रिकाल को मुट्ठी में बाँधे सृष्टि के आदि और अन्त का कारण वह विकराल रूप था :

"उदयाचल मेरा दीप्त भाल, भूमण्डल वक्षस्थल विशाल।
× × ×
शत कोटि रुद्र, शत कोटि काल, शत कोटि दण्डधर लोकपाल।
भूलोक अतल पाताल देख, गत और अनागत काल देख।
अम्बर में कुतल जाल देख, पद के नीचे पाताल देख।
मुट्ठी में तीनों काल देख, मेरा स्वरूप विकराल देख।"[८]

श्रीकृष्ण के इस स्वरूप को देखकर सभा सन्न थी, लोग डर के मारे चुप थे या बेहोश पड़े थे। 'रश्मिरथी' कृष्ण का यह रूप 'गीता के श्रीकृष्ण के उस विराट रूप से तुलनीय है, जो उन्होंने अर्जुन को दिखाया था।[९] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि श्रीकृष्ण को कवि ने ईश्वरीय रूप में अंकित किया है। कृष्ण के इस पौराणिक रूप का चित्रण विंशति शताब्दी के बुद्धिजीवी पाठक को कितना ग्राह्य और वरेण्य होगा, यह चिन्तनीय है। प्रस्तुत काव्य से [illegible] वयं

---

७ रश्मिरथी, पचम सर्ग, पृ० ६४
८ वही, तृतीय सर्ग, पृ० ३२, ३३
९ गीता, अध्याय ११, श्लोक १० से ३० तक

पूर्व लिखित 'कुरुक्षेत्र' काव्य में दिनकरजी ने कृष्ण को महापुरुष के रूप मे ही अंकित किया है। 'कुरुक्षेत्र' मे अनेक स्थानो पर भीष्म पितामह, युधिष्ठिर और स्वयं कवि ने कृष्ण को भगवान कहकर सम्बोधित किया है। किन्तु "कृष्ण को भगवान् कहने में उसकी सगुणोपासना नहीं झलकती, अपितु वह उन्हें महापुरुष (अतिमानव) मात्र मानकर उनके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करता है।"''''''कवि अवतारवाद मे विश्वास नहीं रखता, अपितु ईश्वर सम्बन्धी उसकी कल्पना अधिक व्यापक एवं आध्यात्मिक है, आधिदैविक नहीं।"[१०] 'कुरुक्षेत्र' के कवि दिनकर के लिए अन्य महापुरुषो की भाँति श्रीकृष्ण भी श्रद्धेय हैं, ईश्वर नही :

"भीष्म हो अथवा युधिष्ठिर या कि हो भगवान्,
बुद्ध हो कि अशोक, गाधी हो कि ईसु महान्।
सिर झुका सबको, सभी को श्रेष्ठ निज से मान,
मात्र वाचिक ही उन्हे देता हुआ सम्मान।"[११]

इस प्रकार कृष्ण के सम्बन्ध मे एक दशाब्धी में लिखे गये दो काव्यो मे दिनकरजी का दृष्टिकोण भिन्न है। 'रश्मिरथी' मे कृष्ण के विकराल रूप-दर्शन द्वारा ही नहीं, वरन् अन्य अलौकिक घटनाओं के आयोजन द्वारा भी उनके ईश्वरीय रूप की प्रतिष्ठा की गयी है। उदाहरणार्थ, अर्जुन की प्रतिज्ञा-पूर्ति अर्थात् जयद्रथ-वध के लिए :

"माया की सहसा शाम हुई, असमय दिनेश हो गये अस्त।"[१२]

इसी प्रकार दानव घटोत्कच की सृष्टि तथा कर्ण के रथ-चक्र के रक्त-कीच मे धँस जाने और सम्पूर्ण शक्ति लगाने पर भी न निकलने मे ईश्वरीय शक्ति का चमत्कार-दर्शन ही है।

दिनकरजी के विचार-दर्शन का यदि उपर्युक्त विवेचन के आलोक मे विश्लेषण किया जाय तो प्रतीत होगा कि कवि की ब्रह्म-विषयक धारणा का मूल स्वरूप तो वही है जो 'कुरुक्षेत्र' मे प्रतिपादित है, किन्तु 'रश्मिरथी' मे पौराणिक-ऐतिहासिक कथानक मे आमूल चूल परिवर्तन को अवाछनीय मानकर कवि ने इस काव्य के घटनाक्रम को ज्यो-का-त्यो प्रस्तुत किया है, जिसके कारण कृष्ण इस काव्य मे ईशावतारी हो गये हैं। 'रश्मिरथी' है भी कथाकाव्य, जबकि

---

[१०] कुरुक्षेत्र मीमासा, पृ० ११८

[११] कुरुक्षेत्र, षष्ठ सर्ग, पृ० ६५ (सस्करण सवत् २००३ का)

[१२] रश्मिरथी, षष्ठ सर्ग, पृ० १३६

'कुरुक्षेत्र' विचार-प्रधान काव्य है। कथाकाव्य मे कथानक और विचार-प्रधान काव्य मे वैचारिकता (चिन्तन) का महत्त्व विशेष होता है। कथाकाव्य की महत्ता के सम्बन्ध मे कवि के विचार 'रश्मिरथी' की भूमिका में द्रष्टव्य हैं। फिर भी इतना तो कहा ही जायेगा कि अपने मूल चिन्तनक्रम (जिसके अनुसार ब्रह्म अपौरुषेय है और कृष्ण महापुरुष हैं, ईशावतार नही) की रक्षा के लिए अलौकिक घटनाओ को किंचित् परिवर्तनो द्वारा बुद्धिग्राह्य बनाया जा सकता था, उदाहरणार्थ, कुरुजन-सभा मे कृष्ण के विराट रूप दर्शन के स्थान पर उनके तेजस्वितापूर्ण रूप की झांकी भी अंकित की जा सकती थी, जिसे देखकर दुर्योधन चकित रह जाता, लोग बेहोश तो न होते, आदि।

नियति—नियति को एक क्रूर अदृश्य शक्ति के रूप मे चित्रित किया गया है। नियति ही बार-बार पुरुषार्थी कर्ण से छल करके उसे जीवन-संग्राम मे पराजित और निराश करती है। इस सन्दर्भ मे कर्ण के कुछ कथन द्रष्टव्य हैं :

"सबको मिली स्नेह की छाया, नयी-नयी सुविधाएँ,
नियति भेजती रही सदा, पर, मेरे हित विपदाएँ।"[१३]

× × ×

प्रवंचित हूँ, नियति की दृष्टि मे दोषी बड़ा हूँ।"[१४]

× × ×

विलक्षण बात मेरे ही लिये है,
नियति का घात मेरे ही लिये है।"[१५]

स्वयं कवि ने कहा है :

"किया नियति ने वार कर्ण पर,
छिपकर पुण्य विवर से।"[१६]

कवि ने महाभारत-युद्ध की आयोजिका भी नियति को ही माना है :

'हो चुकी पूर्ण योजना नियति की सारी,
कल ही होगा आरम्भ समर अति भारी।'[१७]

---

[१३] रश्मिरथी, चतुर्थ सर्ग, पृ० ७२
[१४] वही, सप्तम सर्ग, पृ० १५६
[१५] वही, पृ० १८८
[१६] वही, चतुर्थ सर्ग पृ० ६३
[१७] वही, पंचम सर्ग, पृ० ८१

इतना होने पर भी 'रश्मिरथी' के नायक कर्ण ने नियति की क्रूरता को नतमस्तक होकर स्वीकार नहीं किया है, वरन् पुरुषार्थ के बल पर उसका पूर्ण प्रतिरोध किया है। कर्ण कहता है :

"चरण का भार लो, सिर पर सँभालो,
नियति की दूतियो ! मस्तक झुकालो।
चलो जिस भाँति चलने को कहूँ मैं,
ढलो जिस भाँति ढलने को कहूँ मैं।"
न कर छल छद्म से आघात फूलो,
पुरुष हूँ मैं, नहीं यह बात भूलो।
कुचल दूँगा, निशानी मेट दूँगा,
चढा दुर्दम भुजा की भेंट दूँगा।"[१८]

कर्ण के उपर्युक्त कथन में कर्ण का पौरुष ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण मानवता के पुरुषार्थ का महान् उद्घोष है। इसी कथन के परिप्रेक्ष्य में कवि दिनकर के दृष्टिकोण की प्रगतिशीलता भी द्रष्टव्य है जिसके अनुसार वह मानव की शक्ति और सामर्थ्य को ही सर्वोपरि मानता है। मानव नियति की क्रूरता के प्रतिरोध में अन्त तक संग्राम करने को कृतसंकल्प है। कर्ण के शब्दों में :

"चले संघर्ष आठो याम तुम से,
करूँगा अन्त तक संग्राम तुम से।"[१९]

कवि ने यहाँ तक कह दिया है कि कर्ण की गौरवपूर्ण जीवनगाथा के समक्ष नियति और भाग्य के संकेत व्यर्थ हैं

"मगर यह कर्ण की जीवन कथा है,
नियति का, भाग्य का इंगत वृथा है।"[२०]

यही नहीं, पुरुषार्थ के बल पर पुरुष नियति के भाल पर भी पैर रख सकता है :
"नियति भाल पर पुरुष पाँव निज बल से धर सकता है।"[२१]

---

[१८] रश्मिरथी सप्तम सर्ग, पृ० १२६
[१९] वही, पृ० १६७
[२०] वही, षष्ठ सर्ग, पृ० १५१
[२१] वही, चतुर्थ सर्ग पृ० ७३

भाग्य—भाग्यवाद की धारणा का खण्डन कवि ने 'कुरुक्षेत्र' काव्य मे[११] इसे पाप का आवरण और शोषण का शस्त्र कहकर किया था । इसी मान्यता की पुष्टि 'रश्मिरथी' मे कर्ण के निम्नांकित कथन द्वारा हुई है :

"कहा कर्ण ने, वृथा भाग्य से आप डरे जाते हैं,
जो है सम्मुख खडा उसे पहचान नही पाते हैं ।
विधि ने था क्या लिखा भाग्य मे खूब जानता हूँ मैं
बाँहो को पर बली भाग्य से कही मानता हूँ मैं ।
महाराज उद्यम से विधि का अंक पलट जाता है,
किस्मत का पासा पौरुष से हार पलट जाता है ।"[१२]

धर्म—पौराणिको ने 'कुरुक्षेत्र को धर्मक्षेत्र और 'महाभारत' को धर्मयुद्ध कहा है ।[१३] किन्तु कवि ने इस मान्यता का विरोध किया है । उसके मतानुसार धर्म का विग्रह, हिंसा, युद्ध या सहार से सम्बन्ध स्थापित नही किया जा सकता । धर्म तो करुणा से उद्‌भूत होता है .

"करुणा से कढ़ता धर्म विमल ।"[१४]

धर्म का वास्तविक स्वरूप कर्ममय साधना एव जीवन-पथ को त्याग की ज्योति से आलोकित करने मे है । धर्म ध्येय मे नही, साधना मे ही निहित है :

"है धर्म पहुँचना नही, धर्म तो जीवन भर चलने मे,
फैला कर पथ पर स्निग्ध ज्योति, दीपक समान जलने मे ।
× × ×
इसीलिए ध्येय मे नही, धर्म तो सदा निहित साधना मे ।"[१५]

अर्जुन द्वारा जयद्रथ के रोमहर्षक एव अन्यायपूर्ण वध को कवि ने धर्ममय कार्य नहीं माना है । मरना और मारना कभी भी धर्ममय कार्य नही हो सकते :

---

[११] "भाग्यवाद आवरण पाप का और शस्त्र शोषण का,
जिससे रखता दबा एक जन, भाग दूसरे जन का ।"
—कुरुक्षेत्र, सप्तम सर्ग, पृ० ११५

[१२] रश्मिरथी, चतुर्थ सर्ग पृ० ६६

[१३] "धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सव ।"—गीता, अ० १, श्लोक १

[१४] रश्मिरथी, षष्ठ सर्ग, पृ० १३७

[१५] वही, पृ० १३७-३८

"हो जिसे धर्म से प्रेम कभी, वह कुत्सित कर्म करेगा क्या ?
बर्बर, कराल, दंष्ट्री बनकर, मारेगा और मरेगा क्या ?"[१७]

चिरन्तन जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा

आध्यात्मिक निष्ठाओं के प्रति युगीन किंवा प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाते हुए भी चिरन्तन जीवन-मूल्यो की स्थापना के लिए 'रश्मिरथी' का कवि प्रयत्नशील रहा है। दानशीलता, सत्य, मैत्री, समानता, उदारता आदि मूल्यो को प्राचीन कहकर उपेक्षित नही किया गया, वरन् उनकी महत्ता का बखान काव्य मे आद्यान्त दिखायी देता है।

दान की महिमा—भारतीय सस्कृति मे दान की महिमा अनादि काल से स्वीकृत रही है। दान-कर्म को पुराणपन्थी कहकर तिरस्कृत नही किया जा सकता। दिनकरजी ने दान की महिमा का तर्कपूर्ण आख्यान करते हुए इस कार्य को जीवन-धर्म कहा है :

"जीवन का अभियान दानबल से अजस्र चलता है।
× × ×
दान जगत का प्रकृति धर्म है, मनुज व्यर्थ डरता है।"[१८]

दान स्वत्व का त्याग भी नहीं है, क्योकि जो जितना देता है, उतना ही पाप भी लेता है। उदाहरण के लिए, वृक्ष फल इसलिए देते हैं कि उनके रेशो मे कीडे न समायें, डालियाँ स्वस्थ रह और नये फल आयें। इसी प्रकार नदियाँ जल देती हैं कि बादल भरपूर बरसें और फिर जलपूरित होकर नया जीवन पायें। इसी सन्दर्भ मे कवि ने राम, दधीचि, शिवि, हरिश्चन्द्र, ईसा, गाधी जैसे आत्मदानियो का यशोगान किया है। दानवीरो मे 'रश्मिरथी' के नायक कर्ण का चरित्र अनुपमेय है। उसने दानव्रत के पालनहेतु अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया। जन्मजात कवच और कुण्डल तक देवराज इन्द्र को दे दिये। तभी तो कवि ने कहा है कि

"कर्ण नाम पड गया दान की अतुलनीय महिमा का।"[१९]

दान मनुष्य का वह आभूषण है जो उसके चरित्र को अलकृत नही करता, वरन् सम्पूर्ण मानव जाति की गौरव-वृद्धि करता है। कर्ण से इन्द्र की याचना, स्वर्ग की पृथ्वी से याचना है

---

[१७] रश्मिरथी, पृ० १३८
[१८] वही, चतुर्थ सर्ग, पृ० ६०-६१
[१९] वही, पृ० ६३

"स्वर्ग भीख मांगने आज, सच ही, मिट्टी पर आया।"[१०]

दान की भाँति ही अन्य जीवन-मूल्यो के आदर्श का प्रतिपादन काव्य मे यत्र-तत्र हुआ है। जैसे :

तपस्या

"नरता का आदर्श तपस्या के भीतर पलता है,
देता वही प्रकाश, आग मे जो अभीत जलता है।"[११]

सत्य

"हार-जीत क्या चीज ? वीरता की पहचान समर है,
सच्चाई पर कभी हार कर भी न हारता नर है।"[१२]

अथवा

नही राधेय सत्यपथ छोड़कर अघ ओक लेगा,
विजय पाये न पाये, रश्मियो का लोक लेगा।"[१३]

मैत्री—तृतीय सर्ग मे कृष्ण जब कर्ण को युधिष्ठिर से मिल जाने का परामर्श देते हैं, तो प्रत्युत्तर मे कर्ण ने जो कहा है, उससे मैत्री की महत्ता स्पष्ट झलकती है :

"मैत्री की बड़ी सुखद छाया, शीतल हो जाती है काया।
× × ×
मित्रता बड़ा अनमोल रतन, कब इसे तोल सकता है धन।
धरती की तो है क्या बिसात, आ जाय अगर बैकुण्ठ हाथ।
उसको भी न्योछावर कर दूँ, कुरुपति के चरणो पर धर दूँ।"[१४]

श्रम—परिश्रम की महत्ता को कवि ने मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। काव्य के तृतीय सर्ग मे कहा गया है कि वसुधा का नेता, भूखण्ड विजेता, अतुलित यश क्रेता तथा नवधर्म प्रणेता वही व्यक्ति हुआ है, जिसने विघ्नो को सहकर भी श्रम साधना की है।[१५]

---

[१०] रश्मिरथी, पृ० ६६
[११] वही, पृ० ५६
[१२] वही, पृ० ७०
[१३] वही, सप्तम सर्ग, पृ० १६१
[१४] वही, तृतीय सर्ग, पृ० ५१
[१५] वही, तृतीय सर्ग, पृ० २८

युगीन समस्याएँ

'रश्मिरथी' मे जातिवाद, उच्चकुलीनता, सामाजिक असमानता आदि अनेक समस्याओ की यथाप्रसग विवेचना हुई है। युद्ध की समस्या पर विश्लेपणात्मक ढग से कवि ने विचार किया है। उसने समस्याएँ ही नही, वरन् उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है।

युद्ध की समस्या और समाधान

युद्धवादी विचार-दर्शन की विस्तृत भूमिका यद्यपि दिनकरजी के 'कुरुक्षेत्र' नामक काव्य मे मिलती है, क्योकि उस काव्य की रचना ही द्वितीय विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि पर हुई थी; तथापि युद्ध की समस्या पर 'रश्मिरथी' मे भी अपेक्षित प्रकाश डाला गया है।

काव्यारम्भ मे ही कुलीन एवं वर्ण-व्यवस्था-आधृत समाज की आलोचना करते हुए कवि ने कहा है कि युद्धो का आयोजन ससार से दु ख-दैन्य भगाने या पर-शोषक-पथभ्रान्त लोगो को धर्ममार्ग पर लाने के लिए नही होता है। युद्ध तो इसलिए होते हैं कि राजे-महाराजे विजय का कल्पित सम्मान पाकर मानी हो अथवा राज्यो का सीमा-विस्तार करें और लूटमार हो। युद्धो की विजय राजाओ की अहं-वृद्धि करती है। राजा स्वेच्छाचारी होकर समाज को पददलित करते हैं।[१६] अस्तु, कवि ने इस समस्या का निदान दो रूपो मे प्रस्तुत किया है। प्रथमत, समाज का नेतृत्व, भोगी-विलासी भूपो के हाथ मे न रहे। समाज मे श्रेष्ठता का पद कवि, कोविद, कलाकार, ज्ञान-विज्ञान विशारदो को प्राप्त हो, क्योकि समाज का शुभचिन्तक वर्ग यही है। यह वर्ग असन-वसन विहीन एव दीन रहकर भी मानवोभ्युदय की ही बात करता है। इस वर्ग के लोगो को कनक नही ज्ञान, कल्पना और चरित्र की उज्ज्वलता पर अभिमान है। अस्तु—

"इन विभूतियो को जब तक संसार नही पहचानेगा,
राजाओ से अधिक पूज्य जब तक न इन्हें मानेगा।
तब तक पडी आग में धरती इसी तरह अकुलायेगी,
चाहे जो भी करे, दु खो से छूट नही पायेगी।"[१७]

युद्ध के निवारण का दूसरा समाधान शान्तिकारी है। कवि का अभिमत

---

[१६] रश्मिरथी, द्वितीय सर्ग, पृ० १४
[१७] वही, पृ० १५

है कि राजाओ को समझा-बुझाकर ज्ञानी और कवि थक गये, किन्तु प्रशासक वर्ग खड्ग के अतिरिक्त किसी भी भाषा को नही समझता। अस्तु, ज्ञानियो को भी खड्ग धारण करके अविचारी एव मदान्ध नृप के आतक से भू को मुक्त करना चाहिए .

"रोक-टोक से नही सुनेगा, नृप समाज अविचारी है,
ग्रीवाहर निष्ठुर कुठार का यह मदान्ध अधिकारी है।
इसीलिए मैं कहता हूं, अरे ज्ञानियो! खड्ग धरो,
हर न सका जिसको कोई भी, भू का वह भुम त्रास हरो।"[१८]

दूसरे शब्दो मे, जनक्रान्ति द्वारा राजतन्त्र से मुक्ति के उपाय की ओर सकेत किया है। वैसे 'कुरुक्षेत्र' काव्य की भाँति युद्ध को एक चिरन्तन और अनिवार्य समस्या के रूप मे इस काव्य मे भी कवि ने स्वीकार किया है। महाभारत-युद्ध की समाप्ति के बाद मनुष्य यद्यपि विभ्राट ज्ञानी और मनस्वी हो गया है, किन्तु मनुज मनुज मे युद्ध आज भी चल रहा है

"महाभारत मही पर चल रहा है,
भुवन का भाग्य रण मे जल रहा है।
मनुज ललकारता फिरता मनुज को,
मनुज ही मारता फिरता मनुज को।"[१९]

इस विडम्बनापूर्ण स्थिति का मूल कारण अतिशय भौतिकवादी मूल्यो की मानव जीवन मे स्वीकृति है। सुख समृद्धि के अधीन एव सत्तालोलुप होने के कारण मनुष्य पतनशील हो रहा है

'होकर समृद्धि-सुख के अधीन,
मानव होता नित तप क्षीण।
सत्ता, किरीट, मणिमय आसन,
करते मनुष्य का तेज हरण।
नर विभव हेतु ललचाता है,
पर वही मनुज को खाता है।"[२०]

---

[१८] रश्मिरथी, पृ० १६
[१९] वही, सप्तम सर्ग, पृ० १५३
[२०] वही, तृतीय सर्ग, पृ० ५४

इस प्रकार 'रश्मिरथी' काव्य मे जीवन-दर्शन सम्बन्धी विचारणा का स्वरूप महाकाव्योचित गरिमा से पूर्ण है। उसमे एक ओर पुरातन आदर्शो की नवीन और युगीन व्याख्या प्रस्तुत की गयी है तथा दूसरी ओर चिरन्तन मानवीय मूल्यो की पुनर्प्रतिष्ठा का प्रबल आग्रह है। जिस 'कर्णधर्म' के प्रसार का सन्देश प्रस्तुत काव्य के माध्यम से प्रसारित किया गया है, वह हमारे युग-जीवन एव समाज की वर्तमान परिस्थितियो मे सर्वथा वाछनीय है। वह 'कर्णधर्म' है

"श्रम से नही विमुख होगे जो, दु ख से नही डरेंगे,
सुख के लिए पाप से जो नर सन्धि न कभी करेंगे।
कर्णधर्म होगा धरती पर बलि से नही मुकरना,
जीना जिस अप्रतिम तेज से, उसी शान से मरना।"[११]

[११] रश्मिरथी, चतुर्थ सर्ग, पृ० ७४

'ऊर्म्मिला' महाकाव्य

आर्य संस्कृति के उदात्त जीवनादर्शों की अभिव्यंजना

११

'ऊर्म्मिला' महाकाव्य

आर्य संस्कृति के उदात्त जीवनादर्शो की अभिव्यंजना

'ऊर्म्मिला' महाकाव्य की सृजन-प्रेरणा का मूल स्रोत जनकनन्दिनी ऊर्मिला का चरित्र है। कवि के शब्दों मे—"ऊर्मिला के स्तवन की लालसा और उस स्तवन को प्रकाश मे लाने की इच्छा, चाहे वह बाँझ ही क्यो न हो—मेरी जीवनसगिनी रही है।"[1] भारतीय रामकाव्य परम्परा मे 'वाल्मीकि रामायण' से लेकर 'साकेत' के पूर्व तक के ग्रन्थो मे ऊर्मिला का चरित्र उपेक्षित प्राय रहा है। कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर[2] और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी[3] ने दो महत्त्वपूर्ण लेख लिखकर साहित्यकारो का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया। इन्ही लेखो से प्रेरित होकर श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' नामक महाकाव्य की रचना कर प्रथम बार ऊर्मिला के चरित्रोद्धार का विशेष प्रयत्न किया। यद्यपि 'साकेत' की रचनात्मक प्रेरणा का मूल स्रोत और प्रतिपाद्य ऊर्मिला का ही चरित्र था तथापि कथानक के व्यामोह, आराध्यदेव श्रीराम की यशोगाथा के वर्णन का प्रलोभन आदि ऐसे तत्त्व थे, जिनके कारण 'साकेत' मे ऊर्मिला का चरित्र अपेक्षित रूप मे न उभर पाया। इस दृष्टि से श्री बालकृष्ण 'नवीन' कृत 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य मे उल्लेखनीय प्रयास हुआ है। 'साकेत' मे ऊर्मिला का आविर्भाव नव-परिणीता वधू के रूप मे होता है जब कि 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य के प्रथम सर्ग के २४० छन्दो मे ऊर्मिला

---

[1] ऊर्म्मिला, श्रीलक्ष्मणचरणार्पणमस्तु, प्रथम पृष्ठ

[2] प्राचीन साहित्य काव्येर उपेक्षिता, पृ० ६६

[3] कवियो की ऊर्मिला विषयक उदासीनता, सरस्वती, जुलाई १९०८ भाग ९, सख्या ७ पृ० ३१२-१४।

की बाल्य एव किशोरावस्था का सविस्तार विवेचन है। यह सम्पूर्ण वर्णन कवि-कल्पना-प्रसूत है। अन्य सर्गो मे भी मुख्यत ऊर्मिला का ही चरित्र-गान हुआ है। सच तो यह है कि 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य मे ही ऊर्मिला के चरित्र का पूर्ण प्रतिफलन हुआ है। इस काव्य मे कवि का उद्देश्य 'रामायणी कथा' की घटनाओ का वर्णन नही, जैसा कि काव्य की भूमिका[४] मे कवि ने स्वय स्वीकार किया है। नवीनजी ने रामकथा के उन्ही प्रसगो और घटनाओ की सयोजना की है, जिनका ऊर्मिला की चरित्र-योजना से सीधा सम्बन्ध है। अस्तु, स्पष्ट है कि ऊर्मिला का चरित्र-गान काव्य की सृजन-प्रेरणा का मूल स्रोत है।

'ऊर्म्मिला' महाकाव्य की रचना का दूसरा प्रमुख प्रयोजन आर्य (भारतीय) सस्कृति के समुन्नत जीवनादर्शो को प्रतिष्ठित करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए नवीनजी ने एक ओर आर्य सस्कृति के आधारभूत सिद्धान्तो की काव्य मे प्रस्थापना की है और दूसरी ओर रामकथा के घटना-प्रसगों को सास्कृतिक परिप्रेक्ष्य (Perspective) मे अकित किया है। उदाहरणार्थ, राम के वन-गमन को कवि ने 'महान् अर्थपूर्ण आर्य सस्कृति-प्रसार-यात्रा' कहा है।[५] वन-गमन के लिए विदा मांगते हुए लक्ष्मण ऊर्मिला से कहते भी हैं कि कैकेयी का वरदान मांगना और राम का पितृाज्ञा पालन तो औपचारिकता मात्र है। वास्तव मे विपिन गमन तो जन-दु ख-भजन एव सास्कृतिक-विजय के उद्देश्य से हो रहा है।[६] कवि के मतानुसार, वनवासी लोगो का जीवन अज्ञान की तमिस्रा विलास और भौतिकता से पूर्ण है। राम का वन-गमन भौतिकता को विजित, करने के ही निमित्त है :

"आज विजित करने उस भौतिक, दैहिक, शारीरिक बल को,
राम-लखन वन-गमन कर रहे सग ले आत्मज्ञान दल को।"[७]

वन गमन के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लक्ष्मण ऊर्मिला से कहते हैं :

"हम सन्यासी विपिन प्रवासी,
नव सन्देश प्रचारक हम।

---

[४] ऊर्म्मिला, श्री लक्ष्मणचरणार्पणमस्तु, पृ० च
[५] वही, पृ० छ
[६] वही, तृतीय सर्ग पृ० २६३
[७] वही, पृ० १६६

मन मय हारी मगल कारी,
सब जन गण उद्धारक हम।"[८]

इसी प्रकार राम-रावण के सघर्ष मे राम की विजय को कवि ने आर्य सस्कृति की विजय कहा है :

"हुई सास्कृतिक विजय पूर्ण थी,
आर्य राम की मति धृति की।
नही शास्त्र विजिता यह लका,
यहाँ विजय है शास्त्रो की।
यहाँ जय है तापस आर्यों के,
शुद्ध शब्द ब्रह्मास्त्रो की।"[९]

इसी सन्दर्भ मे 'नवीन साहित्य' के अनुसन्धाता डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे का मत है कि—"आर्य धर्म, सम्यता तथा सस्कृति की महत् उपलब्धियो तथा गरिमा की इसमे ('ऊर्म्मिला' महाकाव्य मे) ऋचाएँ लिखी गयी हैं। इस कृति मे भारत समग्र वसुन्धरा को अपने अक मे समेट रहा है। भौतिकता, यान्त्रिक सम्यता, विज्ञान आदि के असद् पक्ष का उद्घाटन कर कवि ने 'कामायनी' के समान श्रद्धा, भक्ति और विश्वास के तीन चिरन्तन प्रेरणामय गोलक हमारे युग को प्रदान किये हैं।[१०] वस्तुत. 'उर्म्मिला' जिस युग की रचना है, उसके अनुरूप ही भारतीय सस्कृति का महान् उद्घोष उसमे सुनायी देता है। 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य का प्रणयन राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य-सग्राम की बेला मे लखनऊ जेल मे हुआ था। उस समय देश भर मे शान्ति, सत्याग्रह और आन्दोलन हो रहे थे। 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य का रचयिता समर के अमर सेनानी की भाँति अपनी ओजमयी वाणी से भारतीयता की भावना का जन-जन मे प्रसार कर रहा था। कहा जाता है कि महाकाव्यो मे जातीय जीवन, सस्कृति और चेतना का महान् उद्घोष होता है, जो 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य मे स्पष्ट सुनायी देता है। एक आलोचक के शब्दो मे : "हिन्दी साहित्य मे आज जितने भी महाकाव्य हिन्दी प्रेमियो के हाथ मे सुशोभित हैं, उन महाकाव्यो मे कवियो मे राष्ट्रीयता की

---

[८] ऊर्म्मिला, पृ० २२३
[९] वही, षष्ठ सर्ग, पृ० ५३
[१०] गवेषणा, अर्द्धवार्षिक पत्रिका, जुलाई १९६३, पृ० ८७ पर "ऊर्म्मिला का महाकाव्यत्व' शीर्षक लेख।

आग, देशभक्ति का मादक यौवन, विप्लव का गाढा उन्माद, विद्रोह का सबल स्वर और जिन्दादिली की उछलती-कूदती वेगवती धारा नवीन जैसी नही थी और न आज ही है।[११] जिन पवित्र भावनाओं के मादक वातावरण में इस महाकाव्य का प्रणयन हुआ, वैसा, सौभाग्य किसी भी महाकाव्य को नही प्राप्त है। 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य के लिए यह गौरव और गर्व का विषय है।"[११]

इस प्रकार स्पष्ट है कि ऊर्मिला के चरित्र की विशद् योजना, आर्य संस्कृति के जीवनादर्शों की प्रतिष्ठा, युग-चेतना की विराट व्यंजना के महान् उद्देश्य से प्रेरित होकर 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य की रचना हुई है।

आर्य संस्कृति के आदर्शों की प्रतिष्ठा

'आर्य संस्कृति' शब्द तत्त्वतः भारतीय संस्कृति का ही द्योतक है। 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य मे दोनो का प्रयोग एक-दूसरे के पर्याय के रूप मे हुआ है। सत्य, तप, त्याग, यज्ञ, विश्वबन्धुत्व, आत्मवाद, नारी की महत्ता आदि आर्य संस्कृति के आधारभूत सिद्धान्त हैं। इन सबकी 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य मे प्रतिष्ठा हुई है।

सत्य—काव्य के अन्तिम सर्ग मे लका-विजय के अनन्तर विभीषण के लंकाधिपति बनने पर एक लम्बी वक्तृता द्वारा राम सत्य की महिमा का बखान करते हैं। वे कहते हैं कि सत्य ही आचरणीय धर्म है। उनका विश्वास है कि सत्य का पक्षधर होने के कारण ही विभीषण राम के समर्थक बने। सत्य की ही जय होती है—सत्यमेवजयते। ससार मे सत्य ही पूज्य है :

"सदा एक ही वस्तु पूज्य है,
वह है सत्य, असत्य नही।"[११]

राम की आकाक्षा है कि :

"असद्विचार पराजित कुंठित, भूलुंठित उन्मूलित हो,
सत्यमेव विजयी हो राजन, प्रेम-विटप फल फूलित हो।
आगे-आगे ध्वजा सत्य की, पीछे-पीछे जन सेना,
त्रेता का यह धर्म सनातन, जग को विमल ज्ञान देना।"[११]

---

[११] वीणा, मई १९६४, पृ० ३०९
[११] ऊर्म्मिला, षष्ठ सर्ग, पृ० ५५६
[११] वही, पृ० ५६५

तप—तप की महिमा का आख्यान करते हुए कवि ने कहा है कि 'तपोबल से ही ब्रह्माण्ड गतिमय'। तप के अभाव से सृष्टि का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है :

"यह ब्रह्माण्ड तपस्या के बल, गतिमय रतिमय चलित हुआ,
अणु-अणु मे कण-कण मे सन्तत, प्रथम तपोबल ज्वलित हुआ।
× × ×
क्षण-क्षण आठो याम न हो यदि तप, तो यह जग कहाँ रहे,
निमिष मात्र मे महाप्रलय हो, सृष्टि कथा फिर कौन कहे।"[१४]

यज्ञ—'यज्ञ' शब्द को कवि ने व्यापक अर्थों मे व्याख्यायित किया है। कवि का मत है कि यज्ञाहुति की पुण्य भस्म से ही ईश्वर ने सृष्टि-रचना की है। यज्ञ से ही जग मे जन-गणहिताय वृष्टि होती है। उसका मत है कि तिलघृत की ईंधन मे आहुतियाँ देना तो प्रवचनापूर्ण परिपाटी है, यज्ञ नहीं।[१५] यज्ञ तो ससार का अनन्त गतिमय कर्म है। यह कर्म सृष्टि के अणु-अणु और कण-कण मे प्रत्येक क्षण घटित हो रहा है। सृष्टि के महायज्ञ मे सूर्य रश्मियो द्वारा और मेघ धाराएँ बरसाकर आहुतियाँ देते हैं। कवि के शब्दो मे यज्ञ की परिभाषा इस प्रकार है

"शुद्ध यज्ञ है सब-भूत हित-रत होकर जीवन देना,
शुद्ध यज्ञ है जग हिताय सब अपना तन मन धन देना।"[१६]

ऊर्मिला तो यहाँ तक मानती है कि लक्ष्मण का वन-गमन मानवता के कल्याणयज्ञ की प्रथम आहुति है।[१७]

नारी की महत्ता—आर्य सस्कृति मे नारी को देवी कहकर पूज्यनीय माना गया है। 'ऊर्म्मिला' के कवि ने इस दृष्टिकोण का विशदता से सम्पादन किया है। काव्य के अन्तिम सर्ग मे सीता और लक्ष्मण मे इस विषय पर सुन्दर सवाद की योजना नवीनजी ने की है। कवि का मत है कि नर और नारी मे केवल बाह्य रूप-भेद ही है, अव्यक्त रूप मे दोनो का अस्तित्व एक ही है।

---

१४. ऊर्मिला, पृ० ५४६-५०
१५. वही, तृतीय सर्ग, पृ० २९९
१६. वही, षष्ठ सर्ग, पृ० ३००
१७. वही, तृतीय सर्ग, पृ० ३०१

नर नारी हो और नारी नर हो। विकसित पूर्ण जीवन की सुगति इसमे है कि नर नारी हो और नारी नर हो। नारी के सदय हृदय से पुरुष मे नारी का प्रतिबिम्ब अनिवार्यत होता है। हो पुरुष जगहित मे लगता है

"देवि, नरोत्तम है वह जिसमे हो नर-नारी का मिश्रण,
ऐसे ही नर वर मरते हैं—जग का सचित वेदना व्रण।
×　　　×　　　×
प्रति विकसित नर मे रहती है कुछ नारीपन की झाईं,
उसी तरह ज्यो विधु विम्बित, प्रकृति नटी की परछाईं।"[१८]

कवि ने स्पष्ट शब्दो मे कहा है—"जिस नर मे नारीपन का अंश नहीं, वह नर नही, वानर है।"[१९] नारीत्व की गरिमा का प्रतीक ऊर्मिला है, जिसे लक्ष्मण चिर-प्रेरिका, प्रकृति-रूपिणी देवी और भक्ति की प्रतिमा मानते हैं·

"तुम हो प्रकृति-रूपिणी देवी, तुम हो आदि शक्ति प्रतिमा,
त्वमसि मदीया चिर-प्रेरणा, त्वमहि मदीय भक्ति प्रतिमा।
तुम मेरा साहस बल वैभव, तुम मम हास विलास प्रिये,
तुम मम नेह सरणि, तुम मेरा नव सन्देशोल्लास प्रिये।"[२०]

लक्ष्मण के उपर्युक्त कथन मे आर्य सस्कृति द्वारा नारी को प्रदत्त गौरव की भावना स्पष्ट दिखायी देती है।

विश्वबन्धुत्व—'सर्वँवसुधैवकुटुम्बकम' के आदर्श को काव्य मे चरितार्थ किया गया है। इस आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए कवि ने उत्कट राष्ट्रवाद का भी खण्डन किया है। नवीनजी का मत है कि—"कभी-कभी साम्राज्यवादी मनोवृत्ति एव अर्थलिप्सा के वशीभूत होकर समूचा राष्ट्र भी दुष्टतामय हो सकता है। ऐसी परिस्थिति मे हमे राष्ट्रविमुख भी चलना पड सकता है। अन्यथा शताब्दियो से सचित सत्य, ज्ञान और सस्कृति का वैभव भस्मसात् हो जायेगा।"[२१] जन-समूह के हृदय मे आसुरी भाव जगने लगें तो हमे सामूहिकता के भी प्रतिकूल हो जाना चाहिए, क्योंकि मनीषियो के लिए तो सारा ससार ही अपना है·

---

[१८] ऊर्मिला, षष्ठ सर्ग, पृ० ६१३-१४
[१९] वही, षष्ठ सर्ग, पृ० ६१४
[२०] वही, तृतीय सर्ग, पृ० २२५
[२१] वही, षष्ठ सर्ग, पृ० ५५६-५७

"देश विदेश संकुचित जन का, है अनुचित संकुचित विचार,
है मनीषियो का स्वदेश वह, जहाँ सत्य शिव का विस्तार।
हैं जग के नागरिक सभी हम, सब जगभर यह अपना है,
सीमित देश विदेश कल्पना, मिथ्या भ्रम का सपना है।"[११]

संस्कारो का महत्त्व—काव्य मे स्थान-स्थान पर भारतीय संस्कारो का वर्णन करते हुए उनका महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। ये सस्कृति के बाह्य आधार हैं। उदाहरणार्थ, 'विवाह' नामक सस्कार को ही लें। विवाह को कवि ने दो आत्माओ का मिलन और अभिन्नत्व की जय कहकर अपनी सस्कारगत आस्था प्रकट की है :

"आर्य धर्म मे यह वैवाहिक बन्धन परम धर्ममय है,
दो आत्माओ का मिश्रण है, अभिन्नत्व की जय है।"[१२]

वर्णाश्रम व्यवस्था—वर्णाश्रम-व्यवस्था भारतीय आर्य सस्कृति की अभूतपूर्व विशेषता रही है। काव्यारम्भ मे ही नवीनजी ने इस व्यवस्था के आदर्श रूप का चित्रण किया है। जनकपुरी का ब्राह्मण वर्ग दृढव्रती, धर्मधारी, तपस्वी, योगाभ्यासी, तत्त्वदर्शी एव मनस्वी है।[१३] देश की स्वतन्त्रता के रक्षक क्षत्री बलिष्ठ भुजाओ वाले तथा पराक्रमी हैं।[१४] वैश्य लक्ष्मीसेवी और व्यवसायी हैं।[१५] शूद्र सेवाभावी हैं और वे इस सिद्धान्त के पोषक हैं कि :

"सेवाधर्मः परम गहनो योगिनामप्यगम्य."[१६]

अर्थवाद का खण्डन—आर्य सस्कृति की एक उल्लेखनीय विशेषता यह रही है कि उसमे अर्थ की प्रधानता कही भी स्वीकार नहीं की गयी है। जबकि पाश्चात्य सस्कृति और सभ्यता मे विकास और प्रगति का आधारस्तम्भ अर्थ को ही कहा गया है। हमारे यहाँ भोग-सग्रह, भौतिकवादिता, आडम्बर-प्रियता के स्थान पर त्याग, तपश्चर्या, सयम, अपरिग्रह, आध्यात्मिकता एवं सादगी को स्वीकार किया गया है। 'ऊर्म्मिला' के रचयिता ने इन्हीं तत्त्वो को भारतीय सस्कृति का आधार माना है :

---

[११] ऊर्म्मिला, पृ० ५५८
[१२] वही, द्वितीय सर्ग, पृ० ८०
[१३] वही, प्रथम सर्ग, छन्द २८, पृ० १८
[१४] वही, पृ० १८
[१५] वही, छन्द ३१, पृ० १८
[१६] वही, छन्द ३२, पृ० १९

"शुद्ध विचार-प्रेरणा ही है,
भित्ति सभ्यता संस्कृति की।
सदाचरण शीलता मात्र है,
द्योतक संस्कृति, मति, धृति की।"[१८]

नवीनजी का मत है कि जो लोग अर्थोपार्जन को जन-संस्कृति का मापदण्ड मान लेते हैं, वे सत्-असत् का विचार छोड़कर अर्थ-संचय को जीवन का लक्ष्य बना लेते हैं। अर्थ-संचय की वृत्ति मानव-मन को चिन्तन-मननशून्य और जड़वादी बना देती है। वैदिक ऋषियों ने कभी भी अर्थ-संचय नहीं किया। वे लोकोत्तर आध्यात्मिक साधना को ही सबसे बड़ा धन मानते थे।[१९] आज संसार में जो प्रगति हुई है, वह अर्थवाद का परिणाम नहीं है, क्योंकि :

"यदि संस्कृति गति लौकिक आर्थिक,
संचय के संग-संग चलती।
तो वल्कल वसनों के युग में,
कैसे ज्ञान ज्योति जलती।"[२०]

अस्तु, मानवता के विकास एवं प्रगति का मापदण्ड अर्थ नहीं हो सकता :

"मानवेतिहास की प्रगति का मापदण्ड धन धान्य नहीं,
यह समाज संस्कृति जा सकती, नापी धन से कभी नहीं।"[२१]

आत्मवाद में आस्था—भारतीय धर्म-साधना के अनुसार कवि नवीन ने आत्मा के अस्तित्व और आत्मवाद की विचारधारा को स्वीकार किया है। उसने भौतिकतावादी, जड़वादी, पदार्थवादी जीवन-दर्शनों से तुलना करते हुए आत्मवाद की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है। कवि का मत है कि किस जड़-पदार्थ या अन्धशक्ति से चेतन भाव जगा, इस प्रश्न का उत्तर भौतिकवादी दार्शनिकों के पास नहीं है।[२२] भौतिकतावादी विवेचन शुष्क तर्कों पर आधारित है, इसलिए :

---

[१८] ऊर्मिला, षष्ठ सर्ग, पृ० ५५४
[१९] वही, षष्ठ सर्ग, पृ० ५५३
[२०] वही, पृ० ५५४
[२१] वही, पृ० ५५४
[२२] वही, पृ० ५४७

"भौतिकवाद चेतना विरहित,
है वह निपट निराशावाद।
राजस-तामस गुणमय वह है,
मानव मन का मत्त प्रमाद।"[13]

जबकि आत्मवाद मे अनन्तता है। उसमे रुचिर ज्ञान का वैभव है। उसमे सचय-वृत्ति का अभाव है।[14]

इस प्रकार आर्य संस्कृति के सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक दोनो ही रूपो का विवेचन कवि ने प्रस्तुत किया है। 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य मे आर्य सस्कृति का महान् और समृद्ध स्वरूप अंकित हुआ है। जहाँ तक सास्कृतिक चेतना के निरूपण का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि– 'साकेत' की अपेक्षा 'ऊर्म्मिला' मे आर्य सस्कृति और धर्म की शखध्वनि अधिक प्रखर और प्रभविष्णु प्रतीत होती है।"[15]

युग चेतना के स्वर—आर्य सस्कृति के महत् आदर्शों की प्रतिष्ठा के साथ-साथ 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य मे युग-चेतना के स्वर भी मुखरित हुये हैं। समसामयिक जीवन की चेतना को आत्मसात् करके कवि नवीन ने अपनी जीवन-दृष्टि का निर्माण किया हैं। भारत के अतीत गौरव का गायक कवि नवयुग के स्वागतार्थ भी सन्नद्ध है :

"आओ नवयुग उन्नत मस्तक,
हो हम स्वागत करते हैं।
तेरे नव आदर्शों को हम
सिर आंखो पर धरते है।"[16]

नवयुग की नव चेतना से प्रेरित होकर ही कवि जागरूकता को जीवन का धन, सत्याचरण को आत्मचिन्तन और जन सेवा को ईश्वर भक्ति कहता है :

"जागरूकता जीवन धन है,
सत्याचरण आत्मचिन्तन है।

---

[13] ऊर्म्मिला, पृ० ५४८
[14] वही, पृ० ५४८
[15] डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे, बालकृष्ण नवीन व्यक्तित्व एव काव्य, पृ० ३७१
[16] ऊर्म्मिला, सर्ग, पृ० ५८६

निश्चल होकर जगज्जनो की,
सेवा ही प्रभु का वन्दन है ।"[१७]

कवि ने मानव और जीवन की व्याख्या भी इसी प्रगतिशील जीवन दृष्टि से प्रेरित होकर की है । उसके मतानुसार, मनुष्य अग्निपुंज विभु के मन की आग्नेय कल्पना है । मानव की मानवता इसमे है कि वह आग से खेले, अर्थात् संघर्षरत रहे ।[१८] जीवन सचेतन शक्ति का प्रचण्ड गति सक्रमण है, जिसका उद्देश्य जड़ता का भेदन कर समता सस्थापित करना है ।[१९] जीवन धीर-गम्भीर-नीर का प्रवाह है, जिसका कार्य जगत की प्यास बुझाना है । जीवन सतत् युद्ध है, जिसमे गति और संघर्ष है ।[२०] नवीनजी ने जीवन की तुलना उस विप्लव गान से की है, जिसके स्वरो मे क्रान्ति और परिवर्तन का सन्देश है

"जीवन है चिर विप्लव गायन,
स्वर जिसके हैं सतत क्रान्ति ।
गीत भार है नित परिवर्तन,
गायन लय है चिर अश्रान्ति ।"[२१]

कवि की कामना है कि हमे विप्लव गान गाते गाते जीवन पथ पर बढ़ना चाहिए । विप्लव के तत्त्वो का जगत मे अथक प्रसार होना चाहिए, जिससे रूढ़ियो का उच्छेदन हो । तिमिर कालिमा प्रकाश मे परिवर्तित हो ।[२२]

वादात्मक प्रभाव

'ऊर्म्मिला' महाकाव्य की रचना पर अनेक वादात्मक विचारधाराओ का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है । इनमे उल्लेखनीय हैं—गांधीवाद, स्वच्छन्दतावाद, रोमांसवाद, हालावाद, मानवतावाद आदि ।

'ऊर्म्मिला' महाकाव्य की रचना जिस युग मे हुई थी, उस युग का जीवन गांधीजी से प्रभावित था । सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि सभी जीवन-क्षेत्रो मे गांधीवादी विचारो और सिद्धान्तो को स्वीकृत किया जा चुका था । 'ऊर्म्मिला' महाकाव्य मे अहिंसा, सत्याग्रह, साम्राज्यवाद का विरोध

---

[१७] ऊर्म्मिला, द्वितीय सर्ग पृ० ७६
[१८] वही, षष्ठ सर्ग, पृ० ५६७
[१९] वही, पृ० ५६८
[२०] वही, पृ० ५६६
[२१] वही, षष्ठ सर्ग, पृ० ५७०
[२२] वही, पृ० ५७१

आदि गांधीवादी विचारधारा के मूलभूत सिद्धान्तों को स्वीकृत किया गया है। गांधीजी अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरोधी थे। 'ऊर्म्मिला' के राम भी इसी मनोवृत्ति के समर्थक हैं :

"है साम्राज्यवाद का नाशक
दशरथ-नन्दन राम सदा।
है भौतिकवाद विनाशक,
जनमन-रंजन राम सदा।"[४३]

नवीनजी ने राम और रावण को क्रमशः आत्मवाद और साम्राज्यवाद का प्रतीक माना है। राम और रावण का संघर्ष वस्तुतः आत्मवादी और साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों का ही संघर्ष कहा गया है। एक स्थल पर राम कहते हैं :

"महामहिम रावण का मेरा, नहीं व्यक्तिगत था झगड़ा,
आत्मवाद साम्राज्यवाद का वह था अनमिल भेद बड़ा।"[४४]

'ऊर्म्मिला' की रचना पर रोमांसवाद, स्वच्छन्दतावाद, हालावाद आदि का भी प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। पाश्चात्य शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति का तब तक भारतीय जन-जीवन पर प्रभूत प्रभाव पड़ चुका था। कवि हरिवंशराय 'बच्चन' की हालावाद सम्बन्धी कविताएँ तत्कालीन साहित्य जगत में बहुचर्चित थीं। उमर खैय्याम की रूबाइयों का अनुवाद लोग बड़े चाव से पढ़ते थे। "स्वयं नवीनजी हिन्दी साहित्य में हालावाद के उन्नायक हैं और स्वयं ऐसी कुछ कविताएँ लिख चुके थे। 'ऊर्म्मिला' उस प्रभाव से अछूती न रह सकी।"[४५] कवि ने ऊर्मिला और लक्ष्मण के प्रेम का निरूपण करते समय लक्ष्मण से कहलाया है

"तुम रसदात्री, मैं मधुपायी,
तुम प्याली, मैं मतवाला।
मैं मदिरा, तुम पात्र मनोहर,
मैं गाहक, तुम मधुशाला।
× × ×

---

[४३] ऊर्म्मिला, पृ० ५५५
[४४] वही, ५४१
[४५] जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव, नवीन और उनका काव्य, पृ० १४०

गरलमयी तुम, सुधामयी तुम,
तुम मेरी मदिरा बाला।
अभयदान देती मदमाती,
मुझको करने दो मतवाला।"४६

लक्ष्मण-ऊर्मिला के प्रेमालाप वर्णन मे कवि ने रोमासवादी मनोवृत्तियो का परिचय दिया है। लक्ष्मण का निम्नांकित कथन द्रष्टव्य है :

"अरी रानी क्यो ललचा रही ?
लाज से क्यो ठानी है रार ?
तनिक मुख तो कुछ ऊँचा करो,
रच कर लूँ नैनो से प्यार।
× × ×
अये, गड़ जाओ हिय मे इसी,
भाँति लज्जा नौ की पतवार।"४७

दोनो के प्रेम मिलन का चित्र भी इसी सन्दर्भ मे द्रष्टव्य है :

"ऊर्मिला के उरोज पर झुके, सुलक्ष्मण को निद्रा आ गई।
एक की मृदु गोदी मे एक, गुंथे से वे ऐसे सो रहे,
त्रिवेणी का मानो आवेश, उदधि मे मिलते ही सो रहे।
× × ×
ऊर्मिला की चादर पर आज, चढा लक्ष्मण का चोखा रंग,
विध गये वे अनग नाराच, तड़प उट्ठा मन का सुकुरंग।"४८

दाम्पत्य-जीवन के मधुर-विनोद एव प्रेम क्रीडाओ के अतिरिक्त देवर-भाभी (लक्ष्मण-सीता) के मुक्त परिहास का चित्रण भी कवि ने किया है, जिसमे स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ दिखायी देती हैं। लका से लौटते हुए विमान मे देवर-भाभी के एक लम्बे परिहासपूर्ण सवाद की आयोजना की गयी है, जिसके दो अश द्रष्टव्य हैं :

सीता का कथन .

"धन्य भाग ऊर्मिला बहन के,
ऐसा ढोंगी पति पाया।

४६ ऊर्म्मिला, तृतीय सर्ग, पृ० २१९-२०
४७ वही, द्वितीय सर्ग, पृ० १४४-४५
४८ वही, द्वितीय सर्ग, पृ० १४६-४७

भीतर-भीतर रस ऊपर से,
फैलाई यह यति माया।
सच बोलो क्या करते हो तुम,
सदा ऊर्मिला का ही ध्यान।"[४९]

लक्ष्मण का प्रति उत्तर :

"भाभी तनिक राम से पूछो,
क्या हो जाता है मन में।
कैसे सोते - सोते करते
विचरे थे वे बन - बन में।
मैं तो फिर भी छोटा हूँ,
मेरी कौन बिसात अहो।"[५०]

मानवतावाद हमारे युग का सबसे उन्नत विचार-दर्शन है। कवि नवीन ने 'ऊर्म्मिला' में इस विचारधारा के मूलभूत सिद्धान्तों की प्रस्थापना आद्यान्त की है। यथा :

"हैं जग के नागरिक सभी हम,
सब जगभर यह अपना है।
सीमित देश - विदेश कल्पना,
मिथ्या भ्रम का सपना है।"[५१]

'ऊर्म्मिला' महाकाव्य की रचना पर विभिन्न युगीन विचारधाराओं (वादों) का प्रभाव काव्य के रचनाफलक को व्यापक परिवेश प्रदान करता है। काव्य में समकालीन चिन्तन-प्रवृत्तियों का समाहार कवि की युग-जीवन के प्रति सजग आस्था का परिचायक है। सत्य तो यह है कि—"नवीन का कवि सर्वदा से मानवता के प्रति ईमानदार रहा है तथा उसकी कुशल अन्तर्दृष्टि ने सदा ही युग के सत्य को परखा है।"[५२] प्रस्तुत काव्य के जीवन-दर्शन की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि जिस सांस्कृतिक चेतना के समाहार की चेष्टा की गयी है, वह पौर्वात्य और पाश्चात्य, प्राचीन और अर्वाचीन, आध्यात्मिक

---

[४९] ऊर्म्मिला, षष्ठ सर्ग, पृ० ५९५

[५०] वही, पृ० ५९६

[५१] वही, षष्ठ सर्ग, पृ० ५५८

[५२] केशवदेव उपाध्याय, नवीन दर्शन —अपनी बात

और भौतिक जीवनादर्शों से एक साथ प्रभावित है। उसका आधार विश्व-मंगल की कामना है :

"आत्मसमर्पण की अनहद् ध्वनि,
उठे विश्व के अम्बर में,
परम मुक्ति की जगे लालसा,
जग में, सकल चराचर में।"[५३]

---

५३ ऊर्मिला, षष्ठ सर्ग, पृ० ५८७

'एकलव्य' महाकाव्य
गुरुभक्ति का चिरन्तन कीर्तिमान

१२

'एकलव्य' महाकाव्य
गुरुभक्ति का चिरन्तन कीर्तिमान

प्रत्येक महाकाव्य की रचना के मूल मे कोई बलवती सृजन प्रेरणा और महत् उद्देश्य की सिद्धि निहित रहती है। महाकाव्य की महार्घता शिल्पगत वैशिष्ट्य एव जीवन-दर्शन सम्बन्धी उपलब्धियो के साथ साथ उद्देश्य की महत्ता पर भी निर्भर करती है। डॉ० राम कुमार वर्मा प्रणीत 'एकलव्य' महाकाव्य भी बलवती सृजन प्रेरणा का ही प्रतिफलन है। यह सृजन प्रेरणा थी—एकलव्य के चरित्र का महत्वाकन और इस चारित्रिक माध्यम से गुरु भक्ति के उच्चतम उदात्त आदर्श की अभिव्यजना। एकलव्य की चारित्रिक गरिमा से सम्बन्धित समाख्यान 'महाभारत' के १३२वें अध्याय मे ३१वें श्लोक से लेकर ६०वें श्लोक तक केवल तीस श्लोको मे वर्णित है। 'महाभारत' के इसी अत्यल्प और विरल कथासूत्र को अधिगृहीत कर डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपनी अद्भुत कल्पना शक्ति और सृजनात्मक मेधा के बल पर 'एकलव्य' शीर्षक महाकाव्योचित गरिमा से मडित प्रबन्ध काव्य-कृति की सर्जना की है। वस्तुत 'एकलव्य का प्रणयन समकालीन युग बोध और मानवतावादी जीवन-दृष्टि से अनुप्रेरित होकर हुआ है। सस्कृत काव्य शास्त्र की परम्परा और काव्याचार्यों द्वारा निर्दिष्ट लक्षणो के अनुसार महाकाव्य का नायक सुर, सद्वशीय या क्षत्रिय ही हो सकता है। किन्तु डॉ० वर्मा ने निषाद पुत्र को 'एकलव्य' महाकाव्य के नायकत्व पद पर आसीन करके अपनी मानवतावादी जीवन दृष्टि का ज्वलन्त प्रमाण प्रस्तुत किया है। इस सम्बन्ध मे 'एकलव्य' के रचयिता का यह कथन उल्लेखनीय है कि—"एकलव्य ने जिस आचरण का परिचय दिया है, वह किसी उच्च कुल के व्यक्ति के आचरण के लिये भी आदर्श है। वह 'अनार्य' नही 'आर्य' है, क्योकि उसमे 'शील' का प्राधान्य है। यही उसमें महाकाव्य का नायक बनने की क्षमता है, भले ही वह

'सुर' अथवा 'सद्वश' मे उत्पन्न क्षत्रिय नही है।"[1] एकलव्यकार की एतद्-विषयक अवधारणा किवा मानवतावादी जीवन-दृष्टि के परिनिर्माण मे महाभारत के सूत्र वाक्य—'नहि मानुषातछ्रेष्ठतर हि किंचित्' तथा राष्ट्रपिता महात्मा गाधी के तत्कालीन अछूतोद्धार आन्दोलन का भी उल्लेखनीय योगदान रहा है। कवि ने स्वय 'आमुख' मे स्वीकार किया है कि—"मेरे शैशव के सस्कारो मे अकुरित और बापू के अछूतोद्धार मे पल्लवित यह कथा दस वर्षों की साधना के बाद आज की युगवाणी मे प्रस्फुटित हो रही है।" डॉ० वर्मा के उद्धृत मन्तव्यो से स्पष्ट है कि 'एकलव्य' की रचनात्मक सोद्देश्यता युग बोध की व्यापक विवृत्ति और महाकाव्यादर्शो की नायक विषयक परिकल्पना के क्रान्तिकारी परिवर्तन की अवधारणा मे निहित है। अपने उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए एकलव्यकार को कथानक मे अपेक्षित परिवर्तन भी करने पडे हैं। इन परिवर्तनो को मूलकथा से विलग अवान्तर प्रसगो, नवीन उद्भावनाओ एव काल्पनिक घटना-क्रम की आयोजना के परिपार्श्व मे देखा जा सकता है। इतिवृत्त-विधान मे महाकाव्यकार का कौशल इस दृष्टि से प्रशसनीय है कि उसने मूलकथा के प्रचलित और प्रख्यात स्वरूप को खर्व किए बिना नवीन उद्भावनाएँ की हैं। डॉ० गोविन्द राम शर्मा का मत है कि—"वर्मा जी ने इस कथा मे नवीन उद्भावनाओ द्वारा यत्र-तत्र परिवर्तन करके इसे अधिक व्यापक, प्रभावशाली और बुद्धिग्राह्य बनाया है। मूल कथा के पौराणिक रूप की यथेष्ट रक्षा करते हुए कवि ने उसे आज के युग की माँग के अनुरूप नव दृष्टि से देखा है।"[2] 'एकलव्य' के कथानक की दूसरी विशेषता यह है कि कवि ने—"महाभारत के इतने सक्षिप्त प्रसगो मे भी राजनीतिक और सामाजिक स्थिति की सूक्ष्म परख की है और मनोवैज्ञानिक जिज्ञासा बिन्दु देखा है।' एकलव्य की कथा की क्षीणता मौलिक उद्भावनाओ से पुष्ट है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण, मर्मस्पर्शी हृदय और चिन्तन ने कथा शिल्प के स्तर को बहुत ऊँचा उठा दिया है।"[3] इसके अतिरिक्त 'एकलव्य' का सर्ग-सयोजन-क्रम भी नितान्त नाटकीय एव अर्थवत्तापूर्ण है। दर्शन, परिचय, अभ्यास, प्रेरणा, प्रदर्शन, आत्म निवेदन, धारणा, ममता, सकल्प, साधना, स्वप्न, लाघव, द्वन्द्व और दक्षिणा शीर्षक चौदह सर्गो मे विभाजित और विकसित कथाक्रम

---

[1] एकलव्य, आमुख, पृ० ६

[2] हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ० ४२८

[3] आधुनिक हिन्दी महाकाव्यो का शिल्प विधान, पृ० १७७

एकलव्य की एकनिष्ठ धनुर्वेद साधना और दक्षिणागुष्ठ समर्पण रूपी महान् गुरुभक्ति-भाव की नाटकीय अभिव्यक्ति देने मे सर्वथा सफल है। प्रासगिक वृत्त के अन्तर्गत द्रोण और कौरव राजकुमारो तथा एकलव्य-जननी के अवान्तर प्रसग हैं जो प्रधान कथा के अङ्गभूत ही हैं। 'एकलव्य' के कथात्मक विनियोजन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता उसके कल्पना प्रसूत अशो का चारित्रिक मनोविज्ञान से सम्बन्ध है। 'एकलव्य' के इतिवृत्त से सम्बन्धित कुछ प्रश्न और सम्भावनाएँ भी काव्य मे उभरती हैं। उदाहरणार्थ—यह प्रश्न उठता है कि गुरु द्रोण से तिरस्कृत होने पर भी एकलव्य ने द्रोणाचार्य को ही गुरु रूप मे क्यो वरण किया? द्रोणाचार्य प्रभृति मेधावी और स्वाभिमानी आचार्य ने एकलव्य के व्यक्तित्व की गरिमा और चरित्र की महनीयता से अभिभूत होते हुए भी प्रथम तो तिरस्कृत क्यो किया? और फिर बिना दीक्षा दिए ही उससे दक्षिणा क्यो मांगी? इन दोनो प्रश्नवाचक सन्दर्भो के पार्श्व मे अनेक युगीन समस्याएँ प्रतिफलित होती हैं। जैसे—आर्य संस्कृति के उच्चादर्शों की असगतियाँ, सामन्ती-शासन व्यवस्था का जातीय आधार और उसकी विपाक्त परिणतियाँ, गुरु-शिष्य परम्परा के नैतिक परिसन्दर्भों मे मानवीय जीवन-मूल्यो की उपेक्षा आदि। 'एकलव्य' महाकाव्य के इतिवृत्त मे इन सभी सम्भावनाओ को उजागर नही किया गया अपितु इनके औचित्य-अनौचित्य पर भी विचार किया गया है।

'एकलव्य' वस्तुत चरित्रमूलक महाकाव्य है और उसके रचनात्मक वैभव और सर्जनात्मक गौरव का वास्तविक मूल्याकन चरित्र-विश्लेषणात्मक आयामो के परिसन्दर्भों मे ही किया जा सकता है। गुरुभक्ति के चिरन्तन कीर्तिमान की प्रतिष्ठा भी एकलव्य की चरित्र योजना मे ही विन्यस्त है। सामन्ती सस्कृति के अभिशापो, तत्कालीन शिक्षा-व्यवस्था की विडम्बनाओ, जातिमूलक जीवन-पद्धति की विसगतियो तथा वर्ण और वर्गभेद की वैषम्यमूलक स्थितियो का निरूपण भी एकलव्यकार ने चरित्र-सृष्टि के माध्यम से ही किया है। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि 'एकलव्य' के रचयिता की रचनाधर्मी आस्थाएँ और निष्ठाएँ आलोच्य महाकाव्य के कतिपय पात्रो के माध्यम से ही अभिव्यंजित हुई हैं।

गुरुभक्ति के चिरन्तन कीर्तिमान का सस्थापक यद्यपि एकलव्य है किन्तु उसकी गुरुभक्ति के आलम्बन द्रोणाचार्य तथा प्रतिद्वन्द्वी पार्थ हैं। अस्तु, प्रस्तुत सन्दर्भ मे एकलव्य, द्रोणाचार्य और अर्जुन के चारित्रिक त्रिकोण मे उभरने वाली सघर्ष और सामजस्य की धुँधली-उजली रेखाओ की आधारभूमि पर

संस्थापित गुरुभक्ति के आदर्श की व्याख्या अभीप्सित है। यह व्याख्या चरित्र-चित्रण की परम्परित शैली मे नही अपितु इतिवृत्त, चरित्र और उद्देश्य की सगंक्रम आघृत सश्लिष्ट विश्लेषण-पद्धति पर की जा रही है।

काव्यारम्भ से पूर्व 'स्तव' शीर्षक मगलाचरण प्रकरण मे डॉ० वर्मा ने एकलव्य के चरित्र की जिस महनीयता का बखान किया है; उसी का काव्य के कलेवर मे प्रतिपादन हुआ है। एकलव्य की प्रशस्ति मे वे कहते हैं—

"प्रभु ! एकलव्य ऐसा बीज है कि जिसने,
साधना-शिला के बीच अग्नि-रस पाया है।
और शुष्कता मे भी हरीतिमा को जन्म दे
जीवन का सत्य, शून्य नभ मे सजाया है॥"

(स्तव, पृ० ६)

'एकलव्य' महाकाव्य का समारम्भ 'दर्शन' शीर्षक प्रथम सर्ग से नाटकीय शैली मे एकलव्य और उसके मित्र नागदन्त के परस्पर वार्तालाप से होता है। एकलव्य ने कहा कि वह नाराच के लिए लोहखण्ड लेने राजधानी गया था, किन्तु वहाँ सब लोह-भण्डार राजकुमारो के विशिष्ट अस्त्रो के लिए रक्षित थे, अतः उसे विद्रोह और निराशा लिए हुए लौटना पडा। मार्ग मे देखा कि वीटिका के कुए मे गिर जाने के कारण राजपुत्र निराशा और निरुपाय खडे हैं। तभी देव द्रोणाचार्य उनसे कहते हैं कि तुम कुरुवशी वीर हो; राज्यश्री तुम्हारे बाहुबल की स्वामिनी है और तुम एक क्षुद्र वीटिका नही निकाल सकते हो ? तुम अपने स्वजनो को दु:ख-कूप से कैसे निकालोगे ? इसी अवसर पर कवि ने द्रोणाचार्य के व्यक्तित्व का प्रभावशाली शब्द-चित्र अकित किया है—

"श्वेत जटा, विस्तृत ललाट, वसी भौहे हैं,
नेत्र हैं विशाल, रक्तवर्ण, उठी नासिका।
श्वेत श्मश्रु बीच ओठ, जैसे शुभ्र अभ्रो की,
ओट सध्याकाल-मध्य दुर्ग का कलश है।"

(दर्शन सर्ग, पृ० १२)

द्रोणाचार्य ने अभिमन्त्रित सीक डालकर कुएँ से वीटिका निकाल दी तथा राजपुत्रो को प्रबोधन के स्वर मे कहा कि वीटिका की भाँति यदि राजदण्ड ही कुएँ मे गिर गया तो उसे कौन निकालेगा ? तुम क्षत्रिय हो ! राजधर्म की

रक्षा के गुरुतर दायित्व का सवहन तुम शक्तिहीन बन कर नहीं अपितु वीर बन कर करो—

"क्षत्रिय हो, राजधर्म चाहता है तुम से,
जीवन-धनुष पर तीर रखो प्राण का।
धर्म वीटिका पड़ी हो यदि छद्म कूप मे,
तो निकालो उसे शीघ्र लक्ष्य-वेध करके।
× × ×
श्लाघ्य है, तुम्हारी मातृ भूमि पावे तुमसे
शब्द वीरता न, किन्तु शब्द वेध वीरता।"

(दर्शन सर्ग, पृ० २०)

द्रोणाचार्य की ओजस्वी वाणी से अभिभूत होकर राजपुत्रो ने उनसे प्रार्थना की कि वे भीष्म पितामह के पास चलें जहां उन्हे वे राज गुरु के रूप मे प्रतिष्ठा दिलायेंगे। द्रोणाचार्य राजकुमारो के साथ चले गए। किन्तु एकलव्य द्रोणाचार्य के व्यक्तित्व की गरिमा, धनुर्वेद ज्ञान और वाणी की ओजस्विता से इतना अभिभूत हुआ कि उसने मन ही मन उनसे दीक्षा लेने का सकल्प कर लिया—

" तेजोमय रूप हे!
चाहता मैं शिक्षा धनुर्वेद की हूँ तुमसे,
प्रभु! मुझे दिव्य मन्त्र दे दो, गुरु मेरे हो।'

(दर्शन, सर्ग १, पृ० २४)

'परिचय' शीर्षक द्वितीय सर्ग के समारम्भ मे हस्तिनापुर की राजसभा के कलात्मक सौन्दर्य का वर्णन है। राजसभा में नृप धृतराष्ट्र एव सभासदो की उपस्थिति मे भीष्मपितामह ने द्रोणाचार्य का स्वागत करके उन्ह अपना परिचय देने को कहा। गुरु द्रोण ने स्वपरिचय मे बताया कि वे अगिराकुल के ऋषि भारद्वाज के अयोनिज पुत्र हैं। महर्षि अग्निवेश से उन्होने वेद वेदागो की शिक्षा प्राप्त की है। उनका विवाह महात्मा शरद्वान की कन्या कृपि से हुआ और अश्वत्थामा पुत्र भी हुआ। द्रोण ने धनाभाव के कारण होने वाली यातना और तिरस्कार का भी वर्णन किया। अपने सहपाठी द्रुपदराज यज्ञसेन द्वारा किए गए अपमान का वर्णन करते समय द्रोणाचार्य की मुख मुद्रा अत्यन्त भयावह हो रही थी। कवि के शब्दो मे—

"दांत वज्र जैसे सधिहीन क्से मुख मे,
ओठ भूमि कप से फटे हुए शिखर थे,

जीभ जैसे सर्पिणी-सी ऐंठी निज बाँबी मे,
स्वेद जैसे आग की नदी बही हो सिर से।
शब्द विष की प्रचण्ड ज्वाला मे बुझे हुए,
तीर जैसे निकले—"

(परिचय, सर्ग २, पृ० ५०)

अपने अभावग्रस्त जीवन की कटुताओ का उल्लेख करते हुए आचार्य द्रोण अत्यन्त उद्विग्न थे। उनकी मनोव्यथा का सशक्त चित्रण कवि ने चार ही पक्तियो मे बडे प्रभावपूर्ण ढग से किया है। द्रोणाचार्य कहते हैं—

"क्षोभ और ग्लानि से हृदय अगार जैसा
धक्-धक् जलता था। मेरा रोम-रोम ही
सूची के समान खिच लगा मुझे छेदने।
पल-पल का कष्ट, युग-युग की पीडा थी।"

द्रोणाचार्य ने बताया कि वे पत्नी कृपी के भाई कृपाचार्य के यहाँ हस्तिनापुर मे आए हैं। अन्तत द्रोणाचार्य के वेद-वेदाग तथा धनुर्वेद ज्ञान एव चारित्रिक-गौरव से प्रभावित होकर भीष्मपितामह ने उन्हे ससम्मान राजपुत्रो को शस्त्रास्त्र की शिक्षा प्रदान करने के लिए राजगुरु नियुक्त किया।

'अभ्यास' शीर्षक तृतीय सर्ग मे गुरु द्रोण द्वारा सभी राजकुमारो को शस्त्रास्त्र-अभ्यास कराने का वर्णन है। सभी राजपुत्रो को द्रोणाचार्य ने धनुर्वेद का ज्ञानदान कर निपुण बनाया। किन्तु अर्जुन के प्रति उनका विशेष स्नेह था, अत उसे लक्ष्यभेद के साथ साथ तमभेद भी सिखाया तथा वायव्य, पार्जन्य आदि दिव्यास्त्रो की सचालन विधि का भी पूर्ण परिज्ञान कराया। द्रोणाचार्य ने शस्त्रास्त्र ज्ञान के साथ-साथ राजकुमारो को अहकार और द्वेष आदि दुर्वृत्तियो को भी विजित करने की भी शिक्षा दी। उन्होने राजकुमारो से कहा—

"एक अहकार है जो छल-छद्म रूप ले,
वामन सा आता है, विराट बन जाता है।
× × ×
द्वेष एक ज्वालामुखी-रूप लिए बैठा है।
क्षण-क्षण आग की लपट फेंकता है जो,
जलता स्वय है और अन्य को जलाता है।
× × ×

ज्ञान-गिरि चढना सहज है, किन्तु वीर !
अहकार-द्वेष जीतना महा कठिन है ।
जीतो इसको हे वीर ! युद्ध मे प्रवीण हो,
अग्र शत्रु ये हैं, फिर अन्य कोई शत्रु है ।"
(अभ्यास, तृतीय सर्ग, पृ० ६०-६१)

द्रोणाचार्य की दिव्य शिक्षा की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई । राजवशी एव अन्य अनेक कुमार भिन्न-भिन्न वेशो मे गुरु द्रोण के पास शिक्षा प्राप्त करने आने लगे ।

'प्रेरणा' शीर्षक चतुर्थ सर्ग मे हम श्रद्धाभिभूत एकलव्य को बाणो की नोक से पत्थर पर रेखाएँ खींचकर द्रोणाचार्य का चित्र बनाकर उनका गुणगान करते हुए पाते हैं, उसे खान-पान की भी सुध नही । अपने मित्र नागदन्त से वह एक दिवा—स्वप्न का भी वर्णन करता है, जिसके अनुसार वह स्वय गुरु द्रोण के सामने खडा है । वीटिका उसे प्रेरित करती है, तभी गुरु बादलो मे छिप जाते हैं । वे पुन मिट्टी के ढेर मे खिले पुष्पो मे दिखाई देते हैं । वह अपना दाहिना हाथ बढाता है कि सर्प उसका अगूठा काट लेता है । एकलव्य ने नागदन्त को बताया कि प्रस्तर चित्र ने मुझे इतना अनुप्रेरित किया है कि सम्पूर्ण सृष्टि मे दृष्टि गुरु को ही खोजती है और उन्हीं की छवि प्रकृति के कण-कण पर अकित पाती है—

"नागदन्त ! इतना प्रकाश दिया गुरु ने,
मेरी दृष्टि उनको ही खोजती है सृष्टि मे,
तारको मे, चन्द्र मे, लता मे, पुष्प-पुष्प मे ।
× × ×
मुझे द्रोणाचार्य-श्री सकेत से बुलाते हैं ।
खीचता हूँ चित्र, पेड, पत्र पाषाण पर,
कँपती सी उगलियो से, काँपते-से शर से ।
लूँगा मत्र उनसे मैं, मेरे गुरु होगे वे ।"
(प्रेरणा, सर्ग ४, पृ० ७४-७५)

गुरु द्रोण से दीक्षा प्राप्त करने का दृढ निश्चय और हठ वह अपनी माता के समक्ष भी प्रकट करता है । वह भोजन भी नहीं करता । उसके पिता हिरण्य-धनु समझाते हैं कि निषादपुत्र की शस्त्र शिक्षा राजकुल के लोग पसद नही करेंगे । अन्तत वे पुत्र के आग्रह की रक्षा-हेतु उसे राजकुमारो के शस्त्रास्त्र-

प्रदर्शन के उत्सव पर हस्तिनापुर ले जाने का आश्वासन देते हैं। एकलव्य-जननी इस कल्पनामात्र से चिंतित है कि कहीं गुरु द्रोण ने दीक्षा देना अस्वीकार कर दिया तो उसका पुत्र किसी संकटापन्न स्थिति में न फँस जाय।

'प्रदर्शन' शीर्षक पंचम सर्ग में नगर के बाहर एक विशाल प्रेक्षागार में राजकुमारों के शस्त्रास्त्र ज्ञान के प्रदर्शन का विवरण है। इस अवसर पर अर्जुन दिव्य-अस्त्रों के विलक्षण प्रयोगों द्वारा उपस्थित जनसमूह को आश्चर्य चकित कर देता है। प्रदर्शनोपरान्त जब नाना वेशों में नाना देशों से आए हुए राजकुमार गुरु द्रोण के प्रति कृतज्ञताज्ञापन कर रहे थे, तभी एकलव्य श्रद्धावनत भाव से गुरुचरणों में दृष्टि केन्द्रित किए बैठा था। 'आत्मनिवेदन' शीर्षक षष्ठ सर्ग में एकलव्य द्रोणाचार्य के समक्ष जाकर अपने वंश-पितादि का परिचय देकर उनका शिष्य बनने की जिज्ञासा प्रगट करता है। किन्तु द्रोणाचार्य ने धनुर्वेद की कठोरता का प्रतिपादन करते एकलव्य से कहा—

'वत्स! शिष्य बनने की योग्यता है तुम में,
किन्तु धनुर्वेद की कठोर साधनाएँ हैं।
तीक्ष्ण बाण-जैसी दिन रात की तपस्या है।
अग्नि शिखा सी अशान्त जीवन की गति है।
आचरण मार्ग सधा है कृपाण धार-सा,
और भाग्य के समान लक्ष्य भी अदृष्ट है।"

(आत्म निवेदन, सर्ग ६, पृ० ११६)

प्रत्युत्तर में एकलव्य ने अत्यन्त शिष्टाचार पूर्वक निवेदन किया कि दास कैसे उत्तर दे? एक पल्लव वसन्त को कैसे अर्पित हो सकता है? कृश कृशानु के अनुरूप कैसे हो सकता है? किन्तु मैं धनुर्वेद के कृच्छ्र साधना-यज्ञ के लिए अस्थि की समिधा और ब्रह्मचर्य को स्तम्भ बना दूँगा। यदि मैं लक्ष्य भेद में सफल न हुआ तो करांगुष्ठ ही काट कर समर्पित कर दूँगा। एकलव्य के कथन में उसका दृढ निश्चय, महान् संकल्प, आत्म विश्वास और विनम्रता एक साथ परिलक्षित होते हैं—

"रात बने लक्ष्य और दिन मेरा बाण हो।
जीवन के यज्ञ पर अग्नि का मुकुट हो।
प्राण के कृपाण पर आचरण पानी हो।
देव! धनुर्वेद को मैं दूँगा अर्घ्य स्वेद का,
दृष्टि एक मात्र लक्ष्य को ही पहचानेगी।

× × ×

सेवा मे समिध लाया हूँ मैं निज अस्थि की,
ब्रह्मचर्य साधना को स्तंभ बना लूँगा मैं
धन्वा के समान देव ! पद मे झुका हूँ मैं,
ग्रन्थि-हीन धारणा हो, खिंचेगी प्रत्यंचा सी।
यदि लक्ष्य-वेध मे न सफल बनूँ मैं तो,
काट के समर्पित करूँगा कराँगुष्ठ मैं।"

(वही, सर्ग ६, पृ० १२०)

एकलव्य की अनन्य निष्ठा ने गुरु द्रोण को निरुत्तर कर दिया। उन्होंने दूसरी युक्ति सोचकर कहा—वत्स ! एकलव्य तुमसे मैं प्रसन्न हूँ किन्तु यह बताओ कि निषादवश मे धनुर्वेद की क्या उपयोगिता है ? मत्स्यवेध के लिए लक्ष्यभेद नही चाहिए। निषाद वश मे तो वंशी ही पर्याप्त है जिससे मछली फँस जाती है। धनुर्वेद का ज्ञान तो ब्राह्मणो और क्षत्रियो को चाहिए। वैश्य और शूद्रो के लिए इसकी क्या उपयोगिता ? द्रोणाचार्य ने एकलव्य को समझाया कि धनुर्वेद एक सिन्धु है, उसकी गहराई मे मणिरत्न डूबे हुए हैं किन्तु तुम अबोध हो, अत. उसकी थाह नही पा सकते। फिर भूतल मे दिग्विजय तो क्षत्रिय करता है, उसके चंड भुजदड मे अस्थियो को खड-खड कर देने वाला नाराच चाहिए और उन्ही के लिए धनुर्वेद का विधान है। निषादपुत्र का शरसचालन तो शर-क्रीडा है और यह श्री-धनुर्वेद की साधना से तत्त्वत भिन्न है। प्रत्युत्तर मे एकलव्य ने कहा कि देव ! मेरी शिक्षा का समारम्भ हो गया। मैं आपके श्रीमुख से धनुर्वेद शब्द सुनकर कृतार्थ हो गया। एकलव्य ने पुन. अपने एतद्विषयक निश्चय को दृढतापूर्वक व्यक्त करते हुए कहा—

"देव ! शर-क्रीडा जानता हूँ शिशुपन से,
किन्तु धनुर्वेद मेरे यौवन का व्रत है।
वृद्ध भी बनूँगा तो तपस्या धनुर्वेद की,
करता रहूँगा, मृत्यु होगी शर-तीर्थ में।
देव ! धनुर्वेद से मैं सेवा-भाव सीखूँगा,
आप गुरु होंगे, शिष्य मैं हूँ चिरकाल से।
वाणी आपकी है शम्भु-डमरू-निनाद-सी,
और मैं हूँ अन्त्य वर्ण सूत्र प्रत्याहार का।"

(वही, पृ० १२४)

एकलव्य की अनन्य निष्ठा, संकल्प-शक्ति और गुरुभक्ति से इतने प्रभावित हुए कि वे उसकी महानता पर मन ही मन मुग्ध होकर कह उठे कि—

"है तो शूद्र, किन्तु जैसे निष्कलंक द्विज है।
बालक निषाद का है, किन्तु तेजोमय है,
जैसे मणि-रत्न है विशाल विषधर का!
अन्य राजपुत्रों से विशेष श्रद्धावान् है,
जैसे यह अंकुर है प्रस्तर के पार्श्व में!
जो कि अश्म से भी रस खींचता है शक्ति से,
भासित है जैसे वह सीप में रजत हो।"

(वही, सर्ग ६, पृ० १२५)

एकलव्य के निष्ठाभाव और धनुर्वेद के प्रति अनन्य आस्था से प्रभावित होते हुए भी द्रोणाचार्य ने उसे शिष्यत्व प्रदान करना अस्वीकार कर दिया; क्योंकि राजगुरु होने के कारण वे एक विशेष मर्यादा का अनुपालन कर रहे थे। उन्होंने अत्यन्त कठोर बनकर एकलव्य से कह ही दिया कि—

"किन्तु मेरे शिक्षण के ये ही अधिकारी हैं,
जो कि भूमिपुत्र नहीं, किन्तु भूमि पति है।
× × ×
राजगुरु हूँ, विशेष पद की मर्यादा है।
शिक्षानीति राजनीति के पदों है चलती।
शारदा की वाणी यहाँ बोलती है स्वर्ण में।
'गुरुकुल' है कहाँ! यहाँ तो 'राजकुल' है।
× × ×
जाओ, हे निषादपुत्र! तुम हो अस्वीकृत।"

(वही, पृ० १२६-१२७)

किन्तु धन्य है एकलव्य। वह तनिक भी आवेश में नहीं आया। गुरु द्रोण द्वारा अस्वीकृत होने पर भी उसने मन ही मन उन्हीं को गुरु रूप में वरण कर लिया। एकलव्य के चरित्र की भूमिका पर गुरुभक्ति के उन्मेष का प्रथम स्फुरण हमें उसके निम्नोद्धृत कथन में परिलक्षित होता है—

"जैसी गुरु-आज्ञा! एक क्षण के लिए न मैं,
इस राजकुल में रुकूँगा भूमि-पुत्र हो।

आप गुरु मेरे हैं, रहेंगे सब काल में,
हानि क्या प्रत्यक्ष ! नहीं, मेरे मन में तो है !
नाम 'धनुर्वेद' सुना श्री-मुख से आपके,
और मुझे चाहिए क्या ! साधना तो मेरी है ।"
(वही, पृ० १२७)

साधना के प्रति एकलव्य का आत्मविश्वास और अनन्य आस्था 'धारणा' शीर्षक सप्तम सर्ग में भी अभिव्यंजित हुई है। हस्तिनापुरी से लौट आने पर एकलव्य के मित्रों ने व्यंग्योक्तियों से उसका अभिनन्दन किया। उन्होंने व्यंग्य-प्रहार करते हुए कहा कि गुरु द्रोण पार्थ से भी अधिक परार्थ शिष्य को देख कर कृतार्थ हो गए होंगे, उन्होंने एकलव्य को समोद गोद में बैठाकर धनुर्वेद-दीक्षा दी होगी आदि। एकलव्य ने प्रशांत भाव से अपने मित्रों को कहा कि मेरे पूज्य गुरु और धनुर्वेद-शक्ति का परिहास कोई न करे। मेरे उर में साधना का जो राग उठा है वह तुम्हारे विवादी स्वरालाप से विकृत नहीं हो सकता। एकलव्य ने गुरु द्रोण के प्रति पूज्यभाव और धनुर्वेद-साधना के लिए अपना आत्म-संकल्प इन शब्दों में व्यक्त किया—

"दर्शन किए हैं मैंने आज पुण्य पर्व में,
उस महामानव के जो कि शक्ति स्रोत हैं।
मेरी देह की शिराएँ हो गई स-रक्त हैं,
जिनमें उमंग और ओज ओत-प्रोत हैं।
धारणा से, ध्यान से, शरीर बना धनु है,
और रोम रोम ही सधान हुए बाण हैं।
× × ×
हस्तिनापुरी में नहीं, मानसपुरी में ही,
अनुभव हो रहा कि एक गुरुकुल है।
मृण्मय शरीर के कणों में एक मूर्ति है,
गुरु द्रोण की, स्वरूप सूक्ष्म है, पृथुल है।"
(धारणा, सप्तम सर्ग, पृ० १३४-१३५)

धनुर्वेद के प्रति एकलव्य की अनन्य निष्ठा देखकर उसके साथी स्तब्ध रह गए। अन्ततः एकलव्य ने अपने अन्तरंग बन्धु नागदन्त को अपने इस निश्चय से अवगत कराया कि वह धनुर्विद्या सीखकर ही आयेगा। नागदन्त ने साथ जाने का प्रस्ताव किया, किन्तु एकलव्य उस पर माता को सान्त्वना देने का दायित्व

सौंप कर एकान्त अज्ञात स्थान के लिए प्रस्थान कर गया। एकलव्य के निर्जन वन में चले जाने पर एकलव्य-जननी के हृदय की पुत्र-वियोग जन्य वेदना की मार्मिक व्यंजना काव्य के 'ममता' नामक अष्टम सर्ग में हुई है। अपने लाल की बालसुलभ क्रीडाओं की स्मृतियाँ सजोये एकलव्य-जननी अपनी संवेदनाओं को भावपूर्ण गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त करती है। ममत्व और वात्सल्य की घनीभूत किन्तु ऋजु अभिव्यंजना इन गीतों की उल्लेखनीय विशेषता है। इस दृष्टि से कतिपय गीतांश उद्धृत हैं—

(क) "मेरा लाल न अब तक आया ?
मार्ग देखकर थकी, न कोई उसका कुशल-संदेशा लाया।
कुछ दिन में ही आवेगा, ऐसा सबने मुझको समझाया।
पर सूने दिन कहते हैं, मेरे कुमार ने मुझे भुलाया।।"
(ममता, सर्ग ८, पृ० १४७)

(ख) "मैं भी साथ तुम्हारे जाती।
उषा-काल में तुम्हें उठाने, मधुर प्रभाती गाती।
तुम उठते करते प्रणाम, मैं उर से तुम्हें लगाती।
ऐसी आशिस् देती जो, कहते ही सच हो जाती।।"
(वही, पृ० १४६)

ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर और वसन्त नामक षट्ऋतुओं के प्रत्यागमन की माता के मन पर प्रतिक्रियाओं का वर्णन भी कवि ने गीतों के माध्यम से ही किया है। एकलव्य-जननी के चारित्रिक उत्कर्ष की व्यंजना वियोग-जन्य व्यथा की असहनीयता में नहीं ; अपितु उस उदात्त भावबोध में निहित है जिसमें वह अपने लाल की साधना पर गौरव और गर्व का अनुभव करती है। एकलव्य-जननी का यह कथन इस दृष्टि से कितना सटीक है कि—

"गुणवर्धन ही तो मेरा गान है।
माता का उपमेय हृदय, बन रहा आज उपमान है।
लाल तुम्हारी कठिन तपस्या ही मेरा अभिमान है।"
(वही, सर्ग ८, पृ० १६३)

एकलव्य की अपराजेय संकल्प शक्ति का प्रतिमान काव्य के 'संकल्प' शीर्षक नवम सर्ग में द्रष्टव्य है। एकलव्य निर्जन अरण्य में वाराणत पर्वत पर धनुर्वेद साधना आरम्भ कर देता है। इसी मध्य उसके मन में यह विचार उठता है कि मेरे आर्य गुरु द्रोण ने यह क्यों कहा कि 'मेरे शिक्षण के वे ही अधिकारी

है, जोकि भूमि-पुत्र नहीं, किन्तु भूमि पति हैं। वस्तुत भूमिपति तो भूमि के प्रशासक हैं, वे सरस्वती पर शासन नही कर सकते। क्योंकि भूमि प्रशासन तो उन्हे सुयोग से प्राप्त हो गया किन्तु सरस्वती की कृपा तो साधना से ही प्राप्त हो सकती है—

"भूमि पति वे सही प्रशासक हो भूमि के,
किन्तु क्या सरस्वती का शासन करेंगे वे ?
राज-दड तो विधान करता है राज्य का,
किन्तु है सरस्वती निवासिनी हृदय की।
कैसे एक मात्र वे लहग वेद-विज्ञता ?
वेद विज्ञता तो शुद्ध साधना से आती है।
भूमिपति जो हैं, उन्हे साधना की साध क्या ?
वे तो बिना साधना के पूर्ण सिद्धि-कामी हैं।"

(सकल्प, सर्ग ८, पृ० १७६)

एकलव्य के चरित्र का वैभव उसके भूमिपुत्र होने मे ही है। उसे भूमिपुत्र होने मे गर्व है। भूमिपतियो के अकर्मण्य और साधना-शून्य जीवन को वह हेय दृष्टि से देखता है। इस सम्बन्ध मे एकलव्य की यह आत्म-स्वीकृति उद्धरणीय है कि—

"भूमिपुत्र होना, मेरे भाग्य का सुयोग है,
भूमिपति मे तो मुक्त मानव विकृत है
मूल्य नही जानते वे जीवन की गति का,
सुख है निमेष-जैसा, दुख लम्बी दृष्टि है।
अरे, यह जीवन विभूति ही है भूमा की,
सुख तो छिपा है यहाँ सृष्टि के विविर म।"

(वही, पृ० १७७)

भूमिपुत्र होने के कारण गुरु द्रोण द्वारा तिरस्कृत किए जाने पर एकलव्य का रोष गुरु के प्रति नही अपितु भूमिपतियो की उस शासन व्यवस्था के प्रति है जो भूमिपुत्रो को राजनीतिक उद्देश्यो की सिद्धि के लिए शिक्षा के समान अधिकार से वचित करती है और परिस्थितिवश गुरु द्रोण भी इस कुचक्रपूर्ण व्यवस्था के चगुल मे फँस गए हैं। एकलव्य ने कहा कि ऐसी व्यवस्था का शीघ्र पतन हो जायेगा जो महर्षियो को राजनीति से और गुरुकुलो को राजकुलो के रूप म सचालित करती है। इसी व्यवस्था की विडम्बना ने मानव पुत्रो मे

भूमिपति नामक दो वर्गों को जन्म दिया है। एकलव्य का पौरुष और स्वाभिमान भूमिपतियों को चेतावनी देता है कि उनका पशुबल-कौशल तो सीमित है, किन्तु भूमिपुत्रों का आत्मबल अपरिमित है और वे उसी के बल पर अन्तत सिद्धि रूपी विजय का वरण करेंगे। कवि ने एकलव्य के एतद्विषयक मानसिक उद्गारों को इन शब्दों में प्रकट किया है—

"सावधान, भूमिपति! हममें भी शक्ति है,
भूमिपुत्र सर्वदा हैं भूमि-बल जानते।
पशुबल कौशल तो सीमित तुम्हारा है,
आत्मबल की हमारे पास सीमा है नहीं।
एक असि झेलने को हैं अयुत अस्थियाँ,
अंग हमारे पास, कितना प्रहार है।
देखें, नवनीत लगे इन भुजदण्डों में,
जो कि सत्य की न, राजनीति की ध्वजाएँ हैं।

(संकल्प, सर्ग ६, पृ० १७७-१७८)

एकलव्य मानसिक रूप से गुरु द्रोण की विवशता के प्रति आश्वस्त होगया और उसने द्रोणाचार्य की मृण्मयी प्रतिमा बनाकर उसके समक्ष धनुर्विद्या का अभ्यास प्रारम्भ कर दिया। द्रोणाचार्य की प्रतिमा-संरचना के सम्बन्ध में कवि का कथन है कि—

'मूर्ति गुरु द्रोण की है, शिष्य एकलव्य ने,
स्निग्ध चन्द्र-ज्योत्स्ना और तीव्र रवि-रश्मि ले,
सीप-कण-मिश्रित मृदुल रज-कण में,
भैरवपूर्ण हुँकार-पूर्ण नद-जल डाल के,
अथक करों से तथा अनिमेष दृष्टि से,
पूर्ण मनोयोग से सु-योग में बनाई है।"

(साधना, दशम सर्ग, पृ० १६३)

गुरु द्रोण की प्रतिमा इतनी सजीव-सी थी कि ज्ञात होता था, गुरु द्रोण शिक्षा-दान के लिए सतर्क हुए बैठे हैं। एकलव्य ने ब्रह्म-वेला में सुमन माल गूँथ कर प्रणत भाव से आचार्य का पूजन किया। वीरवेश धारण किए, धनुर्विज्ञान ज्ञानार्जन के लिए सन्नद्ध और शुभाशीष-प्राप्ति के लिए द्रोणाचार्य की मृण्मयी प्रतिमा के समक्ष समाधिस्थ एकलव्य के आकर्षक व्यक्तित्व का शब्द चित्र महाकाव्यकार की कुशल लेखनी ने इस प्रकार अंकित किया है—

"पारावत-पख शीश मे विचित्र हैं करे,
लम्वा जटाजूट श्याम मस्तक की शोभा है।
जैसे श्याम मेघ मे रचित इन्द्र-चाप है,
खण्ड-खण्ड हो के कहीं ऊपर है, नीचे है।
है प्रशस्त भाल घने केश उठे भौंहो मे,
बीच मे मिले हैं जैसे कवित धनुष है।
नासा-रेख उन्नत कपोल सौम्य, कर्ण मे,
विलुलित है कुण्डल सुरम्य स्फटिक के।
× × ×
हृष्ट-पुष्ट विग्रह है, ब्रह्मचर्य-तज से,
कसा पीत वल्कल है, वल्लरी के रज्जु से।"
(वही, दशम सर्ग, पृ० १९४)

इस वीरवेश मे एकलव्य ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो श्याम मेघ पर बाल-रवि की रश्मि हो। एकलव्य ने श्रद्धासिक्त भाव से गुरु प्रतिमा के समक्ष नमन करके प्रार्थना की कि देव ! क्षमा करना, मैंने अपने हाथो से मृत्तिका की मूर्ति मे आपका रूप खीचा है। आप महत्तम हैं किन्तु प्रतीक (मूर्ति) अत्यन्त लघु है, किन्तु आप तो कण-कण मे परिव्याप्त हैं। आपके रूपाकन-शिल्प मे कुछ न्यूनता हो सकती है किन्तु मेरे प्रयास की निरीहता और पवित्रता ही पूज्य-भाव की साक्षी है। एकलव्य ने वन्य पशुओ के अस्थिखण्डो और सीगो का धनुष तथा द्रुम-काण्ड काटकर विशिख बनाए और अपनी धुनर्वेद-साधना का समारम्भ किया। गुरु-प्रतिमा के समक्ष एकलव्य ने पुन अपना सकल्प व्यक्त किया कि गुरुदेव ! मुझे आपका सकेत मात्र चाहिये। लक्ष लक्ष तरुजाल और लताकुज मेरी लक्ष्य-वेध-दृष्टि का लक्ष्य होगे, पल्लव शब्दो से उठी ध्वनि गुरु दीक्षा होगी। मेरी साधना नद-प्रवाह के समान सदैव गतिशील रहेगी, मेरा शर-क्षेप लहरो की भाँति चक्राकार होगा, और बीच मे यदि भवर भी पडे तो वे मेरे लक्ष्य-वेध-चिह्न होगे। मेरा हरक्षण अब साधना निरत रहेगा—

"आज से लिया है यह व्रत इस शिष्य ने,
आपके समक्ष वह साधना मे लीन हो।
× × ×
निशदिन कोई भी समय मेरी साधना,
अगीकार हो, हे देव ! आपके प्रताप से।

मेरा धनुर्वेद सिद्ध होकर रहेगा ही,
अग्नि-जन्म के लिए संघर्ष ही तो चाहिए।'

(वही, दशम सर्ग, पृ० १६६)

'अग्नि जन्म के लिए संघर्ष ही तो चाहिए'—वाक्य कहते ही संघर्ष की व्यापक भूमिका एकलव्य के मन-मस्तिष्क में उभर आई। उसने कहा कि मेरे मन की कसक यही है कि गुरुदेव आपने उस दिन यह किस अर्थ में कहा था कि—'जाओ, हे निषादपुत्र ! तुम हो अस्वीकृत'। यह आप का कथन नहीं हो सकता। यह आर्य भीष्म की भेदभाव-पूर्ण राजनीति की विगर्हणा है। क्योंकि आर्य भीष्म जानते हैं कि यदि शूद्र धनुर्वेद के अधिकारी हो गए तो क्षत्रियों को रण में पराजित कर देंगे। शूद्र कौन है ? वे श्यामवर्ण तथा वन्य-वेश-धारी हैं और अत्याचार सहकर भी शांतिपूर्ण ढंग से रहते हैं। शूद्रों को किस अधिकार से सेवक बनाया गया है ? एकलव्य ने वर्ग संघर्ष के धरातल पर उभरने वाली क्रांतिमन्त चेतना को इन शब्दों में व्यक्त किया—

"किन्तु शक्ति मानव की, देव ! दानवी नहीं,
मानव की शक्ति तो महान् तब होती है,
जब वह दानव को मानव बना सके,
और सब मानवों में साम्य की हो स्थापना।
× × +
हमने सहन की है वर्ग की विगर्हणा,
शूद्र कहलाते रहे सेवा भाव मान के।
किन्तु जब मानव को विद्या का निषेध हो,
बात क्या नहीं है क्रान्तिकारी बन जाने की ?"

(वही, सर्ग १०, पृ० १६८)

एकलव्य विचार करते करते इस निष्कर्ष पर पहुँच गया कि राजनीति की विष बेलि ही शूद्रों को विद्यावान् होने से निषिद्ध करती है। एकलव्य ने आशा की कि मेरी इस साधना से वर्णभेद की राजनीति नष्ट होगी। एकलव्य के सचेतन मानस ने कहा—

'मेरी इस साधना से राजनीति नष्ट हो,
आप आर्य रुष्ट, मुझे तो शिष्य मान लें।
× × ×

आप सब काल, सब भाँति गुरुदेव हैं,
एकलव्य शिष्य के, जो सब काल शिष्य है।"

(वही, दशम सर्ग, पृ० १६६)

'साधना' सर्ग के शेषाश मे कवि ने एकलव्य की धनुर्विद्या-साधना का विशद् विवेचन किया है। एकलव्य ने असख्य विधियो से शर-सधान किया। एकलव्य ने यौगिक, क्रिया, शलाका, व्याघाती, श्रमिक, साग्रामिक, दूरपातक्षम, दृढवेध, विकर्ष और दीर्घफल नामक नाना प्रकार के धनुष बनाकर उनके द्वारा आकर्षण, विकर्षण, पर्याकर्षण, अनुकर्षण, मुक्त मडलीकरण, पूरण, स्थारण, आसन्नपात, दूरपात, पृष्ठपात आदि सभी धनुष-गतियो का पूर्णाभ्यास कर सिद्धि प्राप्त की। लक्ष्य-साधन के आलीढ, प्रत्यालीढ, विशाख, समपाद, असम, गरुड क्रम, दर्दुर-क्रम, पद्मासन, स्थानक नामक आसनो का भी अभ्यास किया। प्रत्यचा के प्रयोग की सिंहकर्ण, वज्रमुष्टि, मत्सरी, पताका, काकतुडी आदि विधियो और अध सधान, ऊर्ध्व-सधान, समसधान नामक धनुर्मुष्टि प्रभेदो मे एकलव्य पूर्ण पारगत हो गया। एकलव्य की साधना शुक्ल पक्ष की चन्द्रिका के समान निरन्तर विकास-वृद्ध होती गई और अन्तत उसने सभी प्रकार के लक्ष्य-साधन मे नैपुण्य प्राप्त कर लिया—

"धनु खीचने मे एकलव्य की निपुणता,
धीरे-धीरे बढी व्याय पूर्ण सिद्ध हो गया।
× × ×
स्थिर लक्ष्य लेके स्थिर-वेधी एकलव्य है,
वेधी चल-लक्ष्य मे चलायमान वस्तुएँ।
चलाचल-लक्ष्य मे स्वय चल-अचल को,
वेधा! द्वय-चल मे चलित को सु चल को।"

(वही, दशम सर्ग, पृ० २११)

'स्वप्न' शीर्षक एकादश सर्ग का समारम्भ प्रकृति के कराल रूप के चित्रण से होता है। यह कराल प्रकृति-चित्र द्रोणाचार्य को ब्राह्ममुहूर्त मे एक स्वप्न में दृष्टिगत होता है। यह प्रकृति चित्र डॉ० रामकुमार वर्मा की प्रकृति-चित्रण शैली का जीवन्त प्रमाण है—

"प्रकृति मे क्रान्ति है। अशान्त आधीरात है।
झोंके झूमते हैं। तरु-पत्र हाहाकार मे,
× × ×

अंधकार की असीम कालिमा के क्रोड में,
क्रूरता का कोश लिए घन घिर आए हैं ।
× × ×
नभ में प्रचण्ड ध्वनि जैसे घुर-घुर हो,
छिटक गई है दूर-दूर की दिशाओं में ।
जैसे नभ खण्ड-खण्ड होके टूटता-सा है,
विद्युत-तड़प में दरार दीख जाती है ।"

(स्वप्न, एकादश सर्ग, पृ० २१५)

ब्राह्म-वेला में प्रकृति के अशान्त रूप को देखकर द्रोणाचार्य विभ्रमित हो जाते हैं । उन्होंने स्वप्न में देखा कि एक घने जगल में बैठे हुए एक श्यामवर्ण कुमार को अद्वितीय धनुर्विद होने का वरदान दे रहे हैं । एकलव्य की एकनिष्ठ साधना का सम्पूर्ण परिदृश्य उन्हें आश्चर्य निमग्न कर देता है । उन्होंने तो अद्वितीय धनुर्धर होने का वरदान पार्थ को दिया था, फिर यह कौन अनन्य साधक है । यही आचार्य द्रोण के मनस् जगत में एक विचित्र अन्तर्द्वन्द्व जन्म लेता है । यह द्वन्द्व उन्हें शिक्षक के दायित्व और सरस्वती-साधना की महिमा का यथार्थ बोध कराता है । वे स्वयं को धिक्कृत करते हुए कहते हैं—

"किन्तु यह कैसा अनाचार हुआ मुझ से,
आर्य भीष्म से हूँ नियोजित इस पुर में ।
शिक्षा दूँ सदैव इन कौरव कुमारों को,
वेतन का भोगी हूँ, निवास राज-गृह में ।
अन्य को मैं कैसे शिक्षा दे सकूँगा इच्छा से,
गुरुकुल स्वामी नहीं, राजकुल सेवी हूँ ।"

(वही, एकादश सर्ग, पृ० २२२)

शिक्षा और शिक्षण-नीति के सम्बन्ध में गुरु द्रोण की स्वकीय अवधारणा निम्नोद्धृत शब्दों में प्रगट हुई है—

'शिक्षा तो सरस्वती की धारा है, प्रशात है,
है अनन्त जो बही है सृष्टि के आरम्भ से ।
× × ×
जाति भेद नहीं, वर्ग वश भेद भी नहीं,
शिक्षा प्राप्त करने के सभी अधिकारी हैं ।

× × ×

शिक्षा की त्रिवेणी का पवित्र तीर्थराज तो,
सृष्टि मे समस्त मानवों की कर्म भूमि है।"

(वही, पृ० २२२-२२

द्रोणाचार्य को ब्राह्म-वेला का स्वप्न आत्म बोध कराता है कि इस पुर रहकर वे कठोर राजनीति से शासित हैं। वे सोचते हैं कि—मैं कितना विव और अभागा हूँ कि पिता भारद्वाज के आदर्श को अग्रसर न कर सका। कि गुरुकुल की स्थापना कर शिक्षा-दान का पवित्र धर्म कार्य कर मैं कृतार्थ सकता था। गुरु अग्निवेश की तपस्या व्यर्थ हुई। भार्गव परशुराम जब सुनेंगे कि मैंने ज्ञान क्षेत्र की पवित्र-भूमि को मात्र राजवंश तक परिसीमित क दिया है, तो वे अत्यन्त खिन्न होंगे। गुरु द्रोण ने अपने को इतना अपमानि अनुभव किया कि कह उठे—

"धिक् द्रोण! तेरी सब साधनाएँ मिथ्या हैं,
तेरा धनुर्वेद सूम की सम्पत्ति—जैसा है।"

(वही, ११, पृ० २२३

फिर उन्हें अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण हो आया जिसमें उन्होंने अर्जुन अजेयता प्रदान की थी। स्वप्न के आलोक मे वे यह सोचने को विवश गए कि क्या 'जागरण द्रोण और स्वप्न द्रोण भिन्न हैं'। इसी अवसर पर पा का आगमन होता है जिसे वे स्वप्न के घटनाक्रम से अवगत कराते हैं। स्वप के 'श्यामल कुमार' का पता लगाने के लिए वारणावत वन में मृगया के मि जाने का पार्थ निश्चय करता है।

'साधक' शीर्षक द्वादश सर्ग में राजकुमारों का मृगया हेतु वन मे आगम तथा उनके श्वान का एकलव्य के साधनास्थल पर जाकर भौंकना। एकल सात बाणों से चोट पहुँचाये बिना श्वान का मुँह बन्द कर भौंकना रोक देता है अर्जुन एकलव्य के आश्रम मे पहुँचकर उसकी धनुर्विद्या के चमत्कारपू कौशल और अद्भुत प्रदर्शन को देखकर हतप्रभ हो जाता है। अर्जुन के पूछ पर एकलव्य बताता है कि गुरु द्रोण की मृण्मयी से ही उसने धनुर्वेद-दीक्ष प्राप्त की है। अर्जुन ने आश्चर्य प्रगट करते हुए कहा कि इस प्रकार क विलक्षण धनुर्वेद-शिक्षा हमें तो गुरु द्रोण ने प्रदान नहीं की। इस कथन मे गु निन्दा की गंध पाकर एकलव्य ने निर्भीकतापूर्वक पार्थ को फटकारते हु कहा—

"सावधान, आर्य ! गुरु-निन्दा एक क्षण भी,
सुन न सकूँगा आपके वाचाल मुख से।
गुरु ज्ञान-दान निष्पक्ष करते हैं सदा,
शिष्य है जो प्राप्त करने मे असफल है।
छेडें न प्रसग ! कन्दमूल स्वीकार करें,
निज गुरु-भाई का सहज प्रेम मान के।"

(लाघव, द्वादश सर्ग, पृ० २५४)

एकलव्य का असाधारण धनुर्विद्या-कौशल पार्थ के मन मे हीन-भावना को जन्म देता है। उसके अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण कवि ने 'द्वन्द्व' शीर्षक त्रयोदश सर्ग मे किया है। पार्थ को नींद नहीं आती। वह दीपाधारो पर रखे मृत्तिका-दीपो की लौ को वायु तरगो से हिलते हुए देखकर सिहर जाता है कि कही बुझ न जायँ। उसके मन मे विचार उठता है कि जब मृत्तिका दीपो को स्नेह का आधार ज्योतित कर रहा है तो हो सकता है कि एकलव्य के विश्वास-स्नेह से गुरु-मूर्ति ज्योतिर्मय हो उठे। इस विचार ने पार्थ को एकलव्य की प्रशसा करने को भी बाध्य किया। पार्थ के द्वन्द्व को एकलव्यकार ने इन शब्दो मे व्यजित किया है—

"पार्थ सोचता है—दीप भी बने मृत्तिका से,
इनमे भी ज्योति उठी स्नेह के आधार से।
क्या आश्चर्य, एकलव्य के विश्वास-स्नेह से,
मृत्तिका की गुरु-मूर्ति ज्योतिर्मय हो उठे।
कितना विश्वास होगा एकलव्य वीर मे।
जोकि गुरु-मूर्ति को ही गुरु मान बैठा है।
लक्ष्य भेद-श्रेय वह गुरु को ही देता है,
कितना अहकार-शून्य निस्पृह वीर है।"

(द्वन्द्व, त्रयोदश सर्ग, पृ० २६४)

अन्तत अर्जुन गुरु द्रोण के पास जाकर उन्हें उस वचन की याद दिलाता है, जिस के अनुसार उसे अद्वितीय धनुर्धर होने का वरदान दिया गया था। गुरु द्रोण एकलव्य के आश्रम मे जाने का निश्चय करते हैं।

'एकलव्य' महाकाव्य के अन्तिम अर्थात् चतुर्दश सर्ग का शीर्षक 'दक्षिणा' है। आलोच्य काव्य के सर्वाधिक मर्मस्पर्शी और प्रेरणाप्रद इस सर्ग का समारम्भ कवि के इस महत्वपूर्ण कथन से होता है कि—

और मुझे चाहिए क्या, इतना सतोप है,
जग के प्रसिद्ध आर्य द्रोण गुरु मेरे हैं।
× × ×
मेरा रोम-रोम आज बना शब्द-शब्द है।
मेरी सांस-सांस बनी गुरु की है प्रार्थना।" (वही, पृ० २८७)

द्रोणाचार्य ने कहा कि—'साधु एकलव्य! तुम साधना के स्वामी हो! तुम वस्तुत अद्वितीय कुशल धन्वी हो गए हो। गुरु द्रोण ने कहा कि—

"किन्तु जानता हूँ धनुर्वेद, कहता हूँ मैं—
तुम सा कुशल धन्वी दूसरा हुआ नही।
× × ×
अर्जित किया जो धनुर्वेद वह सिद्ध है,
और तुम आज के अजेय धनुर्धारी हो।" (वही, पृ० २८७)

गुरु के समीप खडे अप्रतिम पार्थ ने कहा कि गुरुदेव! आपका कथन सत्य है किन्तु आप की उस प्रतिज्ञा का क्या होगा? जिसके अनुसार मुझे अप्रतिम धनुर्धर होने का वर प्राप्त है। प्रत्युत्तर मे एकलव्य ने कहा कि गुरु-प्रण अवश्य पूर्ण होगा। मैं स्वय तुम्हे अद्वितीय मान लेता हूँ। किन्तु ईर्ष्यालु अर्जुन ने अशान्त भाव से कहा कि मैं तुम्हारे समक्ष तो हीन ही रहूँगा क्योकि गुरुदेव ने मुझे तुम्हारे जैसा लक्ष्यभेद नही सिखाया। इस पर उत्तेजित होकर एकलव्य ने पार्थ को गुरुनिन्दा के शब्द न कहने को कहा। पार्थ ने आवेश मे एकलव्य को द्वन्द्व के लिए ललकारा और एकलव्य यह कहकर सन्नद्ध हो गया कि—

"प्रस्तुत हूँ, पार्थ! लो धनुष-बाण हाथ मे,
द्वन्द्व-युद्ध शिष्यो का हो गुरु के सम्मान मे।"
(वही, पृ० २८६)

तभी द्रोणाचार्य ने मध्यस्थ होके कहा कि मेरी शिक्षा खड-खड होकर नष्ट हो जायेगी, यदि मेरे शिष्य आवेश मे आकर अराति भाव से द्वन्द्व-युद्ध मे प्रवृत्त हो। एकलव्य ने गुरुदेव की वेदना को अनुभूत कर चाप को फेंक दिया, बाण तोड दिए और प्रण किया कि वह कभी भी शर-शरासन हाथ मे नही लेगा। जब तक जीवित रहेगा, पार्थ ही सदा के लिए अद्वितीय धन्वी होंगे। इसी अवसर पर व्यग्य-स्मिति से पार्थ ने कहा कि वह क्षत्रिय और विराट् व्रतधारी है, वह निषाद की कृपा की भीख माँगकर अद्वितीय धन्वी की पताका

नही फहरायेगा। और तुम भी दम्भ प्रण से गुरु की प्रतिज्ञा पूर्ण नही कर सकोगे। यह सुनकर द्रोणाचार्य ने अश्रु विगलित नेत्रो से कहा कि वत्स, एकलव्य। तुम धन्य हो जो गुरु की प्रण-पूर्ति के लिए प्रयत्नशील हो। मैं आज विवश हूँ। मैं अपनी अयोग्यता देखकर दुखी हूँ। तुम जैसे शिष्य की महानता मे गुरु छोटा है। अब तुम्हारी दक्षिणा से ही मैं कृतार्थ होऊँगा। एकलव्य ने गुरुदेव के हृदय को खड खड होते हुए देखकर कहा—

'गुरु का हृदय खड-खड हो, असभव।
दक्षिणागुष्ठ ही हो खड मेरा जो कि,
पार्थ को बना दे अद्वितीय धन्वी विश्व मे।
गुरु प्रण-पूर्ति करे सब काल के लिए,
जय गुरुदेव! यह रही मेरी दक्षिणा।"

(वही, पृ० २९६)

इतना कहकर एकलव्य ने बडे वेग से गुरु मूर्ति के समीप अपना दाहिना हाथ रखकर एक ही आघात मे अँगूठा काट डाला। गुरु के हृदय मे एक विद्युत-तरग सी कौंध गयी, वे कराह कर कहने लगे एकलव्य तुमने यह क्या किया? मेरी प्रण पूर्ति मे अपनी साधना ही नष्ट कर दी। द्रोणाचार्य ने एकलव्य को कसकर अपनी बाँहो म जकड लिया और रक्तसिक्त होकर बोल उठे—

"एकलव्य हे!
तुम विप्र हो, हे शिष्य! गुरु द्रोण शूद्र है!
हा, तुम्हारी गुरुता मे गुरु हुआ लघु है!"

(वही, पृ० २९७)

वीर एकलव्य ने जिस साधना-तरु को सूर्य-चन्द्र की किरणो से दिन-रात सींचा, उसको क्षण मात्र मे उखाड दिया। एकलव्य के दक्षिणागुष्ठ खडन से प्रवाहित रक्तधार ने सारा वर्ण भेद धो दिया है। वीर एकलव्य की गुरु भक्ति भविष्य के भाल का तिलक बनेगी, उसका रक्त राजवशों से भी नही धुल सकेगा—

"सारा वर्ण भेद धुल गया रक्तधार से,
× × ×
गुरु भक्ति ऐसी जो भविष्य के भाल पर,
तिलक बनेगी रवि-रश्मि को समेट के।

पार्थ ! रक्त देखो इस एकलव्य वीर का,
जोकि राजवशो से भी धोया नहीं जायगा।"

(वही, पृ० २६७)

एकलव्य की गुरु-भक्ति के अप्रतिम आदर्श और उत्सर्ग-भाव को देखकर पार्थ का सिर झुक गया। वह सलज्ज-स्वर मे एकलव्य से क्षमा-याचना करते हुए बोला—

"क्षमा करो, एकलव्य ! मेरी धृष्टता !
काटा है अंगुष्ठ, किन्तु बाण ऐसा छोड़ा है,
जो न चढा पाऊँगा कभी धनुष पर मैं।
क्षमा करो, गुरु भक्ति सीखी आज तुमसे।
मैं ने राजवश की अहम्-भावनाओ से।
गुरु को था हीन माना। तुमने निषाद हो,
गुरु का महत्व सिखलाया इस विश्व को।"

(वही, पृ० २६७)

गुरु दक्षिणा मे दक्षिणागुष्ठ समर्पण के पश्चात् एकलव्य ने द्रोणाचार्य से कहा—गुरुदेव ! दक्षिणा मे देर हो गई, किन्तु इसे स्वीकार कीजिए। एकलव्य ने अपने रक्तिमागुष्ठ को गुरु पद के समीप रखकर रक्त रजित कर से गुरु चरणो का स्पर्श किया। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो रक्तधारा के रूप मे धनुर्वेद साधना द्रव रूप होकर भूमि मे लीन हो रही थी। इस रक्त-धारा ने भूमिपतियो के उग्र वर्ण भेद को सभवत जोडने का ही प्रयत्न किया। यह दारुण दृश्य था। गुरु द्रोण हतप्रभ थे। पार्थ लज्जित और मलीन था। तभी एकलव्य ने भरे हुए कठ से कहा—

"देव ! इस दक्षिणा का मूल्य इतना ही है,
मेरी साधना को आप देख लेंगे पार्थ मे।"

(वही, पृ० २६६)

एकलव्य की गुरु दक्षिणा इतनी असाधारण और अप्रतिम थी कि सम्पूर्ण वातावरण मे 'गुरु दक्षिणा" की ही अनुगूंज सुनाई देती थी। कवि के शब्दो मे—

'वायु की तरग कहती थी, गुरु दक्षिणा,
उष्ण रक्त धार कहती थी, गुरु दक्षिणा,
सध्याकाश मे ज्यो रहती थी, गुरु-दक्षिणा,
पद-नत दृष्टि कहती थी, गुरु-दक्षिणा।"

इसी अवसर पर एकलव्य के माता-पिता और नागदन्त का आगमन होता है। द्रोणाचार्य एकलव्य की साधना की गरिमा और गुरु-दक्षिणा के रूप में दक्षिणागुष्ठ समर्पण का वृत्त सुनाते हुए कहते हैं—

"आज वह धनुर्वेद का महा आचार्य है।
विश्व का समस्त इतिहास चिर साक्षी हो।"

(वही, पृ० ३०२)

एकलव्य के पिता हिरण्यधनु राज-मर्यादा के कारण संयमशील थे। किन्तु एकलव्य जननी ने खिन्न मन से कहा कि क्या शिष्य ही गुरु दक्षिणा का दानी है? यदि आपके विधान में शिष्य की माता से भी दक्षिणा लेने का विधान हो तो मेरे नेत्र ले लीजिए, जिससे मैं अपने लाल के सलोने हाथ का खण्डित अगुष्ठ न देख सकूँ। एकलव्य-जननी का यह कथन सुनकर सभी स्तब्ध हो गए, नभ श्याम हो गया और दिशाएँ धूमिल हो गईं। गुरु द्रोण एकलव्य जननी से क्षमा-याचना कर पार्थ सहित एकलव्य को शुभाशीष देकर चले गए। एकलव्य गुरुदेव को प्रणाम कर उन्हें वन-खण्ड की सीमा तक सादर पहुँचाने गया। एकलव्य के भूमि पर पड़े अगुष्ठ को अश्रुपूरित नेत्रों से देखते हुए एकलव्य जननी ने करुण-स्वर में कहा कि—

"रक्त-रंगमयी दक्षिणा—
जन-जन मानस को एकरूप कर दे।"

(वही, पृ० ३०५)

इस प्रकार 'एकलव्य' का सर्ग क्रमानुसार कथा-विन्यास, चरित्र-विनियोजन, शिल्प-संरचना और जीवन-दर्शन नामक रूपविधायक तत्वों के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन अनुशीलन करने के पश्चात् हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'एकलव्य' सच्चे अर्थों में एक महाकाव्य-कृति है। 'महाभारत' के विरल कथा-सूत्रों का अधिग्रहण कर डॉ० वर्मा ने महाकाव्योचित-गरिमा से मंडित इतिवृत्त-विधान द्वारा जहाँ एक ओर कथा-कौशल का परिचय दिया है, वहीं एकलव्य, द्रोणाचार्य, अर्जुन, एकलव्य-जननी आदि पात्रों के मौलिक चरित्र-निरूपण में युगीन दृष्टि का भी परिचय है। एकलव्य न केवल निषाद-संस्कृति का उज्ज्वल प्रतीक है अपितु वह आर्य-संस्कृति के वर्ग-भेद पर आधृत विगर्हणीय जीवनादर्शों से अपराजेय संघर्ष करने वाला नरपुंगव भी है। आचार्य द्रोण के चरित्र में अन्तर्बाह्य द्वन्द्व की योजना डॉ० वर्मा की चरित्र-विश्लेषण-पद्धति की एक उपलब्धि ही है। डॉ० मोहन अवस्थी के शब्दों में—"द्रोण इस काव्य का सबसे अधिक गतिशील पात्र है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय, तो वास्तव में आचार्य द्रोण के

मनोविज्ञान की कक्षा मे ही एकलव्य रूपी उपग्रह भ्रमण करता है। द्रोण के अन्तर्द्वन्द्व की उष्ण रश्मियो मे एकलव्य का चरित्र-कमल विकसित होकर अपनी सुगन्धी समस्त दिशाओ मे व्याप्त कर रहा है। अन्त सघर्ष के अन्तराल मे बहिर्द्वन्द्व की योजना महाकाव्यकार की अनोखी सूझ है।"[१] एकलव्य के चरित्र विधान की सबसे बडी विशेषता यह है कि महाकाव्यकार ने चरित्र-विश्लेषण मे मनोवैज्ञानिक आधार को ग्रहण करते हुए भी पात्रो की भावगत मान्यताओ को 'महाभारत' के सास्कृतिक दृष्टिकोण से समर्थित रक्खा है। जहाँ तक आलोच्य महाकाव्य की जीवन-दर्शन सम्बन्धी उपलब्धियो का प्रश्न है, डॉ० वर्मा ने सम्पूर्ण काव्य मे सकल्पशक्ति, साधना, त्याग, समानता, आत्मविश्वास, पुरुषार्थ जैसे चिरन्तन मानवीय-मूल्यो की प्रतिष्ठा पर बल दिया है। एकलव्य-कार ने युगीन सन्दर्भो, जैसे—वर्गसघर्ष, जातिवाद, भेद भावपूर्ण शिक्षा-नीति आदि को भी यथाप्रसग रूपायित किया है। वस्तुत 'एकलव्य' का मूल प्रतिपाद्य गुरु भक्ति के उच्चादर्श की प्रतिष्ठा करना ही है। गुरु की महिमा का समाख्यान हमारे देश मे अनन्त काल से होता रहा है। 'गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु, गुरु देव महेश्वर' सदृश्य आप्त वाक्यो अथवा कबीर, तुलसी आदि मध्यकालीन सन्तो ने अपनी वाणियो के माध्यम से गुरु की गरिमा को अभिमडित करने के सराहनीय प्रयास किए हैं। किन्तु असाधारण कोटि की साधना और अप्रतिम उत्सर्ग का जीवन्त प्रतिमान बनकर गुरु की गरिमा को प्रतिष्ठित करने वाला एकलव्य का ही चरित्र है। एकलव्य की गुरुभक्ति निश्चयत दुर्लभ, विरल और असाधारण है। एकलव्य ने जिस प्रकार कठोर साधना से अर्जित विरल ज्ञान-गरिमा, महत्वाकाक्षाओ की समृद्धि, धनुर्वेद की सिद्धि और स्वाभिमान को गुरु चरणों म दक्षिणागुष्ठ के उच्छेदन द्वारा समर्पित कर दिया वह भारत तो क्या ? विश्व इतिहास मे दुर्लभ है। गुरुभक्ति के इसी चिरन्तन आदर्श को एक कीर्तिमान के रूप मे "एकलव्य" महाकाव्य के माध्यम से सस्थापित करके डॉ० रामकुमार वर्मा ने निश्चयत श्लाघनीय कार्य किया है और इस दृष्टि से "एकलव्य" हिन्दी महाकाव्य-परम्परा की गौरवान्वित काव्यकृति कही जायगी।

---

१ वीणा—फरवरी १९६१—'जीवन्त महाकाव्य ' एकलव्य'—नामक लेख से उद्धृत।

'सारथी' महाकाव्य

त्रिपुर-कल्पना का युग-सापेक्ष काव्यरूपक

१३

'सारथी' महाकाव्य

त्रिपुर-कल्पना का युग-सापेक्ष काव्यरूपक

हमारे युग की सबसे बडी समस्या जीवन मूल्यो का सघर्ष है। इस सघर्ष का मूल कारण विघटनकारी शक्तियो का उदय तथा वैज्ञानिक सन्धानो के परिणामस्वरूप ध्वस के उपकरणो का द्रुत गति से प्रसार है। विज्ञान युग की सभ्यता ने भौतिकतावादी मूल्यो को सर्वोपरि मान लिया है। इसके कारण स्वार्थ-परायणता, अर्थ लोलुपता, शोषण, व्यष्टिवादिता आदि प्रवृत्तियाँ विकसित हुई हैं। प्रेम, करुणा, अहिंसा, सत्य, शील आदि शाश्वत जीवन मूल्यो का प्राय लोप हो गया है। स्थिति यह है कि समस्त भौतिक उपलब्धियो के उपरान्त भी आज के मानव का अहम् परितृप्त या तुष्ट नही है। उसमे अधिक से अत्यधिक और अत्यधिक से सर्वाधिक की कामना बढ रही है। इस घोर स्वार्थपरता ने चिन्तन और चेतना के स्तरो को सीमित सकुचित और अहवादी बना दिया है। मानव का यह अहम अतीत के प्रति अनास्थावान, अनागत के प्रति अनिश्चित और वर्तमान से असन्तुष्ट है। विचित्र विडम्बना है। मानव की अन्तश्चेतना युगीन वातावरण मे घुटन का अनुभव कर रही हैं। इस सबका कारण क्या है? निवारण का उपाय क्या है? अनुकरणीय मार्ग क्या है? ये आज युग जीवन के प्रश्न और समस्याएँ हैं। इन प्रश्नो का उत्तरदाता काव्य ही हमारे युग का महाकाव्य है। इन समस्याओ के सन्धान और समाधान मे रत रचनाकार ही महाकवि कहलाने का अधिकारी है। अस्तु—

हम महाकाव्यो की परख उपर्युक्त मानदण्डो पर करनी चाहिए। प्राचीन

साहित्याचार्यों द्वारा निर्दिष्ट लक्षण और बहुचर्चित मान्यताएँ आज महाकाव्यालोचन के लिए अनपेक्षित प्राय हो चुकी हैं।

हिन्दी के वर्तमान युग मे महाकाव्य-सृजन द्रुत गति से हो रहा है। हरिऔध जी के 'प्रियप्रवास' से लेकर दिनेशजी के 'सारथी' तक लगभग ६० महाकाव्य लिखे जा चुके हैं। ऐसे महाकाव्य कम हैं जिनमे हमारे युग-जीवन के सघर्ष की व्यजना हो, जिनमे मानव के अन्तश्चेतन विकासी स्तरो को रूपायित करने का विराट् प्रयत्न हो, जिनमे शाश्वत जीवन-मूल्यो की प्रतिष्ठा का आग्रह हो, जिनमे वैचारिक विद्रोह और आत्म-क्रान्ति के द्वारा मानव मे आस्था, विश्वास और सौहार्द्र भाव के नव-जागरण की शक्ति और सामर्थ्य हो। जयशकरप्रसाद के 'कामायनी' काव्य मे निश्चय ही जीवन-सत्यो की स्थापना हुई है। 'कामायनी' मे हमारे युग का उन्नत बोध अपने व्यापकतम परिवेश मे प्रतिफलित हुआ है। उसमे मानव के अन्तरबाह्य द्वन्द्व, हृदय बुद्धि के सघर्ष, प्रकृति के प्रेम और प्रकोप, व्यक्तियो की स्वार्थ-कामना और अर्थ-प्रवचना, रूप-आकर्षण और काम-वासना, शोषण और नारी दौर्बल्य आदि युगीन-समस्याओ का चित्रण और व्यावहारिक निदान प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार की दूसरी रचना डॉ० रामगोपाल शर्मा दिनेश' कृत 'सारथी' महाकाव्य है जो राजस्थान साहित्य अकादमी के 'अकादमी पुरस्कार' से सम्मानित हो चुका है।

'कामायनी' मे मानवता के जनक मनु की कथा है। 'सारथी' मे स्वय मानव का इतिवृत्त है। 'कामायनी' मे श्रद्धा और मनु के द्वारा नव-सृष्टि विधान हुआ—दोनो के मिलन से मानव उत्पन्न हुआ। मानव ने बुद्धि का साथ किया। इसके पश्चात् सृष्टि के विकास के साथ-साथ मानव मे बुद्धि का अपूर्व विकास किस प्रकार हुआ ? मानवता किस ओर गयी ? उसका भविष्य क्या है ? आदि प्रश्न शेष थे। इन शेष प्रश्नो का उत्तर 'सारथी' महाकाव्य है। दूसरे शब्दो मे, इतिवृत्तात्मक दृष्टि से 'सारथी' महाकाव्य मे 'कामायनी' ने पूर्णत्व प्राप्त किया है। 'कामायनी' के कथात्मक पूर्वार्द्ध का 'सारथी' उत्तरार्द्ध है। सारथी' महाकाव्य मे मानवता विकास के यथार्थ और वास्तविक पक्ष पर विचार हुआ है। इसमे परम्पराओ का अनुमोदन भी है और प्रगति की सम्भावनाओ के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण भी। विज्ञान युग की अन्ध प्रगति से त्रस्त और भयाक्रान्त मानवता के भविष्य पर बडे गम्भीर एव मननशील ढग से सोचा गया है। सारथी' महाकाव्य म भावात्मक पक्ष की अपेक्षा बौद्धिक पक्ष प्रबल है। उसमे कलात्मक सौन्दर्य की अपेक्षा वैचारिक

विभूति की उपलब्धि अधिक महत्त्वपूर्ण है। प्रस्तुत प्रसग मे हम 'सारथी' महाकाव्य की विचारणा को ही समझने का प्रयास करेंगे,

'सारथी' महाकाव्य की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विचार-उपलब्धि त्रिपुर-कल्पना है। त्रिपुर-कल्पना एक प्राचीन रूपक है जिसका उल्लेख वैदिक वाङ्मय, पौराणिक वृत्ता एव परवर्ती साहित्य मे भी मिलता है। पौराणिक कथाओ के अनुसार, तारकासुर के वध के पश्चात् उसके तीन पुत्रो ने तीन पुरो का निर्माण किया। त्रिपुरो मे घोर अत्याचार प्रारम्भ हो गया। अत देव-सृष्टि की प्रार्थना पर शिव ने एक ही बाण से त्रिपुर नाश कर दिया।

कामायनीकार ने भी त्रिपुर-दाह की योजना 'रहस्य' सग मे की है। वहाँ यह त्रिपुर इच्छा, ज्ञान और कर्म लोक के रूप म है। वहाँ श्रद्धा की मुसकान से तीनो लोक मिलकर लय हो जाते हैं और समरसता के सिद्धान्त की सफलता दिखाई गई है।

'सारथी' महाकाव्य मे त्रिपुर-रूपक को युगीन सघर्ष की पृष्ठभूमि के रूप मे व्यजित किया गया है। यहाँ काल, प्रसार-क्रम, सृजन-शक्तियो, जोवन-मूल्यों और प्रवृत्तियो के रूप मे इस रूपक की उपपत्ति हुई।

'सारथी' महाकाव्य के तृतीय सर्ग मे श्रद्धा मानव को समझा रही है कि ब्रह्मा द्वारा भाग्य-वितरण हुआ :

"सृष्टि के आरम्भ मे जब
थन विधाता ने बुलाये।
पास अपने सुर असुर नर।।
और उनके भाग्य का वितरण किया था,
तब मनुज ने कर्म माँगा,
दानवों ने वासना ली,
शेप देवो के लिए था—
ज्ञान, उसको ले गय वे (पृष्ठ ३६)

× × ×

सृष्टि तब से चल रही है,
कर्म मे है लीन मानव।
ज्ञान के आधार पर सुर,
कर रहे हैं भोग नभ का।
और भू, आकाश दो में,
त्रिपुर के शासक असुर है।। (पृष्ठ ४२)

श्रद्धा ने आगे कहा कि तदोपरान्त शक्ति सहित शिव ने सृष्टि का भ्रमण किया। देव, दानव और मानव सृष्टियों का अवलोकन किया। इसी अवसर पर शिव ने मानव के अहम् के विषय मे शक्ति से यह कहा कि :

"मनुज कितना जड अभी तक,
अहम् की सीमा नही पहचानता है।" (पृष्ठ ४८)

फिर समर की भयकरता का वर्णन है जो सृष्टि और मानव के विनाश का कारण है :

"युद्ध वह दानव, धरा पर,
लौह के पुर मे सजाकर।
जो भयन्कर रूप अपना,
नाश की होली रचाता।" (पृ० ५१)

जिसका परिणाम :

"नाश के ज्वालामुखी पर,
बैठकर फिर मर्त्य रोता।
सभ्यता के शिखर गिरते,
धूल मे मिलती कलाएँ।
और सस्कृतियाँ मनुज की,
आग मे जल राख होती।
किन्तु वह दानव,
न फिर भी हारता है।" (पृ० ५१)

यही श्रद्धा ने कहा कि देव वासना मे रत हैं। मानव मे कर्म का अहम है। यही विनाश का कारण है जिसका उपाय दोनो का समन्वय है :

"मानव धरा पर सुर गगन मे
वासना का कर समन्वय
कर्म भोगें—ज्ञान का अमृत बहाएँ।" (पृष्ठ ५४)

चतुर्थ सर्ग मे मानव के कर्म-बोध का वर्णन है, जिसमे श्रम की महत्ता की व्यजना युगानुरूप हुई है

"कर्मशील बन कर ससृति का,
मैं शृगार किया करता हूँ।
अपने पौरुष से निसर्ग मे,
मैं सौन्दर्य अमित भरता हूँ।

धरती मेरे श्रम अकुर ले,
खेतो मे सोना बरसाती।
हरी शैलियो के वैभव से
झूम-झूम मधु स्वर मे गाती।" (पृ० ५५-५६)

मानव के सृजन-गौरव की स्थापना इस सर्ग की अन्यतम विशेषता है :

'जन्म दिया मैंने सस्कृति को,
काव्य कला सगीत बनाये।
पाषाणो मे प्राण डालकर,
मैंने नभ को गीत सुनाये।
गिन-गिन कर मेरे चरणो को,
इतिहासो ने जीवन पाया।
मेरा चिन्तन मनन विवेचन,
कितने ही दर्शन बन आया।" (पृ० ५७)

मानव ने सोचा कि वह परम्पराओ का निर्माता है, अमोघ शक्ति का अनन्त भण्डार है, लोहनगर और रजतपुर का ध्वस कर सकता है, धरा को धूलि मे मिला सकता है, असुरो का शासन स्वर्ण लोक से हटा सकता है, वासना के अञ्चल मे चिर-प्रकाश भी भर सकता है, किन्तु .

"फिर क्यो मेरा पौरुष मुझ से
छाया सा छिपता फिरता है ?
आज अनागत के भय से मा
बोलो क्यो अन्तर डरता है ?" (पृ० ५६)

तब श्रद्धा ने मानव को परिस्थिति- बोध कराया। श्रद्धा ने कहा—मानव-जीवन का लक्ष्य अर्थ और काम नही, उसे एकान्त भी तृप्ति नही दे सकता। जीव जगत की नश्वर वस्तु है, फिर उसे मृत्यु से भय क्यो ? जीवन मे साधनो का अस्त्र शस्त्रो से सरक्षण क्यो ? अपार वैभव पाकर भी हृदय से दीन क्यो ? जीवन प्रेमाकाक्षी है, समरसता ही जीवन की शीतलता है :

"जीवन तुझसे स्नेह मांगता
तू उसको देता है ज्वाला।
चिन्ता के सोपानो से चढ
पीता विकृत बुद्धि की हाला।
भूल गया तू तृष्णा मे जल

जीवन की शीतल समरसता।
दौड रहा जड़ता के पीछे
गुप्त हुई जाती चेतनता।
पुत्र न भय से मुक्ति मिलेगी
जब तक त्रिपुरों के अधीन तू।
कर्म वासना ज्ञान समन्वय
कर न रखेगा इन्हें लीन तू।" (पृ० ६५)

तभी बुद्धि आ गयी। बुद्धि का संग पाकर मानव ने सोचना प्रारम्भ किया—

'बुद्धि प्रिया मेरी परिणीता
मेरे जीवन का सधन है।
इसका त्याग करूँ मैं कैसे
यह मेरे मन की हलचल है।" (पृ० ६६)

आगे 'सारथी' के कतिपय प्रेमगीत हैं। विस्तारभय के कारण उनकी प्रथम पंक्तियाँ ही उद्धृत हैं

१ 'तुम्हारे राग मे अपना प्रिये! मैं स्वर मिलाऊँगा।' (पृ० ७६)
२ 'प्रिये चलो जीवन के मधुवन म, दो वासन्ती फूल खिलादें।' (पृ० ८०)
३ 'स्वर लहरी के साथ ढल जो वह मधुपान मधुर होता है।' (पृ० ८२)
४ 'हमे पतझड़ से क्या मतलब, सरस मधुमास लाये हैं।' (पृ० ८४)

इस प्रकार गीत गाते बुद्धि के साथ मानव भ्रमण करता रहा। फिर थक-कर जब उसने बुद्धि से उसके वक्षस्थल की सरस छाया की याचना की तो बुद्धि ने कहा

'हे मनुज ! मुझको कभी
तुम किसी भी बिन्दु पर यो रोक कर
पा नहीं सकते अटल विश्राम वह।
तर्क के पथ पर सदा मैं घूमती
वृत्त मे मेरे खडे तुम बिन्दु स
केन्द्र बनकर देख सकते हो मुझे
किन्तु मेरी परिधि तो निस्साम वह
है जहाँ पर बिन्दु का स्थल न कोई भी कही।
चाहते हो साथ रहना
त्याग दो तो केन्द्र को

और आ मुझमें समाओ
नष्ट कर अस्तित्व निज।" (पृष्ठ ८८)

मानव यह सुनकर चकित हो गया। बोला :

"बुद्धि ! अब समझा तुम्हारा भेद सब
तुम मुझे अनुचित दिशा दिखला रही
कर्म मेरा ध्येय
सुर का ज्ञान है
वासना है भोग्य असुरों का प्रिये।" (पृष्ठ ८९)

मानव ने दृढ़ता से कहा—मेरा ध्येय कर्म है। तुम मुझे तीनों पर अधिकार दिलाना चाहती हो, जो मेरे लिए असम्भव है। मैं अपने अस्तित्व का विलय त्रिपुरों में नहीं कर सकता। मानव ने यहाँ तक कह दिया :

"मैं तुम्हें भी साथ रखना चाहता
किन्तु श्रद्धा के बिना मुझको प्रिये
तुम अकेले तो नहीं स्वीकार हो।" (पृष्ठ ९०)

किन्तु बुद्धि ने यह स्वीकार न किया :

"किन्तु मैं हूँ बुद्धि
मैंने तो समन्वय का कभी
मार्ग अपनाया नहीं है आज तक।
पास श्रद्धा के पहुँच कर भी मुझे
बिन्दु पर रुकना नहीं अच्छा लगा।
तुम मुझे एकान्त में आये बिना
पा नहीं सकते।
मनुज ! भ्रम त्याग दो।" (पृष्ठ ९०)

बुद्धि के उत्तर से मानव काँप गया। उसने चीखकर कहा कि मुझे भूमि पर ही पहुँचा दो, मैं यहाँ कितना दीन और असहाय हूँ। किन्तु बुद्धि ने कहा :

"पर असम्भव हो गया
लौटकर जाना यहाँ से भूमि पर
एक क्षण में देवता दानव यहाँ
छेड़ने वाले महा संग्राम हैं।

लौह के जो अस्त्र मैंने दे तुम्हें
अग्नि का आश्रय दिया था भूमि पर
आज लौहपुर के न्याय से
छीन उनको हो चुके असहाय तुम।
और मुझको भी उन्ही का साथ द
रजतपुर तक युद्ध मे
लडना पडेगा विवश हो।" (पृष्ठ ६१)

बुद्धि ने कहा—मैं अपनी उपेक्षा का देवो से प्रतिशोध लूँगी। अत तुम भी दानवो का साथ दो। और यदि मेरी आज्ञा न मानोगे तो तुम्हें असहाय छोडकर मैं चली जाऊँगी तथा मनु द्वारा निर्मित समस्त सृष्टि का सहार होगा। मानव विषम परिस्थिति-द्वन्द्व मे फँसा था

"भीत मानव चीखता था
दौडता उद्भ्रान्त होकर —
बुद्धि? मेरी बुद्धि? ओ मेरी प्रिये।
तुम मुझे असहाय छोडो मत यहाँ।।
मैं करूँगा अब वही, जो चाहती
राख मे मिलना पडे चाहे मुझे मेरी प्रिये।" (पृष्ठ ६३)

इस प्रकार मनुज बुद्धि पर आसुरी तमस् छा गया। वह विलासी हो गया। उसमे दानव सस्कृति की सभी विशेषताएँ आ गयी। फिर युद्ध हुआ। देव और दानव का कुछ नही बिगडा। मानव सृष्टि का विध्वस हो गया

'किन्तु हुआ परिणाम नही कुछ, क्योकि वासना सरि मे।
असुर नहा जीवित हो उठते, बार बार लडते थे।
देव नही मर सके, क्योकि वे अमर जीव सस्मृति के।
अप्सरियो को छुडा, भाग वे आये स्वर्ग नगर मे।
किन्तु मनुज की सृष्टि ध्वस पर बैठ बुद्धि को राई।
निर्माणो की गर्म राख पर अविरल अश्रु बहाती।"
(पृष्ठ १०५)

तब बुद्धि को छोड मानव शिशु के समान सिसक रहा था और श्रद्धा को पुकार रहा था

"दूर बुद्धि को छोड आज जो
शिशु सा सिसक रहा था

श्रद्धा ! श्रद्धा ! की पुकार थी
गूँज चतुर्दिक भरती।" (पृ० १०६)

तभी मानव की प्रार्थना पर ज्योतिर्वसना श्रद्धा कैलास शिखर से आयी। उसने मानव को जीवन का रहस्य समझाया। वह रहस्य था, आत्मानन्द की उपलब्धि का। वह भोग और तन का नहीं, वरन् सूक्ष्म भाव-विषय है जिसके समझने पर कुछ भी पाना शेष नहीं रहता। उसे समझने के लिए दर्शन और विज्ञान की भी आवश्यकता नहीं रहती। उस आनन्द का विश्लेषण ब्रह्मा भी नही कर सकते। उसके अनुगमन मे बुद्धि सहायक नही बन सकती। श्रद्धा ने कहा 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' ही जीवन के शाश्वत मूल्य हैं। बुद्धि ने तो तुम्हे विचलित किया है

'यो आतंक अर्थ आडम्बर
तुम्हें बुद्धि ने देकर
शून्य अहम् का दास बनाया
सत्, शिव, सुन्दर खोकर।" (पृष्ठ ११६)

और—

"महानाश से पहले मैंने, तुम्हे सचेत किया था।
शिव और उसकी महाशक्ति का तुमको ज्ञान दिया था।
समझाती हूँ आज तुम्हें फिर तुम उसको पहचानो!
आस्तिक बनो आस्था लेकर, भेद सृष्टि का जानो।"
(पृष्ठ ११७)

श्रद्धा ने कहा कि देव दानव के संग्राम मे भी त्रिपुर जल नही पाया। क्योंकि देवों ने ज्ञान-अनल ही लगाया था। मानव ! तुम हतचेतन मत हो। देव भी त्रिपुर-ध्वंस के लिए प्रयत्नशील हैं। मानव श्रद्धा की वाणी से सजग हो उठा। उसकी क्लान्त मुद्रा शान्त हो गयी

"थका हमारा ज्ञान, पराजित
साहस और पराक्रम।
हे शिव अमरलोक की सुषमा,
तम मे डूब रही है।
नाश करो या तो त्रिपुरों का
या फिर सृष्टि प्रलय हो।

हार दनुज से फिर हताश हो
शरण तुम्हारी आये।" (पृष्ठ १२५)

तभी एक वाणी गूंजी कि—जिसमे ज्ञान और कर्म विभाजित हैं, उसे शिवत्व प्राप्त नही हो सकता। देव, दानव और मानव अपनी-अपनी लक्ष्य-साधना मे भ्रष्ट हैं। इसीलिए ब्रह्मा भी सृजन-विधान मे सफल नही हो पा रहे हैं।

देवताओ ने समवेत स्वर से शिव और शक्ति की प्रार्थना की—

"विश्व-विधाता हमें त्राण दो,
दनुज-त्रिपुर के भय से।" (पृष्ठ १२२)

तभी शक्ति ने त्रिपुर-संहार का आश्वासन दिया—

"अमर सुनो संहार त्रिपुर का, करने शिव उद्यत हैं।
सावधान होकर तुम उनके साथ समर मे जाओ॥
पृथ्वी का रथ, चक्र सूर्य, शशि,
अश्व वेद हो चारो।
ब्रह्मा उनके बने सारथी,
गति भू अम्बर द्यौ मे।
शिव होगे मध्य मे, करने नाश त्रिपुर का।
अपने त्रिपदी रूप विष्णु को ज्योतिर्बाण बनाकर।"
(पृष्ठ १३३-३४)

शक्ति के इस स्वर से संसृति मंगलमयी हो गयी। प्रकृति मे उल्लास छा गया। श्रद्धा ने मानव को जागरण के गीत सुनाये। सम्पूर्ण नवम सर्ग में उद्बोधन-गीतों की योजना है।

दशम सर्ग मे शिव ने सृजन-कर्म मे लीन ब्रह्मा को सारथी बनाकर रथारूढ़ हो त्रिपुर-दाह किया। शिव के आलोक-शर ने त्रिपुर-नाश कर दिया। पृथ्वी पूर्ववत् ज्योति-चक्र से चलने लगी। प्रकृति की नूतन सुषमा से युक्त सृष्टि-सृजन हुआ। मानव-भूमि पर ज्ञान, वासना और कर्म का समन्वय हुआ। सृजन की यह सुन्दर वेला थी—

"मनुज रहा था देख
श्रद्धा रचती मोद-महोत्सव
बुद्धि अनुसरण करती।

अर्थ काम औ धर्म
आज नही थे पृथक, मोक्ष था,—
उनको समरस करता।" (पृष्ठ १५२)

ऐसी सृष्टि में मानव के प्राणो मे अर्थ की पिपासा न थी, वह शुष्क बुद्धि-मार्ग का अनुचर न था। शस्त्रो के बल पर विवेक खोकर वह रण न छेड़ता। वह श्रद्धा के सकेत पर चलकर भू को ही स्वर्ग बना रहा था। सिन्धु को वह रत्नराशि के लिए ही देखता था। मानव की निधि वैयक्तिक न होकर, सामाजिक-मगल और सुख-समृद्धि का कारण थी। वह भौतिक निर्देशन मे न रहकर आत्मिक आदेश मानता था। उसके समाज मे वैभव की वृद्धि थी। बुद्धि और वासना मे वह श्रद्धा की पूजा करता था। उसकी वाणी मे प्रार्थना, भाव मे समर्पण, जीवन के हर कार्य मे नीति और पवित्रता थी :

"वाणी मे प्रार्थना, समर्पण भरा भाव मे उसके।
जीवन के हर एक कृत्य में नीति और पावनता।" (पृ० १५८)

उसकी वाणी की वन्दना के स्वर यह थे—

"सबके हित की करूँ कामना
ज्ञान साथ दे उसका
जीवन-रथ का सफल सारथी
बनूँ 'शिवम्' के पथ पर।" (एकादश सर्ग, पृ० १६०)

इस प्रकार 'सारथी' महाकाव्य मे त्रिपुर-रूपक की पौराणिक इतिवृत्तमूलक पृष्ठभूमि पर, विराट कल्पना के माध्यम से युग जीवन के सघर्ष की सामयिक व्याख्या की गयी है। 'सारथी' महाकाव्य मे मानव की घोर बौद्धिकता का निषेध और अतिवादी परिणामो की विडम्बना की ओर सकेत किया गया है। आज का मानव बुद्धि-वैभव एव विज्ञान के बल पर नक्षत्र-मण्डलो के वेधन के लिए प्रयत्नशील है। अणु अस्त्रो के अनुसन्धानो द्वारा विनाश के उपकरणो के सयोजन मे रत है—इसके परिणाम की ओर भी सारथीकार ने, अनागत की कल्पना कराकर इगित किया है। साथ ही जीवन के शाश्वत मूल्यो (सत्यम् शिवम्, सुन्दरम्) के अनुसरण और प्रवृत्तियो (इच्छा, ज्ञान, क्रिया) के समन्वय पर बल दिया है। 'कामायनी' और 'पार्वती' महाकाव्यो में भी इसी प्रकार के भव्य प्रयास हैं, किन्तु वैचारिक दृष्टि से त्रिपुर-रूपक की युग जीवन के वैज्ञानिक विकास क्रम के सन्दर्भ मे चिन्तन परिणति निश्चय ही 'सारथी'

महाकाव्य मे 'कामायनी' और पार्वती' से भी आगे है। उसमे परम्पराओ के अनुमोदन मे प्रगति का पथ प्रदर्शित किया गया है। 'सारथी' महाकाव्य की विचारणा निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है। उसमे वर्तमान जीवन के लिए सन्देश है। आधुनिक हिन्दी महाकाव्यो की सृजन-परम्परा मे 'सारथी' एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

'उर्वशी' महाकाव्य
नारी के नाना रूपों की युगीन सन्दर्भों में अवतारणा

१४

'उर्वशी' महाकाव्य

नारी के नाना रूपों की युगीन सन्दर्भों में अवतारणा

हिन्दी महाकाव्य सृजन की सुदीर्घ परम्परा में 'उर्वशी' का प्रकाशन अभूतपूर्व घटना है। 'कामायनी' के अनन्तर प्रकाशित होने वाली काव्यकृतियों में 'उर्वशी' श्रेष्ठतम है। 'उर्वशी' की श्रेष्ठता का आधार उसकी कलात्मक योजना और जीवन दर्शन-सम्बन्धी उपलब्धियाँ हैं। 'उर्वशी' की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि उसकी रचना का इतिवृत्तात्मक आधार वैदिक पुराख्यान होते हुए भी उसमे वर्तमान युग-जीवन की चेतना का महाघोष है। इस दृष्टि से 'उर्वशी' का नारी निरूपण द्रष्टव्य है।

'उर्वशी' मूलत नारी और नर के रागात्मक सम्बन्धो का विवेचक काव्य है। इन्हीं सम्बन्धो का विवेचन करते हुए कवि ने नारी के नाना रूपो का निरूपण भी किया है। उर्वशी' मे मुख्यत नारी के तीन रूप उद्घाटित हुए हैं, वे हैं—प्रेयसी, पत्नी और माता। इनमे प्रेयसी नारी के पुन दो वर्ग किये जा सकते हैं—उच्छृखला और सयमशीला। इन आधारो पर 'उर्वशी' के नारी पात्रा को निम्नांकित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है

१ प्रेयसी—(अ) उच्छृखला—अप्सराएँ
(ब) सयमशीला—उर्वशी
२ पत्नी— औशीनरी
३ माता— उर्वशी, सुकन्या और औशीनरी

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उर्वशी मुख्यत सयमशीला प्रेयसी होते हुए भी काव्य में दो अन्य रूपो में भी अंकित की गयी है। अप्सरा उर्वशी जहाँ प्रेयसी है

वहीं पुरुरवा को वरण करने और पुरुरवा के संसर्ग से आयु को जन्म देने के कारण पत्नी और माँ भी है।

प्रेयसी नारी—(अ) उच्छृंखला—नारी के इस रूप का प्रतिनिधित्व काव्य मे अप्सराएँ करती हैं। अप्सराएं सौन्दर्य की अपार निधि हैं। वे अम्बर की सुषमा, मनमोहिनी, अमुक्त प्रेम की जीवित प्रतिमाएँ, मदिर नयनों से देवों की रण-क्लान्ति का हरण करने वाली और काम के मन की कामना हैं।[1] उन्हे किसी भी प्रकार का बन्धन स्वीकार्य नही। प्रेम उनके लिए क्रीड़ा और स्वाद है। वे किसी एक की होकर नहीं रह सकती हैं। उनके जन्म का सार्थक्य सबका मनोविनोद है। रम्भा के शब्दों में :

"जन्मी हम किसलिए ? मोद सबके मन में भरने को,
किसी एक को नही मुग्ध जीवन अर्पित करने को।
सृष्टि हमारी नही सकुचित किसी एक आनन मे,
किसी एक के लिए सुरभि हम नही संजोती तन में।"[2]

अप्सराएँ कभी देवता और कभी मनुज का आलिंगन करती हैं। वे उन्मुक्त और उच्छृंखला हैं। उनमें सिन्धु की लहरियों के समान कामनाएँ तरंगित रहती हैं :

"रचना की वेदना जगाती, पर, न स्वयं रचती हम,
बन्ध कर कही विविध पीड़ाओ में न कभी पचती हम।
हम सागर आत्मजा सिन्धु सी हीवसीम उच्छृंखल है,
इच्छाओं की अमित तरंगों से झंकृत, चंचल हैं।"[3]

अप्सराओ का कार्य मनुष्य को वासना की वेदना से पीड़ित करना है। वे 'प्रेम की पीर' से अपरिचित हैं। उनमे पुरुष के प्रति समर्पण भाव नहीं। इसीलिए वे किसी एक पुरुष की होकर नहीं रह सकती हैं। सहजन्या और रम्भा के सम्वाद से विदित होता है कि उन्हे नारी का माता रूप कुत्सित लगता है। भूगोल की परिणीता नारी का पुरुष से आजीवन प्रेममय मिलन घृणित लगता है।[4] इस प्रकार दिनकरजी ने अप्सराओ के माध्यम से नारी के उस

---

[1] उर्वशी, प्रथम अंक, पृ० ६-७
[2] वही, प्रथम अंक, पृ० १५
[3] वही, पृ० १५
[4] वही, पृ० १६-१७

रूप को व्यंजित किया है जो भौतिकता, विलासिता और स्वार्थपरता की प्रवंचनाओं से पूर्ण है। वस्तुतः ऐसी नारियाँ सामाजिक जीवन का अभिशाप हैं।

(घ) संयमशीला—नारी के इस रूप का प्रतिनिधित्व उर्वशी करती है। उर्वशी अपरिमित सौन्दर्यशालिनी है। कवि दिनकर की सम्पूर्ण सौन्दर्य-कल्पना से उर्वशी की देह-यष्टि का निर्माण हुआ है। सहजन्या के शब्दों में, "उर्वशी नन्दनवन की रूपा, सुरपुर की कौमदी, इन्द्र के मन की कलित-कामना, रति की मूर्ति, रमा की प्रतिमा, विश्वमय नर की तृषा, विधु की प्राणेश्वरी और काम के कर की आरती-शिखा है। वह सिद्धों और वैरागियों की समाधि में राग जगाकर देवों के शोणित में मधुमय आग लगाने वाली है। उसके चरणों पर चढ़ने के लिए जन-जन व्यग्र है। उर्वशी की सुषमा के मंदिर-ध्यान में त्रिभुवन मग्न-मुग्ध है।"[1] काव्य के तृतीय अंक में अपना परिचय स्वयं देते हुए उर्वशी ने कहा है :

"मैं नाम गोत्र से रहित पुष्प,
अम्बर में उड़ती हुई मुक्त आनन्द-शिखा
इतिवृत्तहीन,
सौन्दर्य-चेतना की तरंग;
सुर नर किन्नर गन्धर्व नहीं;
प्रिय ! मैं केवल अप्सरा
विश्वनर के अतृप्त इच्छा-सागर से समुद्भूत।"[2]

उर्वशी अपने परिचयक्रम में पुरुरवा को बताती है कि मत्त गजराज मेरे समक्ष नत होकर रहते हैं। केसरी, शरभ और शार्दूल अपना हिंस्र भाव छोड़कर गृह-मृग-समान अहिंस्र बन जाते हैं। मेरी भ्रू-स्मिति को देखकर शूरमा चकित, विस्मित और विभोर हो जाते हैं। मैं अनवरुद्ध और मुक्त काम-वह्नि-शिखा के समान अप्रतिहत और दुर्निवार भाव से सदैव घूमती हूँ। उर्वशी को कवि ने नारी की चरम कल्पना कहते हुए उसका व्यापक परिचय निम्नांकित प्रकार से दिया है :

"जन-जन के मन की मधुर वह्नि, प्रत्येक हृदय की उजियाली,
नारी की कल्पना चरम नर के मन में बसने वाली।

---

[1] उर्वशी, प्रथम अंक, पृ० १३
[2] वही, तृतीय अंक, पृ० ६५

× ×

विस्तीर्ण सिन्धु के बीच शून्य, एकान्त द्वीप,
यह मेरा उर।
देवालय मे देवता नही केवल मैं हूँ।

× ×

मैं कला-चेतना का मधुमय प्रच्छन्न स्रोत।

× ×

भू-नभ का सब संगीत नाद मेरे निस्सीम प्रणय का है,
सारी कविता, जयगान एक मेरी त्रयलोक विजय का है।

× ×

मैं देशकाल से परे चिरन्तन नारी हूँ।
मैं आत्मतन्त्र यौवन की नित्य नवीन प्रभा,
रूपसी अमर मैं चिर युवती सुकुमारी हूँ।

× ×

मैं भूत, भविष्यत, वर्तमान की कृत्रिम बाधा से विमुक्त;
मैं विश्वप्रिया।"[७]

उर्वशी आदि नारी है। उसका अस्तित्व सदैव रहा है—

"कौन पुरुष जिसकी समाधि मे मेरी झलक नही है ?
कौन त्रिया, मैं नही राजती हूँ जिसके यौवन मे ?

× × ×

मेरा तो इतिहास प्रकृति की पूरी प्राण कथा है,
उसी भाँति निस्सीम, असीमित जैसे स्वयं प्रकृति है।"[८]

ऐसी त्रिकाल बाधा से विमुक्त, अपार वैभवशालिनी विश्वप्रिया उर्वशी भी एक अप्सरा है। किन्तु पुरुरवा के प्रति उसका प्रेमभाव अनन्य है। प्रेम-भाव से प्रेरित होकर वह तन-मन सहित पुरुरवा के प्रति समर्पित होती है। इसी समर्पण-भाव के कारण पुरुरवा के मिलन से उसे जहाँ सुखानुभूति होती है, वही उसका वियोग उर्वशी की व्यथा का कारण बनता है। उर्वशी के मन मे प्रिय-मिलन की तीव्र उत्कण्ठा है, वह चित्रलेखा से कहती है :

---

[७] उर्वशी, तृतीय अंक, पृ० ९९-१००
[८] वही, पृ० ९३

"यदि आज कान्त का अंक नहीं पाऊँगी,
तो शरीर को छोड़ पवन मे निश्चय मिल जाऊँगी।
× × ×
तृप्ति नही अब मुझे सास भर भर सौरभ पीने से,
ऊब गयी हूँ दबा कण्ठ, नीरव रह कर जीने से।
× × ×
कहती हूँ, इसलिए, चित्रलेखे ! मत देर लगाओ,
जैसे भी हो मुझे आज प्रिय के समीप पहुँचाओ।"[९]

अन्ततः उर्वशी और पुरुरवा का मिलन होता है। वे दोनो एक वर्ष तक गन्धमादन पर्वत पर आमोदपूर्वक अभिसार-क्रीडाएँ करते हैं, किन्तु उर्वशी म अतृप्ति बनी रहती है। उसे समय-चक्र की गति का भी ध्यान नही रहता। वह कहती है कि .

"जब से हम तुम मिले, न जाने, क्या हो गया समय को,
लय होता जा रहा मरुद्गति से अतीत गह्वर में।
× × ×
कट गया वर्ष ऐसे जैसे दो निमिष गये।"[१०]

उर्वशी मे कामेच्छा है। वह चाहती है :

"वक्षस्थल पर, इसी भाँति, मेरा कपोल रहने दो।
कसे रहो, बस इसी भाँति, उर पीडक आलिंगन मे,
और जलाते रहो अधरपुट को कठोर चुम्बन से।"[११]

ऐसी उद्दाम वासनामयी उर्वशी से शारीरिक-मिलन की वेला मे ही महाराज पुरुरवा कहते हैं कि देह प्रेम की जन्मभूमि अवश्य है, किन्तु प्रेम के विचरण की सारी लीलाभूमि रुधिर या त्वचा तक ही सीमित नही है। प्रेम का प्रसार मन के गहन गुह्य लोको तक है, जहां रूप की छवि अरूप का अकन करती है। और पुरुष प्रत्यक्ष विभासित नारी के मुखमण्डल मे किसी दिव्य, अव्यक्त कमल को नमस्कार करता है। प्रेम के उस निरभ्र आकाश म ऐसी निर्विकल्प सुषमा है, जहां पुरुष और स्त्री का भेद मिट जाता है। वहाँ पुरुष न

---

[९] उर्वशी, प्रथम अक, पृ० २०-२१
[१०] वही, तृतीय अक, पृ० ४३ और १०२
[११] वही, पृ० ६५

केवल पुरुष और नारी न केवल नारी रहती है, वरन् वे मूलसत्ता के प्रतिमान दिखाई देते हैं। उस स्थिति का परिज्ञान मासल आवरण हटाकर और तनका अतिक्रमण करके प्राप्त किया जा सकता है।"[११] इसी तथ्य की ओर दिनकरजी ने काव्य की भूमिका मे भी सकेत किया है कि—"नारी के भीतर एक और नारी है, जो अगोचर और इन्द्रियातीत है। इस नारी का सन्धान पुरुष तब पाता है, जब शरीर की धारा, उछालते-उछालते, उसे मन के समुद्र में फेंक देती है, जब दैहिक चेतना से परे, वह प्रेम की दुर्गम समाधि मे पहुँचकर निस्पन्द हो जाता है।"[१२] किन्तु पुरुरवा की यह अनासक्तिपूर्ण विचारणा उर्वशी के मन मे भय उत्पन्न कर देती है। वह कह उठती है कि :

"अनासक्ति तुम कहो, किन्तु इस द्विधा ग्रस्त मानव की,
झाँकी तुममे देख मुझे, जाने क्यों, भय लगता है।
तन से मुझको कसे हुए अपने दृढ आलिगन मे,
मुझे देखते हुए कहाँ तुम जाकर खो जाते हो?"[१३]

उर्वशी नही चाहती कि पुरुरवा अनासक्ति की चिन्तधारा मे डूब क[र] अनादि सत्य की खोज मे लग जाय और उसे भूल जाय। महाराज पुरुरव[ा] को अपने आकर्षणपाश मे निबद्ध करने के लिए वह समर्पण कर देती है :

"आ मेरे प्यारे तृषित! श्रान्त! अन्त सर मे मज्जित करके,
हर लूँगी मन की तपन चाँदनी, फूलो से सज्जित करके।
रसमयी मेघशाला बनकर मैं तुझे घेर छा जाऊँगी,
फूलो की छाँह तले अपने अधरो की सुधा पिलाऊँगी।"[१४]

उर्वशी का यह वह रूप है जिसमे वह वासनाप्रिय नारी दिखायी देती है। उर्वशी का एक और रूप भी है जिसमे वह एक उदात्त प्रेममयी नारी दिखा[ई] देती है। उर्वशी के इस रूप का परिचय हमे उसकी दस पृष्ठो की लम्बी वक्तृ[ता] मे मिलता है जिसमे वह पुरुरवा को तर्कसम्मत समाधान प्रस्तुत करती है। उर्वशी की दृष्टि मे पुरुष परमेश्वर का और नारी प्रकृति की प्रतीक

---

११ उर्वशी, पृ० ६३
१२ वही, भूमिका, पृ० ञ
१३ वही, तृतीय अक, पृ० ४७
१४ वही, पृ० ५७
१५ वही, पृ० ७७-८६

पुरुरवा की इस धारणा का वह प्रतिवाद करती है कि प्रकृति मायाविनी है और परमेश्वर की प्राप्ति के लिए प्रकृति से सम्बन्ध-विच्छेद करना पडता है :

"किसने कहा तुम्हे, जो नारी नर को जान चुकी है,
उसके लिए अलभ्य ज्ञान हो गया परम सत्ता का।
और पुरुष जो आलिंगन मे बाँध चुका रमणी को,
देश काल को भेद गगन मे उठने योग्य नही है ?"[१७]

उर्वशी की मान्यता है कि प्रकृति को माया कहकर उसके अस्तित्व का निषेध नहीं किया जा सकता :

"माया कह क्यो मृपा मेटते हो, अस्तित्व प्रकृति का।"[१८]

क्योंकि—

"हम निसर्ग के स्वय कर्म हैं, कर्म स्वभाव हमारा,
कर्म स्वय आनन्द, कर्म ही फल समस्त कर्मों का।"[१९]

इसलिए प्रकृति और ईश्वर मे कही भी द्वन्द्व या सघर्ष नही है। द्वन्द्व तो दुविधाग्रस्त मानस की रचना है। कोई भी धर्म-साधना प्रकृति से भिन्न होकर नही चल सकती .

"द्वन्द्व रच भर नही कही भी प्रकृति और ईश्वर मे,
द्वन्द्वो का अभ्यास द्वैतमय मानस की रचना है।
× × ×
धर्म साधना कही प्रकृति से भिन्न नही चलती है।"[२०]

कवि के अनुसार काम के दो रूप हैं :

"काम धर्म, काम ही पाप है, काम किसी मानव को,
उच्च लोक से गिरा हीन पशु जन्तु बना देता है।
और किसी मन मे असीम सुषमा की तृषा जगा कर,
पहुँचा देता उसे किरण सेवित अति उच्च शिखर पर।"[२१]

---

[१७] उर्वशी, पृ० ७७
[१८] वही, पृ० ७८
[१९] वही, तृतीय अक, पृ० ८०
[२०] वही, पृ० ८३-८४
[२१] वही, पृ० ८४

जिस काम कृत्य के सपादन मे मन-आत्माएँ नही, वरन् दो वपुस ही मिलते हैं, जो काम-क्रिया स्नेहाकृष्ट होकर नही, वरन् छल-बलपूर्वक की जाती है, वह बलात्कार के पाप को जन्म देती है। दूसरी ओर फलासक्ति से शून्य निष्काम काम-सुख स्वर्गीय पुलक के समान है। अस्तु, काम का यही रूप वरेण्य है।

इस प्रकार उर्वशी के जिस प्रेमिका रूप का कवि ने चित्रण किया है, उसके दो पक्ष हैं—एक वह, जिसमे वह अपना सर्वस्व अर्पण करके शरीर सुख की प्राप्ति के लिए व्यग्र है। दूसरे, जिसमे वह फलसक्तिपूर्ण कामुकता को त्याग, काम-भावना के उदात्त रूप को ग्रहण करना चाहती है। वस्तुत उर्वशी की चरित्र-सृष्टि द्वारा कवि ने अपने उस मन्तव्य की पुष्टि कर दी है जो उसने नारी के सम्बन्ध मे भूमिका मे प्रतिपादित किया है।

पत्नी—नारी के पत्नी रूप का प्रतिनिधित्व काव्य मे पुरुरवा की परिणीता औशीनरी करती है। वैसे आदर्श पत्नीत्व की झाँकी सुकन्या के चरित्र मे भी उपलब्ध है। प्रेमिका के विपरीत पत्नी पूर्णत पति के प्रति समर्पित होती है। उसका सर्वस्व पति ही होता है। सुकन्या इसी भाव को व्यक्त करते हुए कहती है कि :

"एकचारिणी मैं क्या जानूँ स्वाद विविध भोगो का ?
मेरे तो आनन्द-धाम केवल महर्षि भर्त्ता है।
योग-भोग का भेद अप्सरा की अबन्ध क्रीडा है ;
गृहिणी के तो परम देव आराध्य एक होते हैं,
जिससे मिलता भोग, योग भी वही हमे देता है।"[१]

सुकन्या की यह भी मान्यता है कि नारी को यौवन रहते ही किसी एक पुरुष के साथ निखिल जीवन का तार बाँध लेना चाहिए, अन्यथा सौन्दर्य से विगलित म्लान अगो वाली नारी पुरुष को आकर्षित करने मे समर्थ न होगी। अप्सराएँ अपने यौवन पर उन्मत्त रहती हैं, किन्तु पतिव्रता नारी के जीवन का आनन्द उसका मधुपूर्ण हृदय होता है, जो यौवन की जीर्णता पर जीर्ण नहीं होता। इसीलिए पति-पत्नी एक-दूसरे के हृदय मे ऐसे बसे रहते हैं जैसे एक वृन्त के दो प्रसून हो। वे साथ-साथ युवा और वृद्ध होते हैं। पति-पत्नी एक नौका पर चढकर जीवनोदधि को पार करते हैं। अस्तु, सुकन्या के शब्दो मे :

---

[१] उर्वशी, चतुर्थ अक, पृ० १०८

"अप्सरियाँ उद्विग्न भोगती रस जिस चिर यौवन का,
उससे कहीं महत् सुख है जो हमे प्राप्त होता है ;
निश्छल, शान्त, विनम्र, प्रेम भर उर के उत्सर्जन से ।"[११]

परिणीता नारी के जीवन के अपने अभाव हैं, जिनकी व्यंजना औशीनरी के चरित्र मे हुई है । वह पतिपरायणा नारी है । उसके पति (पुरुरवा) का उर्वशी से मिलन उसके जीवन का अभिशाप बन जाता है । पुरुरवा के उर्वशी के साथ गन्धमादन पर्वत पर चले जाने पर वह प्राणान्त करना चाहती है, तभी निपुणिका पुरुरवा का यह सन्देश देती है कि महाराज एक वर्ष पश्चात् लौटकर नैमिषेय यज्ञ करेंगे, जिसकी पूर्ति के लिए कुलवामा औशीनरी का जीवित रहना आवश्यक है । औशीनरी विचित्र दुविधा मे पड जाती है । वह अपनी व्यथा और उर्वशी के प्रति आक्रोश एक साथ व्यक्त करती है :

"हाय, मरण तक जीकर मुझको हलाहल पीना है ।
जानें, इस गणिका का मैंने कब क्या अहित किया था,
कब किस पूर्व जन्म मे उसका क्या सुख छीन लिया था ।

× × ×

छीन ले गयी अधम पापिनी मुझसे मेरे पति को ।
ये प्रवचिकाएँ, जानें, क्यों तरस नहीं खाती हैं,
निज विनोद के हित कुलवामाओं को तडपाती हैं ।"[१२]

औशीनरी की असहायावस्था का कवि ने बडा मर्मस्पर्शी चित्र अंकित किया है । वह कहती है -

"पति के सिवा योषिता का कोई आधार नहीं है ।
जब तक है यह दशा, नारियाँ व्यथा कहाँ खोयेंगी,
आँसू छिपा हँसेंगी, फिर हँसते - हँसते रोयेंगी ।"[१३]

अथवा

"कितना विलक्षण न्याय है ।
कोई न पास उपाय है ।
अवलम्ब है सबको, मगर, नारी बहुत असहाय है ।"[१४]

---

[११] उर्वशी, पृ० २१०
[१२] वही, द्वितीय अंक, पृ० ३३
[१३] वही, पृ० २९
[१४] वही, पृ० ४०

उर्वशी के पुत्र आयु के समक्ष अपनी मनोव्यथा व्यक्त करती हुई औशीनरी कहती है कि विधाता ने नारी के भाग्य में रुदन ही सिरजा है :

"और हाय, तब भी, मैं केवल त्रिया, भीरु नारी हूँ,
रुदन छोड़ विधि ने सिरजा क्या और भाग्य नारी का।"[१७]

इस प्रकार परिणीता नारी का जो रूप 'उर्वशी' महाकाव्य में अंकित हुआ है, उसमें दो विशेषताएँ स्पष्ट दिखायी देती हैं। प्रथम, पत्नी नारी का पति के प्रति पूर्ण समर्पण भाव; दूसरे, परिणीता नारी के जीवन की मूक व्यथा, जिसे वह अन्तरतम में सहेजे हुए जीवनयापन करती है।

माता—आयु की जननी होने के कारण उर्वशी माता है, किन्तु माता के दायित्व का संवहन सुकन्या ही करती है। नारी के मातृत्व की प्रशंसा काव्य के सभी पात्रों ने मुक्त कण्ठ से की है। उच्छृंखल स्वभाव वाली अप्सराएँ भी मातृत्व के गौरव को स्वीकार करती हैं। मेनका के शब्दों में :

"पर, रम्भे! क्या कभी बात यह भी मन में आती है,
माँ बनते ही त्रिया कहाँ से कहाँ पहुँच जाती है?
गलती है हिमशिला, सत्य है, गठन देह की खोकर,
पर, हो जाती वह असीम कितनी पयस्विनी होकर?
युवा जननि को देख शान्ति कैसी मन में जगती है;
रूपमती भी सखी! मुझे तो वही त्रिया लगती है।
जो गोदी में लिये क्षीरमुख शिशु को सुला रही हो,
अथवा खड़ी प्रसन्न पुत्र का पालना झुला रही हो।"[१८]

मातृत्व-पद की प्राप्ति से पति-पत्नी का प्रणय दृढ़तर हो जाता है। दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध रूपी मृदुल धागे रेशम की कड़ियों के समान मजबूत हो जाते हैं :

"यह भी क्या वे नहीं जानते, सन्तति के आने पर,
पति-पत्नी का प्रणय और भी दृढ़तर हो जाता है?
बाला रहती बँधी मृदुल धागों से शिरिष-सुमन के,
किन्तु अंक में तनय, पयस् के आते ही अंचल में
वही शिरिष के तार रेशमी कड़ियाँ बन जाते हैं।

---

[१७] उर्वशी, पंचम अंक, पृ० १५५
[१८] वही, प्रथम अंक, पृ० १६

और कौन है, जो तोड़े झटके से इस बन्धन को ?
रेशम जितना ही कोमल, उतना ही दृढ होता है।"[9]

मातृत्व की महिमा से मण्डित गर्भिणी नारी को महर्षि च्यवन सत्वशीला और लोकोत्तर कहते हैं। उनका मत है कि नारी का प्रजनन-कर्म किसी तपश्चरण से कम नही है :

"और नारियो में भी श्लथ, गर्भिणी, सत्व शीला को,
देख मुझे सम्मानपूर्ण करुणा - सी हो आती है।
कितनी विवश, किन्तु कितनी लोकोत्तर वह लगती है।

× × ×

कितनी सह यातना पालती त्रिया भविष्य जगत का ?
कह सकता है कौन पूर्ण महिमा इस तपश्चरण की ?"[10]

महर्षि च्यवन के अनुसार प्रजा-सृष्टि-यज्ञ मे नारी का महत्त्वपूर्ण अनुदान है। नारी रूपी महासेतु पर चलकर ही नये मनुज अदृश्य जगत से आते हैं :

"नारी ही वह महासेतु जिस पर अदृश्य से चल कर,
नये मनुज, नव प्राण दृश्य जग मे आते रहते हैं।
नारी ही वह कोष्ठ, देव, दानव, मनुष्य से छिपकर,
महाशून्य, चुपचाप, जहाँ आकार ग्रहण करता है।

× × ×

सच पूछो तो प्रजा सृष्टि मे क्या है भाग पुरुष का ?
यह तो नारी ही है जो सब यज्ञ पूर्ण करती है।"[11]

मातृत्व-भाव का प्रदर्शन कवि ने उर्वशी, सुकन्या और औशीनरी तीनो के चरित्र मे किया है। आयु के प्रति तीनों नारियो में अतुल्य वात्सल्य भाव है। उर्वशी अप्सरा है किन्तु आयु को जन्म देने के कारण उसमे मातृत्व का गौरव आ जाता है। चित्रलेखा से वह कहती है कि यदि मैं मानवी नहीं हूँ तो क्या मैं ने मानव रत्न लाल को तो जन्म दिया है।[12] वात्सल्य भाव से भरकर आयु को चुप कराते हुए वह अलौकिक आनन्द की अनुभूति करती है—

---

[9] उर्वशी, चतुर्थ अक, पृ० १२१
[10] वही, पृ० ११६
[11] वही, चतुर्थ अक, पृ० ११७
[12] वही, पृ० ११८

"कितनी मृदुल ऊर्मि प्राणो मे अकथ, अपार सुखो की !
दुग्ध धवल यह दृष्टि मनोरम कितनी अमृत-सरस है !
और स्पर्श मे यह तरग सी क्या है सोम-सुधा की,
अक लगाते ही आँखो की पलकें झुक जाती हैं !"[११]

उर्वशी से लालन पालन के लिए आयु को लेकर सुकन्या भी वात्सल्य भाव से भर जाती है। आयु के सम्बन्ध मे वह नाना कल्पनाएँ करती है। आयु को गोद मे लेकर पुचकारते हुए वह कहती है कि मेरा मुन्ना घुटनो के बल दौड-दौडकर कर कभी हिरनो के कान पकडेगा, कभी कपोत-केकी के डैनो को पकडेगा, और जब खडा होकर चलने लगेगा तो शशको, गिलहरियो कुरग छौनो से रार रोपेगा।[१२] तनिक और बडा होकर गोचारण के लिए बन जाया करेगा। सायकाल गायें चराकर सिर पर कुशा, दर्भ और समिधा का बोझ लेकर लौटा करेगा। फिर पवित्र होकर महर्षि के साथ यज्ञ वेदिका पर बैठकर मन्त्रोच्चार सहित हवन करेगा। हवन धूम से जब उसकी आँखो में वाष्प उमड आयेंगे तो मैं अपने आचल से उसकी आँखें पोछ दूँगी—

"हवन धूम से आँखो मे जब वाष्प उमड आयेगे,
तब मैं दोनो नयन पोछ दूँगी अपने अचल से।"[१३]

आयु को पाकर औशीनरी राजमहिषी से राजमाता हो जाती है। आयु को देखकर औशीनरी भी मातृत्व-भाव से भर जाती है। उसके मन को तो वही वेदना सालती है कि आयु यदि अपनी बाल्यावस्था मे ही मिल जाता तो उसका पालन-पोषण करके अनन्त सुख की अनुभूति करती —

"आ बेटा ! लूँ जुडा प्राण छाती से तुझे लगाकर।

[आयु को हृदय से लगाती है]

कितना मञ्जु स्वरूप ! नयन, नासिका, ललाट, चिबुक मे,
महाराज की आकृतियो का पूरा बिम्ब पडा है।
हाय, पालती कितने सुख, कितनी उमग, आशा से,
मिला मुझे होता यदि मेरा तनय कही बचपन मे !!"[१४]

---

[११] उर्वशी, पृ० १२०
[१२] वही, [redacted] १२६
[१३] वही, पृ० १३०
[१४] वही, पचम सर्ग, पृ० १५३

प्रत्युत्तर में आयु से कवि ने जो कहलाया है उसमें मातृत्व-पद की महिमा झलकती है। आयु कहता है—माँ! हताश मत हो। मैं माताओं के स्वर्णिम भविष्य का अग्रदूत बनकर आया हूँ। मैं ने माँ का केवल दूध ही नहीं पिया वरन् करुणामयी त्रिया के क्षीरोज्ज्वल कल्पना लोक में पल कर बड़ा हुआ हूँ। आयु कहता है कि उसके जीवन में माता की ममता ही मूल्यवान रही है—

> "जो कुछ मिला, मातृ-ममता से, माँ के सजल हृदय से,
> पिता नहीं, मैं ने जीवन में माताएँ देखी हैं।
> दिया एक ने जन्म, दूसरी माँ ने लगा हृदय से,
> पाल पोस कर बड़ा किया आँखों का अमृत पिलाकर;
> अब मैं होकर युवा खोजते हुए यहाँ आया हूँ,
> राजमुकुट को नहीं, तीसरी माँ के ही चरणों को।
> माँ, मैं पीछे नृप किशोर, पहले तेरा बेटा हूँ।"[१७]

इस प्रकार मातृत्व की व्यंजना उर्वशी, सुकन्या और औशीनरी तीनों के चरित्र में हुई है।

यहाँ तक 'उर्वशी' महाकाव्य में उल्लिखित नारी पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं और नाना रूपों (प्रेयसी, पत्नी, माता आदि) का विवेचन किया गया। अब हम काव्य में नारी के प्रति कवि के सामान्य दृष्टिकोण का मूल्यांकन प्रस्तुत करेंगे।

पुरुरवा-उर्वशी का आख्यान (जो प्रस्तुत महाकाव्य का कथात्मक आधार है) मूलतः ऋग्वेद में उपलब्ध है। इस दृष्टि से यदि हम वैदिक कालीन नारी की सामाजिक स्थिति का ऐतिहासिक स्रोतों से पता लगायें तो ज्ञात होता है कि आदिम-सामाजिक संगठन का रूप गण-संगठन द्वारा होता था, जिसका आधार मातृ-सत्ता थी।[१८] इस मातृ-सत्तात्मक-समाज में नारी बलवती, गृह की स्वामिनी और सम्पत्ति की प्रभु थी।[१९] इतिहासकारों का मत है कि वैदिक समाज में स्त्रियों की स्थिति जितनी ऊँची थी, उतनी बाद

---

[१७] वही, पृ० १६५

[१८] श्री अमृतपाद डांगे, भारत, पृ० ४६ (अनु० आदित्य मिश्र)

[१९] डॉ० भगवतशरण उपाध्याय, भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण, पृ० २४७

का प्रभाव यह हुआ कि मजदूरो ने 'ट्रान्सवाल' मे काम करना छोड दिया माँ-बहिनें सत्याग्रह करने के लिए घरो से निकल पडीं—

"गई 'वालियामा' दुनिया से, छोड गयी यह अमर कहानी ।
स्वर्ण अक्षरो मे अंकित है, देश प्रेम पर मिटी जवानी ।।
× × ×
महँदी पिस कर रंग दे गयी, काम छोडकर मजदूर चल दिये ।
गाधी जी की सेना बनकर, डोर तोड मजदूर चल दिये ।।
बच्चो को गोदी मे ले ले सत्याग्रह के लिए चली माँ ।
चली फातिमा, चली बेगमे, चली रुक्मिणी, चली सलीमाँ ।।
अपनी आजादी लेने को-पुरुष देवियों का दल निकला ।
सत्याग्रह का अमर अस्त्र ले, देश सेवियों का बल निकला ।।
(वही, सर्ग ११, पृ० १६७)

गोरी सरकार ने गाधी जी को गिरफ्तार कर लिया । गाधी जी की गिरफ्तारी से सत्याग्रहियो मे नवचेतना का सचार हुआ । वे द्विगुणित उत्साह से आन्दोलन करने लगे । उधर जनरल स्यूकिन और पोलक ने सत्याग्रहियो पर अत्याचारो का दमन चक्र चला दिया—

"ममक उठी सरकार वहाँ की, बोला बन्दूको पर पानी ।
बन्दूको या तलवारो से-दबी न उठती हुई जवानी ।।
घोडे दौडे, चली गोलियाँ, किन्तु न कही अहिंसा हारी ।
घायल हुए, मरे भी सैनिक, विधवाएँ हो गयी विचारी ।।"
(वही, सर्ग ११, पृ० १६८)

किन्तु सरकारी दमन-चक्र की गति के अनुरूप ही सत्याग्रह भी तीव्रतर होता गया । कवि के अनुसार—

'बाढ कौन कब रोक सका है ? सत्याग्रहियो के दल आये ।
बूढे, बालक, माँ-बेटे सब, गाधी की जय-जय चिल्लाये ।।"

अन्तत जनरल स्मट्स सत्याग्रहियो की शक्ति के आगे झुक गये । कर-नीति पर विचार के लिए कमीशन की नियुक्ति हुई और गाधी जी की न्याय सगत माँगो को मान लिया गया । यह गाधी जी के राजनीतिक जीवन की अपूर्व सफलता थी । वास्तव म यह हिंसा पर अहिंसा की विजय थी—

'सत्य-अहिंसा के चरणो मे, हिंसा की तलवार झुक गयी ।
गाधी जी की गति के आगे, चलनी हुई कृपाण रुक गयी ।।

स्वतन्त्रता की अमरजीत मे, प्रसन्नता से मनी दिवाली।
जहाँ चरण पहुँचे गाधी के, वहाँ तभी खिल गयी उजाली॥
(वही, सर्ग ११, पृ० १७०)

द्वादश सर्ग मे गाधी जी के अछूतोद्धार के लिए किये गये प्रयत्नो तथा चम्पारन के सत्याग्रह का वर्णन है। अफ्रीका से लौटकर भारत आगमन पर बम्बई मे गोखले जी ने बापू का हर्षोल्लास से स्वागत किया। उनके अभिनन्दन हेतु जनसभा समायोजित हुई जिसमें स्वागत-गीत और जिन्ना साहब का स्वागत-भाषण अग्रेजी भाषा मे हुए। स्वदेशी प्रिय गाधी का मन रो पडा। उन्होने निर्भीकतापूर्वक उस सभा मे स्वदेशी-भाषा की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा—

"बोले-भारतीय भाषा मे, मातृभूमि के गुण-गण गायें।
अपनी भाषा, अपना भारत, मगलमय आचरण दिखायें॥
वह क्या राष्ट्र जहाँ के वासी, अपनी भाषा बोल न पायें।
भाषा की दासता पाप है, अपनी ही भाषा मे गायें॥
वह स्वतन्त्र भी पराधीन है, जिसके पास न अपनी भाषा।
भाषा मे ही बसी हुई है, भारतमाता की अभिलाषा॥"
(दलितोद्धार, सर्ग १२, पृ० १७३)

भारत आकर गाधी जी ने वकालत प्रारम्भ कर दी। किन्तु उन्होंने सदैव सत्य का ही पक्ष लिया। इसी बीच बापू ने शान्ति निकेतन, राजकोट, पूना, रगून, हरिद्वार, आदि का भ्रमण कर सामाजिक समानता का प्रचार किया। चम्पारन पहुँचकर उन्होने जमीदारो के कुचक्र मे फँसे कृषको के लिए सत्याग्रह प्रारम्भ किया और लम्बे सघर्ष के पश्चात् उन्हें सफलता मिली—

"सुलह हुई, छूटा लगान वह, गाधी जी ने मुक्ति दिलाई।
कृषको की दुर्गम मजिल पर, गाधी ने पग धूलि बिछाई॥
(मृदुल विरोध-सर्ग १३, पृ० १८७)

चतुर्दश सर्ग का शीर्षक है—'असहयोग'। इस सर्ग मे असहयोग आन्दोलन । राष्ट्रपिता की भूमिका का समोल्लेख है। जन जीवन मे जागृति लाने के लए बापू ने 'नवजीवन', 'यग इण्डिया', 'क्रानिकल' और 'हरिजन' नामक माचार पत्रो का सम्पादन-सचालन किया। विदेशी के बहिष्कार की योजना अन्तर्गत खादी अपनाने और चरखा कातने का देशव्यापी अभियान प्रारम्भ आ। नागपुर के कांग्रेस-अधिवेशन मे उन्होने स्पष्ट शब्दों मे अछूतोद्धार, खादी व हिन्दू-मुस्लिम-एकता पर बल दिया—

"करो अछूतोद्धार भाइयो !" कहा नागपुर कांग्रेस मे।
एक रहो सब, एक रहो सब, बनी रहे एकता देश मे ।।
खादी के तारो को जोडो, धो दो छुआछूत की स्याही।
कैसा हिन्दू मुसलमान क्या, हिन्दू-मुस्लिम हैं हमराही ।।"
(असहयोग, सर्ग १४, पृ० २१३)

पचदश सर्ग मे बापू द्वारा "बहिष्कार" आदोलन के सचालन तथा उसके देशव्यापी प्रभाव-प्रसार का निरूपण है। 'बहिष्कार' आदोलन उत्तरोत्तर शक्तिशाली होता गया। बापू को जवाहर, पटेल, सुभाष, मौलाना आजाद, जयप्रकाश नारायण, राजेन्द्र प्रसाद प्रभृति देश सेवियो का पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ। काग्रेस सस्था स्वाधीनता रूपी महायज्ञ की वेदिका बन गई। स्वतन्त्रता-देवी के स्तवन हेतु सभी ने गाधी जी के चरण-चिन्हो पर चलते हुए सर्वस्व समर्पण करने का सकल्प किया। गाधीजी ने असख्य श्रमिको और कृषको को अर्द्धनग्न देखकर स्वकीय वस्त्र त्याग दिया और लगोटी बाँध ली। उन्होने स्थान स्थान पर "गाधी-आश्रमो" की स्थापना की, जिनमे खादी बिकने लगी। घर-घर मे विदेशी रेशमी वस्त्रो की होली जलने लगी—

"गाधी आश्रम खुले खिला श्रम, बिकने लगा देश मे खद्दर।
फुकने लगे विदेशी कपडे, जली देश मे होली घर-घर ।।
भारत के कोने-कोने मे, जली विलायत की रगीनी।
हसो से सफेद खद्दर से, उडी सुगन्धें भीनी भीनी ।।

× × ×

गली, मुहल्लो बाजारो मे, निकली गाधी जी की टोली।
शहर-शहर मे, गाँव गाँव मे, जली विदेशी विष की होली ।।"
(बहिष्कार, सर्ग १५, पृ० २१७-२१८)

बहिष्कार आन्दोलन से चिढकर अग्रेजी प्रशासको ने दमन चक्र और तेज कर दिया। इसी अवसर पर गाधी जी ने 'यग इण्डिया' मे जन शान्ति को उग्र रूप देने वाले उत्तेजक लेख लिखे जिन्हे अग्रेजी-प्रशासन ने 'राजद्रोह के अपलेख' की सज्ञा देकर अभियोग लगाया और मुकदमा चलाकर छह वर्ष का कारावास दिया। कारागृह मे बापू ने 'आत्मकथा' लेखन का कार्य किया। षोडश सर्ग मे साम्प्रदायिकता-निवारण-हेतु गाधी जी के इक्कीस दिवस के उपवास तथा साइमन कमीशन के विरोध का कवि ने वर्णन किया है। 'रण-भेरी' शीर्षक सप्तदश सर्ग मे लाला लाजपत राय, सरदार भगतसिंह, सुखदेव,

राजगुरु, चन्द्रशेखर, यतीन्द्रनाथ प्रभृति क्रान्तिकारियों के आत्मदान का काव्योल्लेख है। इन वीरों के अद्भुत बलिदान ने देश भर में स्वाधीनता आन्दोलन की दशा दिशा को ही बदल दिया। लाहौर अधिवेशन में प० जवाहरलाल नेहरू ने 'पूर्ण स्वतन्त्रता' प्राप्ति के लिए नारा लगाया। स्वतन्त्रता की व्याख्या करते हुए कहा गया—

'स्वतन्त्रता का अर्थ यही है—ब्रिटिश राज्य से देश मुक्त हो।
बन्धन तोड़े, पूर्ण मुक्त हो, मुक्त देश भिन्नता युक्त हो॥
× × ×
हर सम्भव उपाय से तय है, सत्ता हाथ हमारे आए।
ब्रिटिश राज्य अपने झण्डे को, अब इङ्गलैंड साथ ले जाए॥
× × ×
जन जन ने यह करी प्रतिज्ञा स्वतन्त्रता अधिकार हमारा।
हम स्वतन्त्र हो जियें, अन्यथा जीना ही धिक्कार हमारा॥"

(रणभेरी, सर्ग १७, पृ० २४६)

इसके पश्चात् 'नमक कानून' तोड़ने का आन्दोलन गांधी जी द्वारा सचालित किया गया। सत्याग्रह से पूर्व बापू ने इरविन को चेतावनी के रूप में पत्र भी लिखा कि मैं सत्य और अहिंसा का समर्थक हूँ। अंग्रेजों से भी मुझे प्रेम है, किन्तु उनके अत्याचारों से घृणा है। ब्रिटिश राज्य ने भारत माँ का बहुत शोषण किया है हमारी संस्कृति की जड़ें खोखली कर दी है और पौरुष का अपहरण कर लिया है। भारत में सत्ता स्थापित रखने के लिए अब और कुचक्र नहीं चल पायेंगे क्योंकि—

'सत्य अहिंसा का बल लेकर-सोया भारत जाग उठा है।
यही अहिंसा विनम्र अवज्ञा, सत्याग्रह का फाग उठा है॥
सत्य-अहिंसा के द्वारा मैं, ब्रिटिश राज्य का मन बदलूँगा।
पहले देश स्वतन्त्र करूँगा, पीछे अपना तन बदलूँगा॥
इसीलिए यह सत्याग्रह है सावधान कर रहा आपको।
भारत सहन नहीं कर सकता, परतन्त्र्य के महाताप को॥

(रणभेरी, सर्ग १० पृ० २८०)

आन्दोलन को उग्र रूप ग्रहण करते देखकर अंग्रेजी शासकों ने काँग्रेस को [illegible] कानूनी घोषित कर दिया। मोतीलाल नेहरू सहित अन्य लोगों के नेताओं

को बन्दी बना लिया। इससे जनता भड़क उठी तथा आन्दोलन और तीव्र हो गया। अन्तत सरकार को झुकना पड़ा। 'गोलमेज-कान्फ्रेंस' बुलाई गई। समझौते का मार्ग अपनाना पड़ा। इसी बीच रुग्णावस्था मे मोतीलाल नेहरू का निधन हो गया। उनके निधन पर कवि की भाव-भीनी श्रद्धांजलि कितनी मार्मिक बन पड़ी है—

"भारत माता की मुट्ठी से-मोती काल कराल ले गया।
मोती गया, किन्तु जननी को-ज्योति जवाहरलाल दे गया॥
सागर मे हीरे मोती हैं, लेकिन ऐसा एक न मोती।
टूट गया माला का मोती, पगली सी भारत माँ रोती॥
मोती अब न रहे सागर मे, सागरिका-सी जनता रोती।
मोती के बलिदान-दीप पर, बरस पड़े आँसो से मोती॥"

(क्रान्ति की किरणें, सर्ग १८, पृ० २६६)

गांधी-इरविन समझौते से देश के जन-मन मे आशा की किरण दिखाई दी थी किन्तु लार्ड विलिंगडन के आते ही पुन निरकुश शासन का दमन चक्र चल पड़ा। उधर कांग्रेस के नेतृत्व मे स्वाधीनता-सगर भी द्रुत गति से चला। इसी मध्य गाधी जी गोलमेज कान्फ्रेंस के लिए इङ्गलैंड गये और वहीं जार्ज पचम से मिले। जार्ज पचम और जननायक का मिलन अभूतपूर्व था। भारतीय जन जीवन की वास्तविकताओ से जार्ज को अवगत कराने के लिए बापू खद्दर की लगोटी धारण किए हुए ही मिले—

"मिले 'जार्ज पचम' से गांधी-बांधे खद्दर की लगोटी।
वह उस भारत का प्रतिनिधित्व था, जिसकी छिनी हुई थी रोटी॥
मानो नगा-भूखा भारत, ब्रिटिश राज्य से मिलने आया।
खड़ा ब्रिटिश सम्राट हो गया, उन चरणो मे हृदय झुकाया॥"

(रेत मे अक्षर, सर्ग १६, पृ० २८२)

गोलमेज कान्फ्रेंस मे जिस निर्भीकता और सच्चाई से गांधी जी ने भारतीय-पक्ष को प्रस्तुत किया, वह उनके चरित्र की दृढ़ता का परिचायक है। उन्होंने कहा अस्पृश्यता-निवारण मेरा जीवन-व्रत है। कांग्रेस भारत का शासन चलाने के सर्वथा योग्य है। वह विदेश और रक्षा विभागों का गुरुतर दायित्व भी सक्षमतापूर्वक सम्वहन कर सकती है। हम अंग्रेजों से मित्रता चाहते हैं किन्तु स्वशासन का अधिकार खोकर नहीं। हम पर गोलियाँ बरसें या बम गिरें, किन्तु स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए बढ़े कदम अब नहीं रुकेंगे—

"कहा जोर से गांधी जी ने-वसुन्धरा यह वीर भोग्य है।
उत्तरदायी शासन के हित-कांग्रेस सब तरह योग्य है॥
वैदेशिक विभाग, रक्षा तक, हम ले सकते हैं कन्धों पर।
भारत में अंग्रेजी-सेना, भारत को दिखलाती है डर॥
हम हैं योग्य सभाल सकेंगे, सब उत्तरदायित्व देश का।
हर विभाग पर लहरायेगा, ऊँचा झंडा कांग्रेस का॥

× × ×

जब तक हम यह कर न सकेंगे, वियावान में ही भटकेंगे।
उठें बवण्डर, गिरें बिजलियाँ, अग्नि परीक्षा भी देंगे॥
चलें गोलियाँ या बम बरसें, कदम हमारे नहीं रुकेंगे।
स्वतन्त्रता का भोर न जब तक, तब तक तारे नहीं लुकेंगे॥"

(वही, सर्ग १६, पृ० २८३-२८४)

स्वाधीनता-समर में जूझते हुए बापू यह समझ गये थे कि इसकी सफलता के लिए राष्ट्रीय-जीवन में अस्पृश्यता-निवारण और दृढ़-एकता परमावश्यक है। अस्तु, वे इसके लिए प्राणपन से प्रयत्नशील हो गए। उन्होंने अस्पृश्यता को गरल बताते हुए अपने प्राणों की आहुति करके भी इससे देश को बचाने का संकल्प लिया—

"जननायक ने वाणी खोली, अस्पृश्यता गरल बतलाया।
अलग अछूत नहीं हिन्दू से, हिन्दू को दीपक दिखलाया॥
छुआछूत का भेद मिटेगा, वर्ना मेरी लाश चलेगी।
या तो यहाँ एकता होगी, वर्ना मेरी चिता जलेगी॥"

(बहती धारा सर्ग २०, पृ० २८६)

हरिजन-आन्दोलन के लिए बापू गाँव गाँव गए। उन पर बम भी फेंका गया किन्तु प्रयास असफल रहा। बार-बार अनशन और उपवास करके उन्होंने राष्ट्रीय जीवन में जागृति का शंखनाद किया। [illegible] की विचारधारा कांग्रेस का नारा बन गयी। कवि के शब्दों में—

"जागृति की वीणा बजते ही, अद्भुत हलचल हुई देश में।
पाञ्चजन्य सुन जननायक का, आँधी आई [illegible] में॥
जीवन जागा, लहरें उमड़ीं, एक [illegible] आया।
पुनः संगठन हुआ देश में, [illegible]॥"

(वही, सर्ग २०, पृ० [illegible])

ऐसे भी अवसर आए जब बापू की सत्य और अहिंसा की नीतियों के प्रति कांग्रेस के क्रान्तिप्रिय और उग्रवादी सदस्यो द्वारा असहमति प्रगट की गई। यहां तक कि श्री सुभाषचन्द्र बोस ने कांग्रेस छोडकर पृथक रूप से 'अग्रगामी दल' की स्थापना कर ली। रामगढ मे सम्पन्न हुए कांग्रेस के ५३वें अधिवेशन मे गांधी जी ने विशाल जनसमूह को सम्बोधित करते हुए पुन एकता के लिए आह्वान किया। उन्होने कहा कि सत्याग्रह की हार कभी नही होती। 'यरवदा' चर्खों से जीवन के धागे कात रहा हूँ, इन्ही धागो से पराधीनता की जजीरें कटेंगी। सत्याग्रह की महत्ता प्रतिपादित करते हुए उन्होने कहा—

"सत्याग्रह की परिभाषा यह—सच्चे पथ पर खडे रहो तुम।
भाला की नोको के आगे, महावज्र से अडे रहो तुम॥
भाले टूटेंगे ढालो से, सत्याग्रह पूजा जायेगा।
विश्व-शान्ति की ज्योति यही है, सूरज कभी न बुझ पायेगा॥'

(आजादी की आवाज, सर्ग २३, पृ० ३३०)

बापू ने देश के जन-जन को मातृभूमि पर उत्सर्ग होने के लिए आह्वान करते हुए ओजस्वी वाणी मे कहा—

"बार-बार ये यज्ञ न होते, कब कब आते हैं ये अवसर।
अपने दोनो लोक बना लो, भारतमाता की पूजा कर॥

× × ×

झूम झूम गा रहा तिरगा, आओ आओ वीरो आओ।
घूम-घूम गा रहा तिरगा, मातृभूमि पर शीश चढाओ॥
दोनो हाथो मे लड्डू हैं, यहाँ मुकुट है, वहाँ मुक्ति है।
स्वतन्त्रता के लिए होड है, दौडो, दौडो ! अमर उक्ति है॥"

(वही, सर्ग २३, पृ० ३३०)

बापू की वाणी का जादू जैसा प्रभाव हुआ। कोटि-कोटि कण्ठो ने जन्म भूमि का जय जयकार करते हुए बलिदान का सकल्प किया। स्वाधीनता सग्राम की इस बेला मे अपार श्रद्धा और अनन्य निष्ठा भाव से भारतीय जन मानस बापू का अनुसरण कर रहा था। कवि के अनुसार—

"जाते जहाँ चरण बापू के—जनता उमड उमड कर आती।
जहाँ कही भी पलभर को बैठे—बदली घुमड घुमड कर गाती॥

× × ×

मेरे 'विश्वबन्धु' बापू की—गाँव गाँव मे लहरें लहरीं।
राष्ट्रपिता के पदचिह्नो से, चारो ओर ध्वजायें फहरीं ॥"
(आन्दोलन, सर्ग २४, पृ० ३४३)

अन्तत भारतीय स्वतन्त्रता-आन्दोलन का वह ऐतिहासिक अभियान प्रारम्भ हुआ जिसे 'भारत-छोडो' आन्दोलन की सज्ञा दी गयी थी। अँग्रेजी प्रशासन की अवसरवादी, आतकवादी और शोषण पर आधारित नीतियो से विक्षुब्ध होकर काग्रेस के नेताओ ने अग्रेज़ो को भारत छोडने के लिए विवश करने वाला साहसिक आन्दोलन शुरू किया। इस आन्दोलन को सभी वर्गों एव दलो का समर्थन प्राप्त हुआ। 'भारत-छोडो' आन्दोलन भारतीय जन-मानस के क्रोध की आग्नेय हुँकृति के रूप मे उद्भूत हुआ—

"दिल मे जलती होली बोली—भारत छोडो ! भारत छोडो।
छाती मे घुस गोली बोली—भारत छोडो ! भारत छोडो ॥
बोली माँ बहनो की रोली—भारत छोडो ! भारत छोडो।
कह उठी शहीदो की टोली—भारत छोडो ! भारत छोडो ॥
फाँसी के तख्ते बोल उठे—भारत छोडो ! भारत छोडो।
भूकम्प भयानक डोल उठे—भारत छोडो ! भारत छोडो ॥
कवियो के शखनाद बोले—भारत छोडो ! भारत छोडो।
नवयुवको के तेवर बोले—भारत छोडो ! भारत छोडो ॥
यह वीर जवाहर का नारा—भारत छोडो ! भारत छोडो।
हुँकार रहा झण्डा प्यारा—भारत छोडो ! भारत छोडो ॥
वीरो की आत्मा का नारा—भारत छोडो ! भारत छोडो।
सबके परमात्मा का नारा—भारत छोडो ! भारत छोडो ॥"
(आन्दोलन, सर्ग २४, पृ० ३६१-३६३)

यह आन्दोलन 'सन् ५७ की क्रान्ति' से अधिक व्यापक और रोमाचक था। आन्दोलन की उग्रता और व्यापकता का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि—

"ग्राम-ग्राम मे शहर-शहर मे, गली-गली मे था आन्दोलन।
लहरें लपकी, ज्वाला बरसी, अडड अडड कर आया हल्लन ॥
काटे तार, पटरियाँ तोडी, कुछ थानो मे आग लगाई।
धधक उठा प्रतिशोध हृदय मे, वीरो ने तलवार उठाई।"
(वही, सर्ग २४, पृ० ३६५)

उधर प्रशासन ने योजनाबद्ध ढंग से आन्दोलन को प्रशमित करने के लिए निर्ममतापूर्वक दमन चक्र चलाया। अंग्रेजी प्रशासन की पशुता और बर्बरता का मर्मान्तक शब्द चित्र 'जननायक' के प्रणेता ने इस प्रकार अंकित किया है—

"थानेदार गवर्नर बनकर-वह आन्दोलन लगे दबाने।
सत्याग्रह पर, झोपड़ियों पर-बम दुनालियाँ लगे चलाने॥
बच्चों को बूटों से रौंदा, बूढ़ों को कीलों से भेदा।
माँ बहनों के अङ्ग अङ्ग को दुष्टों ने भालों से छेदा॥
कितनी ही जवान बहिनों पर, गोरों की पशुता गुर्राई।
याद हमें वे माँ बहिनें हैं, जिनकी बोटी-बोटी खाई॥
सन् सत्तावन की बर्बरता, फिर से नाच रही थी।
शोणित का सागर उमड़ा था, जिसमें इन्सानियत बही थी॥"

(वही, सर्ग २४, पृ० ३६६)

पच्चीसवें सर्ग के प्रारम्भ में कवि ने बापू के जीवन में कस्तूरबा के योगदान का प्रशस्तिगान किया है। बापू जब 'आगाखाँ' महल में बन्दी थे, तब 'बाँ' भी वहीं उनकी सेवा में अहर्निश रत रहती थीं। राष्ट्रपिता के जीवन की अर्द्धांगिनी 'बाँ' के सम्बन्ध में कवि का कथन है—

" 'बाँ' थी कार्य, क्रिया थे बापू, वे रुई, वह भावुक तकली।
बापू सूत और 'बा' लड्डी बापू वर्षा, 'बा' थी बदली॥
'बा' चर्खा, वे तार सूत के, वह बाँसुरी और वे थे सुर।
त्याग तपस्या के गीतों से-पीड़ित बन्दीगृह था सुरपुर॥
वह रचना, वे रचनात्मक थे, वह भावुकता, वे थे कविता।
वह थी धार और वे लहरें, वह थी रश्मि और वे सविता॥"

(आहुति, सर्ग २५, पृ० ३६६)

हिंसक नीतियों के विरोध में बापू ने बन्दीगृह में ही आमरण-अनशन प्रारम्भ कर दिया। अनशन से बापू का जर्जरित तन प्रतिपल गिरने लगा किन्तु आत्मिक शक्ति के अलौकिक तेज से उनका मन दृढ़-सकल्प था। डाक्टर गिल्डर, सुशीला नैयर, बी० सी० राय, भण्डारी तथा माण्डलिक बापू की नाड़ी की परीक्षा कर रहे थे। बापू का वजन साढ़े चम्वन सेर से घटकर चालीस सेर रह गया। १२वें दिन उनकी हालत अत्यन्त चिंताजनक हो गयी। बापू के अनशन की विश्वव्यापी प्रतिक्रिया हुई—

"जगतपिता का व्रत करना था, देश विदेशों में हलचल थी।
× × ×
अनशन से 'एशिया' हिल गया, हिलता था 'यूरोप' पात सा।।"
(वही, सर्ग २५, पृ० ३७४)

ब्रिटिश सरकार को असरय तार प्राप्त हो रहे थे कि गांधी को छोड़ो। जार्ज बर्नार्ड शॉ और विश्व कवि ने बिना शर्त बापू की रिहाई की माँग की। देश भर के नेताओं और जन जीवन ने बापू से उपवास तोड़ने की प्रार्थना की। अन्ततः बापू ने एक गिलास रस पीकर उपवास समाप्त किया। बापू के तपश्चरण की ही विजय हुई—

"उपवास समाप्त हुआ उनका,
तप से जननायक जीत गये।
व्रत से सत से गति से यति से,
सब संकट के क्षण बीत गये।
सब ने प्रभु से विनती करके,
जग की वह ज्योति प्रभाकर।
जय भारत की, जननायक की,
जिसने तप से दुनिया बदली।।"
(वही, सर्ग २५, पृ० ३७६)

'आगाखाँ' महल के बन्दीगृह में ही कस्तूरबा का लम्बी रुग्णावस्था के पश्चात् देहावसान हो गया। 'बा' का निधन प्रकारान्तर से स्वाधीनता-यज्ञ में एक आहुति थी। 'जननायक' के रचयिता ने भाव-भीनी काव्यांजलि समर्पित की है—

"सती साधना जननायक से-पल भर में ही विदा हो गयी।
मरी हुई ऐसी लगती थी-मानो थककर अभी सो गयी।।
देश भक्ति की दिव्य मूर्ति माँ, मानो लेट बन गयी प्रतिमा।
जगदम्बा बन गयी आज माँ, बनी विश्व की गौरव गरिमा।।
संध्या में शिव रात्रि दिवस की, 'बा' माता निर्वाण हो गयी।
भारतमाता की पूजा कर, चिर-निद्रा में शान्त सो गयी।।"
(वही, सर्ग २५, पृ० ३८३)

'बुझते-शोले' शीर्षक षड्विंश सर्ग में बंगाल के उस भयानक दुर्भिक्ष का वर्णन है जिसमें सड़कों और गलियों में पड़े हुए लोग भूख से तड़फ रहे थे। भूखे कंकालों को पागल कुत्ते नोच रहे थे। मृत-माँ के स्तन अनाथ शिशु काट

रहे थे। भूखी बंगालिनें मुर्दा बच्चों को खाने लगी थी। भूखे बंगाली पेड़ों की छालें और बालाएँ बबूल की डालें खाने लगी थी। सड़कों पर पड़ सब सूख गये थे। कलकत्ता श्मशान बन गया। एक-एक रोटी पर बहनों की इज्जत बिक गई। दुर्भिक्ष की करुण और वीभत्स दशा का चित्रण करते हुए कवि ने लिखा है कि—

'कलकत्ता की गली गली में, लाशों को कुत्ते खाते थे।
ठठरी पञ्जर कंकालों पर, कौए चोंच चला जाते थे॥
कुत्ते मुर्दों को खाते हैं, जिन्दा को इन्सान खा रहे।
खाने वाला रहा न कोई, मुर्दों को श्मशान खा रहे॥
पत्तों पर सतीत्व तक बेचा, लज्जा बेची, बेचा तन मन।
अमरीकन, अंग्रेजी फौजी, डसते थे बहनों का जीवन॥"

(बुझते शोले, सर्ग २६, पृ० ३६२)

देश में एक अकाल का भयावह परिदृश्य उपस्थित था और दूसरी ओर जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग साम्प्रदायिकता की विष-बेलि बो रही थी। इस अवसर पर जननायक ने भूखे बंगाल को आत्मोत्सर्ग के लिये आह्वान किया—

"उठ सोते श्मशान! जाग अब, परिवर्तन ललकार रहा है।
उठ भूखे बंगाल! तड़पकर, शङ्खनाद हुङ्कार रहा है॥
अरे भूख से मरने वालो! उठो, करो या मरो चलो तुम।
अरे भूख से जलने वालो? परवाने बन आज जलो तुम॥
भूखों अब मरना ही है तो, स्वतन्त्रता के लिए मरो तुम।
क्रांति, क्रांत बस क्रांति-क्रांति हो, यदि प्रास की शांति करो तुम॥
× × ×
अपने पेटों की ज्वाला से, अब तुम ज्वालामुखी जला दो।
अपनी आँखों के पानी से, लोहे के हैवान गला दो॥"

(वही, सर्ग २६, पृ० ३६४)

इस विप्लवी-आह्वान की लोमहर्षक प्रतिक्रिया हुई। लिनलिथगो की निर्ममताओं से लोहा लेने के लिए भारतीय जनमानस सन्नद्ध हो गया। स्वातन्त्र्य-आन्दोलन तीव्रतर होता गया। प्रशासन को विवश होकर बापू को 'आगाखाँ' बन्दीगृह से मुक्त करना पड़ा। लालकिले के बन्दी भी छूट गये। प्रान्तीय सरकारें बदलीं, काँग्रेस का ध्वज लहराया। पण्डित नेहरूजी के नेतृत्व में आन्तरिक सरकार की स्थापना हुई। किन्तु जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने 'पाकिस्तान' की माँग रखी। फलस्वरूप साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे।

'नोआखली' के साम्प्रदायिक दगो से जननायक बहुत दुखी हुए । उन्होने सूक्ष्म आहार लेना प्रारम्भ कर दिया और अपना निश्चय इन शब्दो मे व्यक्त किया—

"और अकेला मैं जन-जन मे, जा-जा कर सद्भाव भरूँगा ।
या तो शान्ति यहाँ पर होगी, वर्ना मैं बस यही मरूँगा ॥
नोआखली के ग्रामो मे, जब तक शान्ति नहीं पाऊँगा ।
तब तक सेवा यही करूँगा, वापिस लौट नहीं जाऊँगा ॥"

(शान्ति के चरण, सर्ग २८, पृ० ४२८)

इसी प्रकार के दगे बिहार मे भडक उठे । उन्हे भी बापू ने शान्ति-प्रयत्नों से रोका । बापू ने भारत के विभाजन का भी प्राणपन से विरोध किया किन्तु राष्ट्रहित मे उन्हे यह गरलपान करना पडा । अन्ततः गांधी जी की [illegible] साधना और त्याग से देश स्वतन्त्र हुआ । राष्ट्रध्वज का प्रस्ताव [illegible] हुए नेहरू जी ने बापू के योगदान का बखान करते हुए कहा—

"हम जितने भी बढ़े अगाडी, वह सब बापू का [illegible] है ।
इस झण्डे के तार-तार मे, गाधी जी की अमर [illegible] है ॥
पराधीनता में भी उसने, भारत का [illegible] ।
उसी महामानव ने हमको, अन्तिम मंजिल पर [illegible] ॥"

([illegible], सर्ग [illegible], पृ० [illegible])

संविधान सभा मे डा० राजेन्द्रप्रसाद ने [illegible] करते हुए कहा—

"धन्यवाद बापू का जिसने, [illegible] दिखलाया ।
श्रद्धाजलि उस महापुरुष को, [illegible] ॥
× × ×
बापू अमर प्रकाश [illegible] है, [illegible] हैं वे ।
वे जीवन हैं वे [illegible] हैं, [illegible] आदर्श हैं वे ॥
वे आचार्य, अहिंसा के हैं, [illegible] हैं ।
जो जो हैं जो [illegible], बापू के सम्पूर्ण साज हैं ॥"

(वही, सर्ग २८, पृ० [illegible])

देश स्वतन्त्र हो गया । [illegible] ने [illegible] को अभिभूत कर दिया । किन्तु जननायक का हृदय [illegible] कारण खिन्न था । वे गाँव-गाँव और नगर-नगर मे [illegible] दायिकता के कलुष को प्रक्षालित करने का अथक [illegible]

"पूज्य महामानव पीडा के, पोछ रहा था आँसू खारे।
खून धो रहा था धरती का, सन्त एक लगोटी धारे।।"

(तपालोक, सर्ग ३०, पृ० ४७५)

बापू ने कलकत्ता के उपद्रवो को रोकने के लिए उपवास किया और उन्हें सफलता भी मिली। वस्तुत बापू ने शिव की भाँति साम्प्रदायिक वैमनस्य रूपी विष का पान किया—

"जितना जहर फैलता था सब, युग के शिव पल में पी जाते।
आ आ कर भूचाल भयकर, गाधीजी को हिला न पाते।।
बापू ने उपवास कर दिया, काँप उठा कलकत्ता थर-थर।
मानवता की नीव रोक ली, नर नारायण ने अनशन कर।।"

(वही, सर्ग ३०, पृ० ४७६)

दिल्ली मे भी दगे भडक उठे। बापू को तार देकर दिल्ली बुलाया गया। बापू अपनी प्रार्थना-सभा मे हिन्दू मुस्लिम एकता पर बल देते थे। उनकी वाणी ईश्वर और अल्ला का एक साथ स्तवन करती थी। "हिन्दुस्तान हिन्दुओ का है।"—इस भाव में आस्था रखने वाले लोग बापू की प्रार्थना-सभा मे हुल्ला-गुल्ला करते थे। प्रार्थना सभा मे बम-विस्फोट भी होने लगे। किन्तु अहिंसा के पुजारी निश्चित भाव से साम्प्रदायिक एकता के प्रयत्नो मे निरत रहे। किन्तु हिन्दुत्व के उन्मादी जल्लाद गोडसे ने प्रार्थना-सभा मे ही पिस्तौल की गोलियो के अन्धकार से मानवता के मार्तण्ड को अस्त कर दिया। बापू के निधन पर शोक सतप्त स्वर मे 'जननायक' के रचयिता ने उचित ही लिखा है कि—

"आज डसा भगवान भक्त ने, आज धरा डकराई।
आज क्षितिज के पार स्वर्ग मे, पूजा की तिथि आई।।
स्वर्ग लोक को गया धरा से, जग मन्दिर का ईश्वर।
मानवता को ढूँढ रहा है, घोर रुदन धरती पर।।
पुछा स्वर्ण सिन्दूर सृष्टि का, रगा रक्त से आँचल।
रोते-रोते आज धरा के, प्राण बन गए पागल।।"

(प्राणदान, सर्ग ३१, पृ० ५०३)

इसके पश्चात् कवि ने बापू के निधन पर भारतीय जनगण के करुण-विलाप का उल्लेख करते हुए लिखा है कि इस सूचना को जिसने सुना वही शोक-सिन्धु मे डूब गया। पशु-पक्षी इस व्यथा से व्यथित प्रतीत हो रहे थे। बालक, वृद्ध, युवा सभी रो रहे थे। ऐसी प्रतीत हो रहा था कि मानों अनजा

बाल-विधवा हो गई है। सभी दौड-दौडकर जननायक को श्रद्धांजलि समर्पित कर रहे थे—

"जिसने खबर सुनी मरने की, वही सुन्न सा खडा रह गया।
जिसने मरण सुना बापू का, शोक सिन्धु मे वही बह गया॥

× × ×

बच्चे रोये, बूढे रोये, दुनिया का हर प्राणी रोया।
ऐसा लगता था दुनियाँ मे, हर मनुष्य मरघट मे सोया॥
जनता का विलाप मत पूछो, मानो हुई बाल विधवा वह।
मानो जल सूखा सरिता का, मछली तडप रही थी रह-रह॥

× × ×

हाहाकार हुआ सारे मे, शोक सिन्धु पर घन मँडराये।
जहाँ सो रहे थे जननायक, जनजन वहाँ दौडकर आये॥"

(वही, सर्ग ३१, पृ० ५०५-५०६)

राजकीय सम्मान के साथ बापू का सस्कार किया गया। ससार भर के महान् कवियो, कलाकारो, नेताओ, राजनीतिज्ञो, राज्याध्यक्षो और सम्राटो ने बापू के निधन पर भारतीय जनता एव सरकार के नाम सवेदना-सन्देश प्रेषित किए। विशेष रेलगाडी द्वारा बापू के पार्थिव-अवशेष प्रयाग में त्रिवेणी के सगम पर लाये गये और वहा स्वस्तिवाचन के वेद मन्त्रो की अनुगूँज मे उन्हें प्रवाहित कर दिया गया। इस प्रकार उस महामानव का पार्थिव-व्यक्तित्व सागर के महाप्रवाह मे अन्तर्भूत हो गया, किन्तु बापू की तप साधना मेघ बन कर अनन्तकाल तक बसुन्धरा को अमरत्व-दान करती रहेगी, क्योकि गाधीजी जनजीवन की असख्य धाराओ को मिलाने वाले संगम स्थल थे। वे धरती के समान सहिष्णु, सागर के समान गम्भीर और गगा के समान पवित्र थे। कवि ने उचित ही कहा है कि—

"गाधी वह सगम है जिसमे, आकर मिली करोडो धारा।
गाधी वह धरती जिस पर, चलता यह पीडित जग सारा॥
गाधी वह सागर है जिसमे, रत्नो का भण्डार भरा है।
गाधी वह गगा है जिसमे, हर आँसू ने प्यार भरा है॥"

(मृदुल विरोध, सर्ग १३, पृ० १८८)

इस प्रकार 'जननायक' महाकाव्य के माध्यम से मिश्र जी ने स्वाधीनता-सगर मे राष्ट्रपिता के योगदान का काव्यात्मक समाख्यान करते हुए, उनकी चारित्रिक-विभूतियो को उद्घाटित किया है। जहाँ तक जीवन-दर्शन की व्यजना

का प्रश्न है, कवि ने बापू की चरित्र योजना के अन्तर्गत ही गांधीवादी विचार-दर्शन की प्रमुख उपपत्तियों को व्यंजित किया है। सत्य, अहिंसा, त्याग, करुणा, प्रेम, सौहार्द, सहिष्णुता, सर्वोदय प्रभृति जीवन मूल्यों की प्रस्थापना के लिए कवि ने किसी विशिष्ट सैद्धान्तिक आधार-विधि को अधिग्रहीत नहीं किया है, अपितु गांधीजी की उदात्त चरित्र-भूमिका पर उन्हें रूपायित किया है। इसीलिए 'जननायक' में जीवन-दर्शन एक स्वतन्त्र प्रत्यय के रूप में नहीं अपितु काव्य सरणियों में प्रवाहित होता हुआ व्यावहारिक रूप में चित्रित हुआ है। 'जननायक' में रचनापक्ष का यही वैशिष्ट्य है कि इसमें आख्यान तत्व, चरित्र-तत्त्व और जीवन दर्शन के ग्रंत की अद्भुत समाहृति परिलक्षित होती है, जो महाकाव्य सदृश्य वृहदाकार काव्य ग्रन्थ में सामान्यतः दुर्लभ होती है। वस्तुतः राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के चरित्र में राम, कृष्ण, बुद्ध प्रभृति युग पुरुषों की भांति इतना आयाम विस्तार है कि अनेक काव्यों का प्रणयन करके भी उसे पूर्णतः निबद्ध नहीं किया जा सकता। बापू के चरित्र पर लगभग एक दर्जन प्रबन्ध काव्यों का प्रणयन हिन्दी में हो चुका है किन्तु उनके चरित्र में अभी भी असंख्य अनुद्घाटित सम्भावनाएँ हैं जो महत्-सृजन की अपेक्षा करती हैं। 'जननायक' के प्रणेता ने उचित ही लिखा है—

"बापू के जीवन का हर डग, हमें दे गया नया कथानक।
महाकाव्य कितने ही लिख लो, इतने विस्तृत हैं जननायक॥"

(जननायक, अरुणोदय, सर्ग २९, पृ० ४४३)

अन्वेषी इतिहास शूरता का, संघर्ष-सुयश का;
किन्तु, हाय धूरता नारियों की नीरव होती है,
वह सशब्द आघात नहीं, ममता है, कष्ट सहन है।"[४४]

'उर्वशी' की सुकन्या कहती है कि नारियाँ इतिहास की धारा से छिन्न नहीं हैं। समरांगण के थके पुरुष की प्रेरणा नारी ही होती है। नयी ऊर्मि और नूतन उमंग से सजाकर प्रति प्रातःकाल नारी ही पुरुष को जीवन-रण में भेजती है और समरक्षेत्र से लौटे हुए पुरुष से सायंकाल नारी ही दिनभर का इतिहास कभी आँसू बहाकर और कभी मन्द स्मिति सहित सुनती है। अन्ततः इतिहास नारी के आदान के प्रति मौन क्यों है ? इस प्रश्न का निदान कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है :—

"नारी क्रिया नहीं वह केवल क्षमा, क्षान्ति, करुणा है।
इसीलिए इतिहास पहुँचता जभी निकट नारी के,
हो रहता वह अचल या फिर कविता बन जाता है।"[४५]

नारी को 'वासना का प्रतीक' या 'मायावनि' कहा जाता रहा है। कवि ने ऐसे मन्तव्यों को अस्वीकार किया है। उसकी मान्यता है कि :—

"नारी जब देखती पुरुष को इच्छा भरे नयन से,
नहीं जगाती केवल उद्वेलन, अनल रुधिर में,
मन में किसी कान्त को भी जन्म दिया करती है,
नर समेट रखता बाहों में स्थूल देह नारी की,
शोभा की आभा तरंग से कवि क्रीड़ा करता है।"[४६]

कवि के मतानुसार दिव्य मानवीय गुणों के निकट भी पुरुष की अपेक्षा नारी ही है :—

"और देवि ! जिन दिव्य गुणों को मानवता कहते हैं,
उसके भी अत्यधिक निकट नर नहीं, मात्र नारी है।
जितना अधिक प्रभुत्व तृषा से पीड़ित पुरुष-हृदय है,
उतने पीड़ित कभी नहीं रहते हैं प्राण त्रिया के।"[४७]

---

[४४] उर्वशी, पंचम अंक, पृ० १६३
[४५] वही, पृ० १६४
[४६] वही, तृतीय अंक, पृ० ६१
[४७] वही, पंचम अंक, पृ० १६४

इस प्रकार 'उर्वशी' महाकाव्य मे आद्यात कवि ने नारी की गौरव-गरिमा को प्रतिष्ठित करने का अभिनन्दनीय प्रयास किया है। वास्तव मे 'उर्वशी' महाकाव्य नारी की महिमा का काव्य है। उसमे परम्परित और प्रगतिशील सन्दर्भों मे एक साथ नारी का स्वरूप-विश्लेषण हुआ है। नारी जाति के भविष्य के प्रति भी कवि मगलाकाक्षी है। औशीनरी के शब्दो मे :—

"नारी का स्वर्णिम भविष्य, जानें, वह अभी कहाँ है!
हम तो चली भोग उसको जो सुख-दुख हमे बदा था,
मिले अधिक उज्ज्वल, उदार युग आगे की ललना को।"[15]

---

[15] उर्वशी, पचम अक, पृ० १६९

‘जननायक’ महाकाव्य

स्वाधीनता-संगर में राष्ट्रपिता के आदान का समाख्यान

१५

'जननायक' महाकाव्य

स्वाधीनता-संगर में राष्ट्रपिता के आदान का समाख्यान

आधुनिक युग की महान् विभूतियो मे गाधी जी का स्थान सर्वोपरि है। व्यक्तित्व की गरिमा और कृतित्व की महाघता के कारण भारतीय जन-गण ने उन्हें राष्ट्रपिता, राष्ट्रनायक, राष्ट्रनिर्माता अमरशहीद देवपुरुष, महात्मा, स्वाधीनता सेनानी, युगपुरुष सदृश्य सज्ञाओ से सबोधित किया तो अन्तर्राष्ट्रीय जगत मे वे महामानव, लोकनायक, जगदालोक, विश्व-ज्योति, विश्वबन्द्य आदि अभिधानो से अलकृत हुए। आधुनिक भारतीय जीवन और चेतना के विकास मे गाधी जी का योगदान इतना विलक्षण और अभूतपूर्व है कि वे 'अवतारी पुरुष' के समान प्रतीत होते हैं। उनकी चिन्तनधारा ने भारतीय समाज, साहित्य, सस्कृति, अथनीति, राजनीति, अचारण पद्धति और व्यवहार-दर्शन को इतना अधिक प्रेरित और प्रभावित किया है कि इन सभी क्षेत्रो मे एक आपातिक परिवर्तन परिलक्षित होता है, जो मध्ययुगीन चिन्तन क्रम से स्पष्टत पार्थक्य का द्योतनकर्ता है। सहस्राब्दियो से पराधीन भारत को सत्याग्रह का शस्त्र सौप कर शान्तिमन्त बनाने और सत्य अहिंसा के पाथेय पर अग्रसर करते हुए स्वाधीनता सगर मे जूझने का नैतिक बल और राष्ट्रीयता रूपी भाव-शक्ति आदोलित करने म गाधी जी का योग दान अद्वितीय है। भारत के स्वाधीनता सघर्ष मे योग-दान करने वाला की सूची बडी लम्बी है और उनके बलिदान के प्रतिमान भी अप्रतिम है, कि तु गाधी जी का एतद विषयक अनुदान तो अपरिमित विस्तार और अनन्त व्याप्ति ग्रहण किए हुए है। स्वाधीनता सगर मे अमर सेनानी की भाँति वे स्वय जूझे, करोडो देशवासियो को

मर-मिटने के लिए उत्साहित किया और सबसे बड़ी बात इस राष्ट्र के जर्जरित, रूढिग्रस्त और पतनशील जन-जीवन को स्वाधीनता, समानता और सहअस्तित्व का ऐसा शाश्वत संदेश दिया, जिसने राष्ट्र-निर्माण की महत् भूमिका प्रस्तुत की। इसके अतिरिक्त गाधी जी ने सत्य, अहिंसा, करुणा, प्रेम, सहिष्णुता, सौहार्द, सदाचार जैसे चिरन्तन जीवन-मूल्यो का सामाजिक परिवेश और समकालीन परिस्थितियो के अनुरूप पुनराख्यान भी किया, साथ ही जातिवाद, छुआछूत, साम्प्रदायिकता, प्रान्तीयता, भाषा-विवाद, दहेज, अनमेल-विवाह, जमीदारी, जागीरदारी, शोषण जैसी कुप्रथाओ और कुसस्कारो का विरोध किया। गाधी जी के चिन्तन के परिणामो और उदात्त जीवनादर्शों की प्रतिक्रियाओ को स्वाधीन भारत-राष्ट्र के परिनिर्माण की योजनाओ, सामाजिक-पुनरुत्थान के कार्यक्रमो और राजनीतिक व्यवहार-पद्धतियो मे स्पष्टत देखा जा सकता है। इसीलिए वे राष्ट्रपिता कहे जाते है। उनकी दूरदर्शी नीतियो ने अफ्रीका और एशिया के भी असख्य देशो मे अन्याय और शोषण से सघर्षरत होने वाली जन-जागृति को तीव्रतर किया, इसीलिए वे 'विश्व-ज्योति' या 'जगदालोक' कहे गये।

ऐसे महान् नरपुगव का साहित्य-मनीषियो द्वारा सारस्वत-वन्दन और काव्याभिनन्दन सहज स्वाभाविक है। डॉ० हजारी प्रसादद्विवेदी के शब्दो मे—"महात्मा गाधी आधुनिक युग के श्रेष्ठ जननायक थे। उनके प्रत्येक आचरण मे सच्ची प्रेरणा और स्फूर्ति का स्वर भरा हुआ था। ••• उनका जीवन कवियो को काव्य स्फूर्ति देने का बहुत बडा प्रेरणादायक मन्त्र है।"[1] श्री बनारसी दास चतुर्वेदी के अनुसार—'महात्माजी जैसे महापुरुष शत शताब्दियो के बाद इस भूमि पर अवतरित होते है और यह सर्वथा स्वाभाविक है कि अनेक लेखक और कवि उनका गुणगान करके अपनी कलम को पवित्र करें।"[2] इसीलिए गाधीजी के जीवन काल से ही भारतीय रचनाकारो द्वारा विभिन्न भाषाओ की काव्य-सरचना मे उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का महत्वाकन प्रारम्भ हो गया था। विशेष रूप से 'भारती' के रचनाकारो ने गाधीजी के प्रशस्य-चरित्र को आधार बनाकर काव्य के अतिरिक्त अन्य गद्य-विधाओ मे भी प्रकीर्ण रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। काव्य के क्षेत्र मे सोहनलाल द्विवेदी का 'जय गाधी' खण्ड-काव्य उल्लेखनीय है। सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानन्दन पन्त, राम-

---

1 जननायक—बधाई, पृ० १६

2 वही—विचार और विवेचन, पृ० १०

धारीसिंह दिनकर, हरिवंशराय बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, निराला, सियारामशरण गुप्त प्रभृति समर्थ कवियो ने समय समय पर गाधीजी को काव्याजलियाँ समर्पित की। किन्तु गाधीजी का गौरवान्वित चरित्र महाकाव्य निबद्ध होकर ही पूर्णतः अभिव्यक्त हो सकता था और यह हर्ष का विषय है कि गाधी चरित पर अद्यावधि अनेक बृहत् प्रबन्धकाव्य प्रकाशित हो चुके हैं। इनमे स उल्लेखनीय हैं—

महामानव (ठाकुरप्रसादसिंह), जगदालोक (गोपालशरणसिंह), गाधीचरित मानस (विद्याधर महाजन), देवपुरुष-गाधी (रमेशचन्द्र शास्त्री), गाधी-पारायण (अबिकादत्त दिव्य), विश्वज्योति बापू (दिनश), जननायक (रघुवीर शरण मित्र) और लोकायतन (सुमित्रानन्दन पन्त)।

उल्लिखित प्रबन्धकाव्यो मे मुख्यत गाधी जी की जीवनी और कृतित्व को आधार बनाकर काव्य-सरचना की गई है। इन काव्यकृतियो मे गाधीजी के जीवन की सभी प्रमुख घटनाओ का समायोजन है। विशेष रूप से श्री सुमित्रानन्दन पन्त कृत 'लोकायतन' महाकाव्य यद्यपि 'सक्रान्ति काल की युग गाथा' है और उसमे 'विकासकामी मानवता के जीवन सत्य की झाँकी' प्रस्तुत की गयी है और कवि ने स्वय इसे 'ग्रामधरा के अचल मे, जनभावना के छन्द मे बँधी, युग जीवन की भागवत-कथा' कहा है तथापि इसमे गाधीजी के चरित्र की प्रमुखता है। वैसे गाधीजी के क्रमिक चरित्र-विकास का इस प्रबन्ध काव्य मे भी अभाव ही है।

गाधी चरित्र मूलक प्रबन्धकाव्यो के रचनाक्रम मे श्री रघुवीरशरण मित्र प्रणीत 'जननायक' महाकाव्य का विशिष्ट स्थान है। इस काव्य मे गाधीजी की सम्पूर्ण जीवनी को आद्योपात कलात्मक पद्धति से चित्रित किया गया है। इतिवृत्तात्मक आधार के लिए मित्र जी ने मूलत गाधीकृत "सत्य के प्रयोग" (आत्मकथा) को अधिगृहीत किया है। स्वाधीनता-आन्दोलन के घटनात्मक तथ्यो की सरक्षा करते हुए कवि ने कल्पना-शक्ति का समुचित प्रयोग किया है। वस्तुत गाधीजी के चरित्र को महाकाव्योचित गरिमा के अनुरूप विराट रचना-फलक पर 'जननायक' महाकाव्य के माध्यम से प्रथम बार ही प्रस्तुत किया है। इस काव्य के विराट कलेवर और व्यापक रचनात्मक आधार के सम्बन्ध मे डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि—"यह भारतवर्ष की जनता के सबसे महान् नेता का केवल जीवन-काव्य ही नही बल्कि पिछले पचास साठ वर्षों का जीवन्त-इतिहास भी है। · · · यह सरस और प्रेरणादायक इतिहास है। इन पक्तियो मे भारतवर्ष के अतीत, वर्तमान और भविष्य

बोल रहे हैं।[1] अस्तु, स्पष्ट है कि मित्रजी कृत 'जननायक' एक महत् काव्य-संकल्प है और एक युगान्तर-कारी लोकनायक के संघर्षपूर्ण जीवन तथा एक महान् राष्ट्र के मुक्ति-आन्दोलन का जीवत इतिहास होने के कारण सच्चे अर्थों मे महाकाव्य है।

'जननायक' की सृजन-प्रेरणा किंवा रचनाधर्मी सोद्देश्यता भी चिन्तनीय है। इस सन्दर्भ मे कवि का यह मत उद्धरणीय है कि—"धरती चाहे अवतारो का अहसान न माने पर महात्मा गांधी के पुण्यो से उऋण नही हो सकती। यदि बापू न आते तो धरती कभी की मर चुकी होती। ··· गाधीजी का जन्म उस नयी विचार धारा का जन्म है जिससे शान्ति और सुन्दर व्यवस्था सुरक्षित है। ··· बापू के जन्म से तलवार को फूल का जन्म मिला, आग पानी बनकर प्रकट हुई, मृत्यु मे जिन्दगी मुस्कराई। इतिहास उनके चरणो मे बदला है, पीडा को उनके प्राणो से शान्ति मिली है, मृतको को उनकी वाणी ने जीवन दिया है, और दासता को उस मुक्त की महिमा से मुक्ति मिली है। गाधीजी देश को स्वाधीन कराने वाले एक क्रान्तिकारी महापुरुष ही नही थे, अपितु उन्होने हर कुरूपता पर अपना सौन्दर्य उँडेला है। उन्होने असुन्दर को सुन्दर किया है। न जाने कितने पाप उनके पुण्यो से दीपक राग बन गये। उनमे अद्भुत चमत्कार था। उनकी वाणी के स्पर्श से मृतक भी बोल उठे। जिसको उस महापुरुष की सहायता मिल गयी, वह हार से जीत बन गया। बापू ने मिट्टी के खिलौनो को जीवन दिया है। उन्होने राख मे से इन्सान बनाये हैं। ऐसे ज्योतिवन्त को श्रद्धांजलि के रूप मे मैं ने 'जननायक' काव्य रचा है।"[2] इसी क्रम मे श्री मित्र जी ने बापू के आविर्भाव को राम, कृष्ण और भगवान बुद्ध की आत्मशक्ति से अनुप्रेरित तथा भारतीय सस्कृति के प्राणभूत तत्त्वो से अनुस्यूत मानते हुए 'जननायक' काव्य के प्रणयन की प्रेरणा को बापू के बलिदान की वेला से सम्बद्ध बताया है। उनका कथन है कि—"मैं गाधीजी के अमर तत्त्वों का पुजारी हूँ। बापू के चरण-चिन्हो मे चाँद और सूरज की अन्तर्मुखी ज्योति है। उनकी ध्वनि मे शाश्वत सत्य है। पुरातन उनके प्रकाश से दमक उठा और नूतन उनकी कला से मुखर है। वे समन्वय की सुन्दर इकाई हैं। राम, कृष्ण और बुद्ध उनके हृदय मे आ बसे थे। उनमे उन ऐतिहासिक देवताओं का अमृत हिलोरें लेता रहा जो भारतीय सस्कृति के प्राण-स्रोत हैं।

[1] जननायक—बधाई, पृ० १६-२०

[2] वही, (पचम सस्करण), कवि की प्रस्तावना, पृ० २१

ह सध्या मेरी आँखों में है, जब गांधी जी शहीद हुए थे। उस समय शून्य भी रहा था। सारी धरती मातम मना रही थी, किन्तु मैं रोया नहीं, पीड़ा तम में भर ली। मैं ने तभी से गांधी जी पर महाकाव्य लिखने के विचार को क्यात्मक रूप दिया। उस दिन से जब तक काव्य पूरा नहीं हुआ मैं लिखने लगा ही रहा।'[१] काव्य के 'समर्पण' पृष्ठ की एक मात्र पंक्ति में भी कवि यही मनोभाव अंकित किया है—

"अमृत के दानी को अर्घ्य"

'मंगल ज्योति' शीर्षक 'प्रथम सर्ग' की भावाभिव्यक्ति में भी कवि का अभीष्ट अभिव्यंजित हुआ है—

"जिनकी चरण-धूलि चंदन है, दीपक ! उनके चरणों में जल।
जिनकी पूजा में प्रसाद है, वाणी ! उनके मन्दिर में चल॥
जहाँ अनेक एक में मिलते, काव्यकला ! उस सङ्गम पर गा।
आँखें अर्घ्य चढ़ाने आई, भक्ति ! रसामृत-गङ्गा भर ला॥
× × ×
पूजा उसकी जो विष पी ले, नर से नारायण बन जाये।
हलचल में सन्तरण वही, जो तरणि बिना तट तक ले आये॥"

(प्रथम सर्ग, पृ० २१)

'जननायक' महाकाव्य की रचनाधर्मी सोद्देश्यता और सृजन प्रेरणा के चन के पश्चात् आलोच्य काव्य के इतिवृत्त-विधान, चरित्र योजना एवं भाव पर विमर्श अभीप्सित है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, 'जननायक' के इतिवृत्तात्मक संयोजन लिए कवि ने बापू कृत 'आत्मकथा' (सत्य के प्रयोग) को आधार बनाया है। काव्य के कथा चयन में इतिवृत्तात्मक शैली को ही अधिकांशतः ग्रहण गया है। गांधी जी की जीवन-कथा का विषय समकालीन होने के कारण कल्पनिक कथाप्रसंगों की संयोजना का अवसर कवि को बहुत कम मिला है। भी काव्य के कुछ स्थल कथा विधान की दृष्टि से मर्मस्पर्शी बन पड़े हैं। इन प्रसंगों के समायोजन में मौलिकता का परिचय भी मिलता है। हरणार्थ-बापू और बा के दाम्पत्य-जीवन के कतिपय प्रसंग, अफ्रीका प्रवास टु अनुभव, बा का देहावसान, भारत के विभाजन की भूमिका तथा बापू लिदान से सम्बन्धित परिदृश्य विशेषतः द्रष्टव्य हैं। इनके अतिरिक्त

ननायक—वही, पृ० २२

'जननायक' के घटनात्मक विनियोजन मे पूर्वापर प्रसंगान्विति आद्यात विद्यमान है। कथानक में ऐतिहासिक तथ्य कहीं भी खंडित नही हुए हैं, किन्तु इतिहास और कल्पना का अपेक्षित समवाय सर्वत्र दृष्टिगत होता है। इस सम्बन्ध मे उल्लेखनीय है कि गाधी जी ने अपनी 'आत्मकथा' को मात्र तथ्यपरक जीवन-वृत्तान्त के रूप मे नही लिखा है वरन् स्वकीय जीवन मे किए गये सत्य के प्रयोगो और उनके निष्कर्षों के रूप मे प्रस्तुत किया है और इस प्रस्तुति के मूल मे जनहित की कामना मुख्यत विद्यमान रही है। स्वय गाधीजी के शब्दो मे—"मुझे आत्मकथा कहाँ लिखनी है ? मुझे तो आत्मकथा के बहाने सत्य के जो अनेक प्रयोग मैंने किए है, उनकी कथा लिखनी है। यह सच है कि उनमे मेरा जीवन ओतप्रोत होने के कारण कथा एक जीवन वृत्तान्त जैसी बन जायेगी। लेकिन अगर उसके हर पन्ने पर प्रयोग ही प्रकट हो, तो मैं स्वय उस कथा को निर्दोष मानूँगा। मैं मानता हूँ कि मेरे सब प्रयोगो का लेखा जनता के सामने रहे, तो वह लाभदायक सिद्ध होगा, अथवा यो समझिये यह मेरा मोह है।"[१] और यह सतोष का विषय है कि 'जननायक' के रचयिता ने गाधी जी के उद्धृत मन्तव्य को लक्ष्यीभूत करते हुए आलोच्य काव्य का घटनात्मक चयन किया गया है। इसीलिए कथानक मे शुष्क ऐतिहासिकता ही नही अपितु भावप्रवणता और रोचकता भी है। सम्पूर्ण काव्य इकतीस सर्गो मे वर्गीकृत है और प्रत्येक सर्ग का क्रमाक के साथ-साथ नामकरण भी किया गया है। यथा—मगल ज्योति, क्रीडा, पथ का प्रसाद, मुस्काते आँसू, अमृतध्वनि, दीपाजलि, असहयोग, अन्तर्द्वन्द्व, आहुति, अरुणोदय, प्राणदान आदि।

'जननायक' मूलत चरित्रप्रधान प्रबन्धकाव्य है। अस्तु, कवि का कौशल चरित्र-विन्यास के परिप्रेक्ष्य मे मुख्यत विवेचनीय है। आलोच्य महाकाव्य के काव्यनायक के रूप मे गाधीजी का चरित्र सर्वप्रमुख है। किन्तु गाधीजी के चरित्र केन्द्र के परिधि-विस्तार के अन्तर्गत आने वाले सैकडो पात्रो का भी कवि ने यथाप्रसग समुचित मूल्याकन किया है। इस सम्बन्ध मे श्री बनारसी दास चतुर्वेदी का यह कथन उद्धरणीय है कि—"एक बात से हमे आश्चर्य भी हुआ और हर्ष भी, वह यह कि अहिंसा के पैगम्बर महात्माजी की पवित्र चरित्र गाथा लिखते समय भी मिश्र जी सशस्त्र क्रान्ति के पुजारियो को नहीं भूले और उनके प्रति मिश्रजी ने न्याय ही किया है।"[२] और यह सत्य है कि

---

[१] आत्मकथा—प्रस्तावना, पृ० ६ (नवजीवन ट्रस्ट का १९५७ का सस्करण)
[२] जननायक—विचार और विवेचन, पृ० १३

नायक' के रचनाकार ने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-सग्राम के असख्य सेनानियो र शहीदो को श्रद्धा-सुमनांजलि आलोच्य काव्य के माध्यम से समर्पित की काव्यारम्भ के प्रथम छन्द मे ही वह अपनी वाणी का साफल्य तथा काव्य-ा का सार्थक्य उन नरपुगवो की अभिवन्दना मे मानता है जो जग के ा-गरल का पान कर नर से नारायण बने हैं। गाधी जी धरती से आँसुओ र दीन-हीनो के वेदना-गरल का पान कर नर से नारायण बने थे। इसीलिए ने गाधीजी के प्रादुर्भाव को युग-युग का वरदान कहा है—

" 'करमचन्द' 'पुतलीबाई' के, मन-मोहन ने जन्म ले लिया।
ईश्वर ने सारी दुनिया को, युग-युग का वरदान दे दिया॥
खेले तीनो लोक गोद मे, दिया उजाला अन्धकार ने।
सवत् उन्नीस सौ पचीस मे, रूप धरा उस निराकार ने॥"

(प्रथम सर्ग, पृ० २८)

प्रथम सर्ग मे ही कवि ने गाधीजी के जन्म, बाल्यावस्था, शिक्षा-दीक्षा र विवाह का वर्णन किया है। बालक गाधी के जीवनादर्श एव आचरण-पद्धति नी उदात्त थी कि कवि ने उसकी तुलना प्रह्लाद और हरिश्चन्द्र से की है—

"मानो देश भक्ति ने उस दिन, पहिन लिया बालक का चोला।
मानो फिर 'प्रह्लाद' जन्म ले, बालक के चोले मे बोला॥
मानो 'हरिश्चन्द्र' का सच फिर, प्रभु को देने लगा परीक्षा॥
सात वर्ष का मोहन बालक, गुरु से लेने पहुँचा दीक्षा॥"

(मगल-ज्योति, प्रथम सर्ग, पृ० ३०)

गाधी जी की किशोरावस्था का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि वे वाणी के रसिक थे। कुरीतियो एव कुसस्कारो से वे आरम्भ से ही जूझने थे। हरे भरे खेतो, मेघ मालाओ, सागर तट की लहरो, चन्द्र ज्योत्स्ना दि प्राकृतिक उपादानो के प्रति उनके मन मे अपार आकर्षण था। नर्तित र, पश्चिम का पीत-प्रकाश तथा इसी प्रकार के अन्य प्रकृति-दृश्य उनके मन स्वतन्त्रता के महत् सकल्पो की उद्भावना करते थे। मित्र जी के शब्दो मे—

"कभी प्रकृति के दृश्य देखते, कभी नाचता मोर देखते।
पश्चिम के पीले प्रकाश मे, स्वतन्त्रता का भोर देखते॥
सकल्पो के बीच तैरते, करते थे कल्पना करोडो।
कभी कही से यह ध्वनि सुनते, तोडो, माँ के बन्धन तोडो॥"

(क्रीडा, सर्ग २, पृ० ३९)

मोहनदास के मन मे 'राम' नाम के प्रति अडिग आस्था रम्भाबाई नामक

सेविया के संसर्ग तथा रामायण भागवत आदि सद्ग्रन्थो के सतत पारायण से उत्पन्न हुई। इसी आस्था का सम्बल लेकर बापू ने कुवृत्तियो पर विजय पाई और जीवन-सघर्ष मे सफलता का वरण किया। समकालीन समाज कितना रूढिग्रस्त और अन्धविश्वासी था, इसका निरूपण कवि ने तृतीय सर्ग मे गाधीजी की 'विलायत-यात्रा' के परिसन्दर्भ से किया है। जब उनके भाई बैरिस्टर बनाने के लिए बापू को विलायत भेजने के निर्णय पर अटल रहे तो पचो ने निर्णय कर उन्हे जाति से निष्कासित कर दिया—

"नही 'मोढ बनियो' मे अब तक, गया विलायत पढने कोई।
मोहन का दुस्साहस है यह, उसने लाज जाति की खोई॥
यह जा सकता नही विलायत, पचो ने यह बात सुनाई।
'मोढ जाति' के इस निर्णय पर, बढ मोहन ने लात लगाई॥
इस पर उन निर्मम पचो ने, उनका बहिष्कार कर डाला।
हुक्का पानी बन्द कर दिया, 'मोढ जाति' से उन्हे निकाला॥"

(विलायत-यात्रा, सर्ग ३, पृ० ५०)

विदेश प्रवास मे मोहनदास के आत्मबल की कडी परीक्षा हुई। उन्होने माँ की शिक्षा को ध्यान मे रखकर भूखा रहना स्वीकार किया किन्तु मांस-मदिरा का सेवन नही किया। विलायत के जीवन की रगीनियो से मोहन अप्रभावित रहे। उन्हे विलायत का विलासितापूर्ण जीवन देखकर अपने देश की दारुण और विपन्न परिस्थितियो मे जीवन यापन करते हुए करोडो देशवासियो का स्मरण हो आता था—

"मिले विलायत के मित्रो म, 'सत्रो मे भी हुए उपस्थित।
लेकिन उन सारे 'सत्रो' म, मेरे मोहन रहे व्यवस्थित॥
इन भोजो मे गये किन्तु वे, पास नही फटके शराब के।
भोजो मे फल-फूल चखे, पर किए नही दर्शन कबाब के॥
× × ×
दुख और सुख के झूले मे, मोहन अपना देश न भूले।
वे फूलो की तरह खिले है, जो नर शूलो पर भी झूले॥"

(पथ का प्रसाद, सर्ग ४, पृ० ६३)

स्वदेश प्रेम किंबा भारतीयता की भावना गाधी जी के मन-मस्तिष्क पर छाई हुई थी। वे अपने प्रत्येक आचरण और कृत्य का मूल्याकन 'स्वदेशी' के परिप्रेक्ष्य म करते थे। इसीलिए उन्होने जब बैरिस्ट्री किसी तरह पास कर ली तो प्रश्न जन्मा कि यह ज्ञान तो मिला है, इसमे अपने देश-धर्म का तो ज्ञान

है ही नही, अस्तु, इस ज्ञान का व्यावहारिक लाभ क्या होगा ? यह प्रश्न नितान्त चिन्तनीय था—

"जो कुछ वहाँ पढा था वह तो, भारतीय अध्याय नही था।
अपने देश धर्म का उसमे, ज्ञान नही था, न्याय नही था ॥

× × ×

भारत की पवित्र सस्कृति का, पश्चिम मे सम्मान नही था।
हिन्दू शास्त्र तथा इस्लामी, कानूनों का ज्ञान नही था ॥

× × ×

बैरिस्टर तो हुए किन्तु मन-मेरे मोहन का अशान्त था।
बैरिस्टरी किस तरह होगी, इस दुविधा से हृदय भ्रान्त था ॥"

(पथ का प्रसाद, सर्ग ४, पृ० ६४)

यही कारण था कि भारत लौटकर उन्होने बम्बई मे बैरिस्टरी प्रारम्भ की किन्तु असफल रहे। अन्तत वे बैरिस्टरी करने अफ्रीका गए। वहाँ डरबन न्यायालय मे जब पगडी पहने मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित हुए, तो उन्हें पगडी उतारने को विवश किया गया, क्योंकि गोरे काले भारतीयो को गुलाम मान कर उन्हें अपमानित करते थे। इस व्यवहार की गाधी जी पर तीव्र प्रतिक्रिया हुई। उन्होंने कहा—

"भारत माँ के स्वाभिमान से, तडप उठा गाधी का अन्तर।
मेरी पगडी नही यहाँ पर, भारत की पगडी है सिर पर ॥
चाहे मर जाऊँगा लेकिन, पगडी नही उतरवाऊँगा।
अगर उतार धरी पगडी तो, माँ को क्या मुँह दिखलाऊँगा ॥

(अफ्रीकागमन, सर्ग ६, पृ० ८७)

इस घटना का वहाँ के समाचार पत्रो मे खूब प्रचार हुआ। उनका विरोध भी हुआ और समर्थन भी, किन्तु गाधी जी दक्षिणी अफ्रीका मे विख्यात हो गए। कवि के शब्दो मे—

" वे 'दक्षिण-अफ्रीका' देश मे, सूरज से प्रख्यात हो गए।
काली रजनी के आगन मे, गाधी स्वर्ण प्रभात हो गए ॥"

(सर्ग ६, पृ० ८७)

अब अफ्रीका मे गाधी जी के परिचय का क्षेत्र बढा। बेकर, हैरिसवेग, कोट्स, तैयब हाजी खान मुहम्मद आदि से सम्पर्क स्थापित कर गाधी जी ने

रग भेद नीति के विरोध मे देश-व्यापी आन्दोलन का समारम्भ किया। उन्होने प्रवासी भारतीयों की सभा मे उनकी दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए कहा कि भारतवासी फुटपाथ पर नही चल सकते, रेलो से उनके बिस्तर फेंक दिए जाते हैं, मतदान का अधिकार नही, आखिर क्यो ? तुम कुली और वेटर बने हुए जीवन-यापन कर रहे हो। उन्होने निर्भीक स्वर मे उद्बोधन करते हुए कहा—

"यह हिन्दू, वह मुसलमान क्या ! कौन पारसी ! क्या ईसाई।
मानव-मानव सभी एक हैं सब आपस मे भाई भाई ॥
देख रहे हो यहाँ तुम्हारा, कौडी भर सम्मान नही है।
गोरे तुम्हे कुली कहते हैं, यह थोडा अपमान नही है ॥
भारत माँ के स्वाभिमान को, तुम गोरो से रुँदवाते हो ॥
अपनी दुर्बलता के कारण, अपने पैर उखडवाते हो।
तुम क्या जानो इन गोरो ने, बाँध दिए हैं पैर तुम्हारे ॥
गोरो की छाती के नीचे-दवे हुए अधिकार हमारे।
× × ×
मत देने का या चलने का, कोई भी अधिकार नही है।
गोरो का अधिकार यहाँ, कालो का सत्कार नहीं है ॥"

(अमृतध्वनि, सर्ग ७, पृ० ९८)

इसी बीच श्री बेकर से गाधी जी की प्रगाढ मित्रता स्थापित हो गई। उनके साथ वे गिरजाघर भी गए। वहाँ बडे-बडे ईसाइयो ने उन्हे ईसाइयत स्वीकराने का आग्रह किया। गाधी जी की सभी धर्मो और धर्मगुरुओ के प्रति अपार श्रद्धा थी किन्तु पारिवारिक सस्कारशीलता ने उन्हें अपने धर्म के प्रति अडिग आस्था और अनन्य निष्ठा प्रदान की थी, अत गाधी जी ने स्पष्ट शब्दो में कहा कि मेरा धर्म वही है जो जननी ने सिखलाया है—

"ईसा, मे श्रद्धा मेरी, 'ईसा' ईश्वर नही मानता।
अद्वितीय दैविक शिक्षक थे, मानवता की ज्योति जानता ॥
× × ×
लेकिन मैं ने तो मथ मथकर, हिन्दू धर्म पूर्ण पाया है।
मेरा सच्चा धर्म वही है, जो जननी ने सिखलाया है ॥'

(अमृत-ध्वनि, सर्ग ७, पृ० १०१)

इसी बीच 'फ्रेञ्चाइज-बिल' सामने आया जिसके द्वारा भारतीयो को मताधिकार के प्रयोग से वचित किया गया था। गाधी जी ने इस बिल के

विरोध मे जनमत तैयार किया। जब विरोध-पत्रो, विरोध सभाओ और नारो से कुछ होता न दिखाई दिया तो उन्होने बिल के विरोध मे पूर्ण आन्दोलन करने का निश्चय किया। कवि के शब्दो मे—

"तब उस कर्मवीर गाधी ने पूरे आन्दोलन की ठानी।
पीडा से बिजली सी तडपी, उनकी जागी हुई जवानी ॥
बादल बन कर गिरा आग पर, गाधी की वाणी का पानी।
शब्द-शब्द मे नया ग्रथ है-शब्द-शब्द मे अमर कहानी ॥"

(अमृतध्वनि, सर्ग ७, पृ० १०५)

इस आन्दोलन के लिए 'भारतीय नेटाल काग्रेस' नामक सार्वजनिक सस्था की वहाँ स्थापना की गई। दादा अब्दुल्ला की ही बैठक को इस सभा का कार्यालय बनाया गया। गाधी जी स्वय एक पौंड प्रतिमास चन्दा देते थे। इस सभा की सदस्यता तेजी से बढने लगी—

"ऐसे बढ़े सदस्य सभा के, जैसे बढी कीर्ति गाधी की।
ऐसे उठी भावना उनकी, जैसे परछाईं आधी की ॥"

(वही, सर्ग ७, पृ० १०६)

'फ्रेन्चाइज बिल' विरोधी आन्दोलन तीव्रतर होता गया, इसी के साथ-साथ गाधी जी का यश भी अफ्रीका भर मे फैलने लगा। गोरी सरकार की भेद-भावपूर्ण नीतियो का विरोध नृशस शासन का विरोध था। इसे पददलित, पीडित और शोषित जनता का अपूर्व समर्थन प्राप्त था। इसीलिए सम्पूर्ण अफ्रीकी जनमानस मे वर्ण-भेद का प्रबल प्रतिरोध करने वाली नई चेतना आविर्भूत हुई, ऐसी चेतना जो अहिंसा और आत्मशक्ति पर आधृत थी—

"जन-जन मे चेतना जगाई, जीवन मे ज्वाला दहका दी।
बिजली सी दौडी रग-रग मे, गाधी जी ने क्रान्ति मचा दी ॥
बाह्य जगत के साथ हृदय मे, महाशक्ति ने शक्ति जगा दी।
जिस जीवन मे जान नही थी, उस जीवन मे भ्रान्ति जगा दी ॥
मानव की मानसिक गुलामी, गाधी के मानस ने धोई।
दुनिया की पीडा आ-आकर, गाधी की आँखो में रोई ॥

× × ×

अफ्रीका में छिडी लडाई, गाधी जी ने शख बजाया।
सत्य, अहिंसा, आत्मशक्ति से, शाति पूर्ण सग्राम रचाया ॥"

(वही, सर्ग ७, पृ० १०६)

अफ्रीका से लौटकर भारत मे गाधी जी ने 'हरी-पुस्तिका' का प्रकाशन किया जिसमे अँग्रेज़ी शासको की नृशसताओ तथा अफ्रीकी जन जीवन मे व्याप्त असन्तोष का वर्णन था। इस पुस्तिका के वातायन से विश्व को, विशेष रूप से भारतवासियो को, अँग्रेजो के काले कारनामो की झलक दिखाई दी। कवि के अनुसार—

"अफ्रीका का दर्द पिघलकर आँखो मे बादल बन छाया।
नगर-नगर मे घूम-घूम कर, गाधी ने यह दर्द दिखाया॥"

(दीपाजलि, सर्ग ८, पृ० ११७)

गाधी जी को पुनः डरबन से तार मिला कि पार्लियामेन्ट की बैठक होने वाली है, तुरन्त आओ। गाधी जी, कस्तूरबा और दोनो बच्चो सहित 'कुरलैंड यान' से डरबन रवाना हो गए। डरबन पहुँचने पर गोरो ने गाधी जी को घेर कर पत्थर बरसाये और अपमानित किया—

"पगडी फेंकी, कपडे फाडे, गले सडे अंडो से मारा।
कंकड मारे, पत्थर मारे, डाला भर नाली का गारा॥
थप्पड, लात और घूँसो से, गाधी जी की कमर तोड दी।
गोरो ने अपने घूँसो से, अपनी ही तकदीर फोड ली॥
हड्डी, चर्बी, माँस फेंक कर, गाधी को बेहोश कर दिया।
इतने ही मे और किसी ने, उनके सिर पर बूट धर दिया॥"

(अगारो की राह, सर्ग ६, पृ० १२५)

इतनी दुर्दशा के पश्चात् भी गाधी जी अपने उद्देश्य की सिद्धि के पथ पर अग्रसर होते रहे। उन्होने हिंसा का प्रतिकार अहिंसात्मक सदाचरण एव सेवा-भाव से किया। वे वहाँ कोढियो की सेवा-सुश्रुषा मे लग गये। जन मे जनार्दन के द्रष्टा बापू ने विपन्नता से अपना पारिवारिक जीवन-यापन करते हुए जन-सेवा का व्यापक अभियान चलाया। उनके सेवाभाव पर मुग्ध होकर 'जननायक' के प्रणेता ने लिखा है कि—

"महापुरुष गाधी की जय है, जिसने मन मथ ब्रह्म निकाला।
उस मानव के ब्रह्म तेज ने, सारे जग मे किया उजाला॥"

(वही, सर्ग ६, पृ० १३१)

मातृ-भूमि की आह्वान पर गाधी जी अफ्रीका से भारत लौट आये और गोखले जी के नेतृत्व मे उन्हे स्वाधीनता-आदोलन और जन-सेवा के अभियान

'मानवेन्द्र' महाकाव्य

लोकनायक नेहरू की भाव-संदीप्त कीर्तिकथा

१६

'मानवेन्द्र' महाकाव्य

लोकनायक नेहरू की भाव-संदीप्त कीर्तिकथा

आधुनिक भारत के निर्माताओं मे नेहरू जी की भूमिका सर्वाधिक महत्व-पूर्ण है। उन्होंने पराधीन भारत के मुक्ति-आदोलन और स्वाधीन-भारत के पुनर्निर्माण दोनों मे अद्वितीय योगदान किया है। स्वाधीनता-सगर के सेना-नियो में उत्सर्ग के कीर्तिमान स्थापित करने वालो मे नेहरू जी का स्थान महात्मा गाधी के तुरन्त पश्चात् और स्वतन्त्र-भारत के जननेताओ में सर्वो-परि है। नेहरू जी स्वदेशी-जीवन और अन्तर्राष्ट्रीय जगत मे समान रूप से सुविख्यात हुए। नेहरू जी की प्रसिद्धि का मूल कारण उनका बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय जीवन मे असाधारण कृतित्व है। कर्मठ कार्यकर्ता, क्रान्तिकारी, राजनीतिज्ञ, समाज-सुधारक, प्रशासक, विचारक, लेखक, इतिहासकार आदि के रूप मे उनके व्यक्तित्व के अनेक पक्ष हमारे सम्मुख हैं। नेहरू जी के व्यक्तित्व का विलक्षण बिन्दु बौद्धिकता और भावुकता, वैज्ञानिकता और संस्कारशीलता, शान्तिप्रियता और क्रान्तिमन्तता तथा परम्परा और आधुनिकता का अद्भुत सामजस्य है। श्री मोरार जी देसाई के शब्दो मे—"अपने दृष्टिकोण मे एकदम आधुनिक और धर्म की परम्परागत रूढिवादिता से सर्वथा पराङ्मुख यह व्यक्ति देश की पुरातनवादी और रूढि-वादी जनता मे भी उतना ही लोकप्रिय रहा जितना कि विदेशो के बुद्धि-जीवियो मे। ... ... उनके देश-प्रेम मे अत्यन्त बौद्धिकता तो थी ही लेकिन इससे अधिक भावुकता थी। यही कारण है कि उन्होंने वसीयत मे अपनी भस्मो को भी देश की मिट्टी में बिखेरने और प्रयाग के सगम मे प्रवाहित करने को

लिखा।'[१] इसी वैलक्षण्य के कारण वे लोकनायक के दुर्लभ अभिधान से अलकृत हुए। हमारी इतिहास परम्परा मे गौतम बुद्ध और गोस्वामी तुलसीदास को लोकनायत्व प्रदान किया गया है, किन्तु कार्य-क्षेत्र की व्यापकता, लोकधर्मी आस्थाओ के सरक्षण, लोक व्यवहार पद्धतियो के संस्कार, लोक विश्वासो के परिशोधन, लोक चिन्तन के अनुदार आदर्शों के परिष्कार तथा लोक जीवन के बहुमुखी विकास की दृष्टि से नेहरू जी का अनुदान कही अधिक महत्वपूर्ण है। स्वाधीन भारत के विकासकामी जनजीवन को रूढिवादिता, अन्ध विश्वास, सम्प्रदायिक सकीणता, जर्जरित परम्परानुमोदन, सामाजिक विषमता और प्रतिगामी प्रतिक्रियावादिता के दुर्निवार अन्तर्बाह्य सघर्ष से निकाल कर सर्वोन्मुखी प्रगतिशीलता का पाथेय प्रदान करने मे पडित जवाहरलाल नेहरू की अविस्मरणीय भूमिका है।

विश्व के पराधीन राष्ट्रो के मुक्ति आदोलनो मे भी नेहरू जी का उल्लेखनीय अशदान रहा है। श्री आरिगपूडि के शब्दो मे — 'सत्रह वर्षों के स्वतन्त्र अस्तित्व मे यदि भारत कितने ही और देशो की स्वतन्त्रता प्राप्ति का साधन बना तो सचमुच इसका श्रेय श्री नेहरू को है—उनके देशभक्तिपूर्ण अन्तरराष्ट्रीय दृष्टिकोण को है।[२] इसी प्रकार के विचार प्रगट करते हुए डॉ० जाकिर हुसैन ने लिखा है कि— भारत के प्रधानमत्री के रूप मे उन्होने भारत को जिस तरह सँवारा, उसका नव निर्माण करके उसे जो उज्ज्वल रूप दिया, उससे सम्पूण विश्व के अर्ध विकसित और अविकसित देशो को एक नई चेतना मिली। वास्तव मे विश्व नागरिकता की भावना तथा सह अस्तित्व के जन्मदाता होने के नाते वे केवल भारत के ही नही वरन् समस्त विश्व की विभूति थे।[३] पचशील के सिद्धान्तो पर आधृत कूटनीतिक सम्बन्धो, तटस्थ वैदेशिक नीतियो के समर्थन, रगभेद, राजनीतिक गुटवाद (Power Block Politics) शक्ति सतुलन, सैनिक तानाशाही तथा विध्वसक परमाणु शक्ति-प्रसार के विरोध द्वारा नेहरू जी ने अन्तर्राष्ट्रीय जीवन मे एक दूरदर्शी नेता के रूप मे प्रतिष्ठा प्राप्त की। निष्कर्षत व्यक्तित्व और कृतित्व के इस गुणात्मक उत्कर्ष के कारण ही वे 'मानवों मे मानवेन्द्र कहलाये। 'मानवेन्द्र' महाकाव्य का प्रणयन निश्चयत श्लाघनीय रचनाधर्मी प्रयास है क्योकि इस काव्य

---

[१] मानवेन्द्र—साधुवाद, पृ० ६ (प्रथम सस्करण १९६५)
[२] साप्ताहिक हिन्दुस्तान—नेहरू स्मृति अक, ३० मई १९६५, पृ० ७
[३] मानवेन्द्र—भूमिका, पृ० १ व २ से उद्धृत

के माध्यम से एक महामानव के महान् व्यक्तित्व और गरिमापूर्ण कृतित्व को कालजयी चिरन्तनत्व प्राप्त हुआ है।

श्री रघुवीरशरणमित्र एक समर्थ रचनाकार हैं। उन्होने साहित्य की विभिन्न विधाओ मे विपुल परिमाण मे सृजन करके अपनी मृत्युजयी रचनार्धमिता को आयाम-विस्तृति का प्रभून परिचय दिया है।*

प्रबन्धकाव्यकार के रूप मे 'जननायक' और 'मानवेन्द्र' श्री मित्र की कीर्ति के अक्षय स्रोत हैं। इन दोनो प्रबन्ध काव्यो का प्रणयन भारत की दो महान् विभूतियों की चरित्र गरिमा को साकार करने के लिए हुआ है। 'जननायक' के समान 'मानवेन्द्र' भी महती सृजन-प्रेरणा का परिणाम है। कवि ने पडित जवाहरलाल नेहरू को स्थितप्रज्ञ प्रबुद्ध मानव मानते हुए कहा है कि—"कभी-कभी ही धरती पर कोई ऐसा आलोक पुरुष आता है जिससे दुनियां बदल जाती है।" " जन मानस श्री जवाहरलाल नेहरू इस युग के अग्निज क्रान्ति-कारी, कुशल राजनीतिज्ञ, विचित्र दार्शनिक और अद्भुत शान्तिदूत हुए हैं। वे न जाने कितने युगो के सत्यो के तत्वो को मथ मथ कर हमे दे गये। वे एक महामानव ही नही, मानवेन्द्र थे। वे तप से परे थे, सिद्धियो से आगे थे और

---

* श्री रघुवीरशरणमित्र प्रणीत साहित्य—

(क) काव्य—जननायक, भूमिजा, ज्योतिपुरुष, जलते तारे, प्रतिध्वनि, गीलेगीत, भूमि के भगवान, बन्दी, प्रेरणा, फांसी, परतन्त्र।

(ख) उपन्यास—आग और पानी, ढाल तलवार, उजला कफन, राख की दुल्हन, ओस के आंसू, दिन रोया रात हँसी, प्यास और शोले, तप का तेज रूप के जाले, रंगीन शीशे धुंधले चित्र, पहली हार, सोने की रास, कांपती आवाज, बलिदान।

(ग) नाटक—राष्ट्रध्वज, भारतमाता, धरती माता।

(घ) बाल किशोर-साहित्य—अमर रहे यह देश, सुनो बच्चो, कदम मिलाते बढे चलो, कहानियाँ अमर हैं, भारत गौरव आओ खेलें आओ गायें, प्यारा देश हमारा देश, भारत के लाल, महापुरुष, परीक्षा, बच्चो का देश, वीर बालक, बालवीर कृष्ण, हरिजन, झरने और फूल, कर भला हो भला, बुद्धि के हीरे, मेले के मोती, बौनी बाबू।

(ङ) विविध—हमारे सन्त, कला की कलम, आवश्यकता और लख।

कीर्तियों के केतु थे। ...उनके निष्काम कर्म युग-युग के अमृत फल हैं। जवाहरलाल जी व्यक्ति न रह कर समष्टि हो चुके थे। उनका श्वास श्वास विश्वकल्याण के लिए परिश्रमा करता रहा। उनकी रचनात्मक क्रान्तियाँ समस्त युगों की उज्ज्वल परम्पराओं से पुनीत हैं।" इसी क्रम में मित्र जी आगे कहते हैं कि—"'मानवेन्द्र' महाकाव्य मैंने तपस्वी जवाहर के जीवन-तत्वों की प्रेरणा से लिखा है। इसकी रचना में कुल मिलाकर ग्यारह वर्ष लगे हैं। इसमें मैंने लोकनायक के जीवन-तत्वों के साथ युग चेतना की किरणें विकीर्ण की हैं, शाश्वत सत्यों को छन्दों के स्वर दिये हैं।.....'मानवेन्द्र' में मेरी अतीत के प्रति श्रद्धा, वर्तमान के प्रति प्रसन्नता और भविष्य के प्रति मंगल-कामना है। इसकी रचना में मैं काव्य-नायक की गति के साथ-साथ चला हूँ, मानव हृदय से आत्मसात् कर सम्वेदना के गीत गाने की भावना रही है...... युगों की वेदियों पर कभी करोड़ों में कोई एक ऐसा धीरोदात्त युगपुरुष आता है जिसे पुरुषों में पुरुषोत्तम अथवा मानवों में मानवेन्द्र कह सकते हैं। ऐसे महामानव प्रकृति में प्राकृत जन्म से भिन्न होते हैं। इस प्रकार के पुरुष पर ही कवि किसी महाकाव्य की रचना करने को उत्सुक होते हैं। 'मानवेन्द्र' के व्यक्ति में समष्टि के वे सभी गुण मुखरित हैं जिनसे सृष्टि का शिव होता, है, युगों को चेतना मिलती है, सृजन के दीप जगमगाते है।"[४] 'मानवेन्द्र' की प्रस्तावना के उद्धृत कवि-मन्तव्य से स्पष्ट है कि श्री मित्र जी ने आलोच्य प्रबन्ध काव्य में नेहरू जी के महामानव रूप को विराट रचना-फलक पर प्रस्तुत किया है।

'मानवेन्द्र' महाकाव्य चार खण्डों में विभाजित है, प्रत्येक खण्ड को पुनः सर्गों में वर्गीकृत किया गया है। सर्गों का विषयानुरूप नामकरण भी किया गया है। प्रथम खण्ड में ६, द्वितीय सर्ग में ११, तृतीय खण्ड में ६ और चतुर्थ खण्ड में ११ सर्ग है। सर्ग क्रमानुसार खण्डों का नामकरण इस प्रकार है—

(क) प्रथम खण्ड—सर्वभूतेषु, बालारुण, कमल सरोवर, ज्ञान ज्योति, सिन्दूर-सौरभ, चाह और राह, परिधायक, परिदाह और व्यथित छोह।

(ख) द्वितीय खण्ड—परित्राण, पद्मादित्य, आत्मारमर, द्वन्द्व, अश्रुदीप, अग्निशिखा, विरोधचरण, रक्तस्नान, कारातप, आग्नेय और मर्त्य आह।

(ग) तृतीय खण्ड—सत्वार, सन्धि संदर्भ, शासन-सूत्र, अनुताप, सघात, प्रवरण, सन्तापन, आलोक-किरण और मुक्ति-पूजा।

---

४ मानवेन्द्र—कवि की प्रस्तावना, पृ० ७-८ से उद्धृत।

(घ) चतुर्थ खण्ड—धर्माचरण, जन मन, सृजन-सोपान, अन्तर्दाह, सूर्यास्त, भावलोक, गन्ध-पवन, मीमांसा, मृत्योर्मृत्यु, परिवर्तन और शेष पुरुष।

उपर्युक्त सर्ग क्रम में पूर्वापर अन्विति आद्यान्त परिलक्षित होती है। घटनाओं के संयोजन और प्रस्तुतीकरण में नाटकीयता और काव्यात्मक सरसता भी सर्वत्र प्रदर्शित हुई है। 'मानवेन्द्र' से पूर्व मिश्र जी द्वारा रचित 'जननायक' महाकाव्य के कथा-विधान के सम्बन्ध में नीरसता, आत्मकथात्मक पुनरावृत्ति और इतिवृत्तात्मकता के जो आक्षेप किए गए थे, उनका कवि ने आलोच्य काव्य में यथासम्भव परिष्कार कर दिया है। 'मानवेन्द्र' के वृत्त-नियोजन में कवि ने न केवल नेहरू जी की जीवनी, राष्ट्रीय आन्दोलन व इतिहास और तत्कालीन परिस्थितियों के परिज्ञान का परिचय दिया है अपितु नेहरू की भावसंदीप्त कीर्तिकथा से तादात्म्य और संघर्षशील युग चेतना से सम्वेदन-सम्पर्क का भी प्रमाण प्रस्तुत किया है। स्वाधीनता-आन्दोलन-काल के युग सत्य और यथार्थ को कवि ने चिरन्तन जीवन-मूल्यों की संस्थापना के एक महाप्रयास के रूप में अंकित किया है। कल्पना और वास्तविकता तथा आदर्श और यथार्थ के समन्वय का पक्षधर होने के कारण कथानक में कवि ने जनचेतना के संवेदन-सत्य और भावजगत के आदर्शों को मूर्त रूप दिया है। अपने समन्वयमूलक सर्जनात्मक-दृष्टिकोण को प्रस्तावना-वक्तव्य में स्पष्ट करते हुए कवि ने कहा है कि—"काव्य युगों के इतिहास के एक सूक्ष्म दर्पण की तरह होता है, जिसमें वर्तमान अतीत के साथ भविष्य के रूप को निहारता है। काव्य को स्थूल जगत का सूक्ष्म दर्शन भी कह सकते हैं। रविमण्डल की तरह वाणी का तेज अन्तर्जगत के जलजातों को खिलाता है। तपते हुए सूर्य की तरह काव्य के प्रकाश में मानव-मन के कमल विकसित होते हैं, अन्तश्चेतना का प्रसार होता है। ...यथार्थ को मैं काव्य का सत्य मानता हूँ और आदर्शों को छोड़ना नहीं चाहता। कवि की कल्पनाएँ शून्य से सम्बन्ध जोड़ती फिरती हैं, किन्तु क्या कोई भी कल्पना वास्तविकता से पृथक होती है। कल्पना वही की जा सकती है जो सम्भव है। किसी विशेष अवस्था से न तो समस्त सत्यों को असत्य कह सकते हैं और न हम मधुर भौतिक चमत्कारों में असत्यों को सत्य मान सकते हैं। जीवन के उज्ज्वल पक्ष स्तुत्य रहे हैं और रहेंगे।"[६] और यह प्रसन्नता का विषय है कि लोकनायक नेहरू की कीर्ति-कथा की संरचना में कवि ने अपने दृष्टिकोण को मूर्तिमन्त किया है।

---

६ मानवेन्द्र—कवि की प्रस्तावना, पृ० ८

'सर्वंभूतेषु' शीर्षक प्रथम सर्ग का समारम्भ यद्यपि शिव, गणनायक, सरस्वती, धरित्री आदि की वंदना से होता है किन्तु 'मंगलाचरण' का वास्तविक स्वरूप 'भारत देश' के सारस्वत-अभिवंदन में द्रष्टव्य है। कवि के अनुसार धरा पर अनेक देश हैं किन्तु अम्बुजाक्ष भारत ही अणुविभु की अभिलाषा है। त्याग, तपस्या और धर्म-कर्म की वाणी भारत-वीणा ने ही मुखरित की है। यह सन्तों और वीरों का देश है। परपीड़ा को प्राणों में सजोये, सत्य का सबल लिए, प्रेम का पारावार भारत जगदाधार है। यही आदर्श भारत के चिरन्तन अस्तित्व के मानक बिन्दु हैं। कवि के शब्दों में—

"भारत की शोभा सुगन्ध से आभावान धरा है।
लाख मरण ने किए आक्रमण, भारत नहीं मरा है॥
सन्तों का सन्देश देश यह, सबके लिए सहारा।
मिटा नहीं है, नहीं मिटेगा, भारत अमर हमारा॥
ऋषियों का राकेश देश यह, शीतल शान्त कगारा।
सन्तों का सन्देश देश यह, सबके लिए सहारा॥"

(सर्वं भूतेषु, सर्ग १, पृ० १६-१७)

स्वदेश वंदना के साथ-साथ कवि ने धरती माँ की अर्चना की है। काव्य के कथाक्रम का समारम्भ इसी सर्ग में काव्यनायक श्री नेहरू के पूर्वजों की जन्मभूमि काश्मीर की सौंदर्य सुषमा के वर्णन से होता है। कवि ने काश्मीर को धरती का स्वर्ग, रूप दर्पण, साकार रति, संसृति का यौवन, केसर की क्यारियों से सुरभित, अमरनाथ का पावन-स्थल आदि कहकर भूरि भूरि प्रशंसा की है। काश्मीर की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि—

"धरती पर काश्मीर किसी ने रचा रूप दर्पण पर।
मानो तप की सिद्धि हँस पड़ी तन मन धन अर्पण कर॥
शैल श्रेणियाँ, झरनों का जल, बर्फीले सुन्दर पथ।
किरणों के आभरण, प्रकृति की सजी नासिका में नथ॥
× × ×
सबसे प्यारा सबसे न्यारा, शाश्वत स्वर्ण लकीर।
गर्वोन्नत कश्मीर हमारा, गर्वोन्नत कश्मीर॥"

(वही, सर्ग १, पृ० २२-२३)

इसी प्रदेश का 'राजकौल' नामक यात्री कभी राजा फुर्रुखसियर के समय दिल्ली मे आकर ठहरा जिसे बादशाह ने कुछ जागीर देकर नहर किनारे बसा दिया। इसी कौलवश मे गगाधर हुए। इनके ही पुत्र मोतीलाल नेहरू और पौत्र जवाहरलाल हुए। गगा, यमुना और सरस्वती के सगम पर स्थित प्रयाग मे कश्मीरी-वंश-वृक्ष का पुष्प जवाहर जन्मा। कवि ने जवाहरलाल के जन्म की समता अवतार से की है—

"कश्मीरी सौन्दर्य खिला था-प्रिय प्रयाग के तट पर।
मंगलमयी घड़ी आई थी-दीप जलाने घर घर॥
एक जन्म अवतार हो गया, मन मन का अधिनायक॥
एक जन्म संसार बन गया, युग युग उसके गायक॥
धन्य धन्य सन अट्ठारह सौ, पारस पूर्ण निवासी।
धन्य नवम्बर चौदह जिस दिन-आया अमर प्रवासी॥"

(वही, सर्ग १, पृ० २४)

श्री जवाहरलाल नेहरू के जन्म को कवि ने एक असाधारण घटना के रूप मे स्वीकारा है, जवाहरलाल के नर-व्यक्तित्व में नारायण की प्रतिच्छवि आभासित हुई थी—

"कभी कभी इस धरती पर-होता जन्म अनोखा।
कभी कभी होता नर तन मे-नारायण का धोखा॥
कभी कभी ही दिव्य ज्योति की-रश्मि यहाँ आती है।
कभी कभी ही उस अनन्त की-आभा मुस्काती है॥
× × ×
कभी कभी ही तो सागर से—कामधेनु पाते हैं।
कभी कभी ही तो पुण्यो से—निराकार आते हैं॥
धन्य धन्य वह पूजा जिसने, निर्गुण के गुण पाये।
मोती मिले, जवाहर आये, धरती के धन आये॥"

(वही, सर्ग १, पृ० २५)

नेहरू के जन्मोत्सव पर प्रकृति भी प्रमुदित थी। प्रकृति का उल्लास पक्षियों के सुमधुर कलरव, रश्मियो की थिरकन, उर्मियों की कलकल, पत्तों की पी-पी और बिजली की चमक मे प्रगट था। मोतीलाल और स्वरूप रानी

स्वयं को अहोभाग्य मान रहे थे। पिता ने प्रेम से पुत्र को 'नन्हें' कहा और वही नाम परिवार में प्रचलित हो गया।

'बालारुण' शीर्षक द्वितीय सर्ग में कवि ने नेहरू जी के बाल-जीवन की वात्सल्य-भाव-भीनी छवियाँ अंकित की हैं। नटखट नन्हें की केलि-क्रीडाएँ जहाँ पिता को प्रमुदित करती थी वहीं उनके असंगत कृत्यों पर वे उन्हें प्रताडित भी करते थे। बालक नेहरू को प्रारम्भ से ही पिता की प्रेरणाएँ प्राप्त थीं। मोतीलाल नेहरू पुत्र को राम, भरत, दधीचि, ध्रुव और हरिश्चन्द्र के समान यशस्वी बनने के लिए प्रेरित करते थे। मोतीलाल की प्रेरणा के स्वर थे—

"चन्दा से शीतलता ले लो, सूरज से लो ज्वाला।
नाम जवाहरलाल तुम्हारा, जग को दो उजियाला॥
बन जाओ ऐसे बन जाओ, याद करे यह धरती।
देखो धरती सब कुछ सहकर, सबकी पीडा हरती॥

× × ×

रामचन्द्र से वीर बनो तुम, बनो भरत से राजा।
दानी हो दधीचि सा तन मन, जग ध्रुवलोक बना जा॥
हरिश्चन्द्र को कभी न भूलो, दया, धर्म मत छोडो।
मोडो मुँह अनीति से मोडो, सब से नाता जोडो॥"

(बालारुण, द्वितीय सर्ग, पृ० ३२)

बालक नन्हें मेधावी और जिज्ञासु था। उसके मन में सूर्य, धरा और भारत को जानने की जिज्ञासा थी। ज्यों ज्यों वह इतिहास के गौरव ग्रंथों का अध्ययन करता, उसके मन में कुतूहल बढता जाता था। अपने चतुर्दिक परिवेश के प्रति भी सजगता का भाव बालक जवाहर के मन में था। सामाजिक जीवन की विषमताएँ उन्हें यह सोचने को विवश करती थीं कि हँसी रुदन, तपस्या और भोग तथा झोंपडियाँ और गगनचुम्बी भवनों का एक साथ अस्तित्व किस वैषम्य के कारण है। पराधीन भारत का मूल्यहीन जीवन और संकटग्रस्त निम्नवर्ग की दयनीय दशा 'नन्हें' को बहुत कुछ सोचने को विवश करते थे। गदर का इतिहास, शहीदों की कथाएँ और अतीत का वैभव एक अन्य ही प्रकार की प्रतिक्रिया को नेहरू के मन में जन्म देते थे। माता के सद्भावनापूर्ण प्रेरक उपदेश बालक नेहरू के मन-मस्तिष्क में चिन्तन को परिपक्व बना रहे थे। माता की प्रेरणा थी—

"माँ ने कहा, राम का जीवन-काम धरा के आया।
माँ ने कहा, ज्ञान गीता का-कृष्ण चन्द्र से पाया॥
भारत के आदर्श पुराने-माँ ने खूब बखाने।
मानो सुत मे राम कृष्ण को-जननी लगी जगाने॥"

(वही, द्वितीय सर्ग, पृ० ४४)

और माँ की प्रेरणा सचमुच रग लाई। जवाहर धरा के ही काम आया। कर्म के प्रति निष्ठा-भाव जगाने मे माता-पिता के अतिरिक्त ऐतिहासिक महत्व के ग्रन्थो का अनुशीलन भी काम आया। नेहरू के मन मे यह धारणा घर कर गई कि—

"कर्म फल आनन्द उज्ज्वल अमित सुख।
वे नपुसक, जो न करते कर्म हैं।
वे निरर्थक भोग जिनके धर्म हैं॥
भोग उसका धर्म जो है कर्म रत।
दे रहे हैं ज्योति-कण रवि शशि सतत॥

(वही, द्वितीय सर्ग, पृ० ४६)

अध्ययन-काल मे ही 'नन्हे' की चिन्तन भूमा पर वन्दिनी भारत माँ की आकृति अकित हो गई थी। झाँसी की रानी के समाख्यान ने उन्हे यह सोचने को विवश किया कि—

"देश हमारा दास रहे क्यो, कोटि-कोटि हम जन हैं।
फूलो पर शूलों का पहरा, बन्धन में उपवन हैं॥
वन्दी भारत की मिट्टी है, वन्दी हैं दीवारें।
वन्दी ताजमहल मन्दिर हैं, बन्दी हैं मीनारें॥
बन्दी गगा जमुना का जल, वन्दी गगन हमारा।
बन्दी हवा हमारे घर की, बन्दी भारत प्यारा॥
× × ×
लगा सोचने, बालक ही थी—झाँसी वाली रानी।
उसमे कैसा पानी था जो—खूब लडी मर्दानी॥"

(कमल सरोवर, सर्ग ३, पृ० ५१)

बालक जवाहर के मन मे राष्ट्र के प्रति ललक निरन्तर बढ़ने लगी। मिश्र जी ने 'नन्हे' की तुलना विकासमान उत्पल से दी है। ऐसा उत्पल जो युगो के पश्चात् धरा सरोवर मे उत्पन्न होता है। वे शिव के समान जग का शिव करने के लिए प्रदाह-दीप लेकर सन्नद्ध थे—

"किन्तु युगो के बाद ताल मे—खिलता ऐसा उत्पल।
जग को ज्योतित कर देता है—जिसका जीवन उज्ज्वल।।
बहुत युगो के बाद खिला है—नन्हा नन्हा कमल मनोहर।
जिसके लिए सूर्य तपता था, देता अर्घ्य सरोवर।।"

(वही, सर्ग ३, पृ० ६०)

उच्च अध्ययन के लिए नेहरू जी लन्दन गए। श्री मोतीलाल नेहरू की विदेशो मे पूर्ण प्रतिष्ठा थी और धन की कमी नही थी, अत जवाहर को उच्च शिक्षा प्राप्ति के सभी साधन और सुविधाएँ विदेश मे प्राप्य थी। विद्योपार्जन के पश्चात वे स्वदेश लौट कर वकालत करने लग गए। किन्तु अन्तश्चेतना की आवाज उन्हें सदैव सजग किये रहती थी कि पैसा ही सब कुछ नही है। जीवन का लक्ष्य धन पाना और खोना नही अपितु स्वय को दुर्लभ धन के रूप म परिवर्तित करना है अर्थात् परहित करना और राष्ट्र को बन्धन मुक्त करना है—

'आत्मा का उत्थान यही क्या—मैं खोजूँ धन पाऊँ।
ऐसा कर्म नही क्या कोई—मैं ही धन बन जाऊँ।।
× × ×
सारहीन नीरस लगता है—पराधीन का हँसना।
मुझ को बहुत दु ख देता है—जग जालो मे फँसना।।"

(ज्ञान ज्योति—सर्ग ४, पृ० ८१)

'सिन्दूर सौरभ' शीर्षक पचम सग मे कवि ने नेहरू और कमला के परिणय का सरस वर्णन किया है। दुल्हन के रूप मे सजी कमला को माध्यम बनाकर कवि ने नारी के चिरन्तन-गौरव को इस प्रकार व्यक्त किया है—

'यह ससृति की मूलाकृति है, यही पूर्ति प्राणो की।
यही कीर्ति मानव महान की, यही मूर्ति प्राणो की।।
यही अमृत की धार, इसी मे—सुख की सारी निधियाँ।
इसके श्वासो मे अकित हैं—ससृति की गतिविधियाँ।।
× × ×
मगलमयी यही कल्याणी, यह तुलसी की वाणी।
इसके प्राणो से प्लावित है—धरनी का हर प्राणी।।
यह स्वर्गों की सिद्धि बुद्धि की, शक्ति इसी से हारी।
यही ज्ञान की गौरव गरिमा, यही भक्ति है प्यारी।।

(सिन्दूर सौरभ, सर्ग ५, पृ० ६४)

कमला सचमुच भारतीय जीवनादर्शों से ओत प्रोत आदर्श नारी थी। 'चाह और राह' शीर्षक षष्ठ सर्ग मे कवि ने जवाहर और कमला के काश्मीर-भ्रमण का वर्णन किया है। 'परिधायक' शीर्षक सप्तम सर्ग मे मिश्र जी ने प्रत्याख्यान शैली के द्वारा अँग्रेजो के भारत पर छद्मपूर्ण आधिपत्य का निरूपण और परतन्त्र भारत की दयनीय-दशा का चित्रण किया है। कवि का मत है कि अँग्रेज व्यापारी बन कर आये थे किन्तु शाहो की गफलत के कारण यहाँ के शासक बन बैठे। उसके पश्चात् सन् १८५७ के विप्लव में उन्हे निकालने के लिए देशव्यापी महाप्रयास हुआ, जिसमे झाँसी की रानी, तातिया टोपे, जफर प्रभृति देशभक्तो ने प्राणपन से उत्सर्ग भी किया, किन्तु मीर जाफिर जैसे गद्दारो और देशद्रोहियो ने देश को साम्राज्यवादियो के शोषक चगुल म फँसा दिया—

"देश द्रोहियो ने बिक बिक कर भारत को बन्दी बनवाया।
पैरो मे बेडियाँ, गले मे—तौक विदेशी ने पहनाया॥
× × ×
शोषण करने लगे देश का—सामन्ती परदेशी।
झोपडियो पर महल बनाकर हँसते थे प्रतिवेशी॥
× × ×
आभूषण उतरे माता के भारत माता कैद हो गई।
गोरागी के मधुर राग मे, जन जन की तकदीर सो गई॥'
(परिधायक, सर्ग ७, पृ० १२८-१३१)

बन्दी देश के प्रदग्ध मानस का अँग्रेजी प्रशासको ने सब प्रकार की अनीतियाँ अपना कर शोषण किया। भेदभाव की कूटनीति, दमनचक्र, मायाई, साम्प्रदायिक एव जातीय फूट को उन्होने अस्त्रो के रूप मे अपनाया। कवि ने अँग्रेज प्रशासकों की दमन और शोषण की नीतियो को इन शब्दो मे व्यजित किया है—

'दमन कि जिसमे दया न बिल्कुल, जैसे वधशाला मे।
दमन कि जैसे रक्त तृषित को—होश न हो हाला मे॥
× × ×
जो भी गाये गीत क्रान्ति का, उसकी वाणी काटो।
जो स्वतन्त्रता लेने निकले, उसका शोणित चाटो॥
× × ×

बन्दी जिसे बनाओ उसके—मन को बन्दी कर लो।
जिसका शोषण करना चाहो—उसकी संस्कृति हर लो॥

× × ×

दास भारत दीन भारत कर दिया।
हर तरह से हीन भारत कर दिया॥"

(परिदाह, सर्ग ८, पृ० १३५-१३६)

देश मे परम्परित धर्म की विडम्बना से पीडित, पददलित और शोषित वर्ग को अंग्रेजो ने गले से लगा लिया। जिन्हे 'अछूत' कह कर तिरस्कृत किया जाता था उन्हें गिरजाघरो मे सम्मान मिला। भारत की जन्म-कर्म आधृत वर्ण व्यवस्था की नीव हिल गई। हमारे जातीय, सामाजिक एव सास्कृतिक जीवन की एकता को विदेशी शासको ने सर्वथा छिन्न-भिन्न कर दिया। उनके इस कुकृत्य पर पश्चातापपूर्ण स्वर मे कवि कहता है कि—

"हमने अपनो को दुतकारा, उसने गले लगाया।
उसने कूडे के फूलो से—अपना बाग सजाया॥

× × ×

मिटती गई एकता अपनी-अपनी ही भूलो से।
हमने करी घृणा उपवन मे-अपने ही फूलो से॥
छिन्न भिन्न एकता हमारी, कर दी धीरे-धीरे।
सीता सी सम्पदा एकता-हर ली धीरे-धीरे॥"

(वही, सर्ग ८, पृ० १५०-१५१)

और अन्तत. परिणाम यह हुआ कि—

"घेरा डाल दिया घर मे, हथकडियाँ पहनाई।
फूलो के पर्दो के पीछे, फुलझडियाँ सुलगाईं॥
शोषण करने लगे देश का, रक्तस्नान करा कर।
सोने की चिडिया को फूंका, छल से हमे हराकर॥"

(वही, सर्ग ८, पृ० १५३)

इस प्रकार व्यापारी बनकर आए फिरगी भारत के शासक बन गये। देशवासियो के तन-मन बन्दी हो गए। वे अपने ही घर मे पराए से हो गए। पराधीन भारतवासियो की विवशता का शब्द-चित्र द्रष्टव्य है—

"शासन करने लगा फिरंगी, फूलों मे फणि लाया।
नींद किसी को आई मद म, शैया पर अहि आया ॥
तन बन्दी थे, मन बन्दी थे, सब थे आज्ञाकारी।
अपना घर हो गया पराया, रोती थी लाचारी ॥"
(व्यथित छाँह, सर्ग ६, पृ० १५८)

व्यथित भारत की दशा देखकर जवाहरलाल व्यथित थे। उन्हे चैन से नींद भी न आती थी। स्वप्न म भी उन्ह भारत की स्वाधीनता का ही बोध होता था। कवि के शब्दों म अशोक के शिलालेख, चन्द्रगुप्त की ध्वजा, चाणक्य की शिखा, ललनाओं के पुछे हुए सिन्दूर, जौहर की ज्वाला हल्दी-घाटी की आरम पुकार, राणा की ललकार आदि ऐतिहासिक वीरता के सन्दर्भ जवाहर की निद्रा भग्न कर रहे थे। भारत माता का करुण क्रन्दन सुनकर तरुण जवाहर की सुप्त जवानी जाग उठी। जवाहर ने माँ के आँसू पोंछने का सकल्प लिया। जवाहर की व्यग्रता बढती गई। उन्होने कमला से स्पष्ट शब्दो मे कहा—

"पारतन्त्र्य परिदाह आह यह, मेरा भारत जलता।
मेरे तरुण वरुण से मन मे—माँ का आँसू ढलता ॥
पराधीनता मे रगरलियाँ, क्रीडा सहन न होती।
मुझे दुलार पुकार रही है—माता रोती रोती ॥
× × ×
मुझको नींद न आती कमला, मेरा धीरज छूटा।
मुझे क्रोध आता है उस पर जिसने भारत लूटा ॥"
(वही, सर्ग ६, पृ० १६४-१६५)

कमला स्वय उच्चादर्शों वाली महिला थी। वह प्रिय के पथ का अवरोध न बनी। उसने सहर्ष पति को स्वाधीनता समर मे जूझने को सम्प्रेरित किया और कहा कि—

'कमला बन्धन नहीं राह मे, कमला सिद्धि तुम्हारी।
बिना ताज के बादशाह से, बोली राजकुमारी ॥
जाओ प्रियतम ! माँ के बन्धन काटो।
मुक्त करो आत्मा मगुर बन्धन से।
तिलक करो माँ का स्वतन्त्र चन्दन से ॥

मैं छाया की तरह धूप सह लूँगी।
दूर दूर रह साथ साथ रह लूँगी ॥
काटो प्रिय! पतग सा दुश्मन काटो।
बाँटो मेरा धन जन-जन को बाँटो ॥"

(वही, सर्ग ६, पृ० १६८)

कमला की उत्सर्गमयी वाणी से जवाहर रसप्लावित हो गए। उन्होंने द्विगुणित उत्साह से मातृभूमि को बन्धन मुक्त करने का दृढ सकल्प किया। किन्तु बन्दी देशात्मा को मुक्त कराने का उपाय क्या है? तभी उन्हें पथ प्रदर्शक के रूप मे तपस्वी महात्मा गाधी का सान्निध्य प्राप्त हुआ। महात्मा गाधी के व्यक्तित्व की गरिमा का बखान करते हुए कवि ने लिखा है कि वे समुद्र की गहराई, सूर्य का प्रकाश, पृथ्वी की सहिष्णुता, हिमगिरि का बल, परहित की तपश्चर्या, दया-धर्म का अभ्यास और अमर विजय की अदम्य आकाक्षा लेकर बिना शस्त्र के वीरव्रती सेनानी की भाँति स्वाधीनता के पाथेय पर अग्रसर थे। कवि ने उन्हे भारती की आरती कहकर सम्बोधित किया है—

"ये मनीषी भारती की आरती है।
साथ इनके साधना सी 'बा' सती हैं॥
पास इनके सिद्धियाँ निधियाँ बडी हैं।
कीर्ति की किरणें यहाँ बिखरी पडी हैं॥

सूर्य का तन, सोम का मन।
मोम का तन, होम का मन॥"

(परित्राण, सर्ग १०, पृ० १७७)

ऐसे महान् मनस्वी और कर्मठ देशसेवी से जब देश सेवा की दीक्षा (प्रेरणा) लेने जवाहर पहुँचे तो उन्होने प्रश्नो की झडी लगा दी। उन्होंने कहा कि स्वतन्त्रता बलिदान चाहती है। मर मिटने का अभिमान और परहित हेतु शिव के समान गरलपान का साहस चाहती है। स्वतन्त्रता के लिए तुम्हे तन-मन धन सर्वस्व समर्पण करना होगा। फूलो का पथ त्याग शूलो पर चलना होगा। भारत के जन-जन से आत्मिक सम्बन्ध स्थापित कर देश मुक्ति के अभियान मे जुटना होगा। बापू ने उद्बोधन के स्वर मे युवक जवाहर के अन्तश्चेतन को आदोलित करते हुए कहा—

"देश मुक्ति के लिए चाहिए—भोगो से मुक्तात्मा।
देश यज्ञ के लिए चाहिए—जन-जन से युक्तात्मा ॥
क्या सबके दुखो को अपने—दुख बना पाओगे ?
क्या आवाज लगाकर—सोया देश जगा पाओगे ?
राजमहल मे रहने वाले ! कारा मे रह लेगा ?
स्वतन्त्रता के लिये यन्त्रणा, हँस हँस कर सह लेगा ?
× × ×
बोलो युवक ! अग्नि पीकर क्या—ज्योति हृदय की दोगे ?
क्या धरती के लिए रत्न तज गरल पान कर लोगे ?
शान्ति दूत बन कर मानव को, छाया दे पाओगे ?
शान्ति दूत बन कर जन जन की, काया बन जाओगे ?

(वही, सर्ग १०, पृ० १८२)

युवक जवाहर ने सकल्प किया कि स्वतन्त्रता यज्ञ के लिए सभी प्रकार की आहुतियाँ दूँगा। अग्नि-पूजा को शोणित की धार, श्रुवा के रूप मे कर्म-रतहस्त और स्वर मे प्रगति-मन्त्र लेकर जन-जन के कल्याण हेतु धरा का अर्चन करूँगा। बापू ने प्रसन्न होकर कहा—

"कहा साधु ने सुनो जवाहर ! तुम नर तुम नारायण।"

(वही, सर्ग १०, पृ० १८४)

बापू ने वीर जवाहर को निष्काम कर्म की महत्ता का गीता के कर्मयोग की अवधारणा के परिप्रेक्ष्य मे महत्व बताया। जवाहर ने सश्रद्ध नमन् कर बापू को गुरु रूप मे वरण कर लिया—

"मैंने तो गुरु मान लिया है, तुम ही राष्ट्रपिता हो।
तुम मे प्रभु की ज्योति दीखती, तुम ही श्वेत सिता हो ॥
तन मन धन जीवन दे दूँगा, बापू की आज्ञा पर।
सागर मे नौका खे दूँगा, बापू की आज्ञा पर ॥
ज्ञान योग से बुद्धि योग से, तुम धरती की कल हो।
हिमगिरि से गरिमाशाली हो, गगा से निर्मल हो ॥
× × ×
मुझको बढने का पथ दे दें, बढते चरण तुम्हारे।
रण मे लडने का पथ दे दें, बढते चरण तुम्हारे ॥

(वही, सर्ग १०, पृ० १८६)

बापू और जवाहर के मिलाप को कवि ने कृष्णार्जुन के मिलन की संज्ञा दी है। बापू ने कृष्ण की भाँति निष्काम कर्मयोग रूपी देश सेवा का प्रेरक सदेश युवा जवाहर को दिया। बापू ने शुभाशीष देते हुए कहा—

"बापू बोले—ओ सेनानी! निश्चित विजय तुम्हारी।
हिंसा बदल अहिंसा होगी, मति है धार दुधारी॥
स्वतन्त्रता हित रण करने को—जनता की सेना है।
चलता हुआ यान सागर के—दृग जल मे खेना है॥
गीत जीत के गा सकते हो, तुम जनता के बल से।
मन के विष को धो सकते हो, नयन-नयन के जल से॥
हे भारत के रूप! सभी को—श्रद्धा से जय पाओ।
जय के लिए सभी के मन ले, एक शक्ति बन जाओ॥"

(वही, सर्ग १०, पृ० १८६)

देश के स्वाधीनता-आन्दोलन मे वीर जवाहर की भाँति अन्य असख्य देश भक्त भी योगदान कर रहे थे। प्रमुख स्वाधीनता सेनानियो मे कवि ने सुभाष पटेल, राजेन्द्रप्रसाद, मौलाना आजाद, जिन्ना, लाजपतराय, मालवीय जी प्रभृति नेताओ के व्यक्तित्व और महनीय कृतित्व का श्रद्धापूर्वक पुण्य स्मरण 'पद्मादित्य' शीर्षक एकादश सर्ग मे किया है। ये सभी देशभक्त पराधीन मातृभूमि को बन्धन मुक्त करने के लिए कृत सकल्प थे। काँग्रेस अधिवेशनो के अवसर पर इनकी विचारधारा की अनुगूज सुनायी देती थी। सुभाषचन्द्र बोस क्रान्तिमन्त चिन्तनधारा के पक्षधर थे। वे अपनी ओजस्वी वक्तृताओ द्वारा क्रान्तिकारी ढग से देश को स्वतन्त्र कराने की बात कहते थे। उनका अभिमत था—शस्त्र उठाकर प्रहार करने और रक्त दान से ही धरित्री मुक्त हो सकती है। 'वीरभोग्या वसुन्धरा' के सिद्धान्त का समर्थन करते हुए कहते थे—

"वीर भोगते हैं धरती को, शस्त्रो के वारो से।
प्यास बुझा करती देवी की, प्यासी तलवारो से॥
शस्त्र उठा कर रक्त दान लो, स्वतन्त्रता पाओगे।
स्वाभिमान से रक्त दान से नयी सुबह लाओगे॥"

सुभाषचन्द्र बोस की वक्तृता उनके अप्रतिम शौर्य की आग्नेय हुँकृति के समान प्रतीत होती थी। वे रक्तदान और बलिदान को ही सर्वाधिक महत्व देते थे। उन्ही के शब्दो मे—

"रक्त जिसका दीप मे जलता—
वह उषा की माँग में सिन्दूर भरता है।
रक्त में हो गीत हैं जय के,
गाडता अधिकार के झण्डे, धरा का मान रखता है।
देश रक्षा को भगीरथ रक्तधारा दो॥

× × ×

भीम बन कर खून पी लो दुश्मनो का,
जय तभी मिलती कि जब कुछ रक्त बहता।
रक्त से ही तो विजय के दीप जलते हैं,
रक्त जिनमे है वही तम चीर चलते हैं।
रक्त लाली है, उजाली है, दिवाली है॥"

(पद्मादित्य, सर्ग ११, पृ० १९८-१९९)

नेहरू जी भी सुभाषचन्द्र बोस के समर्थक बने। वे भी उन्ही के स्वर मे बोल उठे—

"शस्त्र उठा कर परदेशी से, हम स्वतन्त्रता ले लें।
महासिन्धु मे बडवानल की, नाव शक्ति से खे लें॥"

(वही, सर्ग ११, पृ० १९९)

किन्तु अहिंसा की प्रतिमूर्ति बापू ने सभी को शाति और अहिंसा के पाथेय पर अग्रसर होते हुए समर्पित होने का पाठ पढाया। उन्होने कहा कि सहन-शक्ति मे अद्भुत क्षमता है, स्वतन्त्रता को बलिदानों के बल से उपार्जित करना है। बापू ने विश्वास की गति और सगठन की शक्ति पर बल दिया। नेहरू जी की क्षमता, दूरदर्शिता और अपराजेय कर्मठ शक्ति को लक्ष्यीभूत कर बापू ने कांग्रेस नेतृत्व का दायित्व उन्हे सौंप दिया। वीर जवाहर के नेतृत्व मे सगठन और स्वदेश प्रेम का महान् सदेश सर्वत्र प्रसारित हुआ। यह सदेश था—

"एक सगठन, एक ध्वजा हो, एक राह दो राही।
कोटि कोटि तन एक रूप हों, एक चाह दो राही।
एक धरा पर एक साथ सब, गीत देश के गाओ।
बढो तिरगे की छाया में, मुक्ति शक्ति ले आओ।

सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के गुण, त्रिगुण त्रिकाल तिरगा।
गगा यमुना सरस्वती की-लहर रही नम गगा ॥
× × ×
झरने गूँजे यमुना मचली, गरजी गगा धारा।
कहा जवाहर ने ध्वज लेकर—हिन्दुस्तान हमारा ॥"

(वही, सर्ग ११, पृ० २०८-२०९)

नेहरू जी के नेतृत्व मे कांग्रेस के जो कार्यक्रम बनें, उनमे पीडित, शोषित और पददलित वर्ग के अभ्युत्थान को प्रमुखता दी गई। इस वर्ग मे श्रमिको और कृषको को मुख्यत परिगणित किया जाता था। नेहरू जी पूँजीपतियो के शोषण से विक्षुब्ध थे। वे कमला जी से भी इस सम्बन्ध मे अपना आक्रोश प्रकट करते रहते थे—

"शोषण करते हैं समाज का— शोषक पूँजीवादी।
इनके लिए जोतता बोता—मौन कृषक फरियादी ॥
रोता है किसान भारत का, पूँजीपति हँसता है।
महल बनाने वाला भोला—कूडे मे बसता है ॥
× × ×
देख कृषक की दशा महल मे, मुझको नीद न आती।
सोच रहा हूँ वापिस लाऊँ लुटी कृषक की थाती ॥"

(ग्रामात्मा, सर्ग १२, पृ० २१४)

कृषको की दशा सुधार के लिए जमींदारी प्रथा उन्मूलन का आदोलन प्रारम्भ हुआ। इस आदोलन को अभूतपूर्व समर्थन प्राप्त हुआ। कृषको और श्रमिको ने प्राणपन से लोकनायक का साथ दिया। ग्रामो के कोटि-कोटि जनो के सहयोग से जमीदारी कानून का विरोध प्रारम्भ हुआ। आदोलनकारियो के उत्साह का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

"करो शक्ति का यज्ञ सिपाही! खेतो मे खलिहानो मे।
देर करो मत, आग लगा दो रावण के अभिमानो में ॥
× × ×
जमींदार के रग महल मे क्रान्ति मचाते बढ़े चलो।
मानव मन के अन्धकार मे दीप जलाते बढ़े चलो ॥

दीप धरो, हम साथ हैं।
भारत माँ के, गाँव गाँव के कोटि कोटि हम हाथ हैं।
यज्ञ करो, हम साथ हैं॥
(ग्रामात्मा, सर्ग १२, पृ० २२६)

इस आंदोलन मे समाज के निम्न वर्ग के सक्रिय योगदान-कर्ताओ मे बूढी बुगली मंगन, बुन्दू नाई, बुद्धन मोची, अक्खड ताई, हीरा माली, दुर्गी मोटी, अनिमा बाई, कल्लू तेली, घसियारे, बालक, बूढ़े सभी सम्मिलित थे। इतने विराट जन-समर्थन से संचालित आंदोलन अन्तत. सफल हुआ और अवध-काश्तकारी कानून बदल गया। यह लोकनायक नेहरू के नेतृत्व की अपूर्व सफलता थी। इसके पश्चात 'खिलाफत' आदोलन शुरू हुआ। 'बहिष्कार' आदोलन द्वारा विदेशी वस्त्रो का परित्याग किया गया। लोगो ने सोत्साह मूल्यवान रेशमी वस्त्रो की होली जलाई। अँग्रेजो के प्रति घृणा का प्रदर्शन जनता ने इस प्रकार किया—

"फूँको वस्त्र विदेशी फूँको, पवनारोही नारा।
पारतन्त्र्य के लिए घृणा का, दहक उठा अंगारा॥
× × ×
विदेशी वस्त्र फूँको, हर तरफ थी एक ही बोली।
दिशाओ मे, गली मे हर तरफ थी जोश मे टोली।
बनी ज्वाला, बनी हाला, किसी की क्रान्ति की बोली।
लगी होली, जली होली, विदेशी माल की होली॥"
(द्वन्द्व, सर्ग १३, पृ० २४४-२४५)

जनगण ने प्रसन्न चित्त से खादी को अपनाया। विदेशी वस्त्रो की होली की लपटें क्रान्ति की ज्वाला बन गईं। घर-घर मे स्वतन्त्रता की भावना सुलग उठी तथा धरा-मुक्ति की कामना जन-जन मे जाग उठी। बहिनो ने घघूँट पलट दिये, माताएँ हुँकार उठी, भोली-भाली कुमारियाँ नागिन की भाँति फुँकार उठी। नेहरू की ओजस्वी वाणी से अबलाएँ सबला बनकर बहिष्कार के लिए 'पिकेटिंग' करने निकल पड़ी। देवियो ने शराबखानो के आगे धरना देकर मदिरा-पान करने वालो को रोका, क्योंकि इन मदिरालयो के माध्यम से देश का श्रमोपार्जित धन विदेशो मे जाता था। मद्यपो ने मदिरा के प्याले तोड कर देशहित मे प्राणोत्सर्ग का प्रण किया। सम्पूर्ण जनगण में देश-प्रेम की लहर दौड गयी थी। कवि के शब्दो मे—

"किन्तु लगन थी नर नारी मे, देश प्रेम जागा था।
मातृभूमि ने वीर सुतो से- रक्तदान मांगा था।।
स्वतन्त्रता के लिए आग थी- आँसो के पानी मे।
बहिष्कार की प्रबल प्यास थी- जनता अभिमानी मे।।"
(द्वन्द्व, सर्ग १३, पृ० २४६)

'अश्रुदीप' शीर्षक चतुर्दश सर्ग मे कमला की वियोग-व्यथा और आशकाओ का वर्णन है। साथ ही कमला नेहरू के मन मे राष्ट्र के लिए कुछ करने की व्यग्रता का भी अकन है। श्री जवाहरलाल नेहरू जिन दिनो देशव्यापी भ्रमण करते या जेलो मे थे तो कमला जी व्यथित मन स्थिति से पुत्री इन्दिरा को समझाती रहती थी। कवि के शब्दो मे—

"झडा लेकर गये जवाहर, कमला पगध्वनि सजती।
सिद्धि हेतु अपने प्रियतम की, ज्योति सुन्दरी तपती।।"
(अश्रुदीप, सर्ग १४, पृ० २५३)

नेहरू जी की बहिन विजयलक्ष्मी सगर्व भाभी को समझाती थी कि भैया की जय के नारे देश भर मे गूंज रहे हैं। बिना ताज के राजा भैया पर तुम्हें गर्व होना चाहिए। पति का यशोगान सुनकर कमला के नेत्र गर्व से छलक उठते थे। दूसरे ही क्षण उनके मन मे विचार उठता था कि प्रियतम रण मे हैं। तो मैं घर मे क्यो हूँ ? क्या मैं कुछ योगदान नही कर सकती। कमला के मानसिक सघर्ष को मिश्र जी ने इस प्रकार व्यजित किया है—

'प्रियतम रण मे, मैं क्यो घर म।
मन उठता है ध्वजा उठाऊँ।
बलिदानो के गीत सुनाऊँ।।
हथकडियो पर आँसू उगलूँ।
धरती के अगारे चुग लूँ।।
आग लगाऊँ डगर डगर म।"
(वही, सर्ग १४, पृ० २६२)

अन्तत कमला नेहरू ध्वजा उठा कर स्वाधीनता-आन्दोलन मे कूद पडी। स्वाधीनता-समर म कमला का पदार्पण मानो बिजली की कौंध के समान था। वे स्थान स्थान पर महिलाओ को लेकर 'पिकेटिंग' करने लगी। तन से दुर्बल होते हुए भी वे अग्निशिखा के समान दीप्तिमान थी। कवि के अनुसार—

"घूंघट पलट तपस्या निकली-सत्याग्रह करने का।
कर्म क्षेत्र मे कमला आई-करने या मरने को ॥
× × ×
तन से दुर्बल मन से दीपित, अग्निशिखा लहराई।
अग्निमार्ग पर सबसे आगे, कमला दी दिखलाई ॥
अमर जवाहर की उजियाली, सत्याग्रह मे चमकी।
क्षणिक क्षीण बिजली की रेखा, आन्दोलन मे दमकी ॥"

(अग्निशिखा, सर्ग १५, पृ० २७२)

'मानवेन्द्र' के रचयिता की मति मे पति के स्वाधीनता-यज्ञ को सफल करने के लिए कमला जी आंदोलन की आग मे आहुति बन कर प्रविष्ट हुई। कमला ही क्या नेहरू-परिवार की सभी नारियाँ स्वतन्त्रता के रण मे प्रविष्ट हो गई। स्वरूपरानी, विजयलक्ष्मी, कृष्णा, कमला सभी घर का सुख त्याग कर दीपित ज्योति शिखाओ की भाँति हुँकार उठी। कमला का स्वास्थ्य निरन्तर क्षीण हो रहा था किन्तु वह क्रान्ति की ज्वाला के समान प्रज्वलित थी। जवाहर लाल पत्नी के स्वास्थ्य की चिन्ता से ग्रस्त थे किन्तु राष्ट्रीय-स्वाधीनता की चिन्ता कही अधिक विकट थी। वे कर्त्तव्य पथ से तनिक भी विचलित नही हुए। जवाहर ने द्विगुणित उत्साह और कर्मठ भाव से 'सविनय अवज्ञा' और 'बहिष्कार-आदोलन' का सचालन किया। 'नमक-कानून' तोडा गया। प्रशासनिक आज्ञाएँ भग हुई। अराजकता बढने लगी। साण्डर्स, स्काट, हडसन, डायर, कर्जन प्रभृति अग्रेज प्रशासक दमन चक्र को तीव्र गति से चलाते रहे। सभी प्रमुख नेताओ को नेहरू जी सहित बन्दी बना लिया गया। नेहरू को बन्दी बना कर भी अग्रेज उनकी आवाज को न दबा सके—

"बन्द जवाहर लाल कर दिये, बन्द न थी आवाजें।
बन्दीगृह की दीवारो मे, मन्द न थी आवाजें ॥"

(विरोधाचरण, सर्ग १६, पृ० ३०२)

तिरगे ध्वज, भारत माँ, बापू और स्वतन्त्रता के नारे के समान नेहरू का नाम भी अंग्रेजी-प्रशासन के विरोध और विद्रोह का प्रतीक बन गया। अंग्रेजी-प्रशासन का निम्नोद्धृत कठोर आदेश इस तथ्य का व्यजक है कि नेहरू का नाम स्वाधीनता-सघर्ष-काल मे कितना क्रान्तिकारी बन चुका था—

"जो भी नाम जवाहर का ले, बन्दी उसे बनाओ।
जो भारत माँ की जय बोले, फाँसी उसे चढ़ाओ ॥

जो गांधी जी की जय बोले, उसको कफन उढ़ा दो।
गांधीजी का नाम धरा से, कर कर जुल्म उठा दो॥
जहाँ तिरंगा झंडा देखो, वहीं चलाओ गोली।
उठो मिटा दो सदा सदा को, आजादी की बोली॥
काटो जबान जिन पर हैं, स्वतन्त्रता के नारे।
बढ़ते चरण राख हो जायें, सुलगें वे अंगारे॥"

(रक्तस्नान, सर्ग १७, पृ० ३०५)

जन-मन के स्वातन्त्र्य-भाव का दमन अंग्रेज लाठी चार्ज, हंटर-प्रहार और गोली चला कर रहे थे। बमों और गोलियों की आग सुलगती और बुझ जाती किन्तु जनमानस में स्वाधीनता-भाव की जो चिरन्तन ज्योति लोकनायक नेहरू की ओजस्वी वाणी में प्रज्ज्वलित की थी, वह निरन्तर प्रखर और प्रदग्धक हो रही थी। नेहरू की वाणी के प्रभाव का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि—

"वह बिना ताज का बादशाह, भाषण से आग फूंकता था।
उसके शब्दों में पूजा थी, उसकी वाणी में जन मन था॥
× × ×
वह बोला जनता बोल उठी, वह डोला जनता डोल उठी।
वह चला जिधर चल पड़े सभी, भूगोल उठा गति बोल उठी॥
× × ×
उसके चरणों पर मचल उठी, जनता सर्वस्व लुटाने को।
उसके दर्शन को तड़प उठी, धरती निज व्यथा सुनाने को॥"

(वही, सर्ग १७, पृ० ३०७)

नेहरू जी जिस जनसभा में भाषण देते थे, वहीं जन-समूह समुद्र की भाँति उमड़ पड़ता था। नेहरू जी ने अपने भाषणों में बताया कि वर्तमान शासन शोषण की नींव पर खड़ा है, उसे ढहा दो। उन्होंने राम, कृष्ण, तुलसी, नानक, तिलक, बन्दा वैरागी, गोखले और गांधी की युग वाणियों का स्मरण दिलाते हुए जनमानस को सर्वस्व बलिदान कर स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए प्रेरित किया। लोकनायक की उत्कट राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत ओजस्वी वक्तृताओं का पुष्कल प्रभाव यह होता था कि सिर से कफन बाँधे हुए आजादी के दीवाने इन्कलाब का नारा लगाते हुए बड़े से बड़े बलिदान को सन्नद्ध हो जाते थे। यही कारण था कि—

"जितने जुल्म किये गोरो ने, उतनी दहकी ज्वाला।
हर जवान को चढी हुई थी, देशभक्ति की हाला॥
× × ×
स्वतन्त्रता के भीषण रण मे-क्षण क्षण जोश नया था।
स्वतन्त्रता के लिए सिपाही-सब कुछ भूल गया था॥"
(वही, सर्ग १७, पृ० ३१६, ३१९)

'कारातप' शीर्षक १८वें सर्ग मे कवि ने बन्दी जवाहरलाल की जीवन-चर्या का वर्णन किया है। कवि के अनुसार आनन्द-भवन का राजकुमार कारागृह मे योगी की भांति जीवन-यापन कर रहा था। पुत्री इन्दिरा को जेल से लिखे गये पत्रो, 'हिन्दुस्तान की कहानी' और 'विश्व इतिहास की झलक' शीर्षक रचनाएँ पण्डित जवाहरलाल नेहरू की असाधारण रचनाधर्मिता को प्रगट करती हैं। श्री यशपाल जैन के शब्दो मे—"कुल मिलाकर नेहरू जी स्वराज्य की लड़ाई के दिनों मे ९ बार जेल गए और उनके ८ वर्ष ११ महीने १२ दिन बन्दीगृह मे व्यतीत हुए। कारावास का जीवन सुखद नही होता।'''' जेल की इस विचित्र दुनिया मे शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो, जिसका मन कुण्ठित न हो उठे। लेकिन जवाहरलाल जी तो असामान्य व्यक्ति थे। उन्होंने बन्दी-जीवन के एक-एक क्षण का उपयोग किया और तभी वह इतना साहित्य देने मे समर्थ हो सके।'* नेहरू जी की कृतियाँ उनके भावजगत के संघर्ष, ऐतिहासिक आस्थाओ, विश्व-मानवतावादी दृष्टिकोण और रचनात्मक सामर्थ्य को एक साथ व्यंजित करती हैं। 'आग्नेय' शीर्षक १९वें सर्ग मे महाकाव्यकार ने सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के उग्र रूप और भगतसिंह, बिस्मिल, अश-फाक, राजगुरु, सुखदेव, लाहड़ी प्रभृति देशभक्तो की क्रान्तिकारी भूमिका का उल्लेख किया है। चन्द्रशेखर आजाद के हृदय मे स्वतन्त्रता का यज्ञानल धधक रहा था। उस मतवाले क्रान्तिकारी का विप्लवी आह्वान सुनकर चन्द्रशेखर के दल मे प्राणदान करने वाली बलवती अदम्याकांक्षा जग गयी। कवि के शब्दो मे—

"क्रान्तिघोष सुनकर शेखर का-नौजवान फुंकारे।
प्रान्त-प्रान्त के युवक लाड़ले-समर मध्य हुँकारे॥

---

* साप्ताहिक हिन्दुस्तान—नेहरू स्मृति अंक, ३० मई १९६५, पृ० ६ "अद्वितीय लेखक और साहित्यकार नेहरू" शीर्षक लेख।

विष से विष उतारने के हित-बना क्रान्तिकारी दल ।
बम पार्टी बन गई देश मे, धधका आँसो का जल ॥
× × ×
दल बन गया 'चन्द्रशेखर' का, दल मे रक्त नया था ।
दलहित प्राणदान करने को, दल मे रक्त नया था ॥"
(आग्नेय, सर्ग १६, पृ० ३४१)

बम-दल ने साँडर्स की हत्या, रेल की लूट पाट और विध्वसक प्रहारो द्वारा आतक का वातावरण उत्पन्न कर दिया । इन निर्भय क्रान्तिकारियो ने आग्नेय कृत्यो द्वारा अँग्रेजी-प्रशासन की नीव हिला दी । अँग्रेजी प्रशासन ने प्रतिक्रिया-स्वरूप भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी दे दी । इन देश भक्तो के बलिदान से सम्पूर्ण राष्ट्रीय-जीवन मे क्रान्तिमन्त्र चेतना प्रदीप्त हो गयी । कवि के शब्दो मे—

"चेतना आई शहीदो की चिता से,
रक्त की हर बूँद बिजली बन गई थी ।
फाँसियो से आग फैली हर दिशा मे,
हर तरफ आजाद युवको के कदम थे,
रक्त की लहरें ध्वजा म फहरती थी,
× × ×
चूडिया टूटी हुई, लावा बनी, ज्वाला बनी हैं,
हर पुँछे सिन्दूर की लाली जवानी मे भरी है,
बिन्दियाँ शिव को जगाती हैं प्रलय के गीत गाकर,
प्यार की प्यासी उमगे गति जवाहर के अधर पर ।"
(वही, सर्ग १६, पृ० ३४७)

शहीदो की चिताओ से उठी चिनगारियो ने जन मन मे विद्रोह की आग लगा दी । जन क्रान्ति की भीषण हलचल धीरे-धीरे सेना तक पहुँच गई । पुलिस वाले तन से सेवक होते हुए भी मन से विद्रोही बन गए । स्वतन्त्रता की आग प्रत्येक भारतवासी के मन मे सुलग चुकी थी । इस भाव प्रदीप्ति का श्रेय लोकनायक नेहरू के ओजस्वी भाषणो को भी है । नेहरू जी क्रान्तिदूत बनकर जन मन मे स्वातन्त्र्य चेतना का आह्वान कर रहे थे । कमला जी लखनऊ जेल मे और नेहरू जी नैनी जेल मे बन्द थे फिर भी वे हतोत्साह नही थे । जेल से

छूटकर उन्होंने रुग्ण पिता की दयनीय दशा देखी, उनका निधन देखा, दाह-संस्कार किया किन्तु वे स्वाधीनता समर के पाथेय पर अग्रसर होने से विचलित नही हुए। उन्होंने स्वय को सान्त्वना देते हुए कहा कि—

"आँसू रोको, अभी न जाने कितने वज्र गिरेंगे।
स्वतन्त्रता के लिए मृत्यु से—अगणित बार घिरेंगे॥
एक नही दो नही न जाने—कितने वीर मरेंगे॥
× × ×
धरा रत्नगर्भा है इसमे—हैं मोती ही मोती।
अम्बर ही रोया करता है, धरती कभी न रोती॥"

(मर्त्य आह, सर्ग २०, पृ० ३६२)

'मानवेन्द्र' महाकाव्य में तृतीय खण्ड के प्रथम और प्रारम्भिक क्रम के 'सत्वार' शीर्षक २३वें सर्ग मे कवि ने बताया है कि जनविद्रोह के समक्ष आग्ल प्रशासन को अन्तत झुकना पड़ा। गोलमेज कान्फ्रेंस' का प्रस्ताव अंग्रेजी-शासन ने शान्ति और व्यवस्था की दृष्टि से किया। 'सन्धि सन्दर्भ' नामक २४ वें सर्ग मे गाधी-इरविन समझौते का उल्लेख है। अन्तत अंग्रेजी प्रशासन ने प्रांतीय स्तर पर जनशासन की बात को सिद्धान्तत स्वीकार कर लिया और फल स्वरूप देश म प्रातीय परिषदो के निर्वाचन हुए। नेहरूजी ने सुयोग्य जन प्रतिनिधियों के निर्वाचन हेतु देशव्यापी भ्रमण किया और मतदाताओं को उनक मत का मूल्य समझाया। वस्तुत जन शक्ति की यह प्रथम विजय थी, जिसके द्वारा काग्रेस के प्रतिनिधि राजकीय परिषदो मे पहुँचे—

"बिखरी जनता हुई एक मत, चुना देश भक्तो को।
मिलने लग श्रेष्ठ जन प्रतिनिधि, प्रान्तो के तख्तो को॥
काग्रेस के प्रतिनिधि पहुँचे—राजकीय परिषद् म।
जनता के मनचाहे पहुँच—शासकीय परिषद मे॥
सत्याग्रह की प्रथम विजय थी, जय का प्रथम चरण था।
पराधीनो को महासिधु मे—माना मिला धरण था॥"

(नासा सूत्र, सर्ग २३, पृ० ४०५)

जनता के प्रतिनिधि तो चुने गय किन्तु उनकी निर्धारित नीतियों को सचालित करन वाला अधिकारी वर्ग विदेशी था, अत बात विलायत की ही चलती थी। इस दोहरी नीति मे जनता को त्राण नही मिला। जनता

विक्षुब्ध हो उठीं। नेहरू जी पुनः प्रशासन के विरोध मे जनमत तैयार करने लगे। इसी बीच कमला जी का स्वास्थ्य बहुत गिर गया। वे मरणासन्न दशा को पहुँच गयीं। विदेश मे अध्ययन हेतु गयी पुत्री इन्दिरा और जेल से पति नेहरू ने आकर कमला को देखा तो स्तब्ध रह गये। पत्नी को विधिवत् संभाल भी नही पाये थे कि बिहार के भयकर भूकम्प और बाढ के कारण अपार जन-धन की हानि ने उनका ध्यान आकृष्ट कर लिया। बिहार के जननेता राजेन्द्रप्रसाद के साथ नेहरू जी ने जनसेवा के कार्यों का संचालन किया। वे स्वयं बाढ-पीड़ितो की सहायता कर रहे थे और उन्हें सब प्रकार से आश्वस्त भी कर रहे थे किन्तु—

"गूँजता था एक नारा।
वह विकट भूकम्प था या थी प्रलय की क्रूर धारा।
धूलि था ससार सारा॥
मैं मरण के वक्ष पर इतिहास, मेरी गति अमर है।
मैं क्षणिक विश्राम मे हलचल, अचल की यति अमर है॥
डूब जायेगी धरा ऐसा कभी सम्भव नही है।
ओ पराभव! काल से हारा कभी वैभव नही है॥
लौट जाओ क्रूर धारा।"
(अनुताप, सर्ग २४, पृ० ४१६)

इस दैवी-प्रकोप से जनजीवन को मुक्त कराने के प्रयत्न पूर्ण भी न हो पाये थे कि नेहरू जी को पुन. वन्दी बना लिया गया। कमला का धैर्य टूट गया। कमला की मर्मव्यथा को कवि ने इन शब्दो मे व्यजित किया है—

"ससुर गये परलोक, नाथ को—जेल ले गए जालिम।
हाय! मृत्यु शैया पर मुझको—दुःख दे गए जालिम॥
कह न पाई आज तक मन की व्यथा मन की कथा।
क्या पता किसको कि मैं ने सिन्धु आँखो मे मथा॥
रोकती हूँ पर हृदय थमता नही, क्या हो गया।
जान पडता है कि मेरा आज सब कुछ खो गया॥"
(वही, सर्ग २४, पृ० ४२४)

अन्ततः कमला का निधन हो गया। कमला की अर्थी सवहन करते हुये जवाहर के मन. सकल्प को शब्दबद्ध करते हुए कवि कहता है कि वह

अद्वितीय देश सेविका थी क्योंकि देश की स्वतन्त्रता के लिए उसने सब प्रकार का त्याग किया और कष्ट सहे। उसका प्राणदान महान् उत्सर्ग का ही परिचायक है—

"सब संकल्प त्याग कर कमला, मुक्ति हेतु जीती थी।
स्वतन्त्रता के लिए दृगों में, ,सब आँसू पीती थी॥
× × ×
लो मरघट आ गया, कहानी खत्म हो गई सारी।
प्राणदान दे गई देश को, एक पुरुष की नारी॥"

(वही, सर्ग २४, पृ० ४३५)

द्वितीय विश्व युद्ध का समारम्भ हुआ। यह युद्ध इतना भयानक था कि धरती काँप उठी थी। महायुद्ध के भीषण क्षण मे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि हिटलर के शस्त्रास्त्रो से इसी युग मे महाप्रलय हो जायगी। द्वितीय विश्व युद्ध के विनाशकारी परिदृश्य का काव्यांकन कवि ने सकौशल किया है। एक अंश द्रष्टव्य है—

"सैनिकों की टोलियाँ लावारिसो सी जल रही हैं,
जगलो मे सड रहे शव, न कोई पास उनके
चील कौवे तक घृणा करने लगे हैं,
× × ×
दृश्य ये वीभत्स मरघट से भयानक,
रुड-मुडो से भरे मैदान देखो,
ये भुजाएँ काल जिनसे काँपता था—
काल कवलित हो गईं वन मे पडी हैं,
चीटियाँ जिनको लिपट कर खा रही हैं,
रक्त, आमिष और मज्जा से लिपे मैदान देखो।"

(सघात, सर्ग २५, पृ० ४४४-४४५)

ब्रिटिश सरकार ने भारतीय नेताओ से पूछे बिना ही भारत को युद्ध में घसीट लिया। फलस्वरूप कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलो ने त्यागपत्र दे दिए। गांधीजी ने सत्याग्रह का समारम्भ कर दिया। अंग्रेज युद्ध मे बुरी तरह उलझ गये थे। भारतीयो से सहयोग प्राप्ति हेतु ब्रिटिश सरकार ने एक मिशन क्रिप्स के नेतृत्व मे भारत भेजा और क्रिप्स ने विभिन्न प्रस्तावो द्वारा आश्वासन और

प्रलोभन दिए। इन्हीं दिनों सुभाषचन्द्र बोस ने प्रवासी भारतीयों की एक शक्तिशाली सेना का संगठन जापान में कर लिया था, जिसका नाम—'आजाद हिन्द फौज' था। वे भी भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए प्रयत्नशील थे। अतः नेताजी ने नेहरू जी सहित भारतीय जननेताओं को परामर्श दिया कि अंग्रेज कभी भारत नहीं छोड़ेंगे, इनके आश्वासन धोखे से भरे हैं। अपने उद्देश्य का स्पष्टीकरण करते हुए सुभाष ने कहा—

'मैं सभी को मुक्ति देना चाहता हूँ,
मैं दलित की जिन्दगी की युक्ति देना चाहता हूँ,
मैं गुलामी की लकीरों को मिटाना चाहता हूँ
माँगने वाले फकीरों को बसाना चाहता हूँ
चाहता हूँ सन्त जिनमें शक्ति हो युक्ति,
भक्ति हो निज देश हित अनुरक्ति हो कुछ,
व्यक्ति को मैं शक्ति का दीपक बनाना चाहता हूँ,
मैं तुम्हारे हित स्वयं तक को मिटाना चाहता हूँ,
मैं अन्धेरे को नया दीपक दिखाना चाहता हूँ,
मन्त्र 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' गाना चाहता हूँ।"

(वही, सर्ग २५, पृ० ४४६)

कवि ने सुभाषचन्द्र बोस के जोश की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। सुभाषचन्द्र बोस सचमुच भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के महान् नेता थे। उनकी क्रान्ति भावना निष्कलुष, देश प्रेम निष्काम और संघर्ष निस्वार्थ था। इसीलिए द्वितीय विश्वयुद्ध के अवसर पर भारतीयों का आह्वान करते हुए उन्हें राष्ट्र-मुक्ति के लिए अनुप्रेरित करते हुए कहा था—

"इस तरफ से मैं बढ़ूँ उस ओर से तुम,
मुक्त करलो देश निज तलवार से तुम,
तुम, विजय पाओ, तुम्हारा देश होगा,
हर गली पर राज्य करना, मुझे इसमें खुशी है।
मैं तुम्हारे हित लड़ाई में सन्न हूँ,
चाहता हूँ मुक्त हो हर देश, जग में सब सुखी हो।
नियम के याधीन हो सब,
और अनुशासन प्रशासन में सभी निरत कर्मरत हों,
व्यक्ति अपने देश-हित व्यक्तित्व अपना भूल जाये,

देश हो हो धर्म उसका, देश ही हो कर्म उसका,
व्यक्ति की आत्मा अखिल आलोक मे हो,
देवता हर देश मे दिव्याशु सा हो,
रण नही, यह अर्चना है।"

(वही, सर्ग २५, पृ० ४४७)

इसी बीच भारत में 'भारत छोडो' आन्दोलन का समारम्भ हो गया। भारतीय नेता अंग्रेजी-शासन की अवसरवादी कूटनीति से अवगत हो गए थे। अत: उन्होंने नेहरू के नायकत्व में पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग की। एक ऐसी व्यापक क्रान्ति-भावना जन-जन में जाग उठी, जिसने अंग्रेजी प्रशासको को दहला दिया। वीर जवाहर ने अपने सकल्प को इस प्रकार व्यक्त किया—

"व्यापक क्रान्ति भावना जागी, जन जन मे मन-मन मे।
× × ×
वायसराय, गवर्नर, सेना, पुलिस, दहल थी सब मे।
स्वतन्त्रता का महासागर था, चहल पहल थी सब मे॥
× × ×
जन जन के मन बने जवाहर, झण्डा फहराते थे॥
ध्वज की लहरो से धरती के, सागर लहराते थे॥
कहते थे सब ठोक जवाहर, हम स्वतन्त्रता लेंगे।
या तो आजादी लेंगे हम, या जीवन दे देंगे॥"

(प्रवरण, सर्ग २६, पृ० ४५६)

जवाहर ने कहा कि अब ब्रिटिश शासन समाप्त होगा। या तो हम आजाद होगे या मर मिटेंगे। देशवासियो को स्वाधीनता-सगर मे प्राणोत्सर्ग के लिए आहूत करते हुए उन्होंने कहा—

"चाहे सम्मुख काल आ अडे, पीछे हम न हटेंगे।
झम्पा नाचे, अणु बम बरसें, आगे वीर डटेंगे॥
शपथ हमे है भारत माँ की, शपथ ध्वजा की हमको।
युद्ध क्षेत्र से नहीं हटेंगे, बिना हटाये तम को॥
फर फर उडता हुआ तिरगा, जन जन का तनमन धन।
इस झण्डे से बडा नही है—तन मन धन या यौवन॥

इस झण्डे को उठा बढ चलो, स्वतन्त्रता के रण मे।
आओ प्यारे वीरो ! आओ, इन्कलाब कण कण मे ॥"
(वही, सर्ग २६, पृ० ४५६)

आठ अगस्त सन् १९४२ का ऐतिहासिक दिवस आया। अंग्रेजों ने सभी भारतीय नेताओ को बन्दी बना लिया। कवि के अनुसार यद्यपि जवाहर बन्दी थे किन्तु उनका क्रान्तिमन्त्र आह्वान् जन-जन मे गूँज रहा था। प्रत्येक देशवासी आज आत्मोत्सर्ग के लिए सन्नद्ध था—

"नेता बन्दी, बन्द नही था क्रान्तिदूत का नारा।
कही ताप से आग धधकती, और कही अँगारा ॥
× × ×
एक जवाहर बन्द कर दिये, कोटि जवाहर जागे।
करने या मरने को अगणित, थे मशाल से आगे ॥
चली गोलियाँ, रुके न सैनिक, माता की जय बोले।
मानो मन्दिर मे भक्तो के स्वर गूँजे बम भोले ॥
कट-कट कर शीश गिरे धरती पर उठ-उठ बढे सिपाही।
मरने वाले से आगे था, बढने वाला राही ॥
× × ×
सब शहीद होने को आकुल, मैं आगे बढ जाऊँ।
फूल पुजारी से कहता था, पहले मैं चढ जाऊँ ॥"
(वही, सर्ग २६, पृ० ४६३)

सन् ४२ मे जो अदम्य उत्साह जन जीवन मे उमडा था, वह अभूतपूर्व था। स्वाधीनता पर्व पर मरण को महोत्सव मानकर प्राणोत्सर्ग करने वाले देश भक्त कोटि कोटि की सख्या मे निकल पडे थे। इन देश भक्तो के सकल्प और उत्साह को कवि ने इस प्रकार शब्दाकित किया है—

"बलिदानो की चाह भरी थी-हर जवान के मन मे।
ध्वजा उठाने की इच्छा थी हर उठते यौवन मे ॥
जेल भेज दो, फाँसी दे दो, तोपो से उडवा दो।
तन मन धन सब कुर्क करालो गोलो से फुकवा दो ॥
सब सह लेंगे स्वतन्त्रता हित, मिटने को हम आये।
सर से कफन बाँध आये हैं, शीश हाथ पर लाये ॥"
(वही, सर्ग २६, पृ० ४६६)

इन देश भक्तो मे स्वातन्त्र्य-चेतना का आह्वान लोक-नायक नेहरू ने ही किया था। जवाहर एक ऐसे आलोक स्तम्भ के समान थे जिसने जन-जन के उर को आलोकित किया। वे अमरदीप थे, जिन्होने प्रत्येक जन के चेतना-दीप को दीप्तिमान किया। कवि के शब्दों मे—

"एक दीप यह देश दीप है, अमर जवाहर प्यारा।
संकीर्त्तन हम युगनायक के, वह आँखो का तारा॥
हम सब उसकी वाणी के पग हैं, हम सब उसके नारे।
यह मत समझो शलभ जल गये, शलभ बने अँगारे॥"

(वही, सर्ग २६, पृ० ४६६)

'भारत छोड़ो' आन्दोलन एक अभूतपूर्व क्रान्ति-प्रयाण था। इस प्रयाण की ओर प्रथम चरण लोकनायक नेहरू ने बढाया था, किन्तु कालान्तर मे करोड़ो कदम इस ओर बढते गये। और प्रत्येक बढता कदम बलिदान का कीर्तिमान सस्थापित करने के लिए कृत संकल्प था। अस्तु, जवाहर को बन्दी बना कर भी अँग्रेजी प्रशासक जनक्रान्ति को शान्त करने मे सफल न हो सके। कवि के शब्दों में—

"आओ, दो बलिदान देशहित, गाता था अंगारा।
जाओ, हटो छोड दो भारत था कण-कण का नारा॥
× × ×
समय आ गया भारत छोडो, वर्ना मिट जाओगे।
अतिथि, चले जाओ आदर से, वर्ना पछताओगे॥
× × ×
बन्द जवाहरलाल किन्तु हर प्राणी मतवाला है।
स्वतन्त्रता का अन्तिम मोर्चा, हर मनुष्य भाला है॥
× × ×
देखा जिधर उधर ही देखी-स्वतन्त्रता की ज्वाला।
आजादी की आग राग से-काँप उठा तम काला॥

(वही, सर्ग २६, पृ० ४६६-४७१)

'सन्तापन' शीर्षक २७वें सर्ग मे कवि ने भारत-विभाजन की पृष्ठभूमि का मर्मान्तक चित्रण किया है। विभाजन के लिए ललनाओ के सुहाग लुटे, बहनो के रक्षा बन्धन टूटे, वृद्धो के सहारे लड़खड़ाये, बालको के भाग्य डूबे,

कुमारियो की लाज लुटी और राजनीतिक कुत्सा का वीभत्स, कलुषित और नृशस कांड देखकर जन-नेता सतप्त हो उठे। लोकनायक नेहरू का हृदय सन्तप्त था यह सोचकर कि स्वाधीनता प्राप्ति से पूर्व ही भारत का एक अग विदेश बन जायगा तथा गगा और यमुना की धाराएँ बँट जायेंगी। जवाहर की सन्तप्त मनोदशा का वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि—

"स्वतन्त्रता आने से पहले-कितना रक्त छनेगा।
क्या मेरे भारत मे निश्चित नया विदेश बनेगा॥
क्या गगा-जमुना का पानी दो धारो मे होगा।
क्या अभिषेक देश का मेरे सहारो मे होगा॥"

(सन्तापन, सर्ग २७, पृ० ४७८)

देश को मुक्त कराने के लिए जननेताओ को विभाजन रूपी विषपान करना पडा। अन्तत लोक और लोकनायक के अथक प्रयत्नो तथा अप्रतिम बलिदानो से भारत माँ की दासता के बन्धन टूटे। 'आलोक किरण' फूटी। भारत स्वतन्त्र हुआ। लाल किले पर 'विजयी विश्व तिरगा फहराया। स्वतन्त्रता की आलोक किरण से जन मानस जगमगा उठा। कवि ने स्वाधीनता की देवी का अभिनन्दन करते हुए राष्ट्र के अभ्युत्थान और जवाहर तथा जनता-जनार्दन के सुखद भविष्य के लिए मागलिक कामना इस प्रकार की है—

"अमर ज्योति आलोक किरण हो, 'पाराशरि के स्वर हो।
स्वतन्त्रता की उजियाली से विषा-दीप विषधर हो॥
जया, जवाहर ज्योति, जनार्दन ? जय ब्रह्मा की वय हो।
अर्णवोद्भवा ! आओ गाओ द्रव्यार्जन अक्षय हो॥"

(आलोक-किरण, सर्ग २८, पृ० ५०३)

मुक्तजन मानस ने स्वाधीनता की देवी का मुक्त मन से अभिनन्दन किया। देश ने गाधी जवाहर, सुभाष, पटेल, राजेन्द्र प्रसाद प्रभृति नेताओ के प्रति आभार प्रगट किया जिनकी त्यागमयी कर्मठ साधना से स्वतन्त्रता का प्रकाश भारत मे फैला। नेहरू की प्रशस्ति मे कहा गया—

"धन्य धन्य वह मानवेन्द्र जो दीप लिए आता है।
मानो इन्द्रपुरी को अपने हाथो पर लाता है॥
जय जय जय धरणेन्द्र ? धरित्री धन्य तुम्हारी गति से।
मुक्त ! देश को मुक्ति मिली है-अगारो की व्रति से॥"

(मुक्तिपूजा, सर्ग २९, पृ० ५०७)

किन्तु नेहरू जी ने अपने भाषणो और व्याख्यानों में सर्वत्र ही स्वाधीनता-प्राप्ति का श्रेय राष्ट्रपिता महात्मा गाधी को दिया । उन्होने देश पर बलिदान होने वाले असख्य ज्ञात-अज्ञात देशभक्तो का कृतज्ञतापूर्वक यथाअवसर पुण्य-स्मरण किया । नेहरू जी ने कहा कि स्वाधीनता का इतिहास शहीदो ने सुर्ख-स्याही से और माँ बहिनो ने आँसुओ से लिखा है । उन्होने स्वाधीन राष्ट्र को जन-सम्पदा घोषित किया । उन्होंने कहा कि राष्ट्र का नव-निर्माण शक्ति, श्रम और साधना से ही सम्भव है—

"गा रहा धरणेन्द्र पूजा के स्वरो मे,
ओ महामानव ! धरा यह धन्य तुझ से ।

× × ×

मुक्ति का स्वागत नये इतिहास से है,
यह नया इतिहास बदला या पुरातन फिर नया है,
सिद्धि जनता, साधना जनता, प्रजा राजा बनी है,
यह सभी का देश है अब, राज्य है इस पर सभी का,

× × ×

मन्दिरो मे देवताओ की नई आराधना यह,
शक्ति से, श्रम से, हृदय से, बुद्धि से, शाश्वत स्वरो से ।"

(वही, सर्ग २९, पृ० ५१२-५१३)

'मानवेन्द्र' महाकाव्य के 'चतुर्थ खण्ड' के 'धर्माचरण' शीर्षक ३०वें सर्ग मे कवि ने स्वतन्त्र भारत की शासन व्यवस्था के आदर्श रूप का निरूपण किया है जिसका निर्देश राष्ट्रपिता गाधी ने लोकनायक नेहरू को दिया । बापू ने जवाहर को कहा कि देश का पुनर्जन्म हुआ है, तुम दिवाकर की भाँति तप कर कठोर साधना द्वारा देश के जन जन की सेवा का व्रत लो । राजधर्म को तपश्चर्या मानकर उसका निर्वाह करो । शासन का ऐसा आदर्श रूप निर्मित करो जो सर्वहित सवर्द्धक हो—

"वीर केसरी ! राजधर्म का चरण शुरू होता है ।
राजा वह है जो जनताहित-तन मन धन खोता है ।।
मानव थे, अब मानवेन्द्र हो, निज पथ भूल न जाना ।
सिंहासन पर राजधर्म को, तप तप धरुण निभाना ।।

मानवेन्द्र ! तेरे शासन को-कोई ताप न घेरे।
दैहिक दैविक भौतिक दानव-चरण तले हो तेरे ॥"

(धर्माचरण, सर्ग ३०, पृ० ५२७)

इसी बीच काश्मीर पर पाक आक्रमण हुआ, जिसका भारतीय सेनाओ ने मुँहतोड उत्तर दिया। देश की एकता और जनतन्त्र की सार्थकता के लिए सरदार पटेल के कूटनीतिक प्रयासों से रियासतो को मिलाया गया। जनतन्त्रीय व्यवस्था मे राजतन्त्र की शासन-पद्धति बाधक ही थी, अत उसका निवारण आवश्यक था। क्योंकि—

"प्रजातन्त्र का अर्थ प्रजा का, राज्य प्रजा का धन हो।
प्रजातन्त्र के सिंहासन पर कोटि कोटि का मन हो ॥
जन जन मानवेन्द्र बन जाये, प्रजा राज्य हो ऐसा।
प्रजातन्त्र के सगम पर है—राज्यतन्त्र यह कैसा।"

(जन मन, सर्ग ३१, पृ० ५४४)

बापू ने स्पष्ट शब्दो मे मानवेन्द्र को बता दिया कि स्वाधीन—भारत के विधान और शासन का लक्ष्य जन-कल्याण ही है। जन-जीवन की विषमता का सभी स्तरो पर निवारण स्वशासन का मूलभूत प्रयोजन है। भारत के प्रधानमन्त्री से बापू ने अपेक्षा की कि—

"मानव का मन अमृत स्रोत हो, कर्म करो अब ऐसे।
सस्तृति धर्म दीप हो जाए, धर्म करो सब ऐसे ॥
अरे ! राज्य का अर्थ विषमता मिटे सरस हो जन मन।
जनहित स्वय समर्पित कर दें-जन जन सब तन मन धन ॥

× × ×

व्यर्थ सभी सघर्ष अगर जन-जनहित रहें न जीते।
व्यर्थ कर्म सब जो जनता के पास रह गये रीते।

× × ×

सिद्धि मिलेगी, मुक्ति मिलेगी, जनता के अर्चन से।
रत्न मिलेंगे, अमृत मिलेगा-जनता के मन्थन से ॥"

(वही, सर्ग ३१, पृ० ५४७-५४८)

'सृजन सोपान' शीर्षक ३२ वें सर्ग मे कवि ने राष्ट्र निर्माण की योजनाओं एव विकास कार्यक्रमो का वर्णन करते हुए कहा है कि—

"पढ अनन्त के गीत प्रकृति मे मुखर हुई युग भाषा।
मानवेन्द्र के मुख से निकली, जन जन की अभिलाषा ।।
धन्धे बढने लगे देश मे—यन्त्रो की गतिविधि से।
बडे-बडे उद्योग खुल गए—यहाँ वहाँ की निधि से ।।"

(सृजन सोपान, सर्ग ३१, पृ० ५६६)

देश स्वाधीन हुआ, स्वशासन हुआ और सर्वतोमुखी विकास के कार्यक्रम भी बने, किन्तु पूँजीवादी तथा साम्प्रदायिक शक्तियाँ देश के जन-मन का शोषण भी करती रही। स्वार्थी-तत्व राष्ट्रीय-जीवन को खोखला बनाते चले गए। सामान्य जन की शोचनीय दशा और अन्तर्दाह को कवि ने इन शब्दो मे व्यजित किया है—

"भारत की प्रतिमा अधीर है, अर्चन अभी अधूरा।
जब तक है अनर्थ जन-मन मे, तब तक अर्थ न पूरा ।।
× × ×
यह कैसा उत्थान, पतन के—भूत आक्रमण करते।
मन मे इतना गरल भर गया, मधु पी पी कर मरते ।।
× × ×
बढ़ते जाते स्वार्थ देश पर, आँधी आती जाती।
भव्य भावना दीप जलाती, हवा बुझाती जाती ।।"

(अन्तर्दाह, सर्ग ३३, पृ० ५७८)

कवि पश्चात्ताप पूर्ण शब्दो मे कहता है कि देश का शासन बदल गया किन्तु देश वासी नही बदले। देश की सम्पदा पर पूँजीपति नाग की भाँति शोषण की कुण्डली मारे बैठे हैं। लाखों शहीदो के बलिदान से जो धरती आजाद हुई वही शोषण से पीडातुर होकर आँसू बहा रही है। लाखो आस्थाएँ, जिन्होंने, सिन्दूर को राख मे बदलकर देश के भाग्य को बदला वे व्यथित होकर आहें भर रही हैं। इसी प्रकार यदि विषमता का विस्तार होता गया तो स्वतन्त्रता सकट मे पड सकती है। अस्तु, कवि ने राष्ट्र को सजग करते हुए कहा कि—

"अमर शहीदो की थाती है, बलिदानों की थी है।
कोटि कोटि लालों की निधि है, अभिमानो की श्री है ।।
× × ×
यह शुभ कर्मो की छाया है, बडी तपस्या का फल।
यह जीवन की अमर ज्योति है, नयनो का गगाजल ।।

इस पर आँच न आने पाये, सावधान रखवालो ।
इस की जय के गीत छाँह मे, श्रम साजो पर गालो ।।"

(अन्तर्दाह, सर्ग ३३, पृ० ५८७)

नवस्वतन्त्र राष्ट्र की दारुण परिस्थितियो ने राष्ट्र नायक नेहरू को चिन्तित बना दिया । उन्होने कहा कि बापू के तप और शहीदो के बलिदान से अर्जित स्वातन्त्र्य सम्पदा को हम यो नही लुटने देंगे । नेहरू जी और अधिक शक्ति से राष्ट्र के अभ्युदय के लिए कृतसकल्प हुए —

"स्वतन्त्रता को दुखी देखकर, दुखी हुए नरनाहर ।
जनता के हित जनशासन मे, तपने लगे जवाहर ।।

× × ×

पर जब तक माँ ! श्वास देह मे, हार नही मानूँगा ।
जीते जी जग के जीवन को, मार नही मानूँगा ।।

× × ×

जग का सारा विष पी लूँगा, माँ ! मतकर इतना गम ।
तब तक जलज नही सूखेंगे जब तक रविशशि का दम ।।"

(वही, सर्ग ३३, पृ० ५९३)

स्वतन्त्रता रूपी अमृत के साथ साथ राष्ट्र को विभाजन रूपी गरल भी मिला । विभाजन के परिणाम स्वरूप देशव्यापी साम्प्रदायिक दगे प्रारम्भ हो गए । कवि के शब्दो मे—

'स्वतन्त्रता के दीप जले तो—वही रक्त की धारा ।
पाकिस्तान बना क्या, जीवन—बना जहर अपारा ।।
मानव की वह नर विभीषिका—बढती ही जाती थी ।
हिन्दू मुस्लिम रक्तपात मे—रक्तोपल थाती थी ।।"

(सूर्यास्त, सर्ग ३४, पृ० ५९५)

बापू नोआखली पहुँचे । उन्होंने असख्य सभाएँ समायोजित की । हिन्दुओ और मुसलमानो को मानवता की दुहाई देकर राष्ट्रीय एकता का महत्त्व समझाया । बापू के अल्पहार रूपी अनशन तथा प्रार्थना सभाओ का अपेक्षित प्रभाव भी हुआ । हत्यारे भी लज्जित होकर उनके आगे नतमस्तक हो गए, खूँखार मन द्रवित हो गए, रक्तिमवर्ण नेत्र आँसू बहाने लगे और मरघट

सदृश्य उजडा जीवन पुन लहलहा उठा। यद्यपि बापू का विरोध भी किया गया किन्तु वे अपने निश्चय से विचलित नहीं हुए। कवि के शब्दो मे एक लँगोटी वाला धरती का विषपान शिव के समान कर रहा था—

"विजय कर्म की, जीत दान की, धर्म फला करता है।
संघर्षों मे जीने वाला-कभी नही मरता है॥
धरती का विष पीने निकला-एक लँगोटी वाला।
दिशा दिशा मे घूम रहा था-एकाकी उजियाला॥"

(वही, सर्ग ३४, पृ० ५९९)

इधर दिल्ली मे भी साम्प्रदायिक दगे भडक उठे। बापू ने दिल्ली आकर अपनी प्रार्थना सभाओ मे हिन्दू मुस्लिम एकता तथा ईश्वर-अल्ला के अभेदत्व का प्रतिपादन प्रारम्भ किया। किन्तु अन्धे साम्प्रदायिक तत्वो ने षड्यन्त्र रचकर तीन गोलियाँ दागी और युगपुरुष शिव को शान्त कर दिया। काल के क्रूर नयन की दृष्टि से युगद्रष्टा बापू भी न बच सके—

"तभी काल ने क्रूर नयन से-राष्ट्रपिता को देखा।
पुण्य भूमि पर स्वर्ग भूमि पर-खिची रक्त की रेखा॥
नमन काल ने किया और फिर-तीन गोलियाँ दागी।
युग का शिव सो गया शान्ति से-सूर्य रश्मियाँ भागी॥"

(वही, सर्ग ३४, पृ० ६०३)

बापू का निधन इतना दुखद था कि सर्वत्र करुणा का परिदृश्य व्याप्त हो गया। चन्दा और सूरज रोये, विश्व शून्य हो गया, चेतन जड हो गए, मेदिनी करुणा विगलित होकर मातम मना रही थी। बापू के अवसान पर लोकनायक नेहरू इतने शोक सन्तप्त थे कि मानो सर्वस्व लुट गया हो। गाधी की चिता के सन्निकट खडे शोक सन्तप्त जवाहरलाल की मनोदशा को अकित करते हुए कवि ने लिखा है—

"जो अनाथ का नाथ आज वह—है अनाथ यह देखो।
चिता किनारे अश्रु पोंछता—मानवेन्द्र वह देखो॥
आह ! जवाहरलाल आज यह—खडा शून्य मे ऐसे।
जन्म जन्म मे ज्ञान प्राप्त कर—ज्ञान भ्रमित हो जैसे॥
जैसे सिद्धि प्राप्त कर कोई—विस्मृति मे सोया हो।
जैसे योगसिद्धि का फल पा—सिद्ध पुरुष सोया हो॥"

(वही, सर्ग ३४, पृ० ६०४)

'भावलोक' शीर्षक ३५वें सर्ग मे कवि ने स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्र के नवनिर्माण और विश्वशांति के लिए किए गये नेहरू जी के महाप्रयासो का समोल्लेख किया है। लोकनायक नेहरू ने यह महत् सकल्प किया था कि राजतन्त्र की बिडम्बनाओ और छलछद्मो से सत्रस्त भारतीय जन जीवन को सत्य, श्रम, कर्त्तव्यनिष्ठा और स्वतन्त्र साधना द्वारा अभावयुक्त राष्ट्र के रूप मे बदलूँगा। निर्माण के इस पुनीत सकल्प का शब्द-चित्र द्रष्टव्य है—

"सत्य से, शिव से घरा की आरती होगी,
आरती श्रम से, सभी के धर्म के फल फूल,
मृत्यु से ऊपर रहेगे कर्म की होगी
प्यार से सौन्दर्य मे सौरभ रहेगा,
शक्ति हाथो म लगन मे महकती होगी।
ये सभी निर्माण करने हैं मुझे पावन धरा पर—
जो धरा पर हो चुके हैं, हो रहे, होते रहगे,
दीन हीनो के अभावो को हरेंगे जो।"

(भाव लोक, सर्ग ३५, पृ० ६०६)

स्वराष्ट्रीय अभ्युदय के साथ-साथ नेहरू जी ने पचशील के सिद्धान्तो, सह-अस्तित्व की भावना और गुट निरपेक्ष तटस्थ वैदेशिक नीतियो के प्रचार-प्रसार द्वारा विश्व मे शान्ति और सुरक्षा की भावना उत्पन्न की। मानवोत्थान के चिरन्तन सिद्धान्तो के प्रसार हेतु उन्होने विश्वव्यापी भ्रमण भी किया। नेहरू जी के विश्व मानवतावादी प्रयासो के सम्बन्ध मे कवि का कथन है कि—

"देश देश ने बात सुनी यह, देश देश ने मानी।
दीप जलाने लगा विश्व मे, वह दीपो का दानी॥
मानवेन्द्र युग पुरुष जवाहर, दीप दिखाता घूमा।
पचशील के सिद्धान्तो के—सबक सिखाता घूमा॥
कभी चीन मे, कभी रूस मे, कभी एशिया भर मे।
पथ दिखलाता भ्रमण कर रहा, दीपक डगर डगर मे॥"

(गन्ध पवन, सर्ग ३६, पृ० ६२७)

नेहरू जी ने एशिया और अफ्रीका के दुर्बल और पराधीन राष्ट्रो के मुक्ति-सघर्षो का भी समर्थन किया। मानवता के कल्याण का जो पावन सन्देश गौतम और ईसा ने दिया था, वही युगवाणी के रूप मे लोकनायक नेहरू के मुख से सरस्वती कल्याणी का स्वर बन कर मुखरित हुआ—

"देते हैं सन्देश मेल का, सहअस्तित्व सिखाते।
मानवेन्द्र मँझधार पी रहे, तट का दीप दिखाते ।।
जो सदेश दिया गौतम ने, वही गीत गाते हैं।
जो संदेश दिया ईसा ने, वह ये फैलाते हैं ।।
मानो नीति पुरुष के मुख से, मुखर विदुर ये वाणी।
मानो शान्ति पुरुष के मुँह पर, सरस्वती कल्याणी।"
(वही, सर्ग ३६, पृ० ६३६)

मानवता के सुखद भविष्य के मगलाकाक्षी मानवेन्द्र के अथक प्रयत्न अभी चल ही रहे थे कि पडोसी और भाई राष्ट्र चीन ने धोखे से अपनी बर्बर विस्तार-वादी आकाक्षाओ को सम्पूर्ति हेतु भारत की सीमाओ पर आक्रमण कर दिया। हिमालय रक्त रजित हो गया। युगो से भारत के गौरव का रक्षक स्वय रक्षा के लिए पुकारने लगा। देश की मान-मर्यादा पर आँच आती देखकर जवाहर नरनाहर बनकर हुँकार उठे। सम्पूर्ण राष्ट्र को बलिदान करने के लिए आह्वान किया। उन्होने कहा—

"यह धरती अभिमानो से, यह धरती बलिदानो से ।।
बलिदानो से सीमा रक्षा, बलिदानो से होती जय।
तप से सिद्धि मिला करती है, तप से सुरभित होती वय ।।
स्वतन्त्रता बलिदानो की निधि अरमानो की थाती है।
फूलो के मिस मौन धरा यह, वीरो से मुस्काती है ।।
होगी जीत जवानों से, यह धरती बलिदानो से ।।"
(सीमाग्, सर्ग ३७, पृ० ६४६)

लोकनायक की वाणी का विलक्षण प्रभाव हुआ। सम्पूर्ण राष्ट्र उत्सर्ग के लिए सन्नद्ध हो गया। कोटि-कोटि स्वरो मे लोकनायक की ही अनुगूँज सुनाई दी कि मर मिटेंगे किन्तु भारत की मान-मर्यादा को खंडित नही होने देंगे। दुश्मन से लोहा लेने को सम्पूर्ण राष्ट्र एकजुट हो गया। देश मे एकता, बलिदान और राष्ट्रभक्ति का अपूर्व भावोदधि तरगित हो उठा—

"भारत की मिट्टी मिट्टी से-गूँजे स्वर धरती पर।
मिट जायेंगे, धरा न देंगे, सदा सहायक शकर ।।
रक्त बहुत है पर पीने को दान नही हम देंगे।
मर जायेंगे स्वतन्त्रता का-मान नही हम देंगे ।।

कण-कण की आवाज यही थी, भारत भर हुँकारा।
तन से नाता छोड़ युद्ध मे हर-सैनिक फुँकारा॥
कोटि कोटि स्वर एकहो गये-कोटि कोटि पगभचले।
बालक बदले, बूढ़े बदले, भोले शंकर बदले॥"

(वही, सर्ग ३७, पृ० ६५४)

सम्पूर्ण राष्ट्र ने पूरी शक्ति से यद्यपि आक्रान्ता से लोहा लिया और उसे ढकेल भी दिया किन्तु आकस्मिक आक्रमण के कारण कुछ सीमान्त प्रदेश शत्रु हड़प गया। लोकनायक नेहरू को राष्ट्रीय क्षति से मानसिक आघात पहुँचा। नेहरू जी की शारीरिक रुग्णता के प्रति समय-समय पर इंदिरा जी ने चिन्ता भी प्रकट की। किन्तु मानवेन्द्र ने अपने अपराजेय साहस के बल पर अपनी कर्मनिष्ठा की ज्योति को अमंद और प्रज्ज्वलित ही रखा। पुत्री की चिन्ता का निवारण करते हुए उन्होंने अदम्य उत्साह से भरे स्वर में कहा—

"जब तक तन मे श्वास इन्दिरा, तब तक मैं न रुकूँगा।
बेटी! किसी कष्ट के आगे-हरगिज नही झुकूँगा॥
सुते! देह का अर्थ चले तन, पाप पलायन करना।
दुःख दीप बन जाते पथ में, दुःखो से क्या डरना॥
× × ×
दसो दिशाओ मे जाना है, अम्बर मे जाना है।
सागर मे गाना है मुझको, पर्वत पर गाना है॥"

(ध्रुवो मृत्यु, सर्ग ३८, पृ० ६७३)

जीवन के अन्तिम क्षण तक नेहरू जी इसी उत्साह और निष्ठा से कर्मरत रहे। किन्तु मृत्यु ध्रुव सत्य है। कराल काल ने माली की भाँति एक दिन जवाहर गुलाब को जीवन वृन्त से तोड़ लिया। नेहरू के निधन की सूचना से सम्पूर्ण राष्ट्र शोक सिन्धु मे डूब गया। मानवेन्द्र के देहावसान पर दिशाएँ रो पड़ी। चराचर मे शोक-सवेदना परिव्याप्त दृष्टिगत हुई। शोक-सन्तप्त प्रकृति को चित्रांकित करते हुए कवि ने लिखा है—

"हर दिशा से रुदन गीत आने लगे।
दर्द बेहोश मातम मनाने लगे॥
चाँद तारे रुके, सूर्य का दम घुटा।
मृत्यु के हाथ से ब्रह्म कैसा लुटा॥
× × ×

सिन्धु बेहोश था, पेड़ बेहोश थे ।।
शोक ऐसा बढ़ा, शब्द खामोश थे ।
हर दुआ रो पड़ी, हर हवा रुक गई ।
हर दिशा का नमन, हर ध्वजा झुक गई ।।
आह ! शशि सो गया, आह ! रवि सो गया ।
आह ! क्या हो गया, आह क्या हो गया ।।"

(वही, सर्ग ३८, पृ० ६७८)

नेहरू के निधन पर विश्व भर में शोक संवेदनाएँ प्रगट की गयीं, राष्ट्र-ध्वज झुक गए, कवियों ने नानाविध भावांजलियाँ समर्पित कर युग पुरुष का स्तवन किया। 'मानवेन्द्र' के रचयिता ने पश्चातापपूर्ण स्वर में कहा है —

"तुम मरण पर भी वरण हो, युग युगान्तर के चरण तुम ।
दान धरती के गगन को, देवताओं के वरण तुम ।।
जन्म ले तुम को धरा की वेदना हरनी पड़ेगी ।
धर धरा ! धीरज मरण की अति सहन करनी पड़ेगी ।।"

(वही, सर्ग ३८, पृ० ६८७)

राष्ट्रनायक नेहरू के पश्चात् भारतीय जीवन में परिवर्तन के कुछ परिदृश्य उभरे। परिवर्तन के क्रम में एक महत्त्वपूर्ण घटना थी—पाक आक्रमण। इस अवसर पर पुन. देश के नौनिहालों ने प्राणोत्सर्ग कर राष्ट्र-रक्षण किया। इस अवसर पर राष्ट्र प्रेम का उदात्त स्वरूप सर्वत्र दृष्टिगत था। देश के जन जन का एक ही नारा था—

"भारतवर्ष अजेय हमारा, झंडा नहीं झुकेगा ।
कह दो झंझाओं से कह दो—दीपक नहीं बुझेगा ।।
× × ×
देशहित जीना हमारा, देशहित मरना हमारा ।
देश मन्दिर, देश माला, देश सूरज, देश तारा ।।"

(परिवर्तन-सर्ग ३९, पृ० ७१२-७१३)

'दीप पुरुष' शीर्षक काव्य के अन्तिम अर्थात् ४० वें सर्ग में कवि ने दार्शनिक शैली में नेहरू के आविर्भाव को नारायण के अवतरण की संज्ञा दी है। सर्गान्त में कवि ने मानवता के अभ्युदय की मंगल-कामना की है—

"भूमा धन्य बने मानव से, शक्ति यज्ञ से सुख हो।
शिव के चरणों में कविता का, शैल-सुता सा मुख हो।

अति शक्ति का गढ़ कम्पन हो, शेष पुण्य की जय हो।
क्षय हो सब दुर्भावनाओं की, आत्मोज निर्भय हो।"

(वही, सर्ग ४०, पृ० ७२७)

इस प्रकार लोकनायक जवाहरलाल नेहरू के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सर्ग क्रमानुसार 'मानवेन्द्र' महाकाव्य के माध्यम से अनुशीलन करने के पश्चात् हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। इस सम्बन्ध में डॉ० भागीरथ मिश्र का यह कथन उद्धरणीय है कि—"पंडित नेहरू का व्यक्तित्व और जीवन इतना बहुमुखी था कि उनको किन्हीं निश्चित पक्षों के घेरे में बाँधना सम्भव नहीं। वे धर्मस्थानों में परम शान्ति के रूप में दिखलायी पड़ते थे। विचारगार में विचारक, खेल कूद के मैदान में खिलाड़ी, कलाकारों के बीच कला मर्मज्ञ, साहित्यकारों के बीच प्रबुद्ध साहित्यिक, राजनीतिज्ञों के मध्य में दूरदर्शी राजनीतिज्ञ तथा सामान्य जन एवं मजदूरों के बीच उनके अपने सगे बन जाते थे। मैं नहीं समझता, संसार का कोई भी अन्य महापुरुष व्यक्तित्व के इस लचीलेपन और विविधता से सम्पन्न था। यह विविधता उनके व्यक्तित्व की परिपूर्णता है।"[८] युगपुरुष नेहरू के व्यक्तित्व वैविध्य को 'मानवेन्द्र' के रचयिता ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

"सेनादल में सेनानी थे, कृषकों में हलधर थे।
श्रमिकों में श्रमसाध्य सिद्ध थे, देवों में शंकर थे॥
विद्वानों में विद्याधन थे, भावुकता में कवि थे।
शान्त चन्द्रमा से शीतल थे, अन्धकार में रवि थे॥
ऋषियों में शुक देव सदृश थे, तारों में ध्रुव तारे।
फूलों में थे कमल पुष्प वे, गुण थे न्यारे न्यारे॥
गीता सी शाश्वत बातें थीं—उस अद्भुत नेता में।
शायद यही मिला द्वापर में, और यही त्रेता में॥"

(अनुताप, सर्ग २४, पृ० ४२०)

इस महान् देश को महान् नेतृत्व सदैव प्राप्त होता रहा है, किन्तु नेहरू जी के नेतृत्व का वैलक्षण्य, उसकी आयाम विस्तृति और एकत्र क्षमता में है। उन्होंने पराधीन भारत के स्वाधीनता आन्दोलन और स्वाधीन भारत के निर्माणोन्मुख स्वरूप दोनों का ही अद्वितीय नायकत्व किया। स्वातन्त्र्योत्तर भारत के

---

८ रसवती, नेहरू-स्मृति अंक, वर्ष ७, अंक ७ जुलाई १९६४, पृ० २१

वसुधरा के पार्थिव अस्तित्व मे विलीन होने की अदम्य आकाक्षा प्रगट की थी। काव्य के अन्तिम सर्ग (शेष पुरुष) की रचना मे कवि का मन्तव्य नेहरू जी को नर के रूप मे नारायण का अश सिद्ध कर उनकी अतिमानवीय शक्तियो को प्रमाणित करना रहा है किन्तु कवि की यह श्रद्धास्पद भावदृष्टि विज्ञान युग के प्रबुद्ध पाठक वर्ग की तर्कमूलक जिज्ञासाओ और विवेक सम्मत आस्थाओ को कितना आश्वस्त कर सकेगी, यह चिन्तनीय है ? प्रश्नचिह्नो के अन्तराल मे उभरे इन कतिपय रचनात्मक त्रुटि सकेतो के अतिरिक्त अपने सम्पूर्ण रूप मे मानवेन्द्र' एक श्रेष्ठकाव्यकृति है। 'मानवेन्द्र के महाआकार मे काव्यनिबद्ध होकर लोकनायक नेहरू के विराट व्यक्तित्व ने जिस महानता और महार्घता का वरण किया है, वह उन्हें काव्य-कला के चिरन्तन क्षितिज पर मृत्यु जयी बना कर अमरत्व प्रदान करने वाली है। इस महान् लक्ष्य-सिद्धि की दृष्टि से 'मानवेन्द्र' सर्वथा अभिनन्दनीय महाकाव्य-कृति है।

तन से तोड़ जनेऊ हिन्दू, शिखा छिपाते जाते,
माला डार गले का चन्दन, टीका त्वरित मिटाते।"

(सर्ग १, पृ० १६)

नवाब के आतंक के कारण हर हर महादेव की ध्वनि मौन हो गई थी। गुरुद्वारों की प्रभा पाप का लोहा मान चुकी थी। ऐसे वातावरण में अवतरित हुए—गुरु गोबिन्द। वे बाल्यावस्था से ही निर्भीक, दृढचेता और स्वाभिमानी थे। नवाब की सवारी को आती देख जहाँ सामान्य जनमन मे सन्त्रास व्याप्त हो जाता था, वहाँ बालक गोविन्द अपनी टोली सहित राजमार्ग अवरुद्ध कर डट जाते थे। नवाब के सैनिकों की धमकियों के प्रत्युत्तर में वे कहते—

"हमने जीना भी सीखा है, मरना भी सीखा है।
जाति धर्म के लिए, अंगारे पर चलना सीखा है॥

× × ×

यहाँ मौत की छाती पर भी, हँस हँस कर चढना है।
बैठ हुतासन के आसन पर, ग्रंथ सदा पढ़ना है॥"

(सर्ग १, पृ० १९)

गुरु गोबिंदसिंह के आविर्भावकाल की परिस्थितियाँ अत्यन्त शोचनीय थीं। अनन्त से दिगन्त तक सर्वत्र अधर्म का निवास था। स्वजातीय गौरव का भाव नष्टप्राय हो चुका था। स्वधर्म का प्रकाश क्रूर शासकों के अमर्ष रूपी तिमिर में अन्तर्भूत हो गया था। तत्कालीन जनजीवन और समाज की दुर्दशा का चित्रण करते हुए कवि ने लिखा है—

"अह कहीं बिलख रही स्वदेश की दुलारियाँ।
छिपी कहाँ कहो प्रभो! सतीत्व की कटारियाँ॥
यज्ञ की सुरभि न आज व्योम बीच खेलती।
भक्ति की लहर न आज कण्ठ कण्ठ खेलती॥
बिलख रही व्रजांगना न कृष्ण आज बोलते।
मुमूर्ष है पड़ा अवध न राम आँख खोलते॥
भला किसे कहूँ कि लाल! लाज देश की बचा।
भला किसे कहूँ शिखा स्वजाति की अभय बचा॥"

(सर्ग २, पृ० २६)

ब्राह्मणो को कलमा पढने के लिये बाध्य किया जाता था। (सर्ग ४, पृ० ४१) स्थिति यह हो गई थी कि वे स्वधर्म त्याग कर पुराण की जगह कुरान बाचने को विवश थे। युवा वर्ग जातीय स्वाभिमान का परित्याग कर मुगलो के आगे नतमस्तक हो गया था। सम्पूर्ण समाज प्रशासकीय क्रोधानल मे विदग्ध था। वातावरण इतना भयावह और दारुण हो गया था कि कवि पश्चाताप भरे स्वर मे कहता है कि—

"न एक इन्च भूमि है जो स्वत्व सत्य का पले,
न एक इन्च भूमि है जो दीप धर्म का जले।
× × ×
यती स्वधर्म का प्रखर दिनेश शेष हो गया।"
यती अनल असत्य मोह, राख बीच सो गया।"

(सर्ग ११, पृ० १०५)

इन्ही परिस्थितियो मे गुरु तेगबहादुर ने गुरुद्वारे मे एकत्र सहस्रो सिक्खों से स्वधर्म और जातीय स्वाभिमान के लिए ओजस्वी वाणी मे आह्वान किया। उन्होने कहा कि मुगल शासको का यह एलान कि पृथ्वी पर एक ही धर्म होगा और कुरान पढने से ही मगल होगा, राज्यमोह है। यह क्रूर और नृशस नृप का स्वर है, धर्म का उद्घोष नही। हमे इस विडम्बना के प्लावन से माँ भारत को बचाना है। हमे इतिहास के पुनर्निर्माण हेतु पुरुषार्थ का वरण करना है। हम हलवाले के बैल नही जो गाली और मार सहकर चलते रहें। न ही हम काबुल के कबूतर हैं जिन्हे पापी हकार जाए। हम उस अगस्त ऋषि की सन्तान हैं जिसने गण्डुलि पर रखकर अगम सिन्धु का पान कर लिया। जाति धर्म के लिए हमारे पूर्वजो ने अस्थिदान किया था सत्यरक्षण के लिए डोम के हाथों बिक गए थे। अत: हमे अब प्राणो का मोह त्याग कर धर्म की ध्वजा को फहराना है—

'तो अब प्राण मोह को त्यागो, कफन बाँध लो सिर पर।
और उडा दो ध्वजा धर्म की, नभ मस्तक पर फर फर॥
जब तक सतलज और झेलम की नदियो मे है पानी।
तब तक जाति धर्म पर करते चलो विहँस कुर्बानी॥"

(सर्ग ३, पृ० ३४)

गुरु तेग बहादुर ने स्वधर्म रक्षण हेतु अपने पाँचों प्यारे शिष्यों सहित प्रयाण किया। वहाँ उन्हे प्रलोभन और भय से विचलित करने के सभी

शासकीय प्रयास निष्फल हो गए। औरंगजेब की भरी सभा में गुरु तेगबहादुर ने निर्भीक स्वर में कहा—

"शाह ! सोचते हो तेरी लोहित कटार मुझे,
सत् श्री अकाल के सुपन्थ से हटाएगी ।
शस्त्र का विजेता कभी शास्त्र नहीं जान पाया,
मौत क्या सुग्रन्थ से कुरान पढ़वाएगी ।।"

(सर्ग ६, पृ० ५७)

और अन्तत गुरु तेगबहादुर ने हँसते हँसते प्राणोत्सर्ग कर दिया, किन्तु इस्लाम को स्वीकार नहीं किया। अपने पिता के शहीद हो जाने पर गुरु गोबिन्दसिंह ने सम्पूर्ण हिन्दू जाति को रोष भरे स्वर में स्वधर्म रक्षण हेतु आह्वान किया। उन्होंने कहा—

'क्या यह जाति कभी भूलेगी, यवनों का आघात ?
वचक उस फणीश के सिर पर, मारो पवि सम लात ।।"

(सर्ग ७, पृ० ६६)

गुरु गोविन्द ने अपने सन्देश में कहा कि सभी वीर शहीदी भेष धारण कर लें। भारत माँ के सपूत कुसुमित कामिनी दुलार का त्याग कर कुपित कुठार धारण करें। अब प्रत्येक भवन को शस्त्रालय, देवालयों को बलिवेदी तथा गुरुद्वारों को समरांगण में बदल दो। उन्होंने वीरोचित स्वर में कहा—

'जीना उसने सीखा जो पढा मृत्यु इतिहास ।
जिसने देखा है विभीषिका का करयाल विलास ।।"

(सर्ग ७, पृ० ६६)

गुरु गोविन्द ने इतिहास पुरुषों का स्मरण दिलाते हुए कहा कि—

'सूर्यचन्द्र वंश के सपूत ! तुम प्रकाश हो,
अमत्य मोह के लिए बने प्रलय विलास हो ।
× × ×
जवान ! राम कृष्ण के पवित्र रक्त रूप हो,
महान् चन्द्रगुप्त औ' अशोक के स्वरूप हो ।।"

(सर्ग ११, पृ० १०६)

गुरु गोविन्दसिंह ने कहा कि आज देवताओं को नृत्य गान, व्रतविधान या समाधि ध्यान से नहीं रिझाया जा सकता। वे युद्ध गान से ही रीझेंगे—

"नहीं हैं देव रीझते प्रसून नृत्य गान से,
नहीं हैं देव रीझते अभुक्त व्रत-विधान से।
नहीं हैं देव रीझते समाधि और ध्यान से,
सही है देव रीझते हैं, वीर युद्ध गान से॥"
(सर्ग ११, पृ० १०७)

फिर क्या था? गुरु गोविन्द के उद्बोधनात्मक संदेश की जन-मन पर भयकर प्रतिक्रिया हुई। सम्पूर्ण जन जीवन दावानल के समान भभक उठा। असहाय और मलीन मन वाले लोगो ने शहीदी बाना पहन कर आत्मोत्सर्ग के लिए स्वय को प्रस्तुत कर दिया—

"सुन गुरु का उपदेश समुज्वल, सब मे जागा नूतन ज्ञान।
× × ×
छोड शक्ति का सम्बल जो जन, बैठे थे असहाय मलीन।
× × ×
वे जन बना शहीदी बाना, उठा लिया कर मे करवाल।
ज्वालामुखी हृदय मे उनके, भभका शीघ्र हुताशन ज्वाल॥"
(सर्ग ८, पृ० ७६, ७७)

कुछ श्रद्धालु भक्तजनो ने गुरु गोविन्द देव को मणि कगन भेंट किए। किन्तु गुरु ने विहँस कर कहा कि मुझे मणिकगन की भेंट या फूलो का उपहार नही वरन् मलेच्छ रक्त के तृषित चमकीले कटार चाहिए। माताएँ अपने पुत्रो की भेंट दें। शक्ति स्वरूपा कुल ललनाएँ अपने पतियो के कर मे मुक्त कृपाण देकर तथा बहनें मुदित मन से भाइयो के समर-साज सजा कर विजय वैजन्ती वरण करने के लिए विदा करें। गुरु गोविन्द के इस आह्वान का परिणाम यह हुआ कि—

"रणभेरी बज उठी गुरु की, क्षत्रियत्व का जागा तेज,
जिसके सम्मुख अनाचार का, भाग्य हुआ धूमिल निस्तेज॥"
(सर्ग ८, पृ० ७६)

गाँव-गाँव और नगर-नगर मे हथियार बनने लगे। सम्पूर्ण पचनद प्रदेश स्वाभिमान से प्रमत्त होकर प्रतिशोध की अग्नि से शिव के त्रिनेत्र के समान उत्तप्त हो गया। गुरु गोविन्द को रात दिन नए-नए अस्त्र शस्त्र भेंट किए जाने लगे। गुरु ने ऊँचे शैल शिखरो के समान प्रस्तरमय काटो का निर्माण कराया।

अपनी युद्ध सज्जा और जातीय-एकता का प्रखर रूप देखकर गुरु गोबिन्दसिंह गद्‌गद् हो गए—

"शस्त्रागार बने गुरुद्वारे, ध्वजा बनी रणक्षेत्र निशान।
हुए रौद्र रस मे मतवाले, बच्चे, बूढ़े और जवान॥
रौद्र रूप गुरुदेव हो गए, गद् गद् देख जाति को एक।
ऋद्धि-सिद्धि आशा मण्डप मे, करने लगी मुदित अभिषेक॥"

(सर्ग ८, पृ० ८०)

प्रस्तुत काव्य के द्वादश सर्ग मे गुरु गोबिन्द के दलबल सहित प्रयाण का दृश्य बड़ा ही रोमांचक है। सिक्ख सेनानी सिंहपूत और कालदूत के समान काल का वक्ष चीरते हुए आगे बढ रहे थे। उनका लक्ष्य एक ही था कि—

"व्योम मे लसे अभय, फूल सा हँसे अभय।
कामधेनु हो अभय, सामगान हो अभय॥"

(सर्ग १२, पृ० ११२)

सिक्ख सेनानियो का नेतृत्व धर्म सेतु बने हुए गुरु गोबिन्द कर रहे थे। गुरु गोबिन्द श्याम तुरग पर चढे हुए थे, जो वायु वेग सा बढ रहा था। वे कहते जा रहे थे कि देश के जवानों ! धर्म की नाव को पार लगाने के लिए—

"सात सिन्धु सोख लो, आसमान रोक लो।
अरि प्रवाह फेर दो, मृत्यु द्वार घेर लो॥"

(सर्ग १२, पृ० ११७)

और वे वीर—'बोले सो निहाल, सत्त श्री अकाल' कहते हुए शत्रुवाहिनी पर टूट पड़े। युद्ध क्षेत्र मे विनाश का भयकर दृश्य उपस्थित था। अरि-वाहिनी प्रकम्पिता हो त्राहि त्राहि कर उठी। काव्य के चतुर्दश सर्ग मे मुगल सैनिको और सिक्ख सेनानियो के मध्य हुए समर का लोमहर्षक वर्णन हुआ है। कवि के शब्दो मे—

"रण द्विरद धर शुण्ड से नर मुड को नभ मे नचाते,
फूँक कर भूधर सदृश्य दृग बन्द कर रद कटकडाते।
शुडहीन द्विरद कहीं सा मार भू पर तड़फड़ाता,
मेदिनी धसनी प्रकम्पित शैल डगमग लड़खड़ाता॥
× × ×
रुण्ड-मुण्ड वितुण्ड से थी मेदिनी तिल भर न खाली,
मीन निष्प्रभ थे पडे, थी भूतनी व्रण रक्त लाली॥"

(सर्ग १४, पृ० १३७)

युद्ध क्षेत्र मे श्री गुरु गोबिन्द सिंह सेनानियो को उत्सर्ग के लिए आह्वान करते हुए कह रहे थे—

"एक एक कदम शहीदो ! तीर्थराज समान होगा,
मेदिनी अपवर्ग होगी, वीर गति का मान होगा।
× × ×
जन्म के ही साथ वीरो ! मृत्यु का इतिहास बनना,
कर्म के ही साथ धीरो ! स्वत्व का इतिहास बनता ॥"

(सर्ग १४, पृ० १३५)

अन्ततः गुरु के बाण से सेनापति अमरचन्द दीवान का प्राणान्त हुआ और मुगल सेना उखड गई। सिक्ख-सेना की धर्म ध्वजा विजय गर्व की गरिमा से फहराने लगी।

आलोच्य महाकाव्य के उत्सर्गमय आख्यान का तृतीय सोपान गुरु गोविन्द के फतहसिंह और जोरावर नामक दो पुत्रो के अनुपम बलिदान से अनुरंजित है। जयचन्द के समान कुपित जाति द्रोही गगू ने प्रलोभन मे आकर छद्म-पूर्वक वीर जननी और दोनो लालो को मुगलो का बन्दी बनवा दिया। मौल-वियो ने धर्म परिवर्तन के लिए दोनो बालको को असख्य प्रलोभन और प्रतार-णाएँ दी, किन्तु वे वीर बालक अपनी धर्म-निष्ठा और जातीय स्वाभिमान के प्रति अडिग आस्था धारण किए रहे। उन्होने निर्भीक स्वर मे शाह से कहा—

"जो जनमा, उसको मरना है, शाह ! तनिक परवाह नही।
चाहे कीलों पर सुलवा दो, इसकी कुछ भी आह नही ॥
जन्मघुटी के साथ जननि ने, हमको धर्म पिलाया है।
जाति धर्म पर तुम मर मिटना, इसका पाठ पढाया है ॥"

(सर्ग १७, पृ० १५८)

और अन्तत दोनो वीर बालको को जिन्दा दीवारो मे चिनवा दिया गया। उत्सर्गमयी गाथाओ के इतिहास मे यह अदभुत प्रकरण था। कवि के शब्दो मे—

"वे दोनो माँ के सपूत, चुन दिए गए दीवालो मे।
चम चम तेज चमक कर जागा, किसलय की करवालो मे ॥
× × ×

बढ़ा जाति का मान शहीदो, बलिवेदी मुसकानों में।
शोणित सिन्धु अर्चना करता, जगो धर्म ! बलिदानो में ॥"

(सर्ग १७, पृ० १९२)

दोनों पुत्रो के आत्मोत्सर्ग से गुरु गोविन्द के मन मे उभरे क्षोभ ने एक अन्तर्द्वन्द्व को जन्म दिया। वे सोचने लगे कि—

"पिता चले गए स्वधर्म वृद्ध दीप बारते,
चले गए सपूत चार आरती उतारते।
हँसी जननी अनन्त मे सुपन्थ को सँवारती,
तो एक ओर धर्म है, औ' एक ओर भारती ॥"

(सर्ग १६, पृ० १७६)

किन्तु अन्त मे वे इसी निर्णय पर पहुँचे कि स्वजाति और स्वधर्म रक्षण हेतु संघर्परत रहना ही होगा। अपने तप-प्रताप से जाति का उद्धार करना होगा। उन्होंने दृढ सकल्प किया कि—

"बिना न तप-प्रताप से स्वदेश है कभी जगा,
बिना न व्रत-विधान से असत्य मोह है भगा।
बिना न खड्ग-मान से प्रतान मान का तना,
बिना न शीशदान से विधान स्वत्व का बना ॥"

(सर्ग १६, पृ० १८७)

इसके पश्चात् गुरु गोविन्द ने वेश बदल कर देश भ्रमण किया। अपनी ओजस्वी वाणी से उन्होंने जातीय जन जीवन मे नवीन चेतना का सचार किया। उन्होंने माधवदास को (जो विरक्त हो गए थे) देश की दुर्दशा से अवगत कराते हुए कहा कि देश मे यवनो का तूफान आया हुआ है। उनके उत्कापात से अहर्निश आर्य-भवन भस्मीभूत हो रहे हैं। काशी विश्वनाथ के धाम को ध्वस्त करके मसजिदो का निर्माण किया जा रहा है। सोमनाथ अनाथ हो गए हैं। यज्ञवेदियो पर घास उग आयी है। मन्दिरो मे उलूक निवास करते हैं, ग्रन्थ और पुराण जलाए जा रहे हैं। और तुम वश की आन और धर्म का मान भूलकर एकान्तवास कर रहे हो। गुरु गोविन्द ने प्रेरक स्वर मे कहा—

"यदि स्वदेश के सारे वीर, जगपीडा से क्लान्त अधीर।
पाकर जगल मे एकान्त, ध्यान लगाकर ढूँढें शान्ति ॥

सीमान्तिनी-वीरता तार, किसके लिए सजावे गात ?
कौन करे सिन्दूरी दान ? जिससे हो उसका सम्मान ।।
कौन करेगा शस्त्र निनाद, कैसे घूमे नभ प्रासाद ?
कौन पढ़ेगा श्रुति का मन्त्र ? कौन करेगा जाति स्वतन्त्र ।।"

(सर्ग २२, पृ० २००)

गुरु गोबिन्द के इस प्रेरक प्रबोधन से माधवदास ने वैराग्य का परित्याग कर ग्रन्थ और खड्ग धारण किया और बन्दा नाम से देश, धर्म और जाति रक्षण के कार्य मे जुट गए। इस घटना के कुछ समय पश्चात् दो पठान खालसा का भेष धारण कर आए और सोते हुए गुरु गोबिन्द के वक्ष पर खड्ग प्रहार किया। गुरु ने जागकर अपनी असि के एक ही वार से उनके टुकड़े कर दिए। वक्ष का घाव अभी भरा भी नही था कि उन्होने पाँच मन भार वाले शरासन की प्रत्यंचा पर अपने भुजबल से बाण चढाकर भक्त जनो के मन मे जातीय स्वाभिमान का भाव जागृत किया। इस शौर्य प्रदर्शन के कारण उनके हृदय का टाका टूटकर फट गया और वे वीर बन्दा को ग्रन्थ रक्षा का गुरुतर दायित्व सौंपकर सत्यधामवासी हो गए।

इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि तप पूत कर्मयोगी और महान् जननायक श्री गुरु गोबिन्द सिंह का जीवन-चरित्र सचमुच उत्सर्ग का जीवन्त आख्यान है। धर्म, जाति और राष्ट्र-रक्षण के लिए अपने पिता गुरु तेग बहादुर के बलिदान से वे स्वय और उनके पुत्र ही अनुप्रेरित नही हुए वरन् सम्पूर्ण जातीय-जीवन ही आत्मोत्सर्ग से आन्दोलित हो गया। लोकमगल की पूत भावना, स्वजातीय गौरव के अभ्युत्थान की अदम्य आकाक्षा, स्वधर्म पालन की अनन्य निष्ठा और राष्ट्र सेवा का अखण्ड सकल्प गुरु गोबिन्द के चरित्र की महनीय विभूतियाँ हैं। इन्ही के कारण गुरु गोबिन्द का चरित्र एक साथ युगपुरुष, महापुरुष और इतिहास-पुरुष की उदात्त भूमिकाओ पर अधिष्ठित होता है। उन्होने अपने समकालीन हतचेतन जनमानस और परमुखापेक्षी समाज को धर्म परायणता, आत्म जागृति और राष्ट्रीय-गौरव की भावना से आन्दोलित करने के लिए जिस लोकोत्तर साहस और अनन्त शौर्य का दिग्दर्शन और अद्वितीय बलिदान किया, उसके कारण गुरु गोबिन्दसिंह भारतीय इतिहास-चेतना के अविच्छिन्न अग बन गए हैं।

गुरु गोबिन्द सिंह की चारित्रिक गरिमा का एक आयाम उनका कवि रूप भी है। आलोच्य महाकाव्य के भूमिका लेखक डॉ० हरभजनसिंह के शब्दो मे—"गुरु गोबिन्द सिंह हिन्दी काव्यधारा के प्रथम सचेत राष्ट्रीय कवि हैं।

हिन्दी वाङ्मय मे उन्होने जो विद्रोहाग्नि सुलगाई, उसे उन्ही के आश्रित बावन कवियो ने प्रचण्डतर रूप देने का यत्न किया। गुरु गोविन्दसिंह की सुनिर्दिष्ट प्रेरणा के फलस्वरूप वीरधर्म और वीरकाव्य समानान्तर, जीवनधाराओ के रूप मे प्रवाहित होने रहे।"[1] इसी सन्दर्भ मे डॉ० महीपसिंह का मन्तव्य उद्धरणीय है कि—"लोगो की दुर्बलतापूर्ण मन स्थिति मे परिवर्तन लाने के लिए गुरु गोविन्दसिंह ने जिस उपास्यदेव की कल्पना की, वह भक्तिकालीन सतो का सुन्दर, कोमल और मधुर रूप वाला ईश्वर नहीं था। उन्होंने ईश्वर के उस रूप को प्रधानता दी, जो दुष्टो का दमन करने वाला रूप है। गुरु गोविन्दसिंह के साहित्य मे परमात्मा के लिए अगणित नामो का प्रयोग हुआ है, परन्तु उन्हे 'काल' नाम सर्वाधिक प्रिय था। काल को उन्होंने अकाल, सर्वकाल, महाकाल, श्रीकाल आदि नामो से पुकारा। काल के रूप मे उन्होने ईश्वर के वीर और उग्र रूप की प्रतिष्ठा की। डमरू बजाते हुए, फणिधर के समान फुफकारते हुए, बाघ के समान दहाड़ते, दामिनी के समान हँसते, रक्त पीते हुए, अष्टायुध धारण किए, सिंह पर सवार, अपनी दाढ़ मे सभी को चबाते हुए महाकाल या महाकाली के रूप का चित्रण उन्होने अपने साहित्य मे अनेक स्थानो पर किया है।"[2] इस प्रकार कवि के रूप मे गुरु गोविन्दसिंह जी का योग महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। वस्तुत काव्य और शौर्य तथा कला चेतना और पराक्रम का सामजस्य गुरु गोविन्दसिंह जी के चरित्र का वैलक्षण्य द्योतित करते हैं।

निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि कवि ने गुरु गोविन्दसिंह के महान् चरित्र को महाकाव्य प्रणयन का माध्यम बनाकर अपनी लेखनी को धन्य किया है। गुरु गोविन्दसिंह के महत् चरित्र की अवतारणा के अतिरिक्त प्रस्तुत काव्य मे मध्ययुगीन इतिहास का मर्मस्पर्शी समाख्यान, तत्कालीन लोकमानस की व्यजना, राष्ट्रीय चेतना के विकास का रूपाकन, धर्मोत्थान के पुनीत सकल्पो और स्वजातीय-सरक्षण के महाप्रयासो का विशद् निरूपण होने के कारण "श्री गुरु गोविन्दसिंह" काव्यग्रथ वास्तविक अर्थो मे महाकाव्य और उसका रचयिता महाकवि अभिधान का अधिकारी है।

---

१ श्री गुरु गोविन्दसिंह—भूमिका, पृ० ६

२ धर्मयुग—१६ अप्रैल १६७२, पृ० २१, (डॉ० महीपसिंह के लेख से उद्धृत)

'रामराज्य' महाकाव्य

रामकथा के परिवेश में विश्वजनीन शासनादर्शों

की व्याख्या

१८

'रामराज्य' महाकाव्य

रामकथा के परिवेश में विश्वजनीन शासनादर्शों की व्याख्या

हिन्दी रामकाव्य परम्परा की आख्यायिका का सम्बन्ध प्रमुख रूप से आदि कवि वाल्मीकि कृत रामायण से है। रामायण और महाभारत भारतीय साहित्य-साधना के अमर प्रतीक हैं। यह दोनो ग्रन्थ सहस्राब्दियो से काव्य-रचना की प्रेरणा के अक्षय स्रोत रहे हैं। वैसे रामकथा के प्राचीन रूप की उपलब्धि वैदिक वाङ्मय से ही होने लगती है। रामकथा की प्राचीनता का सबसे बडा प्रमाण यह है कि एतद्‌विषयक गाथाओ और उपाख्यानो की सृष्टि छठी शताब्दी ई० पू० से ही होने लगी थी।[१] प्रसार की दृष्टि से रामकथा विश्वव्याप्त है।[२] किन्तु रामकथा को सम्यक् स्वरूप प्रदान करने का समस्त श्रेय आदि कवि को ही है। विद्वानो का मत है कि—"विश्व साहित्य के इतिहास मे शायद ही किसी अन्य कवि का प्रादुर्भाव हुआ हो जो प्रभाव की दृष्टि से भारत के आदि कवि वाल्मीकि की तुलना कर सके।"[३] सस्कृत मे रामकाव्य के कवियो ने तो 'रामायण' को आधार-ग्रन्थ के रूप मे ग्रहण किया ही है, हिन्दी के रामकाव्य रचयिताओ ने प्रेरणा प्राप्त की है। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ काव्य-ग्रन्थ 'रामचरित मानस' के प्रणेता गोस्वामी तुलसीदास ने भी आदि कवि के ऋण को साभार स्वीकार किया है। तुलसी के उपरान्त हिन्दी की सम्पूर्ण रामकाव्य परम्परा ने

---

[१] हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ६४१

[२] डॉ० कामिल बुल्के, रामकथा उत्पत्ति और विकास

[३] हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ६४६

रामायण को कथात्मक आधार के रूप में ग्रहण किया है। हिन्दी में मानस की रचना के अनन्तर रामकाव्यों की एक सुदीर्घ परम्परा मिलती है।[४]

राम के आख्यान को लेकर वर्तमान युग में अनेक काव्यों की रचना हुई है। आधुनिक युग के बहुचर्चित प्रबन्धकाव्यों में 'रामरसायन', 'श्रीरामचन्द्रोदय' 'रामचरित चिन्तामणि', कोशल-किशोर', 'साकेत', 'वैदेही-वनवास', 'साकेत-सन्त', 'उर्मिला', 'कैकेयी' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। वास्तव में राम का चरित्र और कर्त्तव्य भारतीय जन-जीवन की चेतना में आत्मसात् हो गया है। राम का व्यक्तित्व भारतीय संस्कृति की अनिवार्य विशेषताओं (यथा सत्त्व, शील, मर्यादा, आस्था, पुरुषार्थ) का समग्र-स्वरूप है। राम के चरित्र में युग जीवन की आकांक्षाओं को परितृप्त करने और मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा करने की अमोघ शक्ति विद्यमान है। इसीलिए राम की जीवन-गाथा रामकाव्यों का प्रतिपाद्य रहा है। अधिकांश काव्यों में 'रामचरितमानस' की भाँति ही कथा का विकास हुआ है। हाँ, कथा के प्रस्तुतीकरण और निर्वाह सभी में राम-काव्यकारों का दृष्टिकोण भिन्न किंवा मौलिक रहा है। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि चरित्र-विश्लेषण को केन्द्र-बिन्दु मानकर इन काव्यों में राम-कथा का परिधि-विस्तार हुआ है। उदाहरण के लिए, 'साकेत', 'साकेत सन्त', 'उर्मिला', 'वैदेही-वनवास', 'रावण', 'कैकेयी' आदि काव्यों की रचना इनके पात्रों के चरित्र-उत्कर्ष के लिए हुई है। आलोच्य महाकाव्य (रामराज्य) इसी परम्परा की रचना है। किन्तु प्रतिपाद्य की दृष्टि से डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र के 'रामराज्य' महाकाव्य का विशेष महत्त्व है। राज्य की भाँति रामराज्य की परिकल्पना भी बहुत प्राचीन है। रामराज्य शब्द आदर्श राष्ट्र और शासन-व्यवस्था का सूचक है। वाल्मीक और तुलसी के ग्रन्थों में रामराज्य की व्यवस्था के जिस रूप का अंकन हुआ है, वह शासन-तन्त्रों के इतिहास की अद्भुत और अनोखी वस्तु है। डॉ० शम्भूनाथसिंह का मत है—"···· तुलसी ने रामराज्य की जो कल्पना की है, उसी को महात्मा गाधी ने लोकतन्त्र और स्वातन्त्र्य के युग में भी अपना आदर्श और लक्ष्य निश्चित किया।"[५] विद्वानों ने 'रामचरितमानस' का मुख्य कार्य और फलागम रामराज्य ही माना है। मानस के महत् कार्य का उल्लेख करते हुए डॉ० शम्भूनाथसिंह ने लिखा है कि—"रामराज्य की स्थापना को तुलसी ने कितना महत्त्व दिया है, इसका

---

[४] हिन्दी साहित्य कोश, हिन्दी राम साहित्य खण्ड, पृ० ८९३-९६

[५] डॉ० शम्भूनाथसिंह, हिन्दी महाकाव्य का उद्भव और विकास, पृ० ५८

अनुमान इसी से किया जा सकता है कि रामराज्य की सुख-सम्पदा का वर्णन वाल्मीकिरामायण (उत्तर काण्ड, सर्ग ९९) और अध्यात्मरामायण (युद्ध काण्ड २६) मे केवल कुछ ही छन्दो मे किया है, जबकि मानस मे उसका वर्णन ११ दोहो (कडवको) मे हुआ है। अत कथा की केन्द्रीय घटना की महानता की दृष्टि से राम-रावण युद्ध, रावण-वध और रामराज्य की स्थापना ही मानस का महत्त्वपूर्ण कार्य है।" अस्तु—

रामराज्य की धारणा भारतीय सस्कृति और साहित्य की महत्त्वपूर्ण उपपत्ति रही है। डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र ने इसी महत् कल्पना को 'रामराज्य' महाकाव्य मे साकार करने का प्रयास किया है। आज के विश्व जीवन की अनेक विषम समस्याओ मे आदर्श शासन-व्यवस्था की स्थापना भी एक है। ससार की सभी शासन-प्रणालियो और राज्य की व्यवस्थाओ मे लोकतन्त्र को आज अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है। किन्तु जनहित की भावना, लोकमगल की साधना, सामान्य जन की सुख-समृद्धि का सवर्द्धन और मानव-मूल्यो का सरक्षण इस व्यवस्था के द्वारा कहाँ तक हो रहा है, आज विचारणीय है। हम विश्वसरकार (World Government) या विश्वराज्य की कल्पना कर रहे हैं। किन्तु राष्ट्रराज्यो का रूप अव्यवस्थित है। आन्दोलन और क्रान्तियो के द्वारा सरकारों के तख्ते उलट दिये जाते हैं। व्यक्ति समूह के हितो की अवहेलना कर रहा है और बहुसख्यको का शोषण कर रहा है। शासको और शासितो मे सघर्ष चल रहा है। व्यवस्था मे सर्वत्र ही दमन, शोषण, स्वार्थ लिप्सा, प्रवचना षड्यन्त्र और भ्रष्टाचार व्याप्त है। आखिर क्यो ? जीवन मूल्यो के विघटन के कारण, राज्यादर्शो के पतन के कारण, शासक और शासित मे भाव-साम्य के अभाव के कारण या सत्ताधारी की दुर्नीति के कारण ? ऐसे वातावरण मे 'रामराज्य' जैसे काव्यो की रचना निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है। ऐसे काव्य प्रेरणा और प्रोत्साहन की वस्तु हैं। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या 'राम राज्य' महाकाव्य वर्तमान जीवन की समस्याओ का प्रत्यक्ष या परोक्ष समाधान प्रस्तुत करता है ? क्या उसमे युग के उन्नत बोध का प्रतिफलन हुआ है ? क्या उसमे व्यवस्थाओ के व्यावहारिक आदर्श रूप का अकन हुआ है ? क्या 'रामराज्य' की रचना सच्चे मानो मे रामकाव्य परम्परा को विकसित करने मे समर्थ हुई है ? अथवा क्या प्रस्तुत सृजन हिन्दी काव्य जगत की उपलब्धि है ? इन्ही परिसदर्भो मे 'रामराज्य' महाकाव्य का मूल्याकन हमे अभीप्सित है।

'रामराज्य' के सृजन की मूल प्रेरणा कवि को आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से प्राप्त हुई थी। काव्य रचना के उद्देश्य मे जन-समुदाय का कल्याण

और हिन्दी के सौभाग्य की श्रीवृद्धि दो प्रमुख कारण थे, जैसा कि कवि ने इसे काव्य के भूमिका भाग मे स्वत स्वीकार भी किया है। निश्चय ही प्रेरणा और लक्ष्य दोनो महान् हैं। 'रामराज्य' के रचयिता ने इन लक्ष्यो को प्राप्त भी किया है।

रामराज्य की धारणा यद्यपि कल्पित विचारणा (Utopia) है। किन्तु रामकथा की ऐतिहासिकता उसे प्रामाणिकता प्रदान करती है। अत 'रामराज्य' के प्रणेता ने रामकथा को ही ग्रहण किया है। कथा का प्रारम्भ उस स्थल से होता है जबकि निर्वासित राम सुमन्त्र के साथ रथ पर बैठकर बढ रहे हैं। इससे पूर्व के करुण प्रसगो (कैकेयी की वर याचना और दशरथ मरण आदि) का कवि ने सकेत मात्र ही किया है। दसवें सर्ग म राम के राज्याभिषेक का वर्णन है और इसक पूर्व दूसरे से दसवें सर्ग तक परम्परित रामकथा है। काव्य के दो महत्त्वपूर्ण सर्ग ११ और १२ हैं जिनमे क्रमश भारतीयो के मानव धर्म की घोषणा और रामराज्य की व्यवस्था का उल्लेख है। सच पूछा जाय तो कथात्मक दृष्टि से इस काव्य की मौलिक उपलब्धि अन्तिम दो सर्ग ही हैं। 'रामराज्य के कथा चयन हेतु कवि ने प्रमुख रूप से मानस को मुख्य आधार के रूप मे ग्रहण किया है। किन्तु कवि की सूक्ष्म कल्पना और सृजन प्रतिभा के कारण इस काव्य म रामकथा अपने नवीनतम परिवेश मे प्रस्तुत हुई है। मिश्रजी ने भूमिका मे कहा है कि—' कथा का उद्देश्य केवल कथा नही किन्तु राष्ट्रीय एकीकरण और सुराज्य स्थापना से सम्बन्धित राम के प्रयत्नो पर अपनी मति के अनुसार प्रकाश डालना है। इतिहास मे यदि वर्तमान का प्रतिबिम्ब न हो और भविष्य के लिए प्रेरणा न हो तो उसे प्राय काव्य का विषय नही बनाया जाता। ग्रन्थकार ऐतिहासिक कथानक लिखते समय भी अपने युग को कैसे भुला सकता है ? परन्तु हाँ, उसका कर्त्तव्य यह अवश्य होना चाहिए कि वह ऐसी कोई बात न लिखे जो उसके कथानक के युग मे न फब सके।" (भूमिका पृ० ६) स्पष्ट है कि मिश्रजी ने 'रामराज्य महाकाव्य की कथा निर्मिति मे इतिहास की परम्पराओ के निर्वाह के साथ-साथ युग चेतना का भी प्रतिबिम्बन किया है।

रामराज्य के प्रतिष्ठापक और सचालक श्रीराम हैं। कवि ने राम के व्यक्तित्व का निरूपण यथार्थदर्शी लोकनायक के रूप मे किया है। वह उन्हें युग-युग की प्रेरणा का धाम मानता है

'त्रेता युग के नही, राम तो युग युग के प्रेरणाधाम हैं।
पूर्ण पुरातन चिर नवीन वे, भाव स्रोत हृदयाभिराम हैं।।"

(प्रस्तावना, पृ० ३)

राम ब्रह्म हो, राम विष्णु हों किन्तु राम नर तो हैं निश्चय ।
युग-द्रष्टा ही नही, आप ही युग-कर्ता भी जो निःसंशय ।।"
(सर्ग १२, छन्द ८२)

राम सुमन्त्र के साथ रथारूढ़ वन-गमन कर रहे हैं, उस अवसर पर उनके मन मे विश्वबन्धुत्व के भाव जाग्रत हो रहे हैं :

"क्या मेरा बन्धुत्व अवध की सीमा में आवद्ध रहे।
क्यो न विश्व का मानव, खग मृग तक मुझको निज बन्धु कहे ।।
बड़ी बात है वह, मुझको तो इस पल है भारत का ध्यान।
भरत यशस्वी हों, भारत का सर्वोदयमय हो उत्थान ।।"
(प्रथम सर्ग, छन्द २६, २७)

रामचरित के अनेक गायकों ने राम-रावण-युद्ध को उत्तर-दक्षिण के संघर्ष की संज्ञा दी है, आर्य और द्रविड संस्कृतियों का द्वन्द्व कहा है और इस विचारधारा को लेकर हमारे देश मे बडी विषम स्थितियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। दशहरा के अवसर पर उत्तरी भारत के लोग रावण का पुतला जलाते हैं तो दक्षिण वाले राम की प्रतिमा को भी जलाने लगे हैं। मिश्रजी ने 'रामराज्य' महाकाव्य मे इस स्थिति का निदान स्वयं राम के द्वारा ही बडे सुन्दर ढग से कराया है :

"इसका जन-जन पावन चिन्मय, ग्राम-ग्राम है अवध महान्,
इसका जन-जन स्वजन सुजन है, उत्तर दक्षिण एक समान ।
× × ×
दक्षिण यदि विकलाग रहा तो उत्तर की समृद्धि निष्प्राण,
सब अवयव हों स्वस्थ समजस, तभी स्वस्थ है पुरुष महान ।
किसी समय सम्भव है दक्षिण मे भी हो ऐसे आचार्य,
उत्तर के दीक्षा गुरु हो जो और बनें आर्यो के आर्य ।।
किन्तु अभी जो अन्धकार है वहाँ प्रकाश जगाना है,
पुरुष परम पुरुषत्व देख ले वह सस्कृति फैलाना है ।।"
(प्रथम सर्ग, छन्द २९, ३०, ३१)

इसी काव्य के अन्य अनेक स्थानों पर भी उत्तर-दक्षिण की एकता की बात कही गयी है। उदाहरणार्थ, सर्ग, ६/२७, १०/११, १०/४७ आदि।

राम के उपर्युक्त कथनो मे भारत की, विशेषकर उत्तर-दक्षिण की एकता का सन्देश है। वह दक्षिण मे सास्कृतिक प्रकाश का प्रसार करने के लिए जाना चाहते हैं। इसी सर्ग में कवि ने विदेशियों की कूटनीति के कारण राज्य

की अव्यवस्था तथा ग्रामीण एव नागरिक जीवन की सन्तुलित प्रगति का उल्लेख किया है। ग्रामीण जीवन के प्रति कवि की अनन्य आस्था है, क्योकि भारत का यथार्थ रूप वही रक्षित है—

"नगर ग्राम्यो से बढकर हो वैभव मे गुण दोषो मे,
किंतु धनी हैं, ग्राम्य धन्य ये अपने दृढ सन्तोषो मे।"
(सर्ग १, छन्द ४२)

× × ×

"जन आत्मा यदि जग न पायी तो शासन के व्यर्थ सुधार,
नगर बढ गये गाँव सुखाकर, तो उस बढती को धिक्कार।
नगर बढें पर साथ ही चलें बढाये गाँवो को,
वह विकास है, विकसित करदे जो जन-जन के भावो को।"

राम के चारित्रिक शील और आदर्श-विचारणा का रूप द्वितीय सर्ग मे अकित हुआ है। राम की मान्यता है कि—'नही भोग मे, किन्तु त्याग मे खिलता जीवन'। आधुनिक शिक्षा के रूप पर व्यग्य करते हुए कवि ने कहा है कि

"जान नक्षत्रो को यदि लिया, आप अपने से रहे अजान।
बुद्धि से भरा तर्क विस्तार, किया सकीर्ण हृदय का मान॥
ग्रन्थ के बोझ, पन्थ के बोझ, खो गयी जिनमे मन की शान्ति।
ज्ञान की साक्षरता वह कौन, ज्ञान है वह तो केवल भ्रान्ति॥"

शिक्षा का उद्देश्य यह है कि :

"कुजन हो सज्जन, सज्जन शान्त, शान्त हो भव बन्धन मुक्त।
मुक्त हो जो वे आगे बढें, करें औरो को भी उन्मुक्त।
यही शिक्षा का है ध्रुव ध्येय, न लद चलना उसको स्वीकार।
मनुज की मानवता बढ जाय, रचो प्रिये ऐसे रुचिर उपाय,
यही लक्ष्मण! शिक्षा उद्देश्य, इसी से विकसित जनसमुदाय।"

भारतीय सस्कृति को आधार मानकर विशेषत सह अस्तित्व और सर्वजन-हिताय की घोषणा इस प्रकार की गयी है

"नही चाहते हम कि बढ़े साम्राज्य हमारा
काम्य यही है बढ़े शिवद् सस्कृति की धारा,
गोरे काले लाल कि पीले जग के वासी,
समझें चातुर्वर्ण्य और ही हो सुख रासी।"
(सर्ग ५, छन्द ३४)

विज्ञान-युग की भौतिक प्रगति के प्रति भी लेखक जागरूक है, किन्तु भारतीयता की पुनीत भावना से ओत प्रोत होने के कारण जीवन के आध्यात्मिक

और सर्वोदयी मूल्य ही उसे अधिक काम्य हैं। राम लंका विजय के उपरान्त विभीषण को सन्देश देते हुए कहते हैं :

"असली अर्थ मनुजता ही है, सात्विकता जिसके अनुरूप।
राजस तामस चित्तवृत्तियाँ, कर न सकें उनको अपरूप।।
उन्हें उदात्त बना दो जिससे, निन्द्य निशाचरता मिट जाय।
प्रजा तुम्हारी सच्चे हित मे, हो जाय विश्व सहाय।।"

सर्ग ११ और १२ मे रामराज्य की अभूतपूर्व कल्पना साकार हुई है। ११वें सर्ग के प्रारम्भ मे ही कवि ने कहा है कि राम के राजा होते ही धर्म की घोषणा हुई। इसी मे रामराज्य का रूप प्रकट हुआ है। घोषणा मे कहा गया है कि :

"तभी राष्ट्रीयता होगी सुदृढ इस देश की,
जब भिन्न-जनो मे भी, एक संस्कृति साम्य हो।"

कवि ने वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था के नियम पर भी बल दिया है। राष्ट्रीय आचार का उल्लेख करते हुए कवि ने व्यक्ति की स्वाधीनता पर बल दिया है :

"वही राष्ट्रीय आचार, व्यक्ति का समझा गया,
राष्ट्रीयता विवृद्धयर्थ, जो सहायक हो सके।
(सर्ग ११, छन्द ७८)

× × ×

राष्ट्र या जाति या व्यक्ति को अधिकार है,
जिये और फूले फले, अविरोधी प्रकार से।
राष्ट्र जाग्रत है तो व्यक्ति जाग्रत जानिए,
राष्ट्र ही सो गया, तो व्यक्ति फूला फला कहाँ।"

रामराज्यकार का मत है कि एक-एक व्यक्ति के सुधार से राष्ट्र का निर्माण हो सकता है। किन्तु राष्ट्रहितार्थ व्यक्तिस्वार्थ का बल ही वाछनीय है

'यदि प्रत्येक ही व्यक्ति, अपने को सुधार ले,
तो राष्ट्र का सुसंस्कार, सुसाध्य कितना बने।
विरोध यदि हो 'राष्ट्रस्वार्थ' औ व्यक्ति स्वार्थ मे,
तो राष्ट्रहित मे व्यक्तिहित का स्वार्थ त्याज्य है।"

इसी सर्ग मे सभी राष्ट्रवासियो के लिए पंच-प्रतिज्ञाओ की घोषणा की गयी है जिसके अनुसार रामराज्य का प्रत्येक निवासी सर्वधर्मसहिष्णु, स्वावलम्बी, मितव्ययी, सदाचारी और सदविचारी बनने की प्रतिज्ञा करता है। सर्गांत मे मानव-महिमा और लोक कल्याण की भावना को सर्वोपरि कहा गया है

"मनुष्य मे महाशक्ति, जागे सो शिव के लिए।
मनुष्य के लिए श्रेष्ठ यही धर्म है ॥
मनुष्य ही महासत्य, मनुष्य मन के लिए।
वही परम आराध्य, वही प्रत्यक्ष विष्णु है ॥
व्यक्ति की प्रेरिका होवे लोक-कल्याण भावना।
सनातन सुखोद्रेकी सही वैष्णव भाव है ॥"

द्वादश सर्ग की कथावस्तु मर्मस्पर्शी और करुणापूरित गाथा है जिसमे सीता के निर्वासन और रामराज्य का उल्लेख है। रामराज्य के व्यावहारिक रूप का स्पष्टीकरण भी इसी सर्ग मे हुआ है। रामराज्य मे राजा का प्रजा के प्रति व्यवहार, लोक-इच्छाओ की पूर्ति और सर्वजन-सम्मान की भावना आदि का वर्णन है। रामराज्य मे पच परमेश्वर के तुल्य था, ग्रामो का जीवन स्वर्ग के समान था, सहकारिता मे लोगो को विश्वास था। विज्ञान के आविष्कार भी सहार नही, सृजन के लिए होते थे :

"पचो मे परमेश्वर वसते, पचायती राज सुख छाये।
पाये थे पचो ने ऐसे पचशील के तत्त्व सुहाये ॥
सहकारिता खिली पडती थी कृषियो मे गृह उद्योगो मे।
सामूहिकता को महत्त्व था, विविध उत्सवो सुख भोगो मे ॥
गाँव-गाँव मे पूर्ण स्वच्छता, गाँव गाँव के सुपथ मनोरम।
गाँव-गाँव के सुख सुविधामय, देव गृहोपम भवनों के क्रम ॥
वैज्ञानिक आविष्कारो के नित्य प्रयोग हुआ करते थे।
किन्तु सहारक बातो पर विज्ञानी निजमन धरते थे ॥"

इस प्रकार रामराज्य का चित्रण भी कवि ने यथार्थ की भूमिका पर युगीन सन्दर्भो मे प्रस्तुत किया है। रामराज्य के सम्बन्ध मे प्राय यह भ्रान्ति हुआ करती है कि यह राजतन्त्रीय-व्यवस्था (Monarchy) है जो आज की सर्व-जनतन्त्रीय-व्यवस्था (Democracy) के प्रतिकूल है। किन्तु यहाँ उल्लेखनीय है कि रामराज्य की शासन व्यवस्था सच्चे मानो मे राजा और प्रजा की सम्मिलित व्यवस्था है। राजा तो प्रजा की भावनाओ और इच्छाओ की पूर्ति का माध्यम मात्र है। यथा :

"महाराज श्री रामचन्द्र ने रामराज्य इस भाँति चलाया।
राजतन्त्र या प्रजातन्त्र है भेद न यह कोई लख पाया ॥"

कवि ने उचित ही कहा है कि

"रामराज्य वह क्षणिक नही था, जिसने मानव मूल्य सिखाया।
असुरों के भी कुटिल वश से, नर भक्षण निर्मूल कराया ॥"

यही कारण है कि शताब्दियों के उपरान्त भी रामराज्य की धारणा हमारी राज्य-कल्पना का आदर्श है। मिश्रजी ने ठीक ही लिखा है कि—"श्रद्धेय महात्मा गांधी ने रामराज्य और सुराज्य को समानार्थक मानते हुए इस नाम के प्रति भारतीयों में पर्याप्त उत्सुकता जाग्रत कर दी है ...रामराज्य एक कल्पना ही सही, परन्तु वह ऐसी कल्पना है जो व्यवहार में भी असीम लाभप्रद हो सकती है।" (भूमिका, पृ० ६, १०)

यहाँ तक हमने काव्य की रामराज्य विषयक विचारणा पर विचार किया। कवि की अन्य मान्यताएँ इस प्रकार हैं :

नारी को कवि ने पुरुष का पूरक माना है। इसे शक्ति की संज्ञा से सम्बोधित भी किया है। यथा :

"तत्त्व यदि नर है नारी शक्ति, कहा ऋषि पत्नी ने यह आप।
उभय का होता जब सहयोग, जगत का चलता कार्य-कलाप॥
बुद्धि है नर तो नारी भाव, इष्ट हो नर को जग कल्याण।
किन्तु है नारी का यह धर्म, करे वह उत्तम नर निर्माण॥
रही नारी है भावुक सदा, न भावुकता में बहना श्रेष्ठ।
नियन्त्रक भावुकता का पुरुष, इसी से पुरुष कहाता ज्येष्ठ॥
न कोई हीन न कोई उच्च, उभय का अपना-अपना मान।
उभय समझें अपने कर्तव्य, प्रकृति नियमों का रखकर ध्यान॥"

'रामराज्य' के रचयिता के शब्दों में कविता और साहित्य की परिभाषा निम्नांकित प्रकार है :

"कविता सविता ज्योति शशांक सुधा है।
कविता मन्त्रों से वेद प्रबुद्ध हुआ है॥
हित सहित रहे, साहित्य वही सुन्दर है।
जो समुदय अक्षर करे, वही अक्षर है॥"

कवि की महिमा और कर्तव्य का उल्लेख इस प्रकार किया गया है :

"कवि चाहे नर को अमर करे स्वर द्वारा।
कवि चाहे जन इतिहास बदल दे सारा॥
जन-जन के अक्षर तत्त्व जगाता है कवि।
दिक्-काल-बन्ध सब आप भगाता है कवि॥"

जीवन के प्रति मिश्रजी का दृष्टिकोण यह है :

"जीवन आशा उल्लास सुखों का घर है।
जीवन नभ-सा विस्तीर्ण न वह नश्वर है॥

इस विस्तृत नभ पर विघ्न मेघ से आये।
यह सम्भव ही है नही कि उसे मिटायें॥"

इस प्रकार 'रामराज्य' महाकाव्य मे राज्य के आदर्श रूप के साथ साथ मानवतावादी जीवन-दृष्टि का भी विकास हुआ है। कवि ने विज्ञान-युग के विकास और ह्रास, प्रगति और पतन के परिप्रेक्ष्य मे रामराज्य की प्रतिष्ठा का आग्रह किया है। राष्ट्रीय एकता, शाश्वत जीवन-मूल्यो की प्रतिष्ठा, ग्राम्य जीवन की महत्ता, सहकारिता, पचशील आदि जीवन प्रेरक प्रवृत्तियो के निरूपण के कारण इस काव्य मे रामकथा का युगीन पुनराख्यान हुआ है। 'रामराज्य' काव्य मे उत्तर दक्षिण की अभेद स्थिति का निरूपण निश्चय ही रामकथा के विकास मे एक नवीन अध्याय की सृष्टि करता है। एक प्रकार से रामकथा के गायको की एक त्रुटि का कवि ने मार्जन किया है। उद्देश्य की महानता, विवेचन की गम्भीरता, शैली की उत्कृष्टता, शिल्प विधि के समुन्नत स्वरूप, चरित्र-विश्लेषण की मानवतावादी पद्धति, पौराणिक कथातत्त्व के पुनर्मूल्याकन और कलात्मक औदात्त के कारण 'रामराज्य' महाकाव्य निश्चय ही हिन्दी काव्य जगत की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। आज के युग जीवन मे ऐसी रचनाओ का स्थायी महत्त्व है। मिश्रजी भारतीय सस्कृति के अनन्य उपासक रहे हैं। उनके कृतित्व से हिन्दी साहित्य का उत्कर्ष हुआ तथा भारतीय सस्कृति की अखण्डता सिद्ध हुई है। 'रामराज्य से पूर्व 'कोशल-किशोर' और 'साकेत-सन्त' जैसी अनुपम कृतियो से वह हि दी साहित्य भण्डार की पूर्ति कर चुके हैं। उनका तृतीय महाकाव्य (रामराज्य) हिन्दी जगत मे अभिनन्दनीय है। भविष्य मे भी वे हिन्दी ससार को ऐसी कृतियाँ प्रदान करेंगे, ऐसी आशा है। रामराज्य' के कवि की मगलाकाक्षा श्लाघनीय है—

"त्रेता युग का रामराज्य वह, कलियुग को आलोक दिखाये।
जिसकी प्रबल प्रेरणा पाकर, शासन स्वप्न सत्य बन जाये॥
भारत की सीता समृद्धि को, रावणत्व से मुक्त कराकर।
खिल जाये रावणत्व मनुज का, ऐसे योग रचें विश्वेश्वर॥"

(द्वादश सर्ग, पृ० १४८)

'लोकायतन' महाकाव्य

विकासकामी मानवता के जीवन-सत्य की भागवत-कथा

१९

'लोकायतन' महाकाव्य

"विकासकामी मानवता के जीवन-सत्य की भागवत-कथा"

कविश्री सुमित्रानन्दन पन्त की सुदीर्घ-कालीन काव्य साधना के क्रम मे 'लोकायतन' महाकाव्य का प्रणयन अभूतपूर्व है। 'लोकायतन' महाकाव्य न केवल पन्त जी की काव्य साधना की चरम उपलब्धि है अपितु यह आधुनिक हिन्दी महाकाव्य परम्परा की भी गौरवान्वित प्रबन्ध काव्य कृति है। इसी तथ्य की ओर सकेत करते हुए श्री इलाचन्द्र जोशी ने कहा है— ' 'लोकायतन' हिन्दी के मध्ययुगीन और आधुनिक महाकाव्यो की परम्परा के साथ एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और नवीनतम कडी के रूप मे जुडकर हमारे सामने आता है। इस महाकाव्य की विशिष्टता का एक कारण यह है कि इसमे पन्त जी की जीवन व्यापी साधना एक ऊँचे धरातल पर उभर कर समग्र युग के बिखराव को समेटती और सँजोती हुई, अपनी सिद्धि को महाकाल के परिप्रेक्ष्य मे लाकर खडा कर देती है।'[1] 'लोकायतन' सचमुच लोकचेतना का महाकाव्य है, जिसमे भारतीय लोकभूमि को आधारमान बनाकर विश्वजीवन की सक्रमणशील परिस्थितियो और विघटनशील जीवन मूल्यो के परिवेश म विकास-कामी मानवता के गतिशील चेतना स्तरो को रूपायित किया गया है।

पन्त जी ने सदैव से ही काव्य-सृजन को एक सचेतन-सास्कृतिक प्रक्रिया के रूप मे स्वीकार किया है और युग जीवन की चेतना और प्रवृत्तियो के अनुरूप काव्यकृतियो का प्रणयन किया है। यह तथ्य विभिन्न युगो मे रचित काव्य कृतिया के द्वारा प्रमाणित हो जाता है कि पन्त जी की काव्य चेतना

---

१ 'आलोचना' त्रैमासिक स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य विशेषाक, भाग १, जून १९६५, पृ० १८५

निरन्तर विकासशील रही है। प्रकृति, प्रेम और सौन्दर्य नामक त्रितत्वों का काव्यवर्त्ता छायावादी कविपन्त यदि 'वीणा', 'ग्रन्थि', 'पल्लव' और 'गुन्जन' में दिखाई देता है तो श्रमिकों, कृषकों, पीड़ितों और पददलितों से सहानुभूति प्रगट करता हुआ कवि पन्त 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में दृष्टिगत होता है। प्रारम्भिक काव्यकृतियों में 'कवि दृष्टि' सौन्दर्य-मूलक, आत्मोन्मुख, काल्पनिक, भावुक और प्रकृति प्रेरित है तो 'प्रगतिवादी काल' की कृतियों में यथार्थ-प्रिय, बहिर्मुखी, युगसवेद्य, भौतिक, बौद्धिक और मार्क्सवादी विचार दर्शन से आदोलित प्रतीत होती है। काव्य साधना के तृतीय चरण में कवि महर्षि अरविंद के ऊर्ध्व चेतन भावबोध से अनुप्रेरित होकर सास्कृतिक काव्य-सृजन में प्रवृत्त होता है। 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि', 'मधुज्वाल', 'युगपथ', 'उत्तरा', 'अतिमा', 'वाणी' 'युगान्तर', 'कला और बूढा चाँद' नामक काव्य-सकलनो तथा 'रजत शिखर', 'शिल्पी', 'सोवण' शीर्षक काव्य रूपकों में अरविंद दर्शन की ऊर्ध्व चेतन विकासात्मक अन्तर्वाह्य जड चेतन समदिक् सामजस्यवादी चिन्तनधारा का पुष्कल प्रभाव स्पष्टत परिलक्षित होता है। काव्य चेतना के इस विकासक्रम को व्याख्यायित करते हुए पन्त काव्य के एक समीक्षक ने उचित ही लिखा है कि—'पन्त जी के काव्य वैभव का स्वर प्रकृति के विशाल प्रागण से प्रारम्भ होकर प्रेम की परिधियों में प्रवास लेकर लोक कल्याण के पथानुगामी साम्यवाद को स्वीकार करता हुआ अन्त में मानवात्मा और सास्कृतिक उत्थान के लिए अध्यात्म में विश्राम लेता है।'[१] पन्त जी की काव्यसाधना में विषय वैविध्य और चेतना स्तरों में परिवर्तन होते हुए कहीं बिखराव नहीं है। सुश्री महादेवी वर्मा के शब्दों में—"उनका काव्य जीवन के विरल क्षणों में बिखरा नहीं है, प्रत्युत वह प्रत्येक क्षण को जोड़ता हुआ उसी प्रकार सश्लिष्ट होता गया है जैसे स्वर की सम विषम विभिन्नता और उसके आरोह अवरोह किसी रागिनी में सश्लिष्ठता प्राप्त कर लेते हैं। उनकी रचना ऐसे स्रष्टा का सृजन है जो युग के अन्तर्जगत में अभिव्यक्ति के लिए विकल भावनाओं और विचारों को वाणी देता है। जीवन के मागल्य लक्ष्य के प्रति उनकी आस्था अद्वैत और साधना अडिग है।'[२] अस्तु स्पष्ट है कि पन्त जी 'युग चेतना' के कवि रहे हैं और उनकी काव्यकृतियों में युगीन

---

१ युग कवि पन्त की काव्यसाधना (विनयकुमार शर्मा), पृ० १७१-१७२
२ श्री सुमित्रानन्दन पन्त स्मृतिचित्र, पृ० ५३

चिन्तनधाराओ की सफल समाहृति, समकालीन जीवन बोध की सटीक व्यजना और मनीषियो के चिन्तन का पुष्कल प्रभाव देखकर उनके काव्य को 'युग-चेतना का काव्य' कहा जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन के आलोक मे यदि हम 'लोकायतन' की सृजन-प्रेरणा और रचनात्मक सोद्देश्यता पर विचार करें तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस प्रबन्ध काव्य मे पन्त जी की काव्यसाधना का चरम निदर्शन है। लोकमागलिक आस्थाओ, शाश्वत जीवन मूल्यो की प्रस्थापना के आग्रहो, युगचेतना के परिवर्तनशील स्तरो, सास्कृतिक निष्ठाओ, आध्यात्मिक मान्यताओ, विश्वजीवन मे परिव्याप्त नैतिक सक्रमणशीलता तथा वैज्ञानिक सभ्यता के अभिशापो और वरदानो को 'लोकायतन' के महाकार काव्यदर्पण मे कवि ने मनोयोगपूर्वक प्रतिबिम्बित किया है। इसीलिए 'लोकायतन' को 'लोकचेतना की महागाथा' सर्वांगीण चेतना का उद्गीथ',[4] 'अन्तर्मुखी रस से प्लावित बहिर्मुखी लोक-जीवन की अमरगाथा'[5] तथा 'दार्शनिक और वैचारिक सम्भावनाओ का लक्ष्य प्रधान भविष्योन्मुखी काव्य'[6] कहा गया है।

'वीणा' से 'वाणी' तक की काव्य यात्रा मे पन्त जी को कविवर और कविश्री होने का श्रेय तो प्राप्त हुआ किन्तु 'महाकवि' अभिधान के अधिकारी वे 'लोकायतन' के प्रणयन के पश्चात् ही हुए। वस्तुत 'महाकाव्य जातीय जीवन और सास्कृतिक चेतना के आकलन के भव्य प्रयास होते हैं। उनमे गम्भीर समस्याओ का महत्वपूर्ण निदान होता है। इसीलिए ये काव्य महा' विशेषण से विभूषित किये जाते है और उनके रचयिता 'महाकवि' कहलाते हैं।'[7] 'लोकायतन' का रचयिता महाकाव्य की काव्यगत महार्घता से पूर्णत परिचित था, इसीलिए उसने अपनी काव्यसाधना के प्रौढ और परिपक्व स्तर पर पहुँच कर एक महाकाव्य का सृजन किया। ऐसा महाकाव्य जो शिल्पगत वैशिष्ट्य और जीवन दर्शन सम्बन्धी उपलब्धियो, दोनो ही दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। इसी प्रसग मे पन्त जी की महाकाव्य सम्बन्धी अवधारणा का अवलोकन भी

---

[4] समीक्षालोक—सुमित्रानन्दन पन्त विशेषाङ्क—वर्ष ३, अक१-२, अक्टूबर १९७२, पृ० ९६, डॉ० राजवशसहाय का लेख

[5] वही, पृ० १०४, डॉ० व्रजविहारी तिवारी का लेख

[6] डॉ० सावित्री सिन्हा, तुला और तारे, पृ० १६५

[7] डॉ० देवीप्रसाद गुप्त, हिन्दी महाकाव्य सिद्धान्त और मूल्याश्कन, पृ० ३७८

समीचीन होगा। श्री गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश के 'तारकवध' महाकाव्य के प्राक्कथन मे 'लोकायतन' के प्रणयन से पूर्व पन्त जी ने लिखा था—"महाकाव्य कवि का विराट् मानस-प्रासाद होता है, जिसका विन्यास विधाता की ही सृष्टि कला का नमूना होता है, जिसके अन्त पुर मे पैठना आसान नही होता। महाकाव्य के निर्माण मे कवि अपने समस्त जीवन की व्यापक, गम्भीर, सूक्ष्म, बहुमूल्य अनुभूतियो का मानव-कल्याण के लिए उपयोग एव कलात्मक प्रयोग करता है, उसके भीतर देश, जाति या विश्व-मानवता की अनेक पीढियो का जीवन-सत्य निवास करता है। सक्षेप मे, महाकाव्य मानव सभ्यता के सघर्ष तथा सास्कृतिक विकास का जीवन्त पर्वताकार दर्पण होता है, जिसमे अपने मुख को देखकर मानवता अपने को पहचानने मे समर्थ होती है।"[8] और यह प्रसन्नता तथा सतोष का विषय है कि पन्त जी ने महाकाव्य सम्बन्धी स्वकीय धारणाओ के अनुरूप ही 'लोकायतन' की रचना की है।

'लोकायतन' का प्रकाशन यद्यपि सन् १९६४ मे हुआ और कवि के कथनानुसार "'लोकायतन' का श्रीगणेश मैं ने ८ अक्टूबर सन् '५९ को किया था। सयोगवश ८ अक्टूबर सन् '६३ को ही समाप्त भी हो गया।"[9] तथापि इस काव्य की प्रेरक भूमिका या परिनिर्माण द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका के भयावह वातावरण और राष्ट्रीय स्वाधीनता-आदोलन के समापन चरण (सन् १९४२ के 'भारत छोडो' आन्दोलन) मे ही हो गया था। श्री बच्चन के इलाहाबाद स्थित घर पर सन् ४२ मे 'लोकायतन' नामक सस्था की स्थापना का कवि सकल्प द्रष्टव्य है।"[10] बापू के निधन के पश्चात् श्री बच्चन जी के निवास-स्थान पर ही 'लोकायन' की स्थापना की पुन चर्चा हुई और सम्भवत विद्वान के सुझाव पर इसका नाम 'लोकायतन' किया गया। इस सस्था की 'स्थापना समिति' के सदस्य चुने गये, नियमावली प्रकाशित हुई, सस्था का रजिस्ट्रेशन हुआ और उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा सस्था को दस हजार रुपये का अनावर्तक अनुदान भी प्राप्त हुआ। धनाभाव ने 'लोकायतन' की स्थापना के संकल्प को ठेस पहुँचाई और पन्त जी आकाशवाणी की सेवा मे निरत हो गये।"[11] 'लोकायतन' या 'लोकायन' की संस्थापना के लिए पन्त जी की तीव्रा-

---

[8] तारकवध (महाकाव्य), प्राक्कथन, पृ० १

[9] लोकायतन—'प्रारम्भ' से उद्धृत

[10] कवियों में सौम्य सन्त—बच्चन, पृ० ७४

[11] वही, पृ० ७७-७८

काक्षा का अनुमान उनके द्वारा बच्चन जी को लिखे गये पत्रो से लगाया जा सकता है।[11] इस विवेचन से प्रगट होता है कि 'लोकायतन' काव्य का प्रणयन कवि के एक महत् भाव सकल्प का मूर्त्तरूप है।

'लोकायतन' के वर्ण्य विषय और प्रतिपाद्य का सूक्ष्म विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि साम्प्रतिक विश्वजीवन मे विघटनशील और ह्रासोन्मुखी भौतिक एव वैज्ञानिक सभ्यता की कृत्रिमताओ विकास के विध्वसक रूपो तथा परिवेश-जन्य विसगतियो को उजागर करने की महत्वाकाक्षा ने कवि को सृजन-प्रेरित किया है। सुन्दरपुर नामक काल्पनिक जनपद की गाथा तो निमित्त मात्र है। वस्तुत कवि हमारे समकालीन जीवन और युग की विनाशकारी सम्भावनाओ को अनुभूत सवेदन सत्य के रूप मे रूपायित करना चाहता है। 'लोकायतन' की सृजन प्रेरणा के इस आयाम को समझने के लिए हमे वर्तमान-युग की असाधारण परिस्थितियो के अन्तराल मे भी प्रविष्ट होना पडेगा। 'विश्व इतिहास का वर्तमान युग कोई साधारण युग नही है। यह एक वन्ध्या वैज्ञानिक सभ्यता के विकास की चरमावस्था का युग है, जो हजारो वर्षों से विकास प्राप्त महान मानवीय मूल्यो को कुचल कर, सामूहिक मानवीय प्रगति की प्राकृतिक रेखा को बीच मे ही लाघकर कुछ विचित्र ही प्रकार के वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सास्कृतिक उलझनो मे अपने आप को उलझाता हुआ, महानाश की मरीचिका की मोहक ज्वालाओं की ओर तेजी से भागता चला जा रहा है।'' श्री इलाचन्द्र जोशी इसी क्रम म युग-विश्लेषण करते हुए लिखते हैं कि—'दूसरे महायुद्ध के बाद सारे ससार म ऐसी उलझी हुई समस्याएँ और चक्रजालपूर्ण परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई है कि उनके समुचित समाधान या सही व्यवस्था के लिए रास्ता ही अन्तर्राष्ट्रीय नेताओ को नहीं सूझ पा रहा है। आज केवल राजनीतिक या आर्थिक क्षेत्रो मे ही हम अव्यवस्था, अशान्ति और असतोष नही पाते, बौद्धिक और सास्कृतिक क्षेत्रो मे भी एक विचित्र विशृखलता, लक्ष्यहीनता, आत्मविद्रोह, जीवन और प्रकृति के नियमो के अस्तित्व या उपयोगिता के प्रति सशय, विराट-सृष्टि की नियामिका शक्ति के प्रति मूलगत अविश्वास और अनास्था का बोलबाला सर्वत्र दिखाई देता है। मनुष्य आज लाखों वर्षों से चली आ रही, क्रमिक विकास-सम्बन्धी

---

[11] कवियों मे सौम्य सत, बच्चन, पृ० ५६, ५७, ७१, ७२, ७६

[11] समसामयिक हिन्दी साहित्य उपलब्धियाँ—सम्पादक श्री मन्मथनाथ गुप्त, पृ० ३४

प्रगति के इतिहास के प्रति केवल उदासीन हो नहीं, अविश्वासी भी हो चला है।....जड़-विज्ञान की हवाई प्रगति से इतराया हुआ आज का यान्त्रिक मानव सर्वध्वंसी, वन्ध्या राजनीति के हाथ अपनी आत्मा बेच चुका है। पर जब चारो ओर कल्पात की सन्ध्या का धुंधलका छाया हो, ह्रास और विनाश की व्यापक योजनाओ के ऊपर प्रलय-मेघो से घिरी कराल काल-रात्रि सघन से सघनतर होती हुई, घिरती चली आ रही हो, तब किसी महाकवि की वाणी अपने भीतर की घुटन मे बँधी भी नही रह सकती। 'लोकायतन' सामूहिक जीवन की ऐसी ही परिस्थितियो मे लिखी गयी महाकृति है, जो कवि की उपचेतना से चारो ओर घिरी दीवारो को तोड-फोड कर, ढाकर, बाहर से मुक्त और विस्तृत प्रागण मे असख्य धाराओ मे प्रवाहित होकर, उदात्त भावो, प्रतीकात्मक चित्रो और गहन विचारो के रग-बिरगे फूलो को सहज भाव से खिलाती चली जाती है।" वर्तमान युग-विश्लेषण के परिप्रेक्ष्य मे 'लोकायतन' का रचनात्मक-सार्थक्य यह प्रमाणित करता है कि आलोच्य कृति का रचनाफलक विराट है, प्रतिपाद्य उदात्त है, सर्जनात्मक आयाम विस्तारपूर्ण हैं और भावसवेदन विश्वव्यापी सचेतन रचनाधर्मिता से अनुबद्ध है। इसी व्याप्ति के कारण कविश्री पन्त के दार्शनिक अनुचिन्तन की उपलब्धियाँ, भावजगत की अनुभूतिपरक सक्रान्तियाँ, सचेतन मनस् के सकल्प-विकल्प, 'सामूहिक-अचेतन' से प्रादुर्भूत रचनात्मक प्रतिक्रियाएँ और मानवता के मगल-विधान की भागवत कामनाएँ 'लोकायतन' के वृत्त मे समीकृत हो गई हैं।

'लोकायतन' की सृजन प्रेरणा और रचनात्मक-सोद्देश्यता के उपर्युक्त विश्लेषण के अनन्तर जब हम काव्य के समीक्षण में प्रवृत्त होते हैं तो सर्वप्रथम हमारी दृष्टि इतिवृत्त-विधान की ओर उन्मुख होती है।

पन्तजी ने काव्य के प्राक्कथन मे 'लोकायतन' को इतिवृत्तात्मक दृष्टि से 'युग जीवन की भागवतकथा' तथा 'सक्रान्तिकाल की युगगाथा' कहा है। वस्तुत इस काव्य का कथापट तथ्य और कल्पना के मिश्रित सूत्रो से बुना गया है। भारतीय स्वाधीनता सघर्ष से सम्बद्ध घटनाएँ ऐतिहासिक, सीता, राम, वाल्मीकि आदि के सन्दर्भ पौराणिक तथा सुन्दरपुर जनपद का उपाख्यान काल्पनिक हैं। 'लोकायतन' के इतिवृत्त में एक ओर 'महाभारत' के समान व्याप्ति और विस्तार है जिसका नियोजन कवि ने इतिहास, पुराण, धर्म, दर्शन और विश्व भ्रमण के प्रसगो द्वारा किया है तो दूसरी ओर सुन्दरपुर नामक अचल मे 'कला-मन्दिर' की स्थापना से सम्बद्ध काल्पनिक कथासूत्र नितान्त विरल दिखाई देता है।

सच तो यह है कि 'लोकायतन' कथाप्रधान प्रबन्धकाव्य है ही नही। 'लोकायतन' "कथा प्रधान न होकर बुद्धि प्रधान रचना है।"[१४] डॉ० तिवारी के अनुसार भी—" 'लोकायतन' कथाप्रधान नही कथ्य और विचार प्रधान काव्य है। ... विचार की गहन वीथियो मे कथासूत्र यत्र-तत्र बिखरे पडे हैं।"[१५] श्री इलाचन्द्र जोशी के अनुसार "ऐसे मसृण तन्तु से इस काव्य-कथा का 'पैटर्न' बुना गया है जो मकडी के जाले के तन्तु से भी अधिक सुकुमार है।"[१६] इसी प्रकार का मत प्रगट करते हुए डॉ० सावित्री सिन्हा ने लिखा है—"कवि का उद्देश्य कथा कहना नही है 'लोकायतन' के पात्र और उसमे वर्णित घटनाएँ एक दार्शनिक 'थीसिस' को प्रस्तुत करने के निमित्त और माध्यम मात्र हैं।"[१७] कथानक की विरलता के कारण यद्यपि 'लोकायतन' की काव्यगत महार्घता खंडित नही हुई है किन्तु इतिवृत्त विधान निश्चयत महाकाव्य की गरिमा के अनुरूप नही बन पडा है। अनागत, अतीत और वर्तमान से अनुबद्ध त्रिकाल दृष्टि, इतिहास, पुराण, कला, विज्ञान, धर्म, राजनीति और संस्कृति की युगसापेक्ष महत्ता को निरावरण करने की महत्वाकाक्षा, विश्वजनीन चिन्तनधाराओ के ज्ञानकोश को समीकृत करने की चेष्टा और विभिन्न प्रान्तो, महानगरो एव विदेशो के विस्तृत वर्णनो ने 'लोकायतन' को दार्शनिक जटिलता, कोशवत् विस्तार और महाकार तो प्रदान किया है किन्तु महाकाव्योचित कथा-वैभव, वृत्त-सयोजन-शिल्प, सश्लिष्ट चिन्तन की विराटता, गहन सवेदनशीलता और कही-कही कलात्मक चारुत्व से वचित भी किया है। इस दृष्टि से 'लोकायतन' की कटु आलोचना भी हुई है। डॉ० रामदरश मिश्र के अनुसार—"कथानक-रचना की शिथिलता, अनुपातहीनता और रिपोर्टिंग की प्रवृत्ति से इस प्रबन्ध काव्य का प्रभाव बहुत कुछ आहत हुआ है। कथानक-रचना इस कारण और भी शिथिल हो उठी है कि कवि ने अपनी अभीप्सित बात बार-बार फेंट-फेंट कर कही है। अनेक अनावश्यक प्रसगो और दृश्यो को लिया है। 'लोकायतन' के प्रारम्भिक अशो मे

---

[१४] समीक्षालोक, सुमित्रानन्दन पत विशेपाङ्क, पृ० ६४

[१५] वही, पृ० १००

[१६] आलोचना, (त्रैमासिक) स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य विशेपाक, जून १९६५, पृ० १६०

[१७] तुला और तारे, पृ० १५८

जो गठन लक्षित होती है वह बाद मे दुर्लभ हो गई है।"[१८] यहाँ चिन्तनीय यह है कि क्या कथा-तत्त्व की दृष्टि से ही 'लोकायतन' की आलोचना सार्थक है ? कथा तत्त्व की दृष्टि से हिन्दी के आधुनिक प्रबन्धकाव्यो मे अनेक प्रयोग हुए हैं। 'कामायनी', 'कुरुक्षेत्र', 'ऊर्म्मिला', 'एकलव्य' आदि मे अत्यन्त विरल कथासूत्र हैं। इनमे काल्पनिक विस्तार और चिन्तनधारा का ऐक्य ही प्रमुख है। वैसे भी—"आख्यान तत्त्व का ह्रास इस युग की विशेषता है। जो केवल महाकाव्य मे नही वरन् सम्पूर्ण आधुनिक कथा साहित्य मे परिलक्षित होती है। आधुनिक कथा-साहित्य की कृतियो मे कथानक का सूत्र इतना क्षीण हो गया है कि एक क्षणिक मार्मिक प्रसग पर कहानी की रचना हो रही है और एक व्यक्ति के मन का विश्लेषण करते करते उपन्यास पूरा हो जाता है। दूसरे आज का बुद्धिजीवी पाठक घटनात्मक विवरणो मे रुचि लेता भी नही है चाहे वे कथा साहित्य के हो या कथाकाव्य के।'[१९] इस मन्तव्य के आलोक मे विचार करने पर 'लोकायतन' के कथानक की त्रुटियाँ अदृष्ट हो जाती हैं। 'लोकायतन' २०वीं शताब्दी के सातवें दशक का महाकाव्य है। इसे हम महाकाव्य रचना का एक नवीन 'प्रयोग' भी तो कथानक की दृष्टि से कह सकते हैं जिस का ऐक्य, अन्विति, विन्यास, सुसगठन, और क्रमबद्धता आख्यान तत्त्व मे नही अपितु चिन्तन तत्त्व (जीवन-दर्शन) मे है। श्री इलाचन्द्र जोशी ने उचित ही कहा है कि—"आज जब साहित्य के सभी अगो मे 'फार्म' बदल रहे हैं तब नए महाकाव्य के लिए यह नियम लागू क्यो नही हो सकता ? इसलिए इस सम्बन्ध मे इस दृष्टि से भी सोचा जा सकता है कि पन्तजी ने महाकाव्य को एक नया 'फार्म'—एक नया रूप 'विन्यास' दिया है।'[२०] इसीलिए हम 'लोकायतन' के कथानक का विश्लेषण आधिकारिक, प्रासगिक या अवान्तर कथा प्रसगो के रूप म वर्गीकृत करके अथवा प्रारम्भ, विकास, चरमसीमा, नियति और फलागम आदि के निर्देश द्वारा नही कर सकते हैं। 'लोकायतन' के कथानक की सिद्धि इस बात पर निर्भर करती है कि उसमे काव्य के प्रतिपाद्य को सवहन करने की सामर्थ्य है या नही ? आख्यान मे मार्मिक प्रसगो की अवतारणा हुई या नही ? इतिवृत्त नियोजन में कवि की कल्पना-शक्ति कितनी सामर्थ्यपूर्ण है और घटनात्मक विस्तार में ऐतिहासिक या तथ्यमूलक विरोधाभास तो नही है ? आदि।

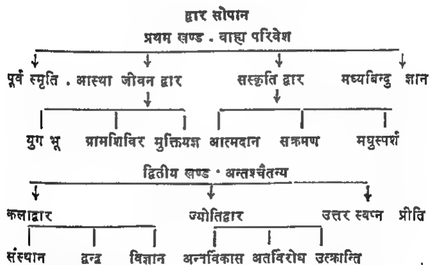
---

[१८] हिन्दी कविता तीन दशक, पृ० १५४
[१९] हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य, पृ० ३६५
[२०] आलोचना, जून १९६५, पृ० १६७

'लोकायतन' महाकाव्य दो खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड का शीर्षक—'बाह्य परिवेश' और द्वितीय खण्ड का—'अन्तश्चैतन्य' है। 'बाह्य परिवेश' शीर्षक खण्ड पुनः 'पूर्व स्मृति : आस्था', 'जीवन द्वार', 'संस्कृति द्वार' तथा 'मध्य बिन्दु : ज्ञान' और 'अन्तश्चैतन्य' खण्ड 'कला द्वार', 'ज्योति द्वार' और 'उत्तर स्वप्न : प्रीति' नामक उपखण्डों में वर्गीकृत हैं। ये उपखण्ड द्वार पुनः निम्नांकित प्रकार से वर्गीकृत किए गए हैं—

१. जीवन द्वार—'युग भू', 'ग्रामशिविर' और 'मुक्तियज्ञ'
२. संस्कृति द्वार—'आत्मदान', 'संक्रमण' और 'मधु स्पर्श'
३. कला द्वार—'संस्थान', 'द्वन्द्व' और 'विज्ञान'
४. ज्योति द्वार—'अन्तर्विकास', 'अन्तर्विरोध' और 'उत्क्रान्ति'

सम्पूर्ण काव्य के वर्गीकृत यथाक्रम को इस प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है—



उपर्युक्त काव्यक्रम सप्रयोजन है। 'लोकायतन' के दो प्रधान द्वार हैं—'बाह्यपरिवेश' और 'अंतश्चैतन्य'। ये दोनों प्रधान द्वार तीन उपद्वारों तथा सात अन्तर्द्वारों में विभक्त हैं। कुल मिलाकर पन्द्रह द्वार हैं। 'लोकायतन' को एक प्रकार से पन्द्रह उपद्वारों वाले लोकचेतना से दीप्तिमान 'लोकगृह' के रूप में संस्थापित किया गया है। 'कामायनी' के सर्गक्रम की भाँति 'लोकायतन' की 'द्वार-योजना' भी अर्थवत्तापूर्ण है। यह अर्थवत्ता मानवता के सचेतन

विकास-क्रम और मानवीय-चेतना के अन्त सघर्ष की विजय-पराजय, विकास-विघटन, आरोह-अवरोह तथा प्रगति-नियति को एक साथ व्यजित करती है। 'लोकायतन' समग्रत एक काव्यरूपक भी है, जिसकी दार्शनिक, आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक व्याख्या अपेक्षित सन्दर्भों के सन्धान द्वारा की जा सकती है। साकेतिक रूप मे भारत वसुन्धरा ही 'लोकायतन' की रूपक-योजना का 'लोकग्रह' है। इस 'लोकग्रह' मे प्रविष्ट होने से पूर्व कवि ने 'पूर्वस्मृति' के रूप मे भारत के गौरवान्वित अतीत के प्रति पूर्ण 'आस्था' प्रगट की है। कवि की 'आस्था' प्रथम छन्द से ही मुखर है—

"वागर्थादि, अमर कवि गिरे, प्रणाम,
जयति, पार्वती-परमेश्वर प्रिय राम !
× × ×
परब्रह्म से नाद ब्रह्ममयि, शतमुख
ध्वनि रस की स्वर गरिमाओ मे गु जित,
रचो मगलायतन, लोक कल्याणी,
निज समग्रता मे असीम से प्रेरित !"

(लोकायतन, पूर्व स्मृति, पृ० ५)

वाणी की अधीश्वरी लोककल्याणी सरस्वती के मागलिक आह्वान् के साथ कवि भूमिजा सीता, राम, बाल्मीकि, धरित्री आदि के आभिजात्यपूर्ण कलात्मक बिम्ब उभारता है। 'पूर्वस्मृति' मे ही कवि ने रामायणी-कथा के अन्य पात्रो को प्रतीकाश्रित अभिव्यक्ति दी है। अतीत के प्रति 'आस्था' और परम्परा के प्रति विश्वास का स्वर लेकर कवि 'जीवन द्वार' मे प्रवेश करता है। उसे 'युगभू' की पीढ़ियो की अनुभूति है। युगभू' की पीडा कवि को 'ग्रामशिविर' की स्थापना और 'मुक्तियज्ञ' की आयोजना के लिए अनुप्रेरित करती है। 'मुक्तियज्ञ' के माध्यम से जन जागरण का शखनाद होता है।

'सस्कृति द्वार' पर पहुँचते ही भारतीय सस्कृति की मूलभूत प्रवृत्ति 'आत्मदान' का बोध कवि कराता है। युगजीवन मे मूल्यगत सक्रमणशीलता मानवता के विकास क्रम मे पतनशीलता से अवगत कराती है। 'सक्रमण' की स्थिति का निदान कवि आत्मज्ञान मे खोजता है। आत्म ज्ञान बोध 'मधुस्पर्श' कराता है। मधुस्पर्श धरा पर प्रकृति की अलौकिक किन्तु सचेतन सत्ता का पर्याय है। 'मध्यबिन्दु' ज्ञानमूलक है। बाह्य परिवेश की प्रतिक्रियाएँ अतश्चैतन्य मे प्रविष्ट कराती हैं। 'अतश्चैतन्य' के 'कलाद्वार' पर पहुँच कर एक सास्कृतिक

पीठ की स्थापना एवं 'सस्थान' के रूप मे होती है। 'द्वन्द्व' की स्थितियां और वैज्ञानिक उपलब्धियाँ 'सस्थान' की योजनाओ को सफलता प्रदान करती हैं। 'अतश्चैतन्य' की जागृति जिस जीवन को विकसित करती है, उसमे ही 'अन्तर्विरोध' की स्थितियाँ निष्पन्न होती हैं। 'अन्तर्विकास' अन्तत 'उत्क्रान्ति' को जन्म देता है। 'उत्तर स्वप्न' के सोपान पर पहुँच कर कवि धरा पर स्वर्गारोहण की कल्पना को परस्पर 'प्रीति' भाव मे प्रत्यक्ष होते हुए पाता है। नवमानव-चेतना 'प्रीति' के द्वारा भू-लाछन का प्रक्षालन कर जीवन को श्री-शोभा सम्पन्न बनाती है'—

"रस पूत प्रीति मे वध स्त्री नर
तन बोध रहित, मन मे थे स्थित,
भू लाछन कल्मष से ऊपर
प्राणो का सरसिज था शोभित !
अब काम ग्लानि से मुक्त हृदय
श्री शोभा का करता आदर,
लौटी थी निर्वासित सीता
जन भू मन का कर रूपातर !"

(उत्तर स्वप्न, पृ० ६५६)

इस प्रकार 'लोकायतन' के कथा-रूपक को 'सर्ग-क्रम' की अन्विति मे स्पष्टत. खोजा जा सकता है। यहाँ अति सक्षेप मे कथाक्रम मे अन्वित रूपकात्मक बिन्दुओ को उभारा गया है। वस्तुत 'लोकायतन' के 'द्वार सोपान' के विभिन्न 'खण्डो', 'उपखण्डो' और 'द्वारो' मे अनुबद्ध चेतना-विकास के काव्य-रूपक का अनुसन्धान अनेक अनुद्घाटित रोचक तथ्यो को प्रस्तुत कर सकता है। निश्चय ही 'लोकायतन' के कथानक का अनुशीलन रूढ काव्यशास्त्रीय मानदण्डो के आधार पर नही किया जा सकता है। इस काव्य के कथाक्रम का परिशीलन प्रतिपाद्य के परिप्रेक्ष्य मे ही विवेच्य है।

ग्रन्थारम्भ 'वाह्य परिवेश' शीर्षक प्रथम-खण्ड के 'पूर्व स्मृति आस्था' नामक उपखण्ड से होता है। रामकथा के राम, सीता, लक्ष्मण आदि पात्रो के परिसवाद तथा महाकवि वाल्मीकि की भाव-चेतन प्रतिक्रियाओ के माध्यम से युग-जीवन की विसगतियो, मूल्यगत सक्रमणशीलता, भयावह वातावरण और सहारक प्रवृत्तियो का चित्रण करते हुए मानवता के सुखद भविष्य की मगल कामना की गई है। समकालीन युग-जीवन की शोचनीय दशा का शब्दचित्र कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

"वह विरक्त, जीवन निषेध विष मूर्छित,
जाति, पाँति, मृत रूढि रीति से श्री हत !
पर-भाषा, पर-संस्कृति ओढ़े युग से,
अंतर-गौरव-शून्य, सिद्ध शुक पंडित,
मनोयंत्र निष्क्रिय, पर-धी संचय प्रिय,
बहिरंतर के दैत्यों में शत खण्डित !"

(पूर्व स्मृति, पृ० ६)

इस वैषम्य और विषाद के युग-जीवन का युग कवि पन्त 'मंगलायतनो हरि' और लोककल्याणी वीणा पाणि सरस्वती से युगवाणी में जन मन को उद्वेलित करने वाला स्वर्णिम काव्य रचने की शक्तिप्राप्ति हेतु स्तवन करता है। वह नव्य कल्प के आदि काव्य का व्यापट लोकजीवन के सूत्रों से बुनकर मानव-मन और भूमंडल को नूतन जीवन-रचना से संयुक्त करना चाहता है। शतियों के मृत-संस्कारों से मर्दित मानव-मन के अभ्युत्थान का उपाय आत्म बोध की निष्क्रिय समरसतापूर्ण स्थितियों में नहीं है, जैसा कि स्वर्गीय श्री जयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' में प्रतिपादित किया है—

"कैसे कहदूँ इडा लुब्ध युग मनु से
श्रद्धा संग वह करे मेरु नग रोहण,
आत्म बोध की निष्क्रिय समस्थिति को
जन भू पथ पर करना सक्रिय विचरण !"

(वही, पृ० ७)

'लोकायतन' के रचयिता की 'जीवन दृष्टि' कामायनीकार से यहीं तत्वत: भिन्न है। 'कामायनी' का जीवन दर्शन जहाँ शैवागमों की आनन्दवादी अवधारणा पर आधृत व्यक्तिनिष्ठ सामरस्य का प्रतिपादक है वहाँ 'लोकायतन' का काव्य-दर्शन अरविन्द प्रतिपादित ऊर्ध्व और समदिक की समजस्य भावना पर केन्द्रित होते हुए भी लोकोन्मुख किंवा समष्टिपरक है। इस दृष्टि से "पन्त का लोकदर्शन उस शिखर से आरम्भ होता है जहाँ पर 'कामायनी' का दर्शन समाप्त हुआ था।"[११] यहाँ व्यक्ति से समष्टि की ओर कवि उन्मुख हुआ है। 'लोकायतन' का कवि मानवता के जनक मनु के लिए ही नहीं अपितु सम्पूर्ण मानवता के सुखद भविष्य का मंगलाकांक्षी है।

---

[११] डॉ० सावित्री सिन्हा, तुला और तारे, पृ० १६२

'पूर्व-स्मृति' उपखण्ड मे कवि ने कथानक के पौराणिक सूत्र को वैदेही के निर्वासन की घटना से जोडा है। रघुवर को ज्ञात था कि जनक नदिनी निर्दोष हैं, फिर भी लोक जीवन के सशय और अविश्वास का निराकरण करने के लिए उन्हे निर्वासित किया था। कवि के अनुसार भारतीय इतिहास का यह घटना-क्रम सनातन-सत्य का उद्घाटक है—

"जनरव भय से राघव ने पत्नी को
छोडा था क्या ? कथा पुरातन रे यह,

× × ×

यह इतिहास न हो तथ्यो पर कल्पित,
भारत भू मानस का सत्य सनातन,
देशकाल पुलिनो को रहा डुबाता,
यहाँ चेतना के जीवन का प्लावन।"

(वही, पृ० १०)

इसी 'उपखण्ड' मे राम और सीता के सवाद द्वारा कवि ने सृष्टि-विकास के विभिन्न युगो का सचेतन तथ्यमूलक इतिहास दोहराया है। राम कहते हैं कि जड-चेतन का सघर्षण चिर अनादि है। चेतन ही जड और जड ही चेतन होता है, किन्तु तर्कप्रवण बुद्धि नही समझ पाता है। ह्रास और विकास मन की ही गतियाँ है। 'रामराज्य' राज्यतन्त्रीय व्यवस्था का युग दर्पण था। अब लोक-तन्त्र का स्वर्णोदय हुआ है जिसमे नवीन जीवन मूल्यो पर शासन व्यवस्था आधृत है। राम धर्म, नीति, सस्कृति, विचार, विधि, दशन, शास्त्रज्ञान, यज्ञ-कर्म, नियम, व्रतसाधन, शासन पद्धति, चतुर्वर्ण और चतुराश्रम व्यवस्था सीता को समर्पित कर नव सृष्टि सरचना का आह्वान् करते है। जानकी उस समर्पण को स्वीकारकर नव कल्प सृजन के लिए कृत सकल्प होती है। इसके पश्चात् कवि ने सीता के विश्वव्यापी महत् रूप को व्याख्यायित करते हुए कहा है कि सीता ही आद्यन्त रहित अनन्त जगधात्री है, वे ही चिन्मुक्ता अमृत योनि हैं जो अणु-अणु मे व्याप्त है। असख्य ब्रह्माण्ड, लोकग्रह, दिशा, काल, गगन-नीलिमा, सिन्धु जल, पावक, हरितधरा, समीरण परिवृत आदि मे वही चेतना-स्वरूपा आदि शक्ति विद्यमान है। राम और सीता की भाँति कवि ने रामकथा के अन्य पात्रो के प्रतीकात्मक व्यक्तित्व एव सत्ता का स्पष्टीकरण किया है। उदाहरणार्थ हनुमान अजेय पौरुष के, विदहराज जनक मानस स्थिति के, रावण अह-

वृत्ति का, ऊर्मिला शील की और निशाचर युग की क्रूरता के प्रतीक थे। ये सभी पात्र अनश्वर हैं —

> 'सीता जन भू हृदय, राम जन के वल
> नर चरित्र धर, मानस पात्र अनश्वर,
> प्रीति प्रणत लक्ष्मण अनत पौरुष वल,
> शील मूर्ति ऊर्मिला विरह रस सागर!
> यह रूपक सक्षिप्त, प्रिये, गत युग का,
> काल चक्र हो रहा, कल्प परिवर्तित"

(वही, पृ० १६-१७)

राम सीता के संवाद की परिसमाप्ति पर सहसा उज्ज्वल इन्द्रधनुष मण्डित नीलगगन म चित् रश्मियों के दिव्य स्पर्जित मण्डल में स्वर्ण शुभ्र नवचेतना एक सूक्ष्माकृति के रूप म प्रादुर्भूत हुई। इसे कवि ने युग युग की चैतन्य-ज्योति कहा है। भावना प्रेरित वाल्मीकि युगदेवी की वंदना कर जगद्धात्री से लोक मगल क लिए नवचेतना प्रसार का वर माँगते हैं। शक्ति स्वरूपा सीता ने कवि को ध्वंस, भय और सशय का हरण करन के लिए महत्-सृजन की प्रेरणा दी। क्रौंच की करुणा से डाकू से कवि बने वाल्मीकि ने सकल्प किया कि मैं युद्धान्ध जग को शान्तिमन्त्र दूँगा, लोक जुगुप्सा, हिंसा, क्षुद्रता, क्रूर वृत्ति यन्त्र युग की विगर्हणा और सर्वनाशक सहजन आयोजनों का परित्याग कर धरा प्रेम, करुणा, श्रम, समन्वय, जातीय एकता और विश्व मानवतावादी मूल्यों के प्रति निष्ठावान् होगी। कवि ने ध्यानावस्थित होकर देखा कि मानवता का भविष्य चित् किरणों के स्वर्णिम प्रकाश से आलोकित है। शत शत इन्द्रधनुषों की ज्वाला स मण्डित नयी चेतना का विकास हुआ जिसके भाव बोध से इन्द्रियाँ, मन, प्राण प्रहर्षित हो उठे। नयी चेतना के शक्तिपात से सर्वत्र मधुरिमा और मागल्य की अभिवृद्धि हुई—

> "ज्योति प्रीति आनन्द मधुरिमा मगल,
> जन जीवन में मूर्त हो रहे जग में,
> × × ×
> रहस कलामयी महाशक्ति जग धात्री
> अणु मे जो करती अनत सवधारण!
> देख रहा, उठता भू-गोलक ऊपर,
> उवर ज्योतिष्पिंडो से अभिनदित,

जड के मुख पर शक्ति-पात चेतन का,
मनः शृंग पर हों शत तडित् प्रकंपित !"

(वही, पृ० २४)

इसके पश्चात् कवि ने धरा-अवतरण और धरित्री-जीवन की विडम्बनाओ का निरूपण किया है। आर्द्र कंठ से सर्वसहा वसुन्धरा ने भूमिजा-सीता से कहा कि बेटी ! तुम्हे मेरे मन का संघर्षण ज्ञात है। युग-सध्या की इस वेला मे जग-जग मे क्रान्ति मची हुई है। नए कल्प का जन्म होने वाला है, नये-नये परिवर्तन ससार मे घटित हो रहे है। विनाशकारी प्रयाम और शान्ति प्रयत्न तथा अध-भौतिकता का कर्कश स्वर और तप-त्यागजन्य विरति का रोदन एक साथ सुनायी पड रहे है। कवि के अनुसार दो विरोधी गुटो मे बँटा विश्व-जीवन भय-भ्रम मे फँसा हुआ है—

"क्रुद्ध शेष फूत्कारो से दिशि धूमिल,
महामृत्यु मेघों से मथित अंबर,
मुझे विरोधी शिविरो का भय-भ्रम हर,
सृजन शान्ति स्थापित करनी भू तल पर !
भौतिक वैभव के मद से उत्तेजित,
शोषक शोषित मे विभक्त भू-प्रागण,
इधर अध भौतिकता का कर्कश स्वर,
उधर रिक्त तप त्याग विरति का रोदन !"

(वही, पृ० २६)

कवि का मत है कि धरित्री-जीवन की सभी व्याख्याएँ अपूर्ण हैं। तत्त्व-विदो ने धरा को मर्त्य-धाम कह कर जरा, रोग, भय, पाप-ताप का प्रागण बताया है। धर्मज्ञो ने त्याग-विराग सिखा कर जगत को व्यर्थ, मिथ्या और माया-बंधन कहा है। यतियो ने मुक्ति-मार्ग का विज्ञापन कर धरणी को निर्जन बनाने का प्रयत्न किया है। स्वर्ग-नरक और जड-चेतन के द्वन्द्व मे फँसे लोग जीवन की वास्तविकता से अपरिचित हैं। अपने आदिम किंवा मौलिक स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए धरा ने कहा कि मैं मन से बड़ी, क्षण-परिमित और नित्य अपरिमित हूँ। मैं ज्योतिप्रिय हूँ, अतः दीप्त ग्रहों के साथ नर्तन करती हूँ। रवि मेरा शीशफूल, शशि मुग्दर्पण, उषा माँग की रोली और ज्योत्स्ना तन का उबटन है। घन मुझे रसधार से स्नान कराते है। वसुन्धरा ने भूमिजा से कहा कि तुम मेरे अन्तर की अकलुष प्रोनिज्योति हो। तुम स्वय प्रकाशित

सत्यशिखा हो अत जग मे श्री और समग्रता स्थापित करो। ऋषि कवि ने देखा कि भू गोलक तप्त कनक के समान अमित सिन्धु से परिवृत शक्ति सम्पन्न हो गया। सैकडो सूर्य और चन्द्र धरा को तिमिर मुक्त बना रहे हैं। अगणित कृमि, खग, मृग, नर, मुनि, किन्नर, सुर अकल्पित ब्रह्माण्ड के विस्तार मे परिव्याप्त हैं। दीप्त भुवन, देव-ऋषियो के आश्रम, कोटि सभ्यताओ और सस्कृतियो के निरुपम स्वर्ग स्तर धरागर्भ मे विद्यमान हैं। दैवी-चेतना के प्रभाव से जन-भू का अन्तर दीप्तिमान हो उठा। तभी कवि ने उन्मेषित स्वर से जगद्धात्री शक्ति-स्वरूपा महागौरी का स्तवन किया। मनीषी-कवि ने कहा—

"नटराज्ञी तुम, निज अत सुख मे स्थित,
उठा मत्त कर-पद, करती भव नर्तन,
शुभ्र स्तनो से ऋत चैतन्य छलकता,
स्वर्णिम जघनो से मरकत भू जीवन!
× × ×
कैसे व्यक्त करूँ शब्दो के मन से,
किस प्रकाश से आदोलित कवि अतर!"

(वही, पृ० ३०)

महागौरी ने सत्य द्रष्टा ऋषि को सृष्टि के मगल के लिए वरदान दिया और कहा कि भू-जीवन ईश्वर इच्छा का दर्पण है जिसे समझने मे मनुज-मन अकृतार्थ है। राग द्वेष हिंसा स्पर्द्धा, घृणा, क्रोध, मद, स्वार्थ, लोभ, तृष्णा, भय आदि के कारण जडता का अवगुठन चेतना स्तरो को आवृत्त किये हुए है। जो जीवन को अपूर्ण और अस्थिर कहते हैं, वे अर्ध-पठित हैं। मनीषी-कवि के रूप मे तुम्हारा कर्त्तव्य जीवन मगल के लिए प्रशमित मानव-चेतना को ऊर्ध्वमुखी कर जन-भू को शाति, प्रीति और आनन्द की ज्योति से आलोकित करना है—

"कविर्मनीषी का कर्त्तव्य सनातन
जीवन मगल का करना सुख सर्जन,
श्री सुषमा, रस महिमा, स्वर गरिमा से
कुसुमित कूजित रखना जन भू प्रागण!
× × ×
कवि मन को देना आलोक, जगत को,
शाति प्रीति, आनद ज्योति मगल कर!

अधिमानस की काम धेनुओ को दुह
उच्च प्रेरणा स्रोतो को ला भू पर,
प्रज्ञाऽमृत से भरना नव सजीवन,
मानव उर का पोषक रस जो भास्वर !'

(वही, पृ० ३३)

महागौरी ने वरमुद्रा मे ही कवि से कहा कि स्वर्गिक क्षितिजो के अक्षय वैभव से सम्पृक्त शब्द सृष्टि द्वारा भावी मानवता के हित सरचना करो। तुम असत् तमस पर सत्य ज्योति की जय का गान करो। कवि मन के भावना-ज्वार मे भू-जनो का अन्तर आप्लावित होकर भेद मुक्त होगा। कवि के उर से नि सृत भाव-धारा शाति, ज्योति और आनन्द की त्रिवेणी बहा देगी। इस उन्मद-आह्लादक रसधारा से भू-उर आलोकपूर्ण तथा यौवन स्मित बनेगा। महागौरी ने कवि को मानवता का मगल विधायक अमृतघट सौंप दिया—

"तुम्हे सौंपती लो, यह कनक अमृत घट,
नर नारी के रस मगल से पूरित।"

(वही, पृ० ३४)

कवि ने मगलघट को अधिगृहीत कर परमशिवा से यह वर पुन मांगा—

"सहज प्रसन्न जननि वह, जन को दे वर,
बरसे श्री शोभा मगल पग-पग पर,
महत् सत्य से प्रेरित हो मानव उर,
धरा-स्वर्ग हो सुदर से सुदरतर।"

(वही, पृ० ३५)

उमा ने मद स्मित मुख से 'तथास्तु' कहा और वे सीता से स्नेह विनय-युक्त वाणी मे बोली कि तुम प्रति युग मे विकसित होने वाली विश्व चेतना हो। तुम अत केन्द्रित परात्पर सित ज्योति हो। अब तुम धरा चेतना के शिखरो के ऊपासित शृगो से उतर कर हरित धरा पर स्वर्णिम निर्झर सी झरो जिससे स्वर्ग मृर्त्य के भेद तिमिर की खाई पट जाय और समूह जीवन मे शुभ्र शाति परिव्याप्त हो। कविवर पन्त के अनुसार यह स्मृति-पट का उद्घाटन या जिसमे यह कामना की गई कि—

"मगल प्रद हो जन भू के जीवन हित
वतमंन का यह पावन आरोहण,
भूत भविष्यत् के ज्योतिष्पुलनो पर
बने पुण्य स्मृति स्वर्ग सेतु जन मोहन।"

(वही, पृ० ३६)

इस प्रकार 'पूर्व स्मृति' के अन्तगत कवि न सीता को भू चेतना का प्रतीक मानकर युगो और कल्पो म विकसित मानवता के भावी मागल्य की भूमिका प्रस्तुत की है। पूर्व स्मृति' उपखण्ड 'लोकायतन' महाकाव्य के कथानक से असम्बद्ध होते हुए इस काव्य का प्रवेशद्वार है। 'पूर्व स्मृति' एक प्रकार से 'लोकायतन' की प्रस्तावना भूमिका या प्राक्कथन है। इस काव्य खण्ड मे वर्तमान युग-जीवन की विसगतियो का यथार्थ मूलक दृष्टि से अवलोकन कर भू-जीवन को सुखद शान्त और मगलमय बनाने के लिए महाकवि के दायित्व का भी निदर्शन किया गया है। वर्तमान भू जीवन की निश्चेष्टता को भाव-चेतना से आदोलित कर नयी आशाओ, उमगो और आनन्द तरगो से प्रहर्षित-पुलकित करना ही मनीषी कवि का कर्त्तव्य है। वैज्ञानिक युग की विनाशकारी उपलब्धियो की चकाचौध मे दिग् भ्रमित जड मानवता को मूल्यगत विघटन और विनाश के महागर्त्त म गिरने से बचाकर उसे नवनिर्माण के पथ पर अग्रसर होने के लिए प्रेरणा सदीप्त करने का कार्य आज के कवि को करना है। 'लोकायतन' के रचयिता ने इस गुरुतर दायित्व का सहर्ष सवहन किया है। 'पूर्व स्मृति' म जो चिन्तन सूत्र उभारे गये हैं तथा मानवता के मगलविधान हेतु जिन चेतना स्तरो को रेखाकित किया गया है, उन्ही के मिलन बिन्दुओ पर 'लोकायतन' का विशाल काव्य भवन निर्मित है। यही 'पूर्व स्मृति' उपखण्ड की रचना का महत्व और सार्थक्य है।

'लोकयतन' के कथाक्रम का समारम्भ प्रथम खण्ड बाह्य परिवेश' के 'जीवन द्वार' उपखण्ड के युग भू' प्रखण्ड से होना है। 'नव युग जन्म जगत हित शुभ हो, भू की प्रसव व्यथे, जय गाओ' इस कथन से कवि आरम्भ करता है। जाने कितने दिवस, मास, वर्ष, शतियां और युग बीत गए भारत की जन भू अनेक प्रकार के उत्थान पतन रण देख चुकी है। इस भू ने दैन्य, दासता, दस्यु आक्रमण और ह्रास की असरय दारुण स्थितियो को सहा है। इसी भारत वसुधरा पर सुन्दरपुर नामक जन-पद अवस्थित है जिसके जन-जीवन मे मध्य युग की परम्परप्रियता और जड सस्कार शीलता परिव्याप्त है। कवि के शब्दो मे—

"घोर असुन्दर था सुंदरपुर
दैन्य अविद्या का जड पंजर
रूढि रीतियों का निष्क्रिय गढ,
विगत सभ्यता का हत खडहर।
× × ×
धरा गर्भ का नरक कुंड था
सुन्दरपुर जनपद, विपण्ण मन,
भू दारिद्र्यों का दुर्गम गढ—
निज दुर्गति के प्रति विरक्त जन।"
(जीवन द्वार, युग-भू, पृ० ४२ ४३)

इस जनपद मे झाडफूँस के नग्न घरौंदे से घर थे जिनके निवासी राग-द्वेष, मय, घृणा और कलह मे डूबे हुए नैराश्य अमगल से भरा भाग्यवादी निष्फल जीवन बिता रहे थे। यहाँ तरुण वर्ग विषय कलुष-विष पीकर दुर्गति-पूर्ण जीवन यापन कर रहा था। इसी जनपद मे भावुक-सहृदय युवक कवि वशी और उसका समवयस्क सखा हरि भी थे। जनपद की अवनति से वशी क्षुब्ध और खिन्न था। वशी ने हरि से सुन्दरपुर जन पद की ह्रासोन्मुख शोचनीय दशा पर गभीर विमर्श कर जनपद को पतन के गर्त्त से निकालकर विकासा-मुख करने के उपायो पर विचार किया। वशी इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि—

'जाति पाँतियों मे, देशो म,
वर्ण श्रेणियो मे विभक्त जन,
बाधक उनके योगक्षेम का,
गत सस्कारो का बौना मन।"
(वही, युग-भू, पृ० ५०)

वशी ने कहा कि देश दासता के गर्त्त मे गिरकर हत चेतन है। 'पराधीन को स्वप्न मे भी सुख नहीं' है, अत हमारा सर्वप्रथम ध्येय है कि—

"प्रथम देश स्वाधीन बन सके,
यही परम हो लक्ष्य हमारा,
फूँके युग-जागरण शख हम,
जन स्वतन्त्रता का दे नारा।"
(वही, युग-भू, पृ० ५०)

वशी ने कहा कि देश मुक्त होने से ही गाँव और जनपद गतिशील बनेंगे। देश और जातियो के जीवन म एम महत् क्रान्ति क्षण आते हैं जब जीर्ण सभ्यता के शव म भी सचेतन शोणित प्रवाहित होने लगता है। जननायक गाधी के नेतृत्व मे अहिंसा व युगचेतन म नीचे आज वही युगातरकारी वेला आई है। अग्रेजी साम्राज्यवाद की विगर्हणा से भारतीय जन-जीवन ही प्रताड़ित नही अपितु विश्व क अन्य अनेक राष्ट्र भी पीड़ित थे अत कवि के अनुसार—

"भारत का ही यह न मुक्ति रण,
विश्व मुक्ति का आया शुभ क्षण।"

(वही, युग-भू, पृ० ५२)

जन शक्ति और अग्रेजी शासन के अपरिमित पशु बल का सगर अद्भुत था। ऐसा प्रतीत होता था मानो प्रथम वार मानव की समूह शक्ति भीषण पशुबल से जूझने को सकल्पित हुई थी। मुट्ठी भर हड्डियो के ढांचे वाले गाधीजी शुभ्र अहिंसा का बल लेकर असहयोग सत्याग्रह आन्दोलनो का सचालन करते हुए दैत्याकार क्रूर विदेशी प्रशासन से सघर्ष कर रहे थे। हरि और वशी भी स्वाधीनता-भाव से आन्दोलित थे। हरि ने कहा कि वह गाँव-गाँव मे सत्याग्रह का सन्देश पहुँचा कर जन पद वासियो को राष्ट्र के लिए सर्वस्व समर्पण की भावना से अनुप्रेरित करेगा। वशी सचेतन रचनाकार था, उसकी चेतना ऊर्ध्वमुखी, भावना व्यापक और दृष्टिकोण विश्वमानतावादी था। उसकी यह बद्धमूल धारणा थी कि—

"भारत के जीवन-मगल म,
निखिल भुवन, सब जीवा का हित।
× × ×
लोक क्षेम रत रहो प्राण पण,
विश्व कर्म ही भू पथ साधन।"

(वही, युग-भू, पृ० ५८-५९)

'जीवन द्वार उपखण्ड मे ग्राम-शिविर' शीर्षक द्वितीय प्रखण्ड मे पन्तजी ने सुन्दरपुर जनपद म 'कलाशिविर' की स्थापना, स्वाधीनता-आन्दोलन की भावना के प्रचार प्रसार और ग्रामीण जीवन की कुप्रथाओ का चित्रण किया है। कवि के अनुसार राग चेतना का विकास ही निखिल प्रगति का सार है। इस राग-चेतना का सवहन शोभा देही नारी करती है। किन्तु धरा पर स्वर्ग

ज्योति वितरित करने वाली ग्रामीण नारी का जीवन अभिशप्त और शोचनीय है। हरि की बहन सिरी (श्री) की विचारणा के माध्यम से कवि ने ग्रामीण नारियों की गर्हित दशा का वर्णन किया है। सिरी की प्रेरणा से गांव की स्त्रियाँ कलाशिविर मे जाकर सूत कातती, नए विचारो को ग्रहण करती और सामूहिक स्वर मे इस प्रकार देश वन्दना करती थीं—

"कर्म भूमि, जय जनपद भारत,
जन मन हो भू रचना मे रत
तू ही जन, मन जनगण जीवन,
तुझ मे हो सब लोग एक मत !
× × ×
दृष्टि सत्य के प्रति हो जाग्रत,
लोक कर्म हित भुज निन उद्यत,
अन्तर मे हो आस्था अक्षत,
धरा प्रीति हो जीवन का व्रत !
हम नव भारत की बालाएं,
मुक्ति चेतना की ज्वालाएँ,
शील, स्नेह, सेवा मालाएँ,—
राष्ट्र शक्ति मे हो जन परिणत !"

(वही, ग्राम शिविर पृ० ६६-७०)

ग्राम बालाओं को सिरी अवज्ञा और असहयोग का महत्व समझा कर राष्ट्रीय स्वाभिमान के लिए सर्वस्व समर्पण की भावना उनमे भर रही थी। सिरी की चिन्ता यह थी कि जन-मन को सस्कृत करने के लिए शिक्षा प्रसार आवश्यक है। अशिक्षा ही भय, दैन्य और दासता का मूल कारण है। सिरी घर-घर जाकर महिलाओं को स्वास्थ्य, सफाई और शिक्षा का महत्व समझाती थी। सामूहिक जीवन मे नव जागृति हेतु कर्मण्यता-भाव उत्पन्न करने के लिए भी सिरी ने प्रयत्न किया। सिरी का भाई हरि भी गाँव-गाँव मे जाकर लोगो को असहयोग के लिए प्रेरित कर रहा था। इस प्रकार जनपद का युग जीवन सुसगठित होकर निर्भय कर्मपथ पर बढ रहा था—

'दृढ सकल्प बनाता निर्भय निज पथ,
सामूहिक जन बल ही युग जीवन रथ !"

(वही, ग्राम शिविर, पृ० ८१)

'जीवन-द्वार' उपखण्ड के तृतीय अर्थात् 'मुक्तियज्ञ' प्रसण्ड में कवि ने सन् १९२१ से १९४७ तक के स्वाधीनता-संघर्ष की प्रमुख घटनाओं को छन्दबद्ध किया है। इस काव्यखण्ड के नायक राष्ट्रपिता महात्मा गांधी हैं। डॉ० सावित्री सिन्हा के अनुसार— ''मुक्ति यज्ञ' प्रसंग 'लोकायतन' का ही एक अंश है परन्तु अंश होते भी वह अपने-आप में पूर्ण है। ...'मुक्तियज्ञ' में उस युग का इतिहास अंकित है जब भारत में एक हलचल मची हुई थी और सम्पूर्ण देश में क्रान्ति की आग सुलग रही थी। · 'मुक्तियज्ञ' में गांधी युग के स्वर्ण-इतिहास का काव्यात्मक आलेख है।''[११] पन्तजी ने स्वयं इस प्रसण्ड के सम्बन्ध में कहा है कि:—

"कथा नहीं यह, कृच्छ्र साधना,
भू जीवन मंगल की निश्चय,
सत्य अहिंसा की जय, कविते,
नव भू मानवता की युग जय!"

(वही, मुक्तियज्ञ पृ० ८२)

भारतीय जन-जीवन के स्वातन्त्र्य हेतु किए गए मुक्तियज्ञ के पुरोहित (नेता) महात्मा गांधी थे। कवि ने गांधीजी की तुलना देवदूत से करते हुए उनके नमक-कानून-तोड़ो आन्दोलन को स्वराज्य-मुक्ति का प्रतीक कहा है।

'कौन चल रहा वह नर भूधर,
जन धरणी पर ऊर्ध्व चरण धर?
ऋषि अगस्त्य सा लवण सिंधु को,
पी हँस हँस, अंजलि-पुट में भर।
× × ×
लोक प्रगति का देवदूत वह,
तीस कोटि का रहा व्रती जन!"

(वही, मुक्तियज्ञ, पृ० ८४)

कवि के अनुसार नमक बनाना बापू का ध्येय नहीं था। वस्तुतः भारतीय जनगण के लिए यह विद्रोह पर्व का प्रतीक था। यह एक ऐतिहासिक युग क्षण था जब बापू ने नमक कानून तोड़ा और दांडी यात्रा की। गांधीजी ने अहिंसा की शक्ति द्वारा जो रक्तहीन रण किया वह इतिहास में विलक्षण है। दूसरे

---

[११] मुक्तियज्ञ, परिचय, पृ० २१

भारत का स्वाधीनता-आंदोलन इस अर्थ में विश्वव्यापी था कि उसका प्रभाव और प्रतिक्रिया अन्तर्राष्ट्रीय हुई—

"भारतीय स्वातन्त्र्य युद्ध था,
मनुष्यत्व का भू पर युग रण,
अन्त रिक्त, बहि समृद्ध जग
हिंसा स्पर्धा का था प्रागण !"

(वही, मुक्तियज्ञ, पृ० ८६)

इस आन्दोलन को प्रशमित करने के लिए अंग्रेजी प्रशासन ने तीव्र गति से दमनचक्र चलाया, बापू सहित चोटी के नेता कारागृह मे ठूँस दिए गए। किन्तु सत्याग्रहियो का उत्साह कम नही हुआ। कवि के शब्दो मे—

"भारत के कोने-कोने मे, फैल गया सन्देश मुक्ति का,
उल्टा ही फल हुआ जगत मे, अन्यायी की दमन युक्ति का !
स्वर्ण-धौत बलवती बनी भू, सत्याग्रह मे रक्त स्नान कर,
हुए गौरवान्वित निरस्त्र जन, मुक्ति यज्ञ हित आत्मदान कर !"

(वही, मुक्तियज्ञ, पृ० ९५)

'मुक्तियज्ञ' आन्दोलन मे पुरुषो के समान ही स्त्रियो ने भी अभूतपूर्व उत्साह से योगदान किया—

"सच्चे साहस, शौर्य त्याग से,
दीप्त, युवतियाँ थी उन्मेषित,
जगी अहिंसा मूर्त रूप धर,
भारत लक्ष्मी मे अभिषेक्ति !
कोमल अग भले हो विक्षत,
धैर्य, मनोबल मे अप्रतिहत,
पहन केसरी बाने फिरती,
रण चण्डी बन, लिए मुक्ति व्रत !"

(वही, मुक्तियज्ञ, पृ० ९६)

पन्त जी के मतानुसार भारतीय स्वाधीनता आदोलन व्यापक अर्थों मे आध्यात्मिकता और भौतिकता का समर था जिसमे आध्यात्मिकता अहिंसा के बल पर और भौतिकता प्रलोभार की शक्ति लेकर जूझ रही थी अन्तत विजय अखण्ड भारत आत्मा की ही हुई—

"पशुबल के ही हिंस्र क्षेत्र पर
आत्मशक्ति की जय भौगोलिक।
भौतिकता के प्रतीकार मे
आध्यात्मिकता का सक्रिय रण,
× × ×
विजय हुई भारत आत्मा की,
खण्डित नही हुआ जन भू मन।"

(वही, मुक्तियज्ञ, पृ० ९७)

भारत स्वतन्त्र हो गया। गाँवो और नगरो पर आस्था का केतन फहराया। काल ध्वस्त जर्जरित जन खडहरो मे जीवन-ज्योति जगमगा उठी। शतियो से हत पतझर-वन मे मधु-यौवन का शोणित फूट पडा। युगो से जड, निष्क्रिय और निद्रित जन-जीवन मे स्वातन्त्र्य-चेतना की नवजागृति सर्वत्र दृष्टिगोचर हुई—

"जगे खेत खलिहान, बाग फड, जगे बैल हँसिया हल विस्मित,
हाट बाट गोचर घर आँगन, वापी पनघट जगे चमत्कृत!
मोट गडारी नार जगत जग, लगे माँडने मुक्ति शस्य स्मित,
अँगडाई ले जगा पुरातन, युग-युग से जड, निष्क्रिय, निद्रित।"

(वही, मुक्तियज्ञ, पृ० ९८)

इस युग रण मे सुन्दरपुर जनपद के अनुदान का आलेख भी स्वर्णाक्षरो मे अकित हुआ। आत्म-त्याग के इस अलौकिक पर्व पर रक्तबलि देकर जनता महिमान्वित हुई। हरी जेल मे बन्द था और उसका घर ढूह बन गया था। माधो गुरु नित नए हथकडे चलाते थे। माधो गुरु की चालो से ही वशी की पिटाई हुई। वशी भी कारागृह गया। हरी और वशी के पकडे जाने पर सिरी ने सत्याग्रह-आदोलन का नेतृत्व किया। भारत के स्वतन्त्रता-आदोलन को कवि ने 'सागर-मन्थन' के रूपक द्वारा प्रभावकारी ढग से इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

"भारत भू उद्वेलित सागर,
कच्छप युग-नायक का दृढ पग,
जनगण बल अहि-रज्जु कोटि फण,
मदर गिरि स्थिर लोक सगठन-

आत्मशक्ति पशुबल जुट मथते,
नवयुग देवासुर संघर्षण,—
जब रामराज्य लक्ष्मी प्रकटी तब,
जन भू-मंगल हित था शुभ क्षण ।"

(वही, मुक्ति यज्ञ, पृ० ११२)

अगणित देशभक्तों के आत्मोत्सर्ग से प्राप्त स्वाधीनता भारत के रश्मि-गोलार्ध पर स्वर्ग-स्मित के रूप में दीप्तिमान हुई, किन्तु मानवता के मंगल-विधान की ओर यह प्रथम चरण था। कवि की दृष्टि में विश्व ऐक्य और मानव-प्रीति के महत् उद्देश्यों की सिद्धि ही अभीप्सित है—

"राष्ट्र मुक्ति रे केवल प्रथम चरण भर,
विश्व एकता करनी भू पर निर्मित,
मनुज प्रीति के अमर सूत्र में गुम्फित,
स्वर्ग पीठ करनी भू-मन पर स्थापित।"

(वही, मुक्ति यज्ञ, पृ० ११५)

'संस्कृति-द्वार' 'प्रथम खण्ड' का द्वितीय द्वार है। 'संस्कृति द्वार' का प्रथम उपखण्ड 'आत्म-दान' है। इस उपखण्ड में कवि ने भारत के विभाजन के पश्चात् हुए साम्प्रदायिक दंगों और उनके निवारक-प्रयत्नों में बापू के महान् बलिदान (आत्मदान) का काव्यात्मक समाख्यान किया है। विभाजन के दुष्परिणामों का उल्लेख करते हुए कवि ने लिखा है—

"गत नियति ! मुक्ति उपक्रम में
भारत का करुण विभाजन
लाया संग दुर्मति प्रेरित
कटु रक्तपात, खल गृह रण ।
× × ×
स्त्री, शिशुओं, वृद्धों का वध
नर हत्याएँ, क्षुर घातें,
व्यभिचार, लूट, लंपटता,
काली अनकहनी बातें ।"

(वही, आत्मदान, पृ० ११६)

विभाजन ने भाई-भाई के प्रेम को घृणा रूपी विष में बदल दिया। भारतीय प्रतिहिंसा ने वीभत्स घृणा का रूप धारण कर लिया। विभाजन में

फलस्वरूप जन्मी द्वेषाग्नि के पागनपन का कारण मन्दिरों और मस्जिदों में बैठे अल्ला-ईश्वर भी सत्रस्त हो गए। धर्मांध साम्प्रदायिकता का यह दुर्दान्त विध्वसक रण वस्तुत मध्य युग का ही अभिशाप था—

'इस रक्त काण्ड के पीछे, थे मध्य युगो के खण्डहर,
उच्छिष्ट जीर्ण संस्कृति के, स्वार्थों के कट्टर पत्थर।''
(वही, आत्मदान, पृ० १२२)

इस अवसर पर बापू ने साम्प्रदायिक एकता और हिन्दू-मुस्लिम धर्म-समन्वय का महाप्रयास किया। मीलो लम्बी पद-यात्राएँ करके दूरस्थ गांवो मे घर-घर पहुँच कर पीडित, शोषित और सत्रस्त जनो को आश्वस्त किया। बापू के प्रेम-सन्देश ने आर्त्त हिन्दू-मुसलमानो के नैराश्य-विषाद को दूर किया। नोआखली, पंजाब, दिल्ली और बिहार मे सर्वत्र साम्प्रदायिक दगो की ज्वाला धधक रही थी। सेना के बल से दिल्ली मे शांति स्थापित हो गई थी, किन्तु यह कृत्रिम ही थी क्योंकि भीतर ही भीतर विक्षोभ और हिंसा उबल रही थी। अपनी प्रार्थना सभाओ मे बापू ने रक्तपात समाप्त कर दया-प्रेम का मार्ग अनुसरण करने का उपदेश दिया। बापू कहते थे कि—

"गीता कुरान दोनो ही जो हम न सुन सकें सविनय,
तो व्यर्थ प्रार्थना करना, मेरा सीधा सा आशय।
भारत सब धर्मों की भू, सब का हो यहाँ समन्वय,
प्रिय राम-रहीम उभय ही, ईश्वर के नाम, न सशय।''
(वही, आत्मदान, पृ० १२८)

गाधी जी को यह भी चिन्ता थी कि यदि भारतवासी ही अहिंसा के पाथेय का परित्याग कर देंगे तो विश्व जीवन तिमिराच्छन्न हो जायगा। अस्तु, बापू ने अनशन प्रारम्भ कर दिया। इस नारकीय प्रतिहिंसा रूपी नाटक का समापन अन्तत बापू के बलिदान से हुआ—

"इस नारकीय हिंसा के नाटक का करुण समापन,
प्रिय बापू की बलि मे हो! ओ अकथनीय अघटित क्षण!!
प्रार्थना सभा को जाते, साकार प्रार्थना से नत,
वे हुए निछावर भू पर, नर-पशु प्रहार से आहत।''
(वही, आत्मदान, पृ० १३२)

बापू के निधन के पश्चात् जन जीवन मे जो सकरुण विषाद और प्रकृति के प्रागण मे शोक सतप्ता परिव्याप्त हो गई, उसका कवि ने मर्मस्पर्शी वर्णन

किया है। बापू के प्रति अपनी भावांजलि समर्पित करते हुए कवि ने उन्हें गौतम और ईसा की समुज्ज्वल परम्परा में स्थान दिया है। यन्त्र-युगीन जन-जीवन को बापू ने सत्कर्म-चेतना का मंगल आह्वान् किया। तप, त्याग, शील, क्षमा, करुणा जैसे जीवन-मूल्यों की साग्रह प्रतिष्ठा कर बापू ने भारतीय संस्कृति में चिरन्तन मूल्यों का पुनरुत्थान किया। इसीलिए बापू को राष्ट्रपिता महामानव, युगपुरुष आदि अभिधानों से अलंकृत किया है—

"जय राष्ट्रपिता, जय मानव, जय शुभ्र पुरुष, युग संभव,
जय आत्मशक्ति के पर्वत, भू स्वर्ग दूत, युग नर नव।
तुम छू जन जीवन के वह, जर्जर पक्षाहत अवयव,
भू संस्कृति को युग मन की, दे गए ऊर्ध्व नव गौरव।"

(वही, आत्मदान, पृ० १३६)

वर्तमान युग की पीठिका पर बापू का व्यक्तित्व नर-भूधर के समान है। कवि ने बापू को स्फटिक सत्य का दर्पण, संकल्प शक्ति का निर्झर, सर्वस्व त्याग की प्रतिमा, नव युग का प्रथम पुरुष और गत युग का अन्तिम मानव कहा है। गांधी जी ने अहिंसा का अमोघ अस्त्र प्रदान कर निर्बलों में भी अपरिमित आत्म-शक्ति का संचरण किया। गांधी जी ने यह प्रमाणित कर दिया कि पशुबल केवल सामूहिक संहार शक्ति से ही परिचित था। जीवन की मंगल-रचना करने वाली वास्तविक शक्ति अहिंसा है। युद्ध नद्ध जग के लिए बापू ने आत्मशक्ति का दर्शन और सांस्कृतिक-साधन उपलब्ध कराए। पन्त जी के अनुसार बापू का योगदान यह था कि उन्होंने—

"जड़वाद ग्रस्त जग में ले,
अध्यात्म क्रान्ति का केतन,
व्यापक गंभीर आस्था में
संगठित कर गए जन-मन।
भौतिक मूल्यों से पीड़ित
संदेह दग्ध थे भू जन,
तुम सत्य शिखा ले आए,
धर सौम्य अहिंसक का तन।"

(वही, आत्मदान, पृ० १४०)

बापू ने युग की राजनीति में भी ध्रुव सत्य, निष्काम लोक-सेवा, परहित, निर्बल निर्धन के प्रतिनिधित्व और आत्म-उन्नयन पर बल दिया। अन्तर्राष्ट्रीय-जगत में बापू ने पशुबल की चरम परिणति आत्मिक बल में देखी। सत्साध्य

शुद्ध साधनों की स्थापना, नैतिक-एकता की घोषणा और मानव-प्रेम की सक्रिय जीवन-गति को स्थापित करने में बापू का योगदान असाधारण रहा। भारत सदा से ही विश्व को यह संदेश देता रहा कि शुभ्रशांति की स्थापना अहिंसा के द्वारा ही हो सकती है, बापू ने भी यही किया। कवि के अनुसार—

> "भू के समृद्ध देशो, जो
> भारत से शक्ति तपोज्वल,
> दिव्यास्त्र अहिंसा,-उर के
> कलुषों को करती घायल!
> भौतिक वैभव मदिरा पी
> मत बनो ध्वंस हित पागल,
> नैतिक समृद्धि ही भू निधि,
> खोलो निरुद्ध अन्तस्तल!"

(वही, आत्मदान, पृ० १४३)

पन्त जी के अनुसार दासी भारत भू के उद्धारक के रूप में शतियों तक जन-मन बापू का कृतज्ञ रहेगा। वे अणु-भृत जन भू के तारक के रूप में भी सदा स्मरण किए जायेंगे। 'लोकायतन' के रचयिता के मतानुसार बापू ने एक जीवन में सौ जीवन जिए और प्रतिक्षण सौ युगों में मुक्त संचरण किया। वे ऐसे महापुरुष थे जिनके साथ एक कल्प का समापन हो गया। अस्तु, बापू के बलिदान पर नव-युग नतमस्तक है और उनके पद चिह्नों पर चलने के लिए कृत संकल्प है—

> 'सौ जीवन जो जीया एक महत जीवन में,
> सौ युग जिसके संग नित चलते थे प्रतिक्षण में!
> एक कल्प उसके संग सार्थक आज समापन
> पद चिह्नों पर नव युग, करता मौन पदार्पण।

(वही, आत्मदान, पृ० १४४)

'संस्कृति द्वार' के द्वितीय उपखण्ड का शीर्षक संक्रमण' है। देश के स्वाधीन होने पर बन्दी मुक्त हुए। वंशी और हरी भी कृशतन किन्तु उद्वेलित मन से सुन्दरपुर जनपद लौटे। जनपद के नर-नारियों ने उनका अभिनन्दन किया। हरी की बहन श्री उसके उर से स्नेह माल की भाँति लिपट गई। माँ ने सिर सूँघा, और पिता रघु ने गर्वोन्नत मस्तक से पुत्र को सराहा। हरी के स्वागत

अभिनन्दन सम्बन्धी समायोजन के परिदृश्य का चित्राकन करते हुए कवि ने लिखा है कि—

"उत्कठित कला शिविर ने गाया कुसुमित अभिवदन,
सज वदनवार पुलक के, रच अपलक चितवन तोरण!
वह प्रथम मुक्ति उत्सव था, बहु क्रीडा, रंग प्रदर्शन,
प्रिय लोक नृत्य गीतो का, युग पर्व मनाते थे जन।"

(वही, सक्रमण, पृ० १४६)

किन्तु वशी एकात अजिर मे बैठा युग-चिन्तन मे रत था। वह सोचता था कि स्वतन्त्रता स्वय मे सिद्धि नही है। वशी का सर्जक मन रक्त-स्वेद अभिषेकित भू-जीवन की रचना का सकल्प कर रहा था। उसकी कामना थी कि जन भू पर जीवनोल्लास तभी सम्भव है जब बहिरतर विभव समन्वित हो। शान्ति की प्रतिष्ठा और प्रेम के प्रकाश से ही कामनाएँ चरितार्थ हो सकेंगी। जन-जीवन देश और जातियो की सीमा लाघ कर ही वसुन्धरा को स्वर्ग बना सकता है। वशी की चिन्ता यह थी कि उपनिषदो की ज्योतिर्मय चेतना से जन-भू क्यो वचित है? तभी वशी के उपचेतन मे भारत के उस प्राचीन आध्यात्मिक युग का परिदृश्य उभरा जिसे आलोक-जागरण का युग कहा जाता है जिस युग के ज्ञान मे जगत-हित का दिव्य निदर्शन था। इसी क्रम मे वशी की दृष्टि चतुर्दिक परिवेश की ओर उन्मुख हुई। उसने देखा भारत के करुण-विभाजन के कारण राष्ट्रीय-जीवन आहत हो गया, गृह-कलह की कालिमा अमिट रेखा के रूप मे राष्ट्र-मस्तक पर अकित हो गई। भारतीय जन-जीवन मे जो कटु कोलाहल हुआ उसके कारण घृणा और द्वेष के कर्दम से धर्म दीक्षित मन भी सन गये। तभी वशी ने मानवता विकास के विभिन्न युगो पर दृग्पात किया तो उसे ज्ञात हुआ कि कृषि-युग की समाप्ति के पश्चात् से धरा पर ह्रास, विकृति और विघटन का तम छाया हुआ है—

"कृषि वृत्त चरम विकसित हो
जब क्रमश हुआ समापन
छाया हत भाग्य धरा पर,
जड ह्रास, विकृति, तम, विघटन!"

(वही, सस्कृति द्वार, सक्रमण, पृ० १५१)

विभिन्न युगो पर दृग्पात करते हुए वशी की दृष्टि मध्य युग पर केन्द्रित हुई। सामन्ती व्यवस्था के अभिशापो की अनुभूति को कवि ने इस प्रकार शब्दाकित किया है—

"सामन्ती युग की पद्धति संस्कृति, विचार, विधि, दर्शन,
नि सार हो चुके थे सब, जीवन विकास के साधन,
आध्यात्मिक दुर्बलता से, संकीर्ण मतों मे खण्डित,
लघु स्वार्थों मे रत थे जन, भव विशद दृष्टि से वंचित,
निष्प्रभ, निर्जीव, घिनौना, कट्टर हिन्दुत्व उभर कर,
लगड़ाता निष्क्रिय भू पर, बौने बूढ़े युग डग धर।
भू मानस का कल्मष था, वह मध्य युगों का मानस,
श्लथ, पराधीन शतियों तक, मृत, आत्म पराजित, आहत्।"

(वही, संक्रमण, पृ० १५२-१५३)

कवि के अनुसार बाबर, चैतन्य, कबीर, तुलसी, भास्कर, वल्लभ, रामानुज, स्वामी दयानन्द, रामकृष्ण प्रभृति धर्म गुरुओं और महापुरुषों ने आध्यात्मिक प्रकाश-प्रसार के समय-समय पर प्रयास किये। विभाजन के अभिशाप पर चिन्तित कवि कह उठा कि यह मध्य युगीन मानस का संकीर्ण चिन्तन और जन जीवन का दुर्भाग्य था कि वह 'इस्लाम' और 'मुसलमान' को आत्मसात् न कर सका—

"दुर्भाग्य समेट न पाई, निज विस्तृत बाँहों मे भर,
यह भूमि मुसलमानों को, तमसावृत था जन अन्तर।"

(वही, संक्रमण, पृ० १५६)

कवि के अनुसार संकीर्ण धार्मिकता के युग बीत गए। अब वैज्ञानिक युग की विद्युतवत् चेतना सस्पर्श से निष्क्रिय सामंती स्थितियाँ समाप्त हो गई हैं। इसलिए कवि की मंगलकामना यह है कि—

"गत जाति धर्म कर्दम से
बाहर निकले युग मानव,
भव मानवता का स्वर्णिम
भू स्वर्ग रचे वह अभिनव!
लोकोदय की रचना हो
बहिरंतर सत्य समन्वित,
भू जन की सित समता पर
जग मे हो ऐक्य प्रतिष्ठित।"

(वही, संक्रमण, पृ० १५७)

'संस्कृति द्वार' उपखण्ड के 'संक्रमण' प्रखण्ड को कवि ने दो वर्गों में प्रस्तुत किया है। 'ह्रास' का विवेचन ऊपर किया गया है। अब 'विघटन' की स्थिति द्रष्टव्य है। वंशी ने देखा कि भारत माँ का ग्राम्याचल दारिद्र्य के कर्दम से मैला है। दारिद्र्य के कारण ही अविद्या और अज्ञान ग्राम्यों में फैला हुआ है। वंशी का अन्तर पर्वताकार अज्ञान तम में आशा की किरण खोज रहा था कि हरि और सिरी ने प्रवेश किया। हरि ने कहा कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के चौदह बरस बीतने पर भी हमारा जीवन निष्प्राण, प्रेरणा शून्य और तामस रत है। दारिद्र्य और अशिक्षा रूपी दानव जन-जीवन पर मुँह बाये खड़े हैं। निज निर्वाचित शासन में भी दिन प्रति दिन चारित्रिक विघटन हो रहा है। राम-राज्य के स्वप्न तिरोहित हो रहे हैं। सुख सुविधाएँ मन्त्रियों तक ही परिसीमित हैं। रक्षक भक्षक बन गए हैं। राष्ट्रीयता का देशवासियों को कोई आकर्षण नहीं। कवि के शब्दों में—

"कर्दम कदन्न में पलते, मलते कर जन साधारण,
परतन्त्र देश से दुष्कर, स्वाधीन धरा का जीवन!
यह गाँधी का गौरव-युग, गण लोकतन्त्र का प्रांगण,
हत बिलों घरौंदों में घुस, रेंगता लोक कृमि जीवन!
बसते ऊँचे महलों में, स्वार्थी नर, लोक प्रतारक,
जन रक्षक से भक्षक बन, सेवक से प्रभु, भू शासक?
× × ×
जन मन को बाँध न पाता, राष्ट्रीयता का आकर्षण,
ऐसा कुछ कहीं नहीं जो, फूँके जन में नव जीवन?"
(वही, संक्रमण (विघटन), पृ० ६२६)

हरि ने कहा कि हमने भी लठियाँ खाईं थीं, कारागृह की सांसत भोगी थी, चक्की पीसी, घानी पेली और कंकड़ कूटे थे किन्तु स्वातन्त्र्य-जीवन का सुख मुट्ठी भर लोग भोग रहे है। जन सेवक अब शासक बनकर नगरों में सुख सुविधा पूर्ण जीवन बिता रहे है और जन जीवन दूषित खाद्यान्न के कारण रुग्ण, निराश और विषादपूर्ण है। ग्रामीण जीवन-सुधार के नाम पर सहयोग (सहकारिता) और ग्राम पंचायत आदि संस्थान समुचित नेतृत्व के अभाव में भ्रष्ट प्रशासनिक संस्थान बन गए हैं। बड़े उद्योग देश की अर्थव्यवस्था को अनाथ बना रहे हैं। मुट्ठी भर लोगों की सुविधा के लिए अगणित निरीह जन पिस रहे हैं—

"सहयोग, ग्राम पचायत लगते कोरे युग प्रहसन,
समुचित नेतृत्व बिना क्या आ सकता उनमे जीवन ?
चारित्रिक पतन न ऐसा देखा इस भू ने भीषण,
मुट्ठी भर की सुविधा हित पिसते निरीह अगणित जन ?

× × ×

भू यहाँ कुरूप उपेक्षित, दुर्गन्ध भरे जन प्रागण,
दूषित खाद्यान्न सरुजतन, नैराश्य विषाद गुहा मन !
मानुषी ऊष्णता विरहित, सहृदयता शून्य विमुख जन,
जीवन पदार्थ घूरे-सा बिखरा, श्री गरिमा निर्धन !"

(वही, सक्रमण, पृ० १६१)

इसी बीच तृतीय निर्वाचन आया। विभिन्न राजनीतिक दल अपने झण्डे फहराते हुए गाँवो की ओर दौडे। ग्रामीणो को आश्वासन दिए और वोट लिए। कवि के अनुसार देश के पिछडेपन का कारण गाँवो और नगरो के जीवन मे असामजस्य किंवा वैषम्य है। जिस पश्चिमी प्रभाव और औद्योगीकरण मे नगरो का जीवन रँगा वही ग्रामीण जीवन के लिए अभिशाप सिद्ध हो रहे हैं। हमारी भाषा-नीति, अर्थनीति, राष्ट्रीय-एकता से सबधित प्रश्न और योजनाएँ सभी मे समन्वय का अभाव है। विदेशी ऋणो पर चलने वाली योजनाएँ देश के आर्थिक ढाँचे को जर्जरित कर रही हैं। कवि के अनुसार जन श्रम ही सच्ची सम्पदा है और यदि जनश्रम से राष्ट्रजीवन की विकास-योजनाएँ निर्मित होती तो जनचेतना जागृत होती और सम्पन्नता भी आती—

"जन श्रम से होता कल्पित
यदि नए राष्ट्र का जीवन,
बँधता गति लय मे जन-मन
जाग्रत युग प्रति हो जन !"

(वही, सक्रमण (ह्रास), पृ० १६७)

अस्तु, हरि इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि राष्ट्रीय जीवन के विकास हेतु भविष्य मे हमे जन-मन मे नवचेतना और नवप्रेरणा का सचार करना होगा। बहिरग के साथ अन्तर्मन का भी विकास करना होगा। वशी युग जीवन के प्रति जागृत था। उसने हरि के आहत वचनो का समर्थन किया और कहा कि भारत की आत्मा जनतान्त्रिक ढाँचे मे ही अक्षम रहेगी किन्तु आवश्यकता समर्थ लोक पुरोधाओ (प्रतिनिधियो) को चुनने की है। नवरूप रतन, नहरो,

बांधो, परिवहन, विद्युत, इस्पात, सीमेंट आदि के विकास के साथ जन मन को जातिवाद के विष से मुक्त करना भी आवश्यक है—

"गत जाति पांति वर्णों के
विष से विमुक्त कर जन मन,
जड रूढि रीति का तम हर,
युग दीपित कर भू प्रागण,—
हमको निर्मित करना नव
राष्ट्रिय मानस दिग् विस्तृत,
चैतन्य धरा जीवन का,
मन का कर पूर्ण समन्वित।"

(वही, सक्रमण (विकास), पृ० १७१)

कवि ने यह भी मत प्रगट किया कि लोकतन्त्र के सुसचालन के लिए सबल प्रतिपक्ष भी आवश्यक है। वास्तव मे एक सजगता का जन जन मे व्याप्त होना भी जनतन्त्र की सफलता के लिए आवश्यक है। कवि के अनुसार—

"यह भी अनिवार्य हम अब ऊँचा करना अपना स्वर,
नव लोक क्रान्ति की भेरी जन मन मे पैठ करे घर!

× × ×

सामाजिक क्रान्ति अपेक्षित भारत जन के मगल हित,
हो जाति वर्ण म विसरी चेतना राष्ट्र मे केन्द्रित।"

(वही, सक्रमण (विकास), पृ० १७२)

शासन व्यवस्था के साथ साथ जन मन के चेतना स्तरो मे भी क्रान्ति आवश्यक है। मानव मन अवचेतन कुठाओ से मर्दित हो चुका है, विज्ञान की उपलब्धियाँ ध्वसकारी सिद्ध हो रही हैं। कीडे मकोडो की तरह जन-सतति प्रतिक्षण बढ रही है। ऐसी स्थिति मे भारतीय जन मानस को उर्ध्वगामी बनाने के लिए युगचेतना का स्पर्श कराना परमानिवार्य है। इसके लिए विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय कर सास्कृतिक नवचेतना का विकास आवश्यक है। सास्कृतिक चेतना विकास आर्थिक और प्रशासनिक सलक्ष्यो की सम्पूर्ति से भी महान् है। इसीलिए—

'सास्कृतिक चेतना का नव भू पर करना आवाहन,
जो रचे शुभ्र जीवन पथ अतिक्रम कर युग मानव मन!

आर्थिक तात्रिक आदोलन पीछे जाएँ जब, सम्मुख,
सास्कृतिक सचरण आए तब उज्ज्वल हो जीवन मुख !"

(वही, सक्रमण, पृ० १८२)

'सस्कृति-द्वार' उपखण्ड के 'मधु-स्पर्श' प्रखण्ड मे कवि ने एक कल्पनातीत स्वप्न का निरूपण किया है जिसमे वशी मानवोम्युदय के लिए उस दिव्य शक्ति का सधान करता है जो विश्वव्यापी और सर्वोपरि है। सर्वप्रथम प्रकृति के सुन्दर दृश्य सयोजित हैं जिन्हे देखकर वशी के मन मे यह प्रश्न उठता है कि कौन शक्ति बसन्त और पतझर दोनो का समन्वित विधान करती है। प्राकृतिक सुषमा का सूक्ष्म अनुवीक्षण करते-करते कवि को नारी की मनोहर छवि का आभास हुआ। उस प्रकृति सुन्दरी का चन्द्रमा मुख, गिरि-शिखर उरोज, पृथु शैल माला जघाएँ, हरित तटी कटि-प्रदेश, उडते खग चचल दृग, अर्धखिले मुकुल अरुण अधर, आम्रवन-सौरभ मुखश्वास, पिक-स्वर प्रणय वचन और सध्या का ढलता तम श्यामल वेणी प्रतीत हुआ। वशी शोभा-प्रेमी था और शोभा के रूपसी वैभव को यह प्राकृतिक-सुषमा मे ही निरखता था। जगतहित मे कवि ने एकाकी जीवन-यापन करना ही श्रेष्ठ भी माना—

"जग मे एकाकी जीवन
समझा उसने श्रेयस्कर,
जब तक न प्रेम का पकज
उबरे कर्दम से ऊपर।"

(वही, मधुस्पर्श, पृ० १६६)

वशी को बार-बार अनुभव होता था कि धरा का जीवन सकीर्ण और अज्ञान-तम कवलित है। लोग जीवन से पलायोन्मुख हो रहे हैं। लोगो की आस्थाएँ परनिन्दा, अहमन्यता और थोथे मूल्यो मे सपोषित होने के कारण जीवन को निराशापूर्ण बना रही हैं। कवि का मन जग से विरक्त हो गया। वह अपने आप मे सोया रहने लगा। भावुक कवि दिवा-स्वप्न-दर्शन मे तन्मय हो गया। अतीन्द्रिय लोक मे भ्रमण करते हुए कवि ने देखा कि युग भय की दारुण छाया वहाँ भी परिव्याप्त है। उसने अनुभूति की कि तन-मन आहत और प्रकम्पित है। अग-अग से भीषण अग्नि रज्जुएँ लिपटी हैं और मग्न आकाक्षाएँ सर्पदश जैसी वेदना उत्पन्न कर रही है। अभाव के विपदशन की प्रतिक्रियाओ को कवि ने इस प्रकार अकित किया है—

"उस मदिर दश ज्वाला से रति विह्वल उसका अन्तर,
लोटा करता शोभा की दरियो मे तृषित निरन्तर !
उसको न ज्ञात था, कैसे सुख की अतृप्ति पर पा जय,
आकुल अशात सलिलो मे खोजे वह सत् का आश्रय !"

(वही, मधुस्पर्श, पृ० २००)

इस भीषण परिदृश्य के अवलोकन और दारुण अनुभूति के पश्चात् योग, तन्त्र, षड्-दर्शन, नृतत्व-शास्त्र आदि के आधार पर उसने जब अन्तर्जगत मे प्रवेश किया तो ज्ञात हुआ कि जन-भू-समाज का महत् भविष्य रचा जा सकता है। इसी सचेतन समाधिदशा मे कवि को वासव ने दर्शन दिये और कहा कि तुम काल्पनिक-मुक्ति-कामी बन कर आत्म-शून्य मे लय मत हो। तुम्हारा चरम लक्ष्य धरा को स्वर्ग बनाना होना चाहिए—

"जीवन का ध्येय नही यह, मन ब्रह्म रध्र से उड कर,
खो जाये रिक्त गगन मे, खग सा झुलसा मति के पर !
मैं जन धरणी का प्रेमी तुम से कहने आया कवि,
निज प्रतिभा पट पर आंको तुम धरा स्वर्ग की नव छवि !

× × ×

ऊपर के सूर्योदय से, नव भू जीवन कर निर्मित,
बहिरतर सयोजन भर तुम गढो मुक्ति जन-जन हित !"

(वही, मधुस्पर्श, पृ० २०८-२०६)

इस प्रकार कवि के मन.क्षितिज के आलोक से उद्भूत वासव देव कवि की अन्तर्दृष्टि को सदीप्त तथा कर्तव्य पथ को प्रशस्त कर अन्तर्लोक मे तिरोहित हो गये।

'प्रथम खण्ड' के 'मध्य बिन्दु' (ज्ञान) शीर्षक तृतीय उपखण्ड मे कवि ने एकागी अन्तर्मुखी साधना की व्यर्थता प्रमाणित करते हुए मानवता के मगल-विधान हेतु व्यक्ति और समूह के ऐक्य की साधना का रूप-निदर्शन किया है। वासव देवता से प्रेरणा-प्रकाश पाने के पश्चात् वशी व्यथित विश्व को राग-द्वेष के कल्मष से मुक्तकर नव उन्मेषो से आदोलित कर स्वर्णिम सोपानो पर अग्रसर करने के लिए कृत सकल्प होता है। वशी श्रुतियो सन्तो और सद्ग्रन्थो के ज्ञान रूपी चित्कणो को चुनकर मानवता को देश जाति की सकीर्ण सीमाओ से मुक्त कर मागलिक भविष्य की ओर उन्मुख करने के लिए प्रयत्नशील है। भावी मानव के आदर्शरूप की परिकल्पना करते हुए कवि ने मानवीय चेतना-विकास का इस प्रकार अन्त दर्शन किया—

"सित स्वप्न मांस देही ये भावी मानव, गत देश जाति बन्धन विमुक्त युग समव।
कटु मनोग्रंथियों कुंठाओं से विरहित, राष्ट्रों के भय संशय स्पर्धा से वंचित।
विद्रवित हो रहा युग युग का निर्मम मन, भू जीवन नव श्रद्धा आस्था का प्रांगण।
आ रहे निकट सब देश विदेशों के जन, स्त्री पुरुष निकटतर, मुक्त काम-अहि दंशन।
लघु गृह पुर आँगन लांघ, युक्त नारीनर, सामाजिक शतदल के से अवयव सुन्दर।
सांस्कृतिक पीठिका पर नव युग को शोभित, श्रम लग्न, सौम्य रचना मंगल में योजित।

× × ×

स्वर्णिम रेखाओं में सी सम्मुख अंकित, चेतना हो रही नव रूपों में विकसित।
रस रहा ऊर्ध्व समदिग् जीवन में वितरित, छायाभा के तानों बानों में गुम्फित।"
(वही, मध्य बिन्दु (ज्ञान), पृ० २१७-२१८)

कवि ने चेतना स्तर पर समारूढ़ होकर प्राण-गुहा के भीतर प्रविष्ट होकर युग जीवन के संवेदन सत्यों को अनुभूत किया। उसे अनुभूति हुई कि नैराश्य, ग्लानि, विद्वेष, प्रमाद, भेदभाव आदि के कारण भू-उर जर्जर है। रस तत्त्व खोजती कवि-दृष्टि ने पूर्णकला के समान जाग्रत नव चेतना के महत्तर रूप का साक्षात्कार किया। कवि को काल बोध हुआ। उसने कालदेवता की भविष्य-वाणी को सुना—

'मैं शक्ति देव, वह कहता, युग अधिनायक,
मेरे कर में सर्वस्व नाश अणु-सायक।
मैं पीता जीवल ज्वाला भौतिक हाला,
मैं मृत्यु गरल फेनिल मिट्टी का प्याला।
भावी मनुष्य के सम्मुख दिग् दारुण रण,
टूटते मुकुट शत, लुटते नृप सिंहासन।
भू कंप मनो भू पर आने को भीषण,
मूल्यों में घटने को मौलिक परिवर्तन।
गत रूढ़ि रीति की कारा से बद्ध जन मन,
नव युग भू पर करने को मुक्त पदार्पण।
मैं काल, ज्ञात मुझको जीवन का इति-अथ,
उड़ने को दिव पथ में भू मानव का रथ।"
(वही, मध्य बिन्दु पृ० ३१९)

कवि युग प्रबुद्ध और विश्व नियति का ज्ञाता था। युग द्रष्टा होने के कारण उसे यह भी ज्ञात था कि विश्व सभ्यता वर्तमान में कहाँ स्थित है और भविष्य

मे गत सस्कृतियाँ किस प्रकार सयोजित होगी। वह चाहता था ससार मे प्रेम-सृष्टि हो, सौन्दर्य, शान्ति, आनन्द और क्षेम का निर्झर धरा पर झरे। तभी कवि ने नव युग-चेतना का महान् आह्वान् किया—

'जागो, हे जागो, धरा चेतने, जागो,
युग-युग की ईर्ष्या, कुठा, स्पर्धा त्यागो।
× × ×
जागो हे भू की राग चेतने, जागो,
निज काम द्वेष, वैधव्य वेश अब त्यागो।
× × ×
जागो हे भू की प्राण चेतने, जागो,
जीवन के मधु मे मन के पंख न पागो।
× × ×
जागो-जागो, जन मनश्चेतने, जागो,
देखो मुड अन्तर्मुख, यह विधि, मत मागो।
× × ×
जागो, भू की अध्यात्मचेतने, जागो,
गत सस्कारो, धर्मों के गुण्ठन त्यागो।"

कवि ने चेतना-स्तर पर उभरते हुए काल्पनिक परिदृश्य मे देखा कि जन-भू का अवरुद्ध मन सकीर्ण सीमाओ को लाँघ कर आलोक-स्पर्श से सचेतन हो रहा है। इस नव चेतन-प्रकाश के अवतरण से जाति, समाज और देश के बन्धनों से विमुक्त होकर राष्ट्र एक दूसरे के समीप आ रहे हैं। विज्ञान के वैभव के समक्ष राजनीतिक और आर्थिक सघर्ष धूमिल प्रतीत हो रहे हैं। दूसरी ओर विज्ञान की विभीषिका के फलस्वरूप दो प्रतिस्पर्धी गुटो मे बँटा जन-जन विनाशकारी आयोजनो मे भी जुटा हुआ है किन्तु कवि इस तमिस्रा आवृत वातावरण मे श्रेय और सृजन का आकाक्षी है—

"जन-भू कुरूप, दारिद्रय तमिस्रा आवृत,
अन्धी आस्था, अस्मिता, अविद्या शासित!
मन राग द्वेष, तन राग शोक से मर्दित,—
हो सृजन प्राण नर सर्व श्रेय हित अर्पित!"

(वही, मध्य बिन्दु, पृ० २२१)

वंशी का अभिमत है कि कुल-गोत्रो के लघु देहरी-द्वारो मे बँट कर धरा जड तामस खण्डहर बन गयी है। युग्मों की निर्मम सीमाओ मे निबद्ध रहने के कारण चैतन्य धरोहर और सुर-सम्पदा मे वृद्धि न हुई। समाज मे नारी का स्थान आज भी हेय और तिरस्कार पूर्ण है। उसे निर्वासन, अपहरण, लोकापवाद, लाछन और मृत्युमय से सन्त्रस्त रहना पडता है। सामाजिक और पारिवारिक जीवन का वैषम्य गतयुगो का अभिशाप है। गत युगो मे व्यक्ति केन्द्रित विधान होने के कारण सामूहिक स्तर पर मानवता-विकास के प्रयत्न सफल नही हो सके थे। किन्तु इस युग मे विज्ञान ने नए मनुष्य का दृष्टि विस्तार कर सामूहिकता के प्रति मानवीय आस्थाओ को दृढ किया है। कवि के शब्दो मे—

"आर्थिक तान्त्रिक सामूहिकता की भू पर,
नव मनुष्यत्व अवतरित हो रहा भास्वर।
गत युग की जैविक सीमाएँ कर विस्तृत
आता सामाजिक मानव अन्तर्विकसित।
सामूहिकता का भौतिक जड युग दर्शन,
गढ रहा लौह पीठिका शात हो युग रण।
× × ×
भू मन को बनना अन्तश्चेतन दर्पण,
बिम्बित हो जिसमे नव ईश्वर का आनन।"

(वही, मध्य बिन्दु पृ० २२४)

पन्त जी के अनुसार सभी द्रष्टा कवियो का यही मत है कि चिर अभिनव नित्यत्व (ब्रह्म) मन-वाणी से परे है, तर्क-विश्लेषण से उसे नही जाना जा सकता। कवि धरा पर ऐसी अध्यात्म चेतना के जागरण का आकाक्षी है जो अन्तर्जगत में स्वय प्रकाश पूर्ण और जन-भू का मगल करने वाली है—

"आनन्द सूर्य रे भीतर स्वय प्रकाशित,
मगलमय, शाश्वत, एकाकी, आत्मस्थित।
अनुपम, अनत, शोभा समुद्र अतरगित,
अगणित स्वर्गों मे सर्जित, एक अखडित।
छाई हिरण्मय ज्योति, रत्न रज भास्वर,
निज स्वर्ण पख छायाएँ बरसा भू पर।
× × ×

इस मरकत भू से विशद कौनसा मन्दिर,
नर नारी से बढ और कौन स्वर्गिक धन।
× × ×
जन मगल हित श्रम पूजन कर अर्पण,
श्रद्धा मे प्राण प्रतिष्ठा करनी नूतन।"

(वही, मध्य बिन्दु, पृ० २२५)

वंशी के विचार से आत्मोन्मुखी एकागी साधना भू को भगवत् प्रागण बनाने मे असमर्थ रही है। प्रस्तर प्रतिमा मे चिन्मय प्राण-प्रतिष्ठा करके भी मानव-मति ईश का साक्षात्कार न कर सकी। वस्तुत जनधरणी ही मूर्त चिद् वैभव है, इसके अतिरिक्त ईश्वर की खोज निरर्थक है। ईश का सर्वश्रेष्ठ स्तवन भू-रचना-श्रम ही है। जन-भू को छोडकर अन्यत्र कोई स्वर्ग नही है। परलोकमुखी जीवन-निषिद्ध मुक्ति का आदर्श व्यर्थ है। वास्तविक मुक्ति का अर्थ है—जन भू का प्रागण शुभ्र शाति सुख सम्पन्न हो तथा प्राणिमात्र मे आप्तकाम प्रभु की शक्ति का प्रतिनिधित्व हो। अस्तु नयी पीढी के सवाहक रचनाकारो को मानवता के मगल विधान हेतु जनभू पर ही स्वर्ग-सरचना करनी है। कवि की यह धारणा निश्चयत. युगीन है कि—

"जन भू को छोड न स्वर्ग कही रे ऊपर,
आनन्द मधुरिमा मंगल का जग हो घर।
वास्तविक युक्ति वह,जव जन भू का प्रागण,
हो शुभ्र शाति सुख स्वर्ग, सृजन श्रम रत मन।
× × ×
जीवन की ही रे पूर्ण चेतना ईश्वर,
जो व्याप्त निखिल जीवो मे, शाश्वत, निर्जर!"

(वही—मध्यबिन्दु, पृ० २२६)

गत युगो के मानस का सिंहावलोकन करने पर ज्ञात होता है कि विविध धर्म-नियमो मे अवगुंठित करके ईश्वर को दुरूह, अगम्य और तिरोहित कर दिया गया था। अनेक प्रकार के मत्र, तत्र, पन्थ और वादो मे खडित ईश विषयक विचारणा विश्वास शून्य कु ठित आस्थाओ को ही जन्म देती रही। द्रष्टाओ, साधको और सन्तो ने ईश और नर जगत् (माया) का माध्यम रख कर विभक्त किया। गत कर्मो का फल, नियति (प्रारब्ध) का बन्धन, परलोक की धारणा, पुनर्जन्म की परिकल्पना और मायावादी चिन्तन मनुष्य को भ्रमित

करते रहे। बहिरन्तर जन जीवन के सम्यव्—सयोजित और समग्र विकास की ओर चेतना उन्मुख नही हुई। इसीलिए इस धरा जीवन को दु खपूर्ण और सघर्षमय कहकर काल्पनिक स्वर्ग की खोज की गई। किन्तु सच यह है कि—

"जग जीवन मे हो सभव ईश्वर दर्शन,
सुदर से सुदरतर हो जन भू प्रागण !
× × ×
यदि ब्रह्म सत्य तो जग भी सत्य असशय,
मिथ्या से मिल सकता न सत्य का परिचय।"

(वही, मध्य बिन्दु, पृ० २३०-२३१)

कवि की मान्यता है कि भू सामूहिक-जीवन ही यज्ञस्थल है। सर्वात्म-भाव का सद्विकास ही आत्मोत्थान है। व्यक्ति की साधना का सर्वोत्तम स्वरूप वह है जिसमे क्षुद्र स्वार्थों का परित्याग कर सामूहिक हित मे व्यक्ति कर्मनिष्ठ होता है। व्यक्ति और समूह की समन्वित साधना का स्वरूपाकन कवि ने इस प्रकार किया है—

'हो विश्व मनस से व्यक्ति मनस् सचालित,
आत्मा से जीवन, जीवन से मन शासित !
जन भू मगल ही धर्म, लोक श्रम पूजन,
गत अन्ध तमस से रूढि मुक्त हो जन मन।
ध्यानस्थ, सत्य सम्मुख स्थित, देखें बुधजन,
बहिरतर भव सच्चिदानद का प्रागण।"

(वही, मध्य बिन्दु, पृ० २३२)

ब्रह्म की सत्ता और सृष्टि-सरचना के विकास क्रम को पन्तजी ने अरविन्द दर्शन की मूलभूत अवधारणा के परिप्रेक्ष्य मे व्याख्यायित करते हुए कवि ने कहा है कि आदि हेतु ब्रह्म स्वय को सीमित कर सित स्वर्ण गर्भ मे सर्जित हुआ। वह हिरण्यगर्भ स्वर्णिम डिम्ब ही बँट कर स्वर्ग भू, सूक्ष्म स्थूल और सुर-नर बना। विश्वात्मा ब्रह्म स्वर्ण रश्मि से आवृत, स्वय प्रकाशित, नि सीम, अखडित, सृजन मुक्त, शिव शक्ति प्रथित तथा प्रज्ञानमेध-भास्वर है। जब मूल-प्रकृति आदि शाति मे लय रहती है तब ब्रह्म उसम वशी म व्याप्त स्वर की भाँति तन्मय रहता है। ईश्वर सृष्टि नही रचता वरन् स्वय सृष्टि बन जाता है। अत शाश्वत तत्त्व से ही क्षण भगुर पदार्थ का उद्भव होता है—

"प्रभु सृष्टि न रचते, स्वय सृष्टि बन जाते,
निज से ही निज मे अभिव्यक्ति वह पाते।

× × ×

शाश्वत ही से भगुर पदार्थ का उद्भव,
सप्रति मे गुठित मुख भविष्य का चिर नव!"

(वही, मध्य बिन्दु, पृ० २३३)

महर्षि अरविंद ने भी यही विचार व्यक्त किया है कि—"The Brahamn alone is, and because of it all are for all are the Brahamn. This Reality is the Reality of everything that we see in self and Nature"[23] अर्थात् सर्वत्र एक ब्रह्म ही है और उसी के कारण सम्पूर्ण पदार्थों की स्थिति है, क्योकि सभी ब्रह्म हैं। इसीलिए 'लोकायतन' के कवि ने मुक्त कठ से स्वीकार किया है कि जगत् मिथ्या नही है यह जगत सत्य और ब्रह्म अवलम्बित है। ब्रह्म स्वय जीवन का जीवन, सत्यो का सत्य तथा जगत् का कारण है—

"मिथ्या न जगत्, वह ईश्वर का घर आँगन,

× × ×

वह परम न जीवन-शून्य-अखण्ड परात्पर,
भव जीवन का न विनाश, क्रमिक रूपातर!
वह जीवन का जीवन, आनन्द अमृत घन,
सत्यो का सत्य, अकारण, जग का कारण!
उस परम सत्य के पलने मे पालित जग,
वह अमृत प्रसव, उद्भव विकास गर्भित मग!

× × ×

यह जगत सत्य रे, नित्य ब्रह्म अवलम्बित!"

(वही, मध्य बिन्दु, पृ० २३४)

ब्रह्म और जगत् की व्याख्या के पश्चात् जीव का स्वरूप-विश्लेषण करते हुए कवि ने लिखा है कि वह जीव जो श्वास-सूत्रो से गुफित हैं, सित पुरुष के

---

23 The Life Divine, II, p 45

हृदय-पुर-शतदल मे निवसित रहता है। वह प्राणो से उपचेतन-जीवन धारण करता है तथा चेतन गतियो से मन सचालित होता है। आत्मा और विश्वात्मा का ऐक्य सर्वथा वाछनीय है। मनुष्य का यह दायित्व है कि वह भू पर शकराचार्य, माधवाचार्य, रामानुज प्रभृति आचार्यो द्वारा चर्चित मौलिक दिव्य एकता की स्थापना करे। हम सब विश्व चेतना के अविनश्वर अग हैं, इसलिए हमे मृण्मय को चिन्मय का ज्योतिर्गृह बनाना है अस्तु यह आवश्यक है कि—

"जग मे जो कुछ, सब मे व्यापक ईश्वर स्थित,
भोगो जग को, निज को कर प्रभु को अर्पित !
मत उसे बाँट, सोचो मेरा तेरा धन,
ईश्वर, जग, तुम जब एक, न कर्म ग्रसित मन !"

(वही, मध्य बिन्दु, पृ० २३६)

कवि के अनुसार आज का मानव बौना, अन्ध, अज्ञानी, अहरत और बर्बर है। उसे विद्वेष रहित, तेजस्वी और मनस्वी बन कर लोकमगल का विधान करना है। जब जनगण का श्रम सर्व श्रेय हित मे निरत होगा तभी यह धरा स्वर्ग बनेगी और भू पर सुर विचरण करेंगे। गत युग के सम्प्रदाय-धर्मो तथा वर्णो से ऊपर उठकर मानवता निश्चयत विकासोन्मुख होगी। इस सब के लिए जन-जीवन मे एक महत् सास्कृतिक क्रान्ति अपेक्षित है। ऐसी क्रान्ति नवचेतन, नवसृजन और नव मानवता का विकास करने वाली हो। पन्त जी ने मनीषी कवियो की भाँति सृजन-चेतना के जागरण का आह्वान भी किया है—

"जागो, जागो, जन सृजन चेतने, जागो,
निज जन्म सत्व-अनुराग-मुक्ति तुम माँगो ?
सौन्दर्य प्रेम का भू पर कर आराधन,
आनन्द दीप्त तुम करो जनो के तन मन !
प्रिय हो मानव, प्रिय भू, प्रिय शशि गृह अबर,
प्रिय फूल विहग, प्रिय ऋतु, प्रियगिरि सरि सागर।
प्रिय शिशुओ के मुख, प्रिय हो स्नेही सहचर,
अनुराग मधुर हो वधुओ के प्रति अन्तर !

× × ×

नव हृदय जन्म ले रिक्त मनुज के भीतर,
नव मनुष्यत्व का अमृत-भुवन-रस-सुन्दर ।

जिसके स्वर्णिम शतदल मे उतरे ईश्वर,
नव रचना मगल का दे जन भू को वर।"
(वही, मध्य बिन्दु, पृ० २४३-२४४)

इस प्रकार 'लोकायतन' महाकाव्य के 'प्रथम खण्ड : बाह्य परिवेश' के अन्तर्गत कवि ने 'पूर्व स्मृति · आस्था' के अनन्तर 'जीवन-द्वार' और 'सस्कृति-द्वार' उपखण्डो मे राष्ट्रीय स्वाधीनता सगर को विराट रचना फलक पर निरूपित कर 'स्वतन्त्रता-प्राप्ति' के पश्चात वे भारतीय जन जीवन का यथार्थमूलक दृष्टि से चित्रण किया है। यह चित्रण निश्चयत पन्त जी को युग-द्रष्टा कवि सिद्ध करता है। 'प्रगति वाद-युग' की 'युगवाणी', 'युगात' और 'ग्राम्या' प्रभृति काव्यकृतियो की भांति 'सम्कृति द्वार' उपखण्ड के 'सक्रमण' प्रखड का युगचित्रण मात्र बौद्धिक-सहानुभूतिपूर्ण या सतही नही है। यह युग-चित्रण जनजीवन की ज्वलन्त समस्याओ से सक्रात और ह्रासोन्मुख मानवीय-चेतना की सत्रस्त मन.स्थितियो के अनुभूत सवेदन-सत्यो से सम्पृक्त है। देश के विभाजन और साम्प्रदायिक विद्वेष की भूमिका का सधान मध्ययुग की सास्कृतिक-सक्रमणशीलता के परिपार्श्व मे उभारने तथा उसकी मध्ययुग की ह्रासशील-चेतना से सगति निर्धारित करने मे 'लोकायतन' के कवि ने मौलिक चिन्तन शक्ति और विलक्षण काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है। विवेचना के इन्ही स्तरो पर 'लोकायतन' सच्चे अर्थो मे एक महाकाव्य प्रमाणित होता है।

'लोकायतन' महाकाव्य के 'द्वितीय खण्ड' का शीर्षक—"अन्तश्चैतन्य" है। द्वितीय खण्ड के प्रथम उपखण्ड का शीर्षक "कला द्वार" है जिसे 'सस्थान' 'द्वन्द' और 'विज्ञान' नामक तीन प्रखण्डो मे वर्गीकृत किया गया है।

'सस्थान' नामक प्रखण्ड मे कवि ने सुन्दरपुर जनपद मे एक आदर्श कला-शिविर (सस्थान) की स्थापना का वर्णन किया है। इस कला-सस्थान मे ग्रामीण जन जीवन के अन्तर्बाह्य विकास शिक्षा-दीक्षा, अर्थव्यवस्था, जीवन-चर्या, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक और सास्कृतिक अभ्युत्थान की सश्लिष्ट रचना-पद्धति का विस्तृत समायोजन दर्शाया गया है। 'सस्थान' प्रखण्ड के समारम्भ मे सरस्वती का आह्वान् करते हुए कला की सिद्धि लोक-मगल मे मानी है—

"कला के लिए कला का राग, वरद कवि वाणी का व्यभिचार!
लोक जीवन के भीतर पैठ, स्वर्ग शोभा मे उसे सँवार!
× × ×

सूक्ष्म रस सृष्टि तूलि का ध्येय, लोक मगल-सुख प्रेरित मात्र,
×
लक्ष्य कवि का न मात्र आनन्द, न रस ही उसकी अतिम सिद्धि।"
×
×

(वही, कलाद्वार सस्थान, पृ० २२४)

स्वाधीनता प्राप्ति के दस वर्ष पश्चात् हरि का स्वप्न साकार हुआ। उसने वृद्ध राजा ठाकुर से सुरम्य प्राकृतिक वातावरण मे एक भू खड प्राप्त कर जन कला लोक-प्रासाद (कला-सस्थान) का निर्माण किया। इस कला सस्थान मे छात्र, छात्राओ, शिक्षको, नट, नर्तक, छविकार, कलाकार, कृषक, श्रमिक, व्यवसायी आदि को बुलाकर बसाया गया। हरि ने सर्वप्रथम सभी को कर्म-निष्ठ बनने की प्रेरणा दी। हरि ने कहा—

"प्रथम शिक्षा,-हरि कहता, बाह्य कर्म पर हो निष्ठा विश्वास,
कर्म का प्राण-स्पर्श पा गूढ, जनो का समव मनोविकास।
कर्म प्रेरणा करे जन प्राप्त, रिक्त जीवन वर्जन से मुक्त।
कर्म प्रेरणा शक्ति का स्रोत, जनो को करे लौह सयुक्त।"

(वही, कलाद्वार-सस्थान, पृ० २५७)

इस कला-केन्द्र के जन जीवन को सम्प्रेरित करने मे वशी का अशदान भी महत्वपूर्ण रहा। युगकवि वशी ने आत्मप्रेरक स्वरोदघोष द्वारा केन्द्र के जनमन को आदोलित करके नवचेतना और कर्म उत्साह प्रदान किया। वशी हरि को बताता था कि यदि जन मन को समुन्नत करके धरा पर स्वर्ग उतारना है तो वर्तमान की विपम स्थितियो के बीच व्यापक साम्य की खोज करनी पडेगी। जाति वर्गों के वेष्ठनो को खोलकर, रुग्ण रूढियो के बन्धनो का उच्छेदन कर, देश राष्ट्र की सीमाओ को लाँघ कर धर्मान्ध जन जीवन को द्वेप और भय से मुक्त करना होगा। अतीत और वर्तमान युग जीवन के परिवर्तित चैतन्य (बोध ?) का अन्तर स्पष्ट करते हुए वशी ने कहा—

"क्रूर गत भू स्थितियो से रुद्ध
पूर्ण हो सका न मनोविकास,
विचरता बौना क्षुद्र मनुष्य
मनुजता था भू पर उपहास।
जन्म लेता अब नव चैतन्य
विश्व मानस मे,—वृत्त महान्

गुह्य भू गर्भ तिमिर को चीर,
विहँसता कल्प-सूर्य अम्लान।"

(वही, संस्थान, पृ० २६०)

हरि की बुद्धि सारग्राही थी, उसने क्रांतदर्शी कवि वंशी के उर का सत्य और विश्व कल्याण का विशाल संकल्प समझ कर कला केन्द्र के जीवन को उद्बुद्ध किया। पौर जनों के प्रिय सहयोग से शिविर का अभीष्ट विकास हुआ। विश्व-मानवता तथा लोक साम्य के आदर्शों को साकार करने के लिए केन्द्र में सभी धर्मों के देवी-देवताओं की स्थापना की गई। जिस चतुर्मुखी युग ब्रह्मा की प्रतिमा कला-प्रांगण में प्रस्थापित की गई, वह विविध रूपों को आत्मसात् किये थी—

"कला प्रांगण में स्थापित उच्च, चतुर्मुख युगब्रह्मा की मूर्ति—
राम सँग बुद्ध मुहम्मद यीशु, विविध रूपों की करते पूर्ति!
चतुर्दल नील पद्म के मध्य, काल का काल-हीन सित हाथ,
लिए नव ज्योति शिखा या ऊर्ध्व-सत्य का युग प्रतीक हो साथ!"

(वही, संस्थान, पृ० २६३)

कला केन्द्र के छात्र-छात्राएँ और स्त्री-पुरुष अपनी प्रार्थनाओं में भी यही कामना करते थे कि हे जग के कर्त्ता हमें शक्ति प्रदान करो जिससे हम लोक-हित करें। हम मन, वाणी और कर्म से लोक निर्माण के कार्यों में संलग्न हों आदि। उस जनपद का निर्माण करने में सभी ने अपेक्षित योग-दान किया। फूस और खपरैलों से पटी झोपड़ियाँ जनसंस्थानों में बदल गईं। स्वच्छ और विस्तीर्ण मार्ग, स्वास्थ्यगृह तथा अतिथि-शालाएँ निर्मित हुईं। जनपद की कृषि और उद्योग सहकारिता के आधार पर निर्मित किए गए। परिवार-नियोजन के महत्व से भी जनपद निवासियों को हरी ने अवगत कराया—

"जनों को हरि आकर प्रति बार,
सिखाता संतति निग्रह मन्त्र,
नियोजित यदि न मनुज परिवार,
न संभव पूर्ण काम जन तन्त्र!
अशिक्षित, निर्धन, रुग्ण, अपांग
बढ़ाते व्यर्थ धरणि भू-भार,

नरक क्यो बने न जन-भू स्वर्ग,
नही जब प्रजनन पर अधिकार !"

(वही, सस्थान, पृ० २७०)

कला-केन्द्र के छात्र-छात्राओ की जीवनचर्या नितान्त सयमित, सौहार्दपूर्ण और सहयोग भाव पर आधारित थी। पोथी-ज्ञान के स्थान पर अनुभूत-सत्यान्वेषी शिक्षा पद्धति पर विशेष बल दिया जाता था। हरि छात्रो को बताता था कि समृदिक भू के पाशो को चूर्ण कर ऊर्ध्व-चेतना-निधि को जीवन मे प्रत्यक्ष करो। छात्रो को चित्र, नृत्य, सगीत आदि विविध कलाओ का ज्ञान कराया जाता था। कला व्याख्या करते हुए उसकी सोद्देश्यता पर हरि इस प्रकार प्रकाश डालता था—

"कला क्या ? कहता हरि सोन्मेष,
असगति मे सगति भर नव्य,
असुन्दर मे सुन्दर की खोज
रूप गढना जन भू का भव्य !
× × ×
अचेतन तम का मुख मद चूम,
कला को करना रस सस्कार !
सत्य से आँक महत्तर सत्य,
कला को रचना नव ससार !"

(वही, सस्थान, पृ० २७८)

केन्द्र के शिक्षार्थियो की दृष्टि गहनतर होती जाती थी। उन्हे यह पूर्ण परिज्ञान हो गया था कि सभी कलाओ का चरम लक्ष्य लोक मागलिक-विधान ही है। कवि के शब्दो मे—

"कला के स्पर्शो से इस भाँति, देह मन का निज कर निर्माण,
धरा को करने शोभा-मूर्त, शिविर जीवन करता श्रमदान !
न ग्रन्थो तक सीमित हो काव्य, पटो मे हीन सुरक्षित चित्र,
कला जन-भू का कर शृगार, लोक जीवन को करे पवित्र !"

(वही, सस्थान, पृ० २८५)

कला शिविर के विद्यार्थी नाट्य-अभिनय द्वारा ग्राम-जीवन की त्रुटियो पर व्यग्य करते थे। जाति-धर्मगत विद्वेष, स्वार्थ-कलह, भाग्यवाद की विडम्बना, अविद्या, दैन्य, निराशा, रूढ प्रथाओ पर कुठाराघात नाटको मे मुख्य विषय थे।

सहनृत्य प्रदर्शन, प्रहसन, कठपुतली नाच आदि के द्वारा शिविर युग-सत्य का प्रचार-प्रसार करता था। छात्र छात्राएँ साथ-साथ रहते थे किन्तु उनके पारस्परिक सम्बन्ध शुद्ध प्रेम भाव और सयम-सदाचार से अनुशासित थे। नारियो को कला-शिविर मे उचित अधिकार प्राप्त थे। आर्त अवलाओ, विधवाओ, परित्यक्ता, पति पीडिता और अनाथ-स्त्रियो के लिए केन्द्र की ओर से 'करुणा कक्ष' खुले हुए थे। प्रौढ शिक्षा विभाग मे रात्रि को स्त्री पुरुष अपना दैनिक कार्य समाप्त कर पढते थे। शिशु-कक्ष मे बालको को रुचि के अनुकूल अध्यापन कराया जाता था। अनेक सग्रहालय और ग्रन्थागार थे। इस प्रकार 'कला-सस्थान' एक आदर्श केन्द्र था जो कवि वशी की प्रेरणा और हरि की कर्मनिष्ठा से सचालित था—

'चेतना वशी, हरि मन देह,
परस्पर प्राणो मे-सित स्नेह,
प्रेरणा था कवि, हरि युग कर्म,
केन्द्र-भू श्री शोभा का गेह।"

(वही, कलाद्वार-सस्थान, पृ० २९६)

'कलाद्वार' उपखण्ड का द्वितीय प्रखण्ड 'द्वन्द्व' है। इस प्रखण्ड के प्रारम्भ मे ही कवि यह स्वीकार करता है कि पुरातन युग की रूढियाँ समाप्त होकर नवचेतना का विकास हो रहा है। जो कल तक सत्य था, आज नवयुगोन्मेष मे असत्य हो गया है—

"सत्य था कल जो आज असत्य,
जगत जीवन रहस्य इतिहास।
समापन प्राय पुरातन वृत्त
क्षितिज तम से छन नव्य प्रकाश
निकष पर स्वर्ण रेख-सा शुभ्र-
विहँसता भू चेतना विकास।"

(वही, कलाद्वार-द्वन्द्व, पृ० ३१२)

सत्य और असत्य का द्वन्द्व चिरन्तन है। सुन्दरपुर जनपद के कलाकेन्द्र की प्रतिस्पर्धा मे माधो गुरु द्वारा एक मठ का निर्माण किया गया जिसे 'शान्ति-आश्रम' सज्ञा दी गयी। 'शान्ति-आश्रम' मे अष्ट-विधि-योग साधना द्वारा मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग बताया जाता था। 'शान्ति-आश्रम' की शिष्य मण्डली प्रात साय गगा स्नान कर सध्या, जप-तप, ध्यान और वेद मन्त्रो से हवन



करती थी। माधो गुरु ब्रह्मचारी शिष्यों को वर्णाश्रम-व्यवस्था के अनुपालन, द्विज-सेवा तथा वैराग्य वृत्ति सधारण करने का उपदेश देते थे। पूर्व-कर्म, नियतिवाद, जन्मांतर और दैवयोग में उन की दृढ़ आस्था थी। नारियों को वे पतिव्रत धर्म का उपदेश देते थे। नारी-स्वातन्त्र्य में उनकी अनास्था थी। विधवाओं को वे जप-तप-त्याग-संयम-उपवास आदि के द्वारा जग से विमुख रहकर जीवन-यापन के लिए कहते थे। जगत को मायाजाल बताकर वे लोगों को विरक्त होने के लिए प्रेरित करते थे। संक्षेप में माधो गुरु की जीवन दृष्टि पलायनवादी, अमानवीय, दैवाधीन, अव्यावहारिक, परम्परागत और अभावात्मक थी। कवि के शब्दों में माधो गुरु एक विलक्षण मिश्रण थे—

"विलक्षण मिश्रण थे गुरु गूढ़,—
धर्म का परम्परागत पक्ष,
मानते,—कर्मों में स्वाधीन,
कुतर्कों, वाग् जालों में दक्ष!
× × ×
जगत को बतला माया जाल
धरा जीवन प्रति बढ़ा विरक्ति,
मृत्यु, परलोकवाद से त्रस्त,
बची जन में न प्रेरणा शक्ति!"

(वही, द्वन्द्व, पृ० ३१७)

कवि के अनुसार धर्मों का इतिहास बताता है कि उनका पुनरुत्थान असम्भव है। धर्म मनुजता को बाँटते रहे हैं। जगत से ईश्वर को भिन्न बताकर मनुष्य को संसार से पलायन का उपदेश देने में दार्शनिक तर्कवाद रचित हुआ है। सत्य शब्दों और तर्कवाद के जाल में उलझता रहा है। पुरोहितों और पण्डों ने स्वार्थांध होकर धर्म की मनमानी व्याख्या की तथा देश को अन्धकार में ढकेला है—

'विरस वैराग्यवाद ने घर,
किया नर ईश्वर का अपकार,
पारलौकिक जीवन का महत्त्व
सृष्टि मुख पर आसुरी प्रहार!
पुरोहित पण्डे हो स्वार्थान्ध,
अन्ध विश्वासों का बुन जाल,

नरक मे जन को गए ढकेल
देश को अन्धकार मे डाल !
घृणित पाखण्डो की कर सृष्टि
धर्म के ये लोभी वक्काल,
बेच खा गए सत्य का दाय
खडे कर कर्म काड ककाल !"

(वही, द्वन्द्व, पृ० ३१९)

धर्म की इस सकीर्ण व्याख्या का प्रभाव यह हुआ कि लोग घर-आँगन छोड जीवन भ्रात होकर सन्यास ले वन को चले गए। इससे सामाजिकता की नीव हिल गयी। 'शान्ति आश्रम' के आचार्य माधो गुरु भी इसी विचारधारा का प्रचार-प्रसार करते रहे। वे लोगो को चौरासी लाख योनियो मे भ्रमण करने और जगत के मिथ्यात्व का उपदेश देते थे। मध्य युग के थोथे आदर्शों का पुनराख्यान करके वे लोगो के मन मस्तिष्क मे पराजय, दुःख और नैराश्य भाव को जगाते थे। कभी वे यम-नियम प्राणायाम और इडा पिंगल-सुषम्ना नाडियो मे प्राण-वायु को रोकने तथा कुडलिनी शक्ति जागृत करने की बात कहते थे। माधो गुरु का बाह्याडम्बर प्रभावशाली था। उनके अनेक भक्त थे जो पूजा-अर्चन करते थे। आत्मा-नन्द, हरिपाद सदृश उनके चेले आरती कीर्तन आदि के द्वारा भक्तो को अभिभूत किए रहते थे। कवि के अनुसार—

"पूजते उनको श्रद्धा मूढ,
भेंट कर अन्य भक्ति, धन-धान्य !
गेरुआ वस्त्र, साधु का वेश,
देश मे सहज सर्व जन मान्य !"

(वही, द्वन्द्व, पृ० ३२३)

आश्रम मे बहुत से षड्दर्शन प्रवीण और शास्त्र-ज्ञान निष्णात पडित भी थे जो विभिन्न परम्परागत दर्शनो और धार्मिक मान्यताओ पर आश्रमवासी मण्डली के समक्ष प्रवचन करते थे। इन प्रवचनो मे नागार्जुन, कणाद, दिङ्-नाग वाचस्पति मिश्र, जयन्त, पतजलि, जैमिनी, कुमारिल भट्ट, मडनमिश्र, रामानुज, शकर, आचार्य उदयन प्रभृति विचारको की वैशेषिक, परमाणुवाद, द्वैतवाद, अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, सत्कार्यवाद, साख्य नास्तिक, आस्तिक वेदान्त, मीमासा, पराविद्या, विवर्तवाद, प्रतिबिम्बवाद, प्रौढिवाद, मायावाद सम्बन्धी विचारधाराओ का विवेचन किया जाता था। माधो गुरु मुक्त हृन्न

से दान देते थे। उनका व्यक्तित्व रहस्यमय आख्यान बना हुआ था। वशी से द्वेष रखने के कारण वे मन ही मन कुंठित भी थे। उन्हें इस बात से असंतोष था कि लोग वशी का सम्मान करते हैं और उन्हें वशी के समान कीर्ति नहीं मिली—

"काष्ट उर मे रहती ज्यो अग्नि, प्रकृति मे था माधो के द्वेष,
प्रीति का मुखड़ा पहन उदात्त, हृदय मे पाते गोपन क्लेश।
न आंका जग ने उनका मूल्य, मिला जन से न कीर्ति धन दाय,
ऐंठ सी गई अहता रज्जु, उपेक्षित देख अमर यश काय।
छीनकर उनका कीर्ति किरीट, घूमता वशी बन सम्राट,
सालता उर मे निष्ठुर शूल, क्षुद्र बन जाता सिमट विराट्।"

(वही, द्वन्द्व, पृ० ३३२)

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि लोकायतन' के कतिपय समीक्षकों ने वशी को पन्त जी और माधो गुरु को निराला का प्रतीक कहकर यह स्थापित करने का असफल प्रयास किया है कि पन्त जी ने निराला जी के प्रति अपने आक्रोश की अभिव्यक्ति दी है। उदाहरणार्थ डा० सावित्री सिन्हा लिखती हैं—"वशी कवि और माधो गुरु के व्यक्तित्व म स्वय पन्त और निराला के व्यक्तित्वो की छाया मिलती है। 'लोकायतन' का हर आलोचक इस तथ्य की ओर इङ्गित कर चुका है। कलाद्वार के अन्तर्गत द्वद्व नामक उपखण्ड मे माधो गुरु को रूढिवादी जड परम्पराओं और मूल्यो के प्रतिनिधि रूप म चित्रित किया गया है। कहीं-कहीं व्यक्तिगत स्पर्शों के सकेत बिलकुल स्पष्ट हो गए हैं।"[१९] डा० व्रजविहारी तिवारी के अनुसार—'पन्त जी ने गाधी, रवीन्द्र, अरविंद आदि के साथ साथ वाल्मीकि, व्यास कालिदास, प्रसाद और महादेवी को भी श्रद्धा प्रसून चढाए हैं। निरालाजी की उपेक्षा सब को खटकेगी। इससे ही कुछ लोगों को यह कहने का मौका मिला है कि माधो गुरु निराला और वशी पन्त।'[२०] मेरी व्यक्तिगत धारणा है कि लोकायतन' का मूल्याकन करते समय इस प्रकार के आक्षेप आलोचको क पूर्वाग्रहो और सकीर्ण अध्ययन दृष्टि के परिणाम हैं। वस्तुत पन्त जी सदृश्य मनीषी कवि का अभिप्रेत कदापि भी निराला के व्यक्तित्व पर कीचड उछालना नहीं रहा। महाकाव्य के विराट रचना फलक

---

[१९] तुला और तारे (निबन्ध सकलन) पृ० १२१
[२०] समीक्षालोक, सुमित्रानदन पन्त विशेषाङ्क पृ० १०२

पर अनेक व्यक्तित्व उभरते हैं, किन्तु उनकी सगति कवि के व्यक्तिगत जीवन से जोडना सर्वथा काम्य नही है । जहाँ तक माधो गुरु का सम्बन्ध है 'लोकायतन' के रचयिता ने स्पष्ट शब्दो मे उन्हें ह्रास-युग के दम, अहकार, अन्ध-विश्वास और परम्परा-प्रियता का प्रतीक माना है । पत जी के ही शब्दो मे द्रष्टव्य है कि—

"व्यक्ति माधो थे मात्र प्रतीक,
ह्रास युग अन्धकार के शूल,
उलट कर अहि-सा, दे विष दश,
जिसे हो जाना था निर्मूल !"

(वही, कलाद्वार (द्वन्द्व), पृ० ३४५)

अस्तु, स्पष्ट है कि माधो गुरु को किसी व्यक्ति विशेष (निराला ?) का यथार्थ प्रतीक मानना भयकर भूल है । माधो गुरु भी वैसे ही काल्पनिक पात्र और प्रतीक हैं जैसे—हरी, सिरी, मेरी, वशी, सीता, राम, लक्ष्मण, राधा आदि क्रमश कर्मठ पुरुष, प्रकृति शक्ति, पश्चिम की वैज्ञानिक चेतना, नव युग चेतना रचनाकार, लोक मानस, मर्यादा, अनन्त पौरुष, घरा की रसात्मकता के प्रतीक हैं । माधो गुरु के प्रति कवि के श्रद्धा भाव का प्रतिपादन मैंने सप्रमाण आगे यथा प्रसग किया है ।

माधो गुरु के चिन्तन और आचरण-पद्धति के विपरीत वशी युग चेतना से सम्पन्न रचनाकार था । वह अत मन से विश्व के भीतर ज्योतिर्विश्व का निस्तरग आनन्द लूटता था । आत्म साक्षात्कार के सृजनात्मक क्षणो मे उसे विलक्षण अनुभूतियाँ होती थी । उदाहरणार्थ—

'एक दिन छाया सा हट विश्व, गया पीछे कवि हुआ समक्ष,
नाभि से जगा ऊर्ध्वमुख नाद, गीत उल्लसित हुआ उर कक्ष !
नित्य होती अभिनव अनुभूति, सयमित हुए शक्ति पा प्राण,

× × × ×

चित्त मे कवि के ज्योति गवाक्ष, खुला रहता शोभा अनिमेष—
विश्व से उसका मन सयुक्त, वहन करता स्वर्गिक उन्मेष !"

(वही, द्वन्द्व, पृ० ३३३)

माधो गुरु जीर्ण-शीर्ण जीवन मूल्यो का पुनरोद्धार कर सनातन परम्पराओ के सस्थापन म सलग्न थे । कि तु वशी दुर्धर्ष प्रतिरोधी दल से सघर्ष करते हुए नवीन युग चेतना के आलोक म युगीन जीवन मूल्यो का प्रतिष्ठाता था । पर-

म्परा की जडता से सुपरिचित होने के कारण पुरातन के प्रति उसका कोई व्यामोह नहीं था। कवि के अनुसार वशी नवयुग का प्रतीक था—

"नए युग का वशी प्रतिरूप,
चेतना का फहरा नव केतु—
पार करता भू-मन का सिन्धु,
लोक मगल हित रच ऋच सेतु !"

(वही, द्वन्द्व, पृ० ३४६)

माधो गुरु स्पर्धा-वृत्ति और ईर्ष्या के कारण वशी का घोर विरोध कर रहे थे। उन्होने लोगो को कहा कि वशी को स्थान न दें। माधो गुरु के शिष्य भी सक्रिय रूप से कला-केन्द्र का विरोध कर रहे थे—

"गिरोहो मे बँट गुरु के शिष्य,
जनो मे फैलाते अपवाद,
शिविर के सस्कृत छात्रा-छात्र,
बचाते अप्रिय वाद-विवाद !
केन्द्र के प्रति कर कुत्सित व्यग्य,
असत्यो का बुनते थे जाल !
सदस्यो पर करते आक्षेप,
कोटि फन हो कुत्सा विषव्याल !"

(वही, कलाद्वार, पृ० ३५३)

हरि और शकर ने जाकर माधो गुरु से धृष्ट शिष्यो को सयमित करने का अनुरोध किया। गुरु ने स्वय केन्द्र मे जाने और वशी से भेंट करने का विचार प्रगट किया और एक दिन पूर्व सूचना केन्द्र मे पहुँच गये। अपने प्रिय शिष्य के साथ माधो गुरु वशी के कक्ष मे पहुँच गए और वशी से हाथ मिलाते समय उसके उर मे गुरु ने गोपन प्रहार किया और कवि को हतचेतन अवस्था मे छोड लौट गए। द्वेष निर्मम गुरु ने जिसे तमकूप मे ढकेल दिया था उससे वशी भाग्यवश बच गया। सयोगवश कवि को विदेश-भ्रमण का निमन्त्रण मिला और उसने हरि को सस्थान का भार सौंपकर विश्व राष्ट्रो के तन्त्र विधान को जानने के लिए प्रस्थान किया।

'कलाद्वार' उपखण्ड के तृतीय प्रखण्ड 'विज्ञान' मे कवि ने वशी द्वारा विश्व भ्रमण और पाश्चात्य सभ्यता-सस्कृति के वैज्ञानिक उपलब्धियो के परि-

प्रेक्ष्य मे प्रसार का निरूपण किया है। यान पर आसीन होकर व्योम मे भ्रमण करते हुए वशी को विलक्षण अनुभव हुए। नक्षत्रो से मडित नभ को देख कर कवि की कल्पना-दृष्टि निर्बन्ध और निर्बाध दिशा विस्तार से परे पहुँचकर प्रकृति के दिव्य और विराट रूप का दर्शन करने लगी। नीलाकाश कवि को एक विराट् नि सीम विस्तार प्रतीत हुआ—

"नील केवल, अकूल अति नील,
निमृत, निस्तल, नि सीम, विराट्-
सौर चक्रो का दिव्य किरीट,
धरे था सिर पर दिक् सम्राट!
(वही, कलाद्वार (विज्ञान), पृ० ३६६)

अन्तरिक्ष के विराट् विस्तार और द्यौ लोक की शक्ति-दीप्ति देखकर कवि विस्मय-स्तमित था। वह सोचता था कि वह कौन सर्वव्यापी शक्ति है ? जो अपरिमित महा शून्य मे कोटि शत अधिवर्षो से असख्य ज्योति-पिण्डो को भ्रमण करा रही है। वशी के मन मे यह प्रश्न भी उभरा—

"महत् किस आकर्षण से खीच, सजो किसने अखण्ड ब्रह्माड,
असख्यो लोको से कर पूर्ण भर दिया महाकाल का भाड!
परम ज्योतिर्मय का क्या ध्येय ? वैश्व सगति का क्या उद्देश्य ?
विहँसता महाशून्य नि शब्द — सृष्टि मे निहित स्वत सदेश।"
(वही, विज्ञान, पृ० ३६८)

इसी अन्तरिक्ष-विस्तार के मापन का साहसिक कार्य विज्ञान युग के मानव ने किया। कवि की दृष्टि मे युग-नर के साहसिक अन्तरिक्ष अभियानों का सार्थक्य क्या है ? जब जन-भू सकटो से घिरी है। मनुष्य जब धरा के ही दायित्वो के निर्वाह मे अक्षम है तो अन्तरिक्ष-सन्धान मे क्यो प्रवृत्त हुआ है—

"लाभ क्या बहिर्शून्य मे घूम
पुन बन युग त्रिशकु, सपाति,
रिक्त करतल सा फैला देश
खेत चीटो सी उडुगण पाँति।
धरा के प्रति अपना दायित्व
निभा क्या चुका मनुष्य समग्र ?
ग्रहो पर जो अब मर्त्य प्रभुत्व
प्रतिष्ठित करने को वह व्यग्र।"
(वही, विज्ञान, पृ० ३७०)

आणविक युग का सैन्यशास्त्र, प्रलयकर प्रक्षेपास्त्रों का निर्माण कर घृणा, स्पर्धा और हिंसा के जो बीज धरती पर बो चुका है, उन्ही को उगाने ज्योति-पिंडों की ओर अन्तरिक्ष अभियानों के माध्यम से प्रयाण कर रहा है। कवि के स्मृति-पट पर प्राचीन-भारत का वह स्वर्णिम युग उभरा जब द्रष्टा ऋषि गुह्य मनोमय अन्वेषण मे लीन रहते थे। वे ध्यान का दिवयान निर्मित कर अन्तर्मानस का नीलगगन भेद कर प्राण-पथ से ऊर्ध्व आरोहण करते थे। भारत के द्रष्टा ऋषि शुभ्र समाधिस्थ ज्ञान के बल पर प्राण के मरकत सोपान पर चढ कर शांति, सौन्दर्य, प्रीति और आनन्द के दिव्य वैभव से ओतप्रोत प्रकाश-स्रोत खोजने मे समर्थ हो सके। वे ऋषि चेतना के सित स्वर्णिम शृग लांघकर ध्रुव-ध्यान मे तन्मय होकर एक अणु मे ही अखण्ड ब्रह्माण्ड देखने मे सक्षम थे। वस्तुत सच्चिदानन्द रूप चैतन्य ही सम्पूर्ण जगत मे परिव्याप्त है, उसका दर्शन प्राण मन का अतिक्रम कर अन्तश्चैतन्य-स्तर पर ही सम्भव है—

"प्राण मन को अतिक्रम कर श्रेणि
देख अक्षय सूर्यो का सूर्य,
मृत्यु तम पर अमृतत्व-प्रकाश-
विजय का फूँक अभय स्वर तूर्य।
जगत जिसके विकास का क्षेत्र
स्वभू जो, शुद्ध, स्व-बुद्ध, अनन्य,
एक वह, बहु भूतो मे व्याप्त,
सच्चिदानन्द रूप चैतन्य।"

(वही, विज्ञान, पृ० ३७१)

ऐसे विश्वात्मा दिव्य स्वरूप ब्रह्म के साक्षात्कर्ता मनीषी ऋषि अनन्त-काल से मनुज जीवन को श्रेय प्रेय से सयुक्त करने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। किन्तु उनकी आत्मचेतना की अक्षय ज्योति भी भू का पथ प्रशस्त नही कर सकी है। आज भी मनुष्य हिंस्र, वर्बर और विध्वसक बना हुआ है। कवि के अनुसार आध्यात्मिक ज्ञान और भौतिक विज्ञान दोनो ही अर्द्ध युग-सत्य हैं। वे समन्वित रूप मे ही युग जीवन का पूर्ण सत्य बन सकते हैं। कवि के चिन्तन के अनुसार ज्ञान विज्ञान की सापेक्ष स्थिति इस प्रकार है—

"ज्ञान विज्ञान अर्ध युग सत्य,
समन्वित बन सकते वे पूर्ण,

पृथक रह उगल रहे वे व्यर्थ
नाभि से भाव वस्तुमय ऊर्ण ।
ज्ञान आत्मा, विज्ञान शरीर
अर्थ वाणी से सतत अभिन्न,
अध विज्ञान, ज्ञान चिर पगु
रहे जग मे यदि वे विच्छिन्न ।"

(वही, विज्ञान, पृ० ३७२)

इसी प्रकार सोचते-सोचते कवि पश्चिम की भूमि पर जा पहुँचा । उसने देखा पश्चिम के नगर इन्द्रपुर के समान विशाल और विपुल वैभव सम्पन्न हैं । वहाँ के हाटबाट-उद्यान स्वच्छ-स्मित और भव्य हैं । औद्योगिक क्रान्ति और यन्त्र-युग की उपलब्धियो ने वहाँ के जीवन को भौतिक सुख सुविधाओ से परिपूर्ण बना दिया है । पश्चिम के लिए आधुनिकता वरदान सिद्ध हुई है । वहाँ की नारी पुरुष के समकक्ष नव्य सत्वो के गौरव से युक्त है । डारविन के विकासवाद और कार्ल मार्क्स के क्रात विचारन्दर्शन ने वहाँ के जीवन मे बोध के नये क्षितिजो को विकसित किया है । रसायन, भौतिकी, चिकित्सा-शास्त्र, गणित, वनस्पति और जीवन-विज्ञान के क्षेत्रो मे हुई खोजो ने जीवन को सम्पन्न बनाया है । किन्तु भौतिक प्रगति की चरम परिणति साम्राज्यवादी, पूँजीवादी, अधिनायकवादी आदि प्रवृत्तियो के विकास मे भी द्रष्टव्य है । अणु-परमाणु-विज्ञान विध्वसक उपादानो के विकास मे निरत होने के कारण मानवता के कल्याण-विधायक नही हैं । कवि के अनुसार पश्चिम की ज्ञान-सम्पदा मृत तथ्यो का ही ढेर है—

"ज्ञान सम्पद् सचय यह बाह्य, रिक्त मृत तथ्यो का जड ढेर,
सत्य दीपित हो अतश्चित्त अभी युग सयोजन मे देर ।
दर्प पर्वत, बाहर से सभ्य, मनुज भीतर से आदिम सर्व,
आज भी वह दिन दारुण दूर, एक हो भू मानवता सर्व ।"

(वही, कलाद्वार (विज्ञान), पृ० ३७६)

एशिया और अफ्रीका के अनेक भू खण्ड सघर्ष करते हुए पश्चिमी उपनिवेशवाद के जुए को उतार कर स्वतन्त्र हो रहे हैं । ससार भर मे शक्ति सघर्ष छिड़ा हुआ है । कवि की धारणा है कि विज्ञान की उपलब्धियो से जड तत्त्व मे प्रसुप्त चैतन्य की खोज की जा सकती है । आवश्यकता इस बात की है कि भौतिक विज्ञान भूमा का वरदान बनें । अन्यथा भौतिकता का आधिक्य विपदा

ह्रास-तम का-भारत मे रूप, पलायन, पाप-पुण्य की भीति,
पारलौकिकता, कर्म विरक्ति, अध विश्वास, रूढ़ि जड रीति !
सभ्य पश्चिम मे स्थापित स्वार्थ, अनास्था, रण भय, कटु सदेह,
शक्ति का मोह, राष्ट्र का दर्प, बहिर्मुख भौतिक आढ्य सदेह !"

(वही, कलाद्वार (विज्ञान), पृ० ४०८)

कला-दर्शन से अधिक जहाँ सशस्त्र रण यानो को महत्व दिया जाता है, उस पश्चिमी-सभ्यता से ध्वस के अतिरिक्त क्या अपेक्षा की जा सकती है ? पूर्वी-जगत ने दुख से निवृत्ति का उपाय त्याग (वैराग्य) बताया है। उभय पथ एकागी हैं। मानवता समन्वय का आदर्श अपनाकर ही विकासोन्मुख हो सकती है। इसके लिए आवश्यक है कि महत्ता के साथ सौजन्य, शक्तिमत्ता के साथ कारुण्य, वैभव के साथ आर्थिक न्याय, बुद्धि के साथ श्रद्धा-भाव और बहिर्जगत के साथ अन्तश्चैतन्य हो। नव मानवता विकास के लिए देश की सकुचित सीमाओ और परिभाषाओ को भी बदलना पडेगा। कवि के शब्दो मे—

"मात्र मानवता रे अब देश,
और सब देश प्रगति पथ रोध,
निखिल सस्कृतियो का नवनीत
शुभ्र नव मनुष्यत्व का बोध !
सभ्यता को करना सघर्ष,
मिटें राष्ट्रो की रेखा स्थूल,
मर्थे जन गत इतिहास समुद्र
दिखें नव मानवता के कूल !"

(वही, विज्ञान, पृ० ४०६)

तभी कवि से पश्चिमी जगत ने प्रश्न किया कि भारत पर यदि आक्रमण हो, तो क्या वह अहिंसा से ही प्रतिरोध करेगा ? कवि का उत्तर था—भारत, अपनी अन्त शक्ति से ही लडेगा। यह वीर भोग्या वसुन्धरा है, किन्तु वीरता के अनेक रूप हैं। सत्य के हेतु जो युग-युद्ध लडा जायगा, वह विश्व मगल-कारी होगा और मानवता के विकास का मार्ग प्रशस्त करेगा। अध भय से जर्जरित विश्व को एक स्थितप्रज्ञ देश चाहिए जो सत्य के लिए ही जिये-मरे और अनास्था का तमस् दूर कर चिद् ज्योति से जन-मन को आलोकित करे। लोक अन्तर्मन का निर्माण करने वाली ईश्वरत्व की शक्ति अर्जित करने

के लिए यदि युद्ध और बलिदान भी हो तो कवि उसका समर्थक है। कवि के अनुसार—

"युद्ध यदि युग-भू पर अनिवार्य
मनुजता हित दे निज बलिदान
अन्ध भू तम का मुख कर दीप्त
करे भारत जन भू कल्याण !
× × ×
युद्ध यदि दुर्निवार युग सत्य,
रक्त वह धोए धरा कलंक
खिले नव जीवन शोभा पद्म
जन्म दे नव युग को भू पंक !"

(वही, विज्ञान, पृ० ४१३)

विश्व जीवन का परिचय प्राप्त कर कवि दक्षिण सागर के तट पर महर्षि अरविन्द के दर्शनार्थ पहुँचा। निभृत आश्रम मे आत्म प्रशात योगरत श्री अरविन्द दिव्य मानस के स्वर्ण प्रतीक प्रतीत हो रहे थे। कवि को वहाँ शुभ्र चैतन्य सूर्य का आलोक दृष्टिगत हुआ। महर्षि के दर्शन से कवि के उर में दिव्य दैवी-चेतना का निपात हुआ। उस दिव्य चेतनालोक की अलौकिकता का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

"निखिल बोधो का अक्षय बोध, बिना जिसके जग मृत विनाश,
स्पर्श मणि, जड जिससे चैतन्य, ज्योति तम से पर, स्वय प्रकाश !
× × ×
गुह्य निश्चेतन से नभ व्याप्त, दिव्य अतिचेतन तक सोपान,
योग्य सक्रिय था, दिखा निगूढ, विश्व का अन्तर्दीप्त विधान !
कोटि सूर्यों सा हो जाज्वल्य ऊर्ध्व चिद् विद्युल्लोक विशाल,
रहा आश्चर्य चकित, हतवाक् ज्योति तन्मय कवि उर कुछ काल !
दिखा कवि को विशुद्ध चित् तत्व, सच्चिदानद, अनिर्वचनीय
आदि जो [अत, रूप का रूप, शुभ्र सौवर्ण, परम कमनीय !
प्रीति, आनन्द, शाति, नीरध्र, ज्योति-रस, श्री शोभा कर पान
जगा कवि उर मे नव उन्मेष, हुए विस्मय रोमाचित प्राण !"

(वही, विज्ञान, पृ० ४१७)

इस ऊर्ध्व चेतन शक्ति पात से कवि के प्राण कृतार्थ हो गए। माधो गुरु के व्रण का चिह्न भी मिट गया। अरविंद आश्रम की रुपहली शाति और निस्तरग गम्भीर वातावरण का कवि के मनस् जगत पर शुभ प्रभाव हुआ। वशी इस चिन्तन मे निमग्न हो गया कि धरा पर भगवत्-ज्योति किस प्रकार साकार हो ? ऊर्ध्व जीवन क्या है ? समदिक पथ का अवरोध कहाँ हैं ? आदि प्रश्न उसके समक्ष उपस्थित हो गए। इस चिन्तन क्रम मे कवि इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मनुज के सत् पर सन्देह करना, जगत् को मिथ्या कहना, और जीव को अशुभ स्वभाव मानना भेद-मति का परिणाम है। जप, तप, सयम, ज्ञान, विराग मोक्ष या इष्ट सिद्धि के द्वार नही हैं। मदिरो मे प्रस्तर प्रतिमा मे ईश्वर को स्थापित कर निष्क्रिय बना दिया गया है। आध्यात्मिक आस्था के नाम पर साम्प्रदायिक वैमनस्य पनपा है और नैतिक मूल्य डूबे हैं। इस विडम्बना और विशृखलन को दूर करने का उपाय बहिरन्तर जीवन-शक्ति का सामजस्य और ऊर्ध्वोन्मुख चेतना-विकास है।

'द्वितीय खण्ड' (अन्तश्चैतन्य) का द्वितीय उपखण्ड—*'ज्योतिद्वार'* है। *'ज्योतिद्वार'* उपखण्ड के प्रथम प्रखण्ड का शीर्षक—*'अतर्विकास'* है। विदेश भ्रमण से लौटकर वशी ने कला-शिविर को समुचित रूप मे विकसित पाया। केन्द्र वासियो की साधना के फलस्वरूप वहाँ के जीवन मे नवचेतना विकास और सास्कृतिक क्रान्ति के लक्षण स्पष्टत परिलक्षित हुए—

"गूढ सास्कृतिक क्रान्ति हृदय भीतर
चलती, कला शिविर-भू रस-मथित,
× × ×
मुक्त युवक युवती जन निज मन मे
गाढ एकता का करते अनुभव,
देह भाव की रज को अतिक्रम कर
कृच्छ्र जन्म लेता समग्र मानव !
× × ×
विस्मित लगती भू, प्रहसित अबर,
रस क्षितिजो मे उडना प्रेरित मन,
अह बोध से निखर खर्व स्त्री नर
मुक्त भोगते आत्मा का यौवन !"

(वही, ज्योतिद्वार, अतर्विकास, पृ० ४३१)

वशी के लौटने पर कुसुमित वदनवार से पथ रचकर, शिविर प्रागण मे मगल घट सजोकर, शख-ध्वनि और स्वागत-गायन से केन्द्र वासियो ने उसका अभिनन्दन किया। छात्रो द्वारा अर्पित पुष्पहार वशी ने हरी को पहना दिया। और स्नेह उच्छ्वसित हर्ष विह्वल हृदय से लगा लिया। हरी की प्रेरणा और अनुशासन से केन्द्र के युवको मे नव चेतना उद्भूत हुई थी। वशी के मनस-शिखर पर श्रद्धा-आस्था का जो प्रकाशघन उमडा था, वह शत-शत रस धाराओ मे निर्झरित हो कला पीठ को सचेतन करने लगा। कवि ने बताया कि ध्यान, धारणा और प्रणति-भावना मे ही सृष्टा के पूजन की इति नही, न ही प्रभु प्रतिमा, देवालय या तीर्थस्थल तक ही परिसीमित हैं। पूजा-विधि का निरूपण करते हुए कवि ने कहा—

"रचना मगल श्रम से ही जन के सम्नव जीवन ईश्वर का अर्चन,
जन मन की उन्नत आकाक्षा ही, प्रभु पद पूजन की पवित्र साधन !
निश्छल उर नैवेद्य अनघ निश्चय, सरल दृष्टि ही अपलक नीराजन,
अस्थि मास की स्वस्थ देह मदिर, जन जीवन गरिमा ईश्वर दर्शन !"

(वही, ज्योतिद्वार, अन्तर्विकास, पृ० ४३४)

कला-केन्द्र द्वारा प्रशिक्षित युवक-युवतियाँ दैन्य और निराशा का दारुण-तम दूर करने तथा लोकजीवन को सामूहिक श्रम की महत्ता से अवगत कराने के लिए ग्रामो मे जाते थे। पन्त जी के शब्दो मे—

"नव संस्कृति सदेशवाह बनकर
युवक युवति जन गाँवो मे जाते,
नव युग का अभियान कुटीरो मे
कर्म वचन, तन मन से पहुँचाते !
मानवता के दूत जनो मे घुल
भू मन की रचना करते नूतन,
× × ×
लोक प्रेरणा की किरणें बरसा
प्रोत्साहित करते सामूहिक श्रम !
स्फटिक स्वच्छ श्रीसुन्दर हो भूतल
जीवन मूल्यो पर देते वे बल,
श्रम की गति लय मे निर्मित हो मन,
जीवन रचना श्रम ही मे मगल !"

(वही, अन्तर्विराम, पृ० ४३७)

इस प्रेरणा के फलस्वरूप रुद्ध जन-मन और ग्रामधरा का रूपान्तर हो रहा था। जन्म-कर्म-फल के कदर्म से निष्क्रिय और रूढ़ि-रीतियो से जर्जरित जन-मन विगत युगो के जातिवाद, कटुता, स्वार्थवृत्ति, वंश-कुल-दम्भ, राग-द्वेष, स्पर्धा, परनिन्दा, कामुकता आदि असत्य अभिशापो से ग्रस्त था। ग्रामवासियो का जीवन मानो खेत-खलिहान, हल-बैल, खेत-मेड और घर-पुर तक ही परिसीमित था। शिविर के कर्मठ कार्यकर्त्ताओ की प्रेरणा से नव चेतना जागृत हुई, वे व्यापक दृष्टि अपना कर नवीन भावबोध से आदोलित हुए। किन्तु दूसरी ओर कुछ दुर्मति ग्रामीणो का एक ऐसा भी दल था जिसके मन मे ईर्ष्या द्वेष का गुप्त विरोधानल धधक रहा था और हीन भावना से पीडित होकर वे लोग कला शिविर का विरोध कर रहे थे। घृणाद्वेष के विष से दूषित उनके मन *सास्कृतिक अभ्युत्थान और ऊर्ध्व चेतना-विकास के उदात्त आशयो को समझने* मे असमर्थ थे। माधो गुरु के ये अनुचर कवि वशी के प्रति अनुक्षण विष वमन कर रहे थे—

"समझ न पाते कला पीठ आशय, लघु साधारणता मे खोए जन,
जनरव फैला माधो के अनुचर, आग उगलते कवि के प्रति अनुक्षण।
अहम्मन्य पागलपन के पूजक, विश्वह्रास विघटन का था युग रण।"

(वही, अन्तर्विकास, पृ० ४३६)

इस विरोध के होते हुए कला-शिविर के प्रतिनिधि प्रशात भाव से नव्य सस्कृति का प्रेम-श्रद्धाजनित सदेश जन-जन तक पहुँचा रहे थे। वे नगरो की भाँति ग्राम धरा के विकास के पक्ष धर थे। ग्रामवासियो को सकीर्णसाम्प्रदायिकता और भेद-भाव-मूलक धार्मिक आवरण से मुक्त कर सूक्ष्म चेतना के अनेकानेक पक्षो का उद्घाटन करते हुए रचना-उन्मेषो के पावक से प्रदीप्त पथ पर अग्रसर कर रहे थे। उनके प्रयत्नो का परिणाम यह हुआ कि—

"रूढ़ि ग्रस्त, भय कल्मष गढ़ गत मन
स्वस्थ घात पा रस चिति का भीतर
सुलग उठा नव शोभा लपटो मे,
ऊर्ध्व अभीप्सा के मम धो छू कर!
× × ×
अन्तःपुर मे पैठ क्रान्ति चुपके,
बरसाती ज्योति चिनगी प्रतिपग!"

(वही, अतर्विकास, पृ० ४४२)

युग कवि यशो का मन अन्तर्द्रष्टा था। वह भावी-जीवन के वस्तु सत्य का स्वप्न देख रहा था।, कवि दृष्टि मे भारतीय जन-जीवन ही नहीं अपितु विश्व जीवन सक्रमण काल से जूझ रहा है। कवि के शब्दो मे—

"भू पर था सक्रान्ति काल भीषण
बँटते जाते देशो के जन, मन,
अकुलाते नर-बदी अणु दानव
भरता मन ही मन विनाश गर्जन!
रिक्त मतो, जड जीवन मूल्यो मे
पथरा से थे गए नागरिक जन,
राजनयिक आर्थिक पद्धतियो के
पाटो मे पिसता हत जन जीवन।"

(वही, अतर्विकास, पृ० ४४५)

ऐसे सक्रमणशील जन-जीवन को अन्तर्भास्या से आलोकित करके ही सकट मुक्त किया जा सकता है। अरिआक्रमण की आशका भी जन मन मे व्याप्त थी। इस स्थिति मे भी कवि उत्सवो और पर्वों पर नव रस मूल्यो के वितरण द्वारा जन जीवन मे शोभा-विकास के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता था। बासंती सौन्दर्य पर्व आया। लोक नृत्य-गीतो का सोल्लास सयोजन किया गया। कला-केन्द्र मे सभी प्रदेशो के लोग आते थे, अत परम मागलिक वसत पर्व पर युवक युवतियाँ अपनी प्रातीय वेशभूषा मे रागरजित होकर मधु-वैभव लुटा रहे थे। पजाबी युवती मखमली साटन-ज्वाला मे लिपटी थी तो आभिजात्य की गरिमा से मडित रूप गर्विता राजस्थानी वधू लहगे चूनर मे शोभायमान थी। इसी प्रकार भाव-यौवना वग युवतियाँ, कला रगिनी सौम्य सुसस्कृत गुजराती बालाएँ, दीप शिखा सी तेजस्वी तन्मिमा-दीप्तानन महाराष्ट्र कन्याएँ, मृदु गिरि मुकुलो की कोमलता और हिम शृगो की भी अनिन्द्य गरिमा से परिपूर्ण काश्मीरी ललनाएँ, नृत्य भगि निपुणा मसृण रेशमी शोभा मे विभूषित दक्षिण वामाएँ तथा शोभा गुठित शशिबाला सी यवन नारियाँ स्वकीय वेश-भूषा मे उत्सव की शोभा वृद्धि कर रही थी। इन युवतियो के तन-मन उन्नत उरोज, भृकुटिविलास, मधु स्मिति, चचलनयन, सुन्दर रूप और नव छवि से कुसुमित थे। इसी प्रकार केन्द्र के युवक बल पौरुष के प्रतिनिधि थे। इनके सम्बन्ध मे कवि की धारणा है कि—

"विविध विदेशो की किशोर तरुणी
कला शिविर सस्कृति मे थीं दीक्षित,
मुग्ध भाव सौन्दर्य, परिष्कृत छवि,—
जीवन मधु-रस वैभव में लालित।"

(वही, अर्तविकास, पृ० ४५१)

कला-शिविर के युवक-युवतियाँ रस-स्पदित और भाव प्रहर्ष से उल्लसित मुक्त विचरण करते थे। उनकी राग-चेतना नवश्री वैभव से सदीप्त और ऊर्ध्वोन्मुखी थी। अत उनका पारस्परिक प्रणय-भाव मोह, शका और कुठा से विरहित था। यौन कर्म उनकी दृष्टि मे—

"यौन कर्म हो रस पवित्र सस्कृत,
देह-प्रणय स्वप्नो की मुग्धशयन।"

इसी प्रखण्ड मे कवि ने एक नाट्य रूपक के अभिनय द्वारा स्त्री-पुरुष के प्रणय सम्बन्धो का निरूपण किया है। शकर और प्रीति के माध्यम से महाकाव्यकार ने प्रेम के शाश्वत स्वरूप, रागात्मक सम्बन्धो, आलिगन-संभोग आदि कायिक चेष्टाओ का विश्लेषण किया है। 'सभोग प्रक्रिया' के भौतिक परिदृश्य को कवि ने एक सशक्त बिम्ब द्वारा इस प्रकार अकित किया है—

"स्फीत ज्वार मे गिर ज्यो फूल युगल
ऊब डूब करते गति जब ताडित,
प्राणसिन्धु मे तृणवत् दो देहें,
तिरती तन्मय, मुग्ध आत्म विस्मृत।
वज्र स्तभ सी थी बलिष्ठ जाघें
तिग्म काम ज्वाला से परिवेष्ठित,
उमड अचेतन से प्रमत्त लहरें,
दृप्त भुजगो सी लगती नर्तित!
तडितपात होता रस का दुर्धर,
अग्निशूल सा धँसता उर भीतर,
शत सहस्र अहि देशो से विह्वल
प्राण खोजते मरकत सर!"

(वही, अर्तविकास, पृ० ४७८)

कवि के अनुसार ऊर्ध्व चेतना ने युवक-युवतियों की प्राण-रुचि को

विकसित कर दिया था। वे देह-मिलन के सुख का अतिक्रम कर भाव-मिलन के रस-प्रहर्ष मे तन्मय थे। यही नवजीवन का अरुणोदय था।

माधो गुरु के समर्थक अब भी कला-केन्द्र के विरुद्ध कुचक्र करते रहते थे। शंकर अस्वस्थ माधो को देखकर लौट रहा था कि उसे झाडी मे पडा हुआ नवजात शिशु मिला, जिसे लाकर उसने वशी को सौंप दिया। हरि ने इसका विरोध भी किया कि केन्द्र कोई अनाथालय नही है जो अज्ञात शिशुओ का भरण-पोषण करो। किन्तु प्रत्युत्तर मे वशी ने कहा—

"निखिल विश्व ही आज अनाथालय,
सुलभ मनुज को जहाँ न सुख साधन,—
अकथनीय जन भू विकास की स्थिति
मानव भक्षी अभी मनुज का मन!
कला पीठ क्या!-कहा दीप्त कवि ने
नूतन प्राक्तन का युग सघर्षण,
नव्य चेतना मे कर आरोहण
जन मन को करना भू पर विचरण!"

(वही, अन्तर्विकास, पृ० ४८८)

अन्ततः वशी ने बालक को केन्द्र मे रख लिया। उस का नाम अतुल रखा गया तथा श्रद्धा नवजात शिशु का लालन-पालन करने लगी। इस प्रकार वशी ने शिशु के पालन का दायित्व स्वीकार कर उदात्त भाव-बोध का परिचय दिया।

कवि वशी का कृत्य यद्यपि श्लाघनीय था किन्तु उसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। कला-केन्द्र मे ही उसका विरोध प्रारम्भ हो गया। हरि और सिरी के अन्तर मे भी असतोष उत्पन्न हुआ। कवि वशी की मान्यताओ के अनुरूप केन्द्र के जीवन-विकास को न पाकर हरि ने एक दिन कला-शिविर के संचालन मे अपनी असमर्थता वंशी के समक्ष प्रकट की; और कहा कि मुझे आज्ञा दो मैं घर जाकर हँसिया-हल लेकर गाँव मे खेती करूँ तथा सिरी के लिए योग्य वर खोजूँ। अश्रुपूरित नेत्रो से कवि ने कहा-हरि तुम कला पीठ के जनक हो! अभी केन्द्र ने अपने उद्देश्यो को प्राप्त नही किया है। हरि ने स्पष्ट शब्दो मे कहा—

"प्रकृति जात शिशु को आश्रय देकर
तुम विरुद्ध कर चुके क्रुद्ध जनमत,
अब सुन्दर-आस्था के कुल-कृमि से
स्वर्ग कल्पना नरक कुड परिणत !

× × ×

वमन करेगी धरा कोख कल्मष,
कुल कलक उपजेंगे नित सकर,
वर्ग चयन-गत कुल सस्कारो का
भू जीवन होगा जघन्य खडहर !"

(वही, ज्योतिद्वार, अन्तर्विरोध, पृ० ५०४)

कवि ने अपने ढग से सामाजिक जीवन की युग-सम्मत धारणा, प्रजनन-कर्म, विवाह बन्धन और नैतिकता पर प्रकाश डालकर हरि को आश्वस्त किया। कवि के प्रति श्रद्धावनत होकर शिविर मे कर्मरत रहना स्वीकार किया। किन्तु जार-पुत्र मे प्रीति के कारण केन्द्र और कवि का विरोध मध्य-युगीन सामाजिक-आदर्शो मे आसक्त जनो द्वारा चलता रहा। इस परि-स्थिति का लाभ उठाकर माधो के अनुयायी जनमत को उकसाते रहे। अन्तत जनमत को पूर्णत विरुद्ध करके माधो गुरु के नेतृत्व मे उनके दल के शिष्य और अन्य लोग कला-केन्द्र पर आ धमके। निरकुश युवको ने केन्द्र मे घँसकर मार पीट शुरू कर दी। वे कवि वशी पर टूट पडे। बलिष्ठ हरि ने कवि को बाहो मे भर कर अपनी आड कर दी। तभी किसी ने छुरी के अधम घात से हरि पर घातक प्रहार कर उसका प्राणात कर दिया और भीड भाग गई। हरि के निधन पर उसकी बहिन श्री ने करुण विलाप किया। वशी ने भी पश्चाताप और वेदना मिश्रित वाणी से हरि के बलिदान का पुण्य स्मरण करते हुए उसकी चरित्रगत विशेषताओ का निरूपण किया। हरि के वध से केन्द्रवासी भी उग्र होकर प्रतिक्रियात्मक आचरण के लिए सन्नद्ध हुए किन्तु कवि ने उन्हें उच्चकोटि के प्रबोधन द्वारा शात कर दिया। कवि पुन भू-मगल के महत् अनुष्ठान मे निरत हो गया—

"करुणाऽमृत से धो कवि विष शर व्रण
भू मगल प्रति हुआ पुन अर्पित,
लगा खोजने ज्योति शब्द नूतन
अध धरा मन हो जिससे सस्कृत !"

(वही, अन्तर्विरोध, पृ० ५२६)

हरि के वध की घटना से माधो गुरु का अन्तर भी ग्लानि कवलित हो गया। यह ऐसा असाध्य-व्रण उनके उर मे उपजा कि क्षीण और विघटित होते होते वे दिवगत हो गए। गुरु के देह निधन से भी वशी के कुसुम-मर्म को गोपन आघात पहुँचा। सुन्दरपुर के चौराहे पर वशी ने माधो गुरु की पूर्णाकृति प्रतिमा स्थापित की और सश्रद्ध नमन् करते हुए कहा—

"गुरु को हम करते शत नम्र नमन,
युग मन की सपद्, श्रद्धा पूजन
गुरु चरणो पर करते नत अर्पण !
× × ×
ज्योति स्तभ वह विगत अस्मिता के
करते रहे दिशा पथ निर्देशित,
× × ×
नूतन प्राक्तन के सघर्पण मे
रहे सदा माधो जन नायक,—"

(वही, अन्तर्विरोध, पृ० ५३४)

कवि वशी की श्रद्धाजलि से स्पष्ट है कि जन मन मे यह मृषा धारणा थी कि कवि का गुरु से गोपन वैमनस्य था। कवि के इस सदाचरण से यह भी प्रमाणित हो जाता है कि 'लोकायतन' के कतिपय समीक्षकों की यह धारणा भी खण्डित हो जाती है कि 'माधो गुरु' निराला के प्रतिबिम्ब हैं और काव्य में उनके प्रति विगर्हणा प्रगट की गई है। पन्तजी ने तो वशी (कवि) के मुख से माधो गुरु के चरित्र की प्रशस्ति भी कराई है, जो अविकल रूप से नीचे उद्धृत है—

"गुरु उदार थे, पर उपकार निरत, दान त्याग तप की प्रतिमा जीवित,
तेजस्वी, द्रष्टा, शिल्पी, सर्जक, दर्प दीप्त प्रतिमा के रवि निश्चित !
दुर्बल के बल, दुखियो के रक्षक, स्वाभिमान के उन्नत सूर्य शिखर,
जन सघर्पण के अजेय नायक, युग पथ निर्माता, प्रबुद्ध, तत्पर !
सह सकते अन्याय न पर शोषण, घृणा, क्रोध, अपमान, दभ, लाछन,
बुद्धि जीवियो के निर्भय प्रतिनिधि, कविता कानन के गजेन्द्र गर्जन !
हास्य व्यग्य प्रिय, मुक्त प्रकृति दुर्जय, क्रात दृष्टि थे माधो युग नायक,
मन्त्र तन्त्र विधि दीक्षित, साधक वर, वे स्वतन्त्र चेता रुचि निर्मायक !
× × × ×

सामाजिक दुष्कृतियो से आहत, अत्याचारो से कर निर्मम रण,
आत्म विजय का केतन फहराते, किया उन्होने निज जीवन अर्पण।"
(लोकायतन, ज्योतिद्वार-अन्तर्विरोध, पृ० ५११-५१२)

'ज्योतिद्वार' उपखण्ड के तृतीय प्रखण्ड 'उत्क्रान्ति' मे कवि ने अन्तश्चेतना के ऊर्ध्वोन्मुखी विकास का सशक्त निरूपण किया है। अन्तश्चेतन-क्रान्ति की प्रतिक्रिया का उल्लेख करते हुए कवि ने लिखा है—

"बरस रही युग स्वप्नो की शोभा
अन्तर्वैभव से कर उर विस्मित,
नव प्रकाश के रस सित स्पर्शों से
भाव मुग्ध प्राणो को कर पुलकित!
× × ×
क्रान्ति क्रान्तियो को करती अतिक्रम
बहिरन्तर का होता रूपान्तर,
आत्मा के रस पावक मे तप कर
निखर, पूर्णतम ढलता स्वर्णिम नर!"

(वही, उत्क्रांति, पृ० ५३६-५३७)

कवि ने कल्पना-दृष्टि से अनागत जीवन के अन्तश्चैतन्य-विकास का दिग्दर्शन किया। उसे अनुभूति हुई कि मनुष्य के साथ पशु-पक्षी और वनस्पतियाँ भी नव चेतन सुषमा से अभिमण्डित हैं। वंशी का अन्तर्जगत ज्यो-ज्यो जग जीवन को आत्मसात करता हुआ ऊर्ध्वोन्मुखी समदिक् सचेतन होता था, उसमे नव चेतना अवतरित होती थी—

"ज्यो ज्यो ऊपर उठता कवि अन्तर
आत्मसात् करता वह जग जीवन,
समदिक् बनता ऊर्ध्व समदिक्,
मौन अवतरण करता नव चेतन!"

(वही, उत्क्रान्ति, पृ० ५३८)

वंशी ने अनुभूत किया कि भू-जीवन की पूर्णता को सोचकर प्रबुद्ध नूतन-भाव दिव्य-चेतना के रूप मे जन्म ले रहा है। ज्ञान चक्षुओं से आत्मा का इन्द्रिय कुसुमित वैभव दिखा। आत्मा की सित शरद नीलिमा मे अकलुष चेतन-सुषमा का उगना शशि और सित प्रकाश का निर्झर बरसाता मानिस

रवि दृष्टिगत हुआ जो जन-भू की श्री, शोभा, आनन्द और प्रीति से स्नात किए है। सप्त वर्ण ज्वालाओ मे लिपटी चेतनाएँ भू पर उतर रही हैं। लोक ऐक्य की लौह पीठिका पर भावी भू मानव अवतरित है। कवि ने उर्वशी, मेनका, रमा आदि अप्सराओ को भी दिवाभिसार करते हुए देखा। कवि ने इन शोभा छायाओ को जन-भू के विकास हेतु रचना-श्रम करने को कहा। कवि के चेतना-पट पर अप्सराओ का आगमन प्राणो की आकाक्षा का छल था।

वशी के सन्देश को केन्द्र के युवक-युवतियाँ सुन्दरपुर जनपद के क्षेत्रो मे फैला रहे थे। इसी बीच हरि की वहन सिरी का भी स्वर्गवास हो गया। शुभ्र त्याग की प्रतिमा सिरी के निधन के अवसर पर कवि ने प्राणवायु (श्वास) को अनिल तत्त्व मे तद्गत होते हुए देखा। इस प्रकार कवि ने मृत्यु के सुन्दर रूप को देखा। किन्तु वह अविचलित-भाव से युग विकास का आग्रह लेकर कर्त्तव्य पथ पर बढता रहा। सचेतन-साधना और अन्तदर्शन से कवि को जो दिव्य अनुभूतियाँ होती थी उन्हे वह गूढ प्रतीको, बिम्बो और चिह्नो के माध्यम से उद्घाटित करता था। कवि को यह अनुभव होने लगा था कि नव-युग कल्पातर दूर नही है—

"अन्तस्तल से निखर मेरु हिमवत्
प्राण सिन्धु जल से उठते ऊपर
भावी मानव सस्कृति शृगो—से,
मेरु सानु था चित स्वर्णिम सुन्दर!
× × ×
शिव सा शशि गगा अहि गण परिवृत
था अन्तश्चैतन्य भूति भास्वर,
अधः ऊर्ध्व स्तर भव जीवन सक्रिय,—
दूर न था अब नव युग कल्पांतर!"

(वही, उत्क्रान्ति, पृ० ५४८, ५४६)

कवि ने ध्यानावस्थित अवस्था मे अन्तर्दृग से देखा कि अज्ञान धूम छट कर चिति का स्वर्णाभ-शिखर ज्योति अकित हो गया है। ज्योति-ज्योति-सूत्रों से भू जीवन का छायाचल बुना जा रहा है। मानवता का भविष्य भी उसे प्रकाशपूर्ण दिखाई दिया—

"तेजोमय मण्डल वलयित रवि सा
मनुष्यत्व का भावी मुख दीपित—

मन भू जीवन गरिमा का दर्शन,
सूक्ष्म दृष्टि में कवि के हुआ उदित !"

(वही, उत्क्रान्ति, पृ० ५५१)

विश्व-भ्रमण के अवसर पर कवि वंशी ने कुछ बौद्धिकों को आमन्त्रित किया था। अनेक बौद्धिकों ने कलापीठ का आतिथ्य ग्रहण किया। समागत विद्वानों से कला केन्द्र के छात्र-छात्राओं ने भौतिक-आध्यात्मिक युग-विषयों राजनयिक-आर्थिक युग-संकट और एकांगी वैज्ञानिक उन्नति पर विचार विमर्श किया। वाद-विवाद का निष्कर्ष यह निकला कि—

"पश्चिम जग की दृष्टि न ऊर्ध्वगहन,
बहिर्जगत विश्लेषण में सीमित,—
वास्तवता से शून्य पूर्व की मति,
अन्तर्भुवनों के नभ में केन्द्रित।
×   ×   ×
निष्क्रिय, नियति निषेध [redacted]स्त भारत
शशक शृंगवत् आदर्शों मे रत,
शक्ति मत्त, स्वार्थांध, भोगवादी,
पश्चिम जड़ वास्तवता का अनुगत !"

(वही, उत्क्रान्ति, पृ० ५५५-५५६)

अस्तु, आवश्यकता इस बात की अनुभव की गई कि पूर्व और पश्चिम, बाह्य और आन्तरिक, आध्यात्मिकता और विज्ञान, स्वदेशी-भावना, अन्तर्राष्ट्रीयता तथा रूढ़ रीतियों और प्रगतिशील जीवन-मूल्यो मे सामंजस्य स्थापित किया जाय। केन्द्र मे जो विदेशी आये उन्होंने भी इसे नवीन विधि से संचालित किया। 'रोज' नाम की अनुपम सुन्दरी ने भी अपना जीवन भारतीय आध्यात्मिक निष्ठाओ के अनुरूप ढाल लिया। कवि युग-मन को निरन्तर भावयोग-साधना के लिए प्रबोधन कर रहा था। उसकी दृढ़ धारणा थी कि ऊर्ध्वमुखी अन्त.साधना जन-जीवन को सस्कारित कर आत्म-गौरव प्रदान कर सकती है—

"ऊर्ध्व निखारे अन्तर्मानस को शुचि संस्कार करे जन जीवन का !
×   ×   ×
जन मन का हो अन्तरैक्य सितवल, मनुष्यत्व सम्राट लोक प्रतिनिधि,
आत्मिक गौरव हो जीवन-प्रेरक, क्षमा शील नियमन हो सहृदय विधि।

जो भू मानव के अन्तर्जग मे करे ज्योति साम्राज्य शुभ्र स्थापित,
क्षण भगुर जीवन सघर्पण को शाश्वत के पट मे कर सयोजित ।"

(वही, उत्क्रान्ति, पृ० ५६७)

केन्द्र के जीवन मे यद्यपि ऊर्ध्व-चेतना का विकास हो रहा था किन्तु कवि देख रहा था कि भारतीय ग्रामीण जीवन स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् रूढि जर्जरित ही था । विगत युगो के अभिशाप वर्गवाद, रूढिवाद, जातिवाद, छुआ-छूत, अविद्या, अन्धविश्वास के रूप मे ग्रामीण जीवन को आक्रान्त किए हुए थे। नगरीय जीवन मे विज्ञान-शक्ति ध्वस उपकरण जुटाकर महाप्रलय का आवाहन कर रही थी । पूँजीवादी शक्ति उपनिवेशवाद के रूप मे जन शोषण कर रही थी । कवि की दृष्टि मे इस स्थिति का निदान राजनीतिक नही अपितु सर्वोदयी विचार धारा के प्रसार और अवसर की समानता मे निहित है—

"सामाजिक युग क्रान्ति अहिसा रत
नव सर्वोदय की हो निर्मायक ।
× × ×
अन्न वस्त्र गृह द्वार मिले जन को,
शिक्षा सस्कृति से दीपित हो मन,
सुन्दर हो भू, सुन्दरतर स्त्री नर,
मानव गरिमा वहन करें भू मन ।"

(वही, उत्क्रान्ति, पृ० ५७६)

किन्तु कवि की भावना के विपरीत सघर्ष की दावा सर्वत्र फैल रही थी । अणु-शक्ति के आविष्कार और विकास ने विश्व जीवन मे विनाश का आतंक फैला दिया था । विश्व की शक्तियाँ सघर्ष की भूमिका तैयार कर रही थीं । इस सघर्षपूर्ण युग-वेला का निरूपण पन्त जी ने इस प्रकार किया है—

'कल्पातर का था वह दिग्घोषक,
युग सध्या थी, महा ह्रास का तम,
पहन सभ्यता का मुख आदिम पशु
उपजाता मानव होने का भ्रम ।
जीवन मरण खडे थे अब सम्मुख
आलोडित भू का निगूढ अन्तर,
उमड रहा था प्रस्तर युग का तम
उबल रहा था निश्चेतन गह्वर ।"

(वही, उत्क्रान्ति, पृ० ५८३)

दानवीय प्रक्षेपणास्त्रो के सचालन हेतु अनेक अड्डे बनाये गये। सुन्दर जनपद की पार्श्व भूमि मे भी हवाई अड्डा बना। वशी ने अपनी आतरिक प्रेरणा और अन्तर्दृष्टि के द्वारा महानाश का पूर्वाभास पा लिया था—

"मनोदृष्टि से देखा युग कवि ने, गुह्य बोध से जीवन परिचालित,
वही शक्ति जो रचना मगलरत अणु विनाश के हित भी रण सज्जित।
× × ×
देखा कवि ने नरक दृश्य दारुण, विश्व ह्रास से अकरुण विघटन का।"
(वही, उत्क्राति, पृ० ५८८, ५८६)

अस्तु, कवि वशी अपनी प्रिय शिष्य विदेशी महिला मेरी को ऊर्ध्वोन्मुखी ज्ञान चेतना का महाभाव सौंप कर आत्म साधना के लिए अन्तर्धान हो गया—

"भावात्मा दे विनत आत्मजा को, स्वर्ग स्वप्न से भरा मुक्त अतर,
उसे छोड तद्गत स्थिति मे चुपके, हुआ कक्ष से कवि द्रुत बाहर।
और उसी क्षण छोड केन्द्र प्रागण, अतर्धान हुआ वह चिद्वन मे,
बढता रहा पथिक शाश्वत पथ का कार्य समापन कर भव जीवन मे।"
(वही, उत्क्रान्ति, पृ० ६०६)

पन्त जी के शब्दो मे कवि वंशी की स्रष्टा के प्रति रस कृतार्थ मन की चरम परिणति थी। उसने प्रेम सत्ता मे तन्मय होकर सत् चित् आनन्द-लोक का अतिक्रमण कर उस बोध को प्राप्त कर लिया था, जिसे दिव्य प्रेम कहते हैं, यही दिव्य प्रेम विश्व प्रेम का उद्गम है। इस प्रकार अमृत-यौवन विश्व-चेतना का कला पीठ एक स्वर्ग दर्पण के समान था, जिसे वशी ने अपनी जीवन साधना द्वारा निर्मित किया। किन्तु अणु बम विस्फोट से वह केन्द्र ध्वस्त हो गया—

"यान भ्रष्ट अणु बम से सुन्दरपुर
ध्वस्त हो गया भर विदीर्ण गर्जन।
ज्ञात नही फिर कला केन्द्र का क्या
अत हुआ, सक्रान्ति काल दुर्वह,
ज्योति द्वार मानव उर मे शाश्वत
भगवत पीठ धरा पथ-चिद् विग्रह।"
(वही, उत्क्रान्ति, पृ० ६०९)

'उत्तर स्वप्न प्रीति' द्वितीय खण्ड (अन्तश्चैतन्य) का तृतीय और अतिम काव्य प्रखण्ड है। इस प्रखण्ड मे पन्तजी ने नवयुग चेतना के अवतरण और नए

मानव (अति मानव) के आविर्भाव का अरविन्द दर्शन की मूलभूत अवधारणो के परिप्रेक्ष्य मे किया है। वस्तुतः पन्तजी की काव्य-साधना के क्रम मे विचारणा के तीन स्तर स्पष्टतः परिलक्षित होते हैं, जिन्हे मैंने निम्नांकित प्रकार से अपने एक लेख मे वर्गीकृत किया था—

१. सौन्दर्यमूलक दृष्टिकोण से आदोलित छायावादी (प्रकृतिवादी) काव्य चेतना।
२. मार्क्सवादी विचार दर्शन से प्रभावित प्रगतिवादी (मानवतावादी) काव्य चेतना।
३. महर्षि अरविन्द के ऊर्ध्वचेतन भाव बोध से अनुप्रेरित सांस्कृतिक (अन्तश्चेतनावादी) काव्य चेतना।[१६]

इस सम्बन्ध मे पन्त काव्य के सभी समीक्षक सामान्यतः एकमत हैं कि सन् १९४० के पश्चात से पंत जी की रचनाधर्मिता (Creative Urge) दार्शनिक अनुचिन्तन की तलव्यापी गहराइयो का स्पर्श करने लगी थी। आचार्य नद दुलारे वाजपेयी जी के शब्दो मे—"सन् ४० के पश्चात् पंतजी का व्यक्तित्व उत्कट वैचारिक संघर्षों के पश्चात् जिस भूमिका पर आकर स्थिति हुआ वह मूलतः दर्शन की भूमिका ही कही जायगी। काव्य और दर्शन के इस संघर्ष मे दर्शन की ही विजय हुई, यह सत्य स्वीकार करना ही होगा।"[१७] डॉ० विश्म्भरनाथ उपाध्याय के अनुसार भी—"सन् १९४० के बाद से आज तक पन्तजी ने जो कुछ लिखा है उसमे अरविन्द दर्शन को ही वाणी दी गई है।"[१८]

इस सम्बन्ध मे स्वयं पन्त जी का मत यह है कि—"मैंने अपना जीवन दर्शन युग की आवश्यकताओ एवं मानव विकास की सम्भावनाओ को सम्मुख रखकर अनेक महान् ग्रन्थो तथा महापुरुषों की प्रेरणा ग्रहण कर, उनके उपयोगी तत्त्वो को आत्मसात् कर, लोक कल्याण एवं भूमंगल की भावना के उद्देश्य से, अपने काव्य पट मे गुंफित करने का साहस किया है।"[१९] पन्त जी के

---

१६ 'पन्त की काव्य चेतना' शीर्षक लेख—समीक्षालोक, वर्ष ३ अंक १-२, अक्टूबर १९७१
१७ सुमित्रानन्द पंत : स्मृतिचित्र, पृ० ११७
१८ पन्त का नूतन काव्य और दर्शन, पृ० १२८-१२९
१९ चिदम्बरा, चरणचिह्न, पृ० २५

काव्य-दर्शन (जीवन-दर्शन) की निर्मिति मे विभिन्न युगीन विचारधाराओ और महान विचारको का योगदान होते हुए भी, महर्षि अरविन्द का अनुदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। कवि ने स्वय स्वीकार किया है कि—"मैं अपने युग, विशेषत देश की प्राय सभी महान् विभूतियो से किसी न किसी रूप मे प्रभावित हुआ हूँ। वीणा पल्लव काल मे मुझ पर कवीन्द्र रवीन्द्र तथा स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव रहा, युगात और बाद की रचनाओ मे महात्माजी के व्यक्तित्व तथा मार्क्स-दर्शन का किन्तु इन सबमे एक परिपूर्ण एव सतुलित अन्तर्दृष्टि का अभाव खटकता था, उसकी पूर्ति मुझे श्री अरविन्द के जीवन-दर्शन मे मिली, और इस अन्तर्दृष्टि को मैं इस विश्व सक्रान्ति काल के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा अमूल्य मानता हूँ। विश्व कल्याण के लिए श्री अरविन्द की देन को इतिहास की सबसे बडी देन मानता हूँ। उसके सामने इस युग के वैज्ञानिकों की अणु शक्ति की देन तुच्छ है।'[१०]

उपर्युक्त विवेचन के आलोक मे यदि हम 'लोकायतन' महाकाव्य के अन्तिम प्रकरण—'उत्तर स्वप्न प्रीति' की मूलभूत मान्यताओ को समझने का प्रयास करें तो अन्तत अरविन्द दर्शन की उपपत्तियो को अधिगृहीत करना ही होगा।

अणु-युद्ध के कारण ससार का एक बडा भाग नष्ट हो गया। अणु विस्फोट के कारण सुन्दरपुर जनपद का सास्कृतिक कला पीठ भी नष्ट हो गया। तब मेरी ने हिमगिरि की प्राकृतिक सुषमा से सम्पन्न शुभ्र प्रागण मे 'लोकायतन' नामक नवीन सास्कृतिक-आध्यात्मिक केन्द्र की स्थापना की। आणविक युद्ध की यन्त्रणाओ से सन्त्रस्त और विज्ञान की विभीषिकाओ से सतप्त स्त्री-पुरुष देश विदेश से इस केन्द्र मे अनन्त शाति और चिदानन्द की अकल्पनीय अनुभूति प्राप्ति हेतु आये। पन्तजी के शब्दो मे—

"उस दारुण क्षण से बच कुछ जन,
आये प्रशान्त हिम प्रान्तर मे
हिमगिरि अचल में मेरी ने,
जन लोक बसाया लोकोत्तर!
× × ×
मेरी कहलाती सयुक्ता,
लोकप्रिय अब उसका आश्रम,

१० उत्तरा—(सस्करण वि० २००६ का), प्रस्तावना, पृ० १६-२०

दे लोकायतन उसे संज्ञा
जन रचते नव जीवन उपक्रम।"

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६१४)

इसी काव्य-प्रखण्ड में कवि श्री पन्त ने हिमगिरि के विश्व-विश्रुत गौरव और महानता का भी निरूपण किया है। हिमाद्रि शुभ्र पखों वाला सौंदर्य-हंस, भूमा-स्वर्ग का दिग् भास्वर अथवा चैतन्य लोक का हिल्लोलित आनन्द सिन्धु सा प्रतीत होता है—

"सामने खड़ा था दिग् विराट भू स्वर्ग सेतु सा हिम पर्वत,
महिमान्वित करता अंबर को भू का गौरव मस्तक उन्नत!
देखा गिरि उसने प्रथम बार आनन्द सिन्धु सा हिल्लोलित,
जड़ जीवन मन की श्रेणि लाँघ, चैतन्य लोक हो सित शोभित।"

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६१७)

लोकायतन-केन्द्र का ही एक छात्र अतुल था। कवि वंशी के संदेश को उसने हृदयंगम कर लिया था। यह संदेश था—भू पर स्वर्ग उतारने का, चेतना-विकास तथा भव-संकट का अतिक्रम कर मानव को ऊर्ध्वोन्मुखी बनाने का। अतुल यह जान चुका था कि आध्यात्मिक सत्यों के बल पर धरा का रूपांतर नहीं हो सका, न ही तप, व्रत, योग साधना करने वाले ज्ञानी, मुक्त और वैरागी ईश्वर का यथार्थ दिग्दर्शन करा सके हैं; क्योंकि ये सभी मानव और ईश्वर, भौतिक जगत और अतीन्द्रिय चेतना लोक, भू और स्वर्ग, विज्ञान और अध्यात्म तथा जीवन यापन और ईश साधना में अभेद दृष्टि से नहीं देख सके हैं। जबकि कवि वंशी के चिन्तन का सार यह था कि—

"सित प्रीति काम से नहीं पृथक् मन भू जीवन का ही दर्पण,
संभव न सर्वगत मनोन्नयन रस शुद्ध न यदि जीवन प्रांगण!
सम्भव कवि का था यही लक्ष्य जीवन से विलग नहीं ईश्वर,
इन्द्रिय हो आत्मा का गवाक्ष हो धरा स्वर्ग ही प्रभु का घर!
× × ×
नव मूल्यों से रच मानव जग, गत मनोदृष्टि को कर विस्तृत,
ईश्वर को भू जीवन पट मे करना जन को चेतना ग्रथित!"

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६२२-६२३)

मूल प्रश्न है कि यह अन्तर्बाह्य सामञ्जस्य तथा धरा पर दिव्य चेतना का अवतरण संभव कैसे होगा? महर्षि अरविन्द का मत है कि नवयुग की जीवन

प्रक्रिया मे हम जिस ओर अज्ञात रूप से बढ रहे हैं उससे यह सुनिश्चित है कि हम बुद्धि के स्थान पर अन्तश्चेतना, उपयोगितावादी मानदण्डो के स्थान पर आत्म-विश्लेषण, प्रकृति ज्ञान के बाह्य नियमानुससरण के स्थान पर गुप्त ईश्वरेच्छा-अनुसरण प्रयोग करेंगे।"[११] महर्षि अरविन्द की इसी धारणा को 'उत्तर स्वप्न' मे पन्त जी ने प्रतिपादित किया है।

एक दिन अतुल निर्मय होकर हिमगिरि के उच्च शिखरो पर रोहण करने चुपके से निकल गया। जीवन के चित् शिखर की खोज मे वह उस ज्ञान प्रखरसित असि-पथ पर अविरत बढता गया। अतुल को उत्तुंग शृग पर स्वर्णिम उन्मेषो के प्रभात का दर्शन हुआ। उसने स्वय मे रस पूपण तेजोमय स्वरूप का आत्म साक्षात्कार किया। उन रजत नील नीहारो मे उसने जाना कि वह स्वय आत्मा का चिन्मय अस्थि धवल है। हिमाद्रि शृ ग पर लय होने से पूर्व उसने निखिल चराचर मे जीवन विकास और दैवी सत्ता का साक्षात्कार किया। आत्म-साक्षात्कार हिमाद्रि-रोहण से प्राप्त कर अतुल पुन जगत मे नहीं लौटा। यद्यपि उसके प्रिय सुहृदो ने व्यर्थ खोज भी की।"[११] अतुल का कथारूपक वस्तुत आत्मचेतना के आरोहण अर्थात् ऊर्ध्वोन्मुखी विकास का ही द्योतक है। 'लोकायतन' के रचयिता की यह बद्धमूल धारणा है कि यान्त्रिकता मानव चेतना को भौतिकता के पाश मे निरन्तर निबद्ध नही रख सकती। अन्तत वह ऊर्ध्वोन्मुखी होगा ही—

"समदिग् यान्त्रिकता मे बँधकर
बन सकता मनुज न चक्र दत,

---

[११] In this process the rationalistic ideal begins to subject itself to the ideal of intutional knowledge and a deeper self awareness, the utilitarian standrad gives way to the aspiration towards self consiousness and self realization, the rule of living according to the manifest laws of Physical Nature is replaced by the effort towards living according to the vield law, will & power, active in the life of the world and in the inner and outer life of humanity" —*The Human Cycle*, p 31.

[११] लोकायतन, उत्तर स्वप्न, पृ० ६३०

वह सृजनात्मा, यत्री,—उसको
चाहिए ऊर्ध्वमुख चिद् दिगत !"

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६३२)

अस्तु, युग प्रबुद्ध देशो के जन भी मन. साधना के लिए हिमाचल मे एकत्र होकर गिर- अधित्यका मे पर्ण कुटी बनाकर साधको के रूप मे रहने लगे। वे अन्तर्मुख सित-चिन्तन मे रत होकर अधिमन शिखरो पर आरोहण करते थे। चिन्मूल्यो के अनुशीलन हेतु उनका मन विज्ञान भूमा मे रहता, ऋद्धि-सिद्धि उन्हे सुलभ थी तथा आँख बद कर वे प्रभु दर्शन कर लेते थे। आश्रम-वासियो के सम्बन्ध मे कवि का यह कथन कितना सटीक है कि वे—

"जीवन विकास गति प्रति चेतन,
अध्यात्म तत्त्व के अभिलाषी।
अन्तर्मन के वैज्ञानिक थे,
कुछ क्रान्त दृष्टि आश्रमवासी !"

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६३४)

आश्रमवासी सृष्टि, जीव, आत्मा, ईश्वर, पाप-पुण्य, श्रद्धा-पथ, आस्था, भू-संयोजन के सम्बन्ध मे प्रश्नोत्तर करते थे। इसी प्रश्नोत्तर क्रम मे कवि ने स्पष्ट किया है कि जड-चेतन जगत की निर्माता इच्छा शक्ति ही है और इच्छा शक्ति 'चेतना' का ही रूपान्तरण है। यह विवेचन तत्वत अरविन्द दर्शन की विचारणा के ही अनुरूप है।[33] इस सदर्भ मे हिमाद्रि शृग पर अतुल का आत्म-बोध द्रष्टव्य है—

"आनन्द रूप मैं हूँ अपूर्ण, मैं स्वतः एक से बहु बन कर,
इद्रिय मासल भू जीवन मे रस मूर्त्त-सत्य शिव मे सुन्दर।
× × ×
आत्म स्थित भी जन भू ही का, मैं शिखर नहीं इसमे सशय,
था मात्र शून्य दिक् काल न विधि, मैं तुम न, जगत न, जगत् आश्रय।
ले प्रेम वेणु छेडी मैंने रस तन्मय विश्व सृजन की लय,
मैं प्रकृति पुरुष बन, महत् बुद्धि, अब जड-चेतनमय जीवाशय !"

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६२८-६२९)

---

33 "The Energy that creates the world can be nothing else than a will and will is only consciousness applying itself to a work and a result." —*The Life Divine*, p. 22.

अरविन्द दर्शन की सबसे महत्वपूर्ण उपपत्ति अतिमानस (Super Mind) या अतिमानव (Super Man) है। जीवन विकास के तीन सोपान माने गये हैं—जड़ (Matter), जीवन (Life) और मनस् (Mind)—इस विकास की पूर्ण या चरम परिणति अतिमानस (Super Mind) तक होनी है—ऐसी अरविन्द की धारणा थी। महर्षि अरविन्द 'मानव' को सृष्टि विकास का अन्तिम सोपान नहीं मानते हैं। उनके मतानुसार—'मानव विकास का अन्तिम परिणाम आत्म विस्तार और आत्मोत्तर स्थिति के विचित्र प्रारूप में होगा। अति मानव की व्याप्ति केवल ईश्वर साक्षात्कार तक ही नहीं है, वरन् वह हमारी भौतिक मानवीय चर्या में भी ईश्वर का जीवन्त अभिव्यंजन करता है।'"[१४] 'लोकायतन' के रचनाकार ने अरविन्द दर्शन की इसी मान्यता को 'उत्तर स्वप्न' प्रखण्ड में रूपायित किया गया है। उदाहरणार्थ—

"धीरे धीरे पीढ़ि-पीढ़ि होता अमूर्त मानव विकसित,
जीवन विकास क्रम सहयोगी भू ईश्वर प्रतिनिधि बन अविजित।
× × ×
जग में ही सम्भव प्रभु दर्शन, भव ब्रह्म सत्य, यह निःसंशय,
ईश्वर प्रतिनिधि शाश्वत मानव रज रूप मर्त्य नर से अतिशय।"
(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६३५-६३६)

मैरी द्वारा हिमगिरि के अंचल में स्थापित लोकायतन नामक सांस्कृतिक केन्द्र के जन जीवन में कवि ने महत् चेतना शक्ति के अवतरण का अंकन किया है। इस केन्द्र के नव जीवन में स्वर्णिम संगीत तथा व्यक्ति प्रेम के स्थान पर समष्टि प्रीति भावना का विकास हुआ। अब मानव का मन अन्तर्दीपित था। राजनीति को पीछे छोड़कर संस्कृति-रथ युग पथ पर गतिशील था। अणु रण-ध्वंस ने युग मानव के मन को भौतिक जीवन के प्रति भ्रान्ति मुक्त कर दिया। वह आस्था, प्रीति और प्रतीति युक्त अन्तर्मूल्यों के प्रति आकर्षित हो गया। इस नव अन्तर्मन अरुणोदय का जन भू मानस ने अभिनन्दन किया। अब रण बन्दी जड़ विज्ञान भी मुक्त होकर रचनात्मक कार्यों में संलग्न हुआ। नव युग चेतना-प्रभाव का विवेचन कवि ने इन शब्दों में प्रस्तुत किया है—

"पा नयी दृष्टि नव युग मानव जीवन का करता मूल्यांकन,
देशों, राष्ट्रों, स्त्री पुरुषों के खुल गए भाव-गत वे बन्धन।

---

१४ डॉ० प्रतापसिंह चौहान, हिन्दी कविता और अरविन्द दर्शन, पृ० ५६

नव मूल्य शुभ्र चिति में परिणत, परिवेश विश्व का परिवर्तित,
जीवन पदार्थ रस-सित, पावन, भू आध्यात्मिक-मंगल हर्षित !
शुभ्र शान्ति लोक मन में स्थापित, अणु अस्त्र सिन्धु जल में मज्जित,
कटु पूर्वग्रहों से मुक्त धरा दिशि में सहस्रदल सी प्रहसित !

× × ×

अब भाव वस्तु जग सयोजित अन्तः प्रबुद्ध मानव अन्तर,
अन्तर्मुख आध्यात्मिक जीवन ले चुका जन्म नव जन-भू पर !"

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६४५-६४६)

इस अन्तर्मुखी आध्यात्मिक विकास ने जीवन में भौतिक और अभौतिक ऋद्धि-सिद्धि को नव भू मानव के कर गत कर दिया है। अन्त. श्री से कुसुमित सित राग भावना का मुक्त स्रोत प्राणों में आनन्द का सृजन करके उर को तन्मय-विस्मृत रखता है। नव मानव का अन्तर जगत भगवत् चरणों के प्रति रति रखकर उसी की अनन्त शक्ति का संचय करने में निरत है। अन्त-विचति के प्रति जाग्रत जन के लिए 'कर्मयोग' सबसे बड़ा दर्शन है। भगवत् शोभा और आनन्द ज्योति ने सत्, प्रीति और शान्ति का विकास जीवन में कर दिया है। अब यह धरा ही स्वर्ग बन गई है क्योंकि—

"अज्ञान तिमिर से मुक्त दृष्टि,
सुन्दर सुन्दरतर बन भू पर !
धर सत्य महत्तर सत्य चरण,
विकसित होता शिव बन शिवतर !"

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६४६)

इस नवीन भावोदय के कारण लोग दमित कामना ग्रंथियों से मुक्त होकर सहज, संयमित और शीलनमित थे। जाति, वर्ण, कुल का अतिक्रमण कर मानव-कुटुम्ब के सदस्य बनकर जीवन-यापन करते थे। अनेक सांस्कृतिक केन्द्रों की स्थापना हुई। इन सभी लोक केन्द्रों का एक ही ध्येय था-'मानव-विकास'। भौतिक जीवन आध्यात्मिक मूल्यों से नियन्त्रित हो गया। संयुक्त कर्म, भगवद् चिन्तन, मांगल्य विधायक सृजन और सामूहिक संरक्षण के प्रति नव आस्था जन्मी। भू प्रकृति और जन-प्रकृति में भी इस परिवर्तन क्रम की प्रतिक्रियाएँ स्पष्टतः दृष्टिगत हुईं। यथा—

"भू प्रकृति हो गई थी नीरुज,
परिवेश स्वच्छ, आहार शुद्ध,

उन्नत विचार, सौन्दर्य बोध,
अब कर्म न संस्कृति के विरुद्ध।
रस-सौम्य शरद-सौन्दर्य शुभ्र
आता वार्धक्य न असमय पर,
विज्ञान ज्ञान के परिणय से
चरितार्थ मनुज का बहिरंतर।"

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६५१)

नारी के प्रति भी जीवन-दृष्टि में नवीन भावोन्मेष हुआ—

"नारी अब मात्र न काम तल्प,
वह प्रीति सुधा, रस संजीवन,
जो हृदय शिराओं में बह सित
जीवन मन का करती पोषण।"

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६५५)

आत्म-स्पर्शों से ज्योतित अन्तश्चेतन मन की पूजा-पद्धति का भी स्वरूप भिन्न था। उदाहरणार्थ—

"अब भू मंगल ही जन्म भू प्रण,
जीवन रचना ही तप साधन,
अर्पित मन का श्रम पूर्ण योग,
भव शोभा मुख में प्रभु दर्शन।
सत् प्रेमार्पण ही पाणि ग्रहण,
मानव मुख ही शिशु मुख पावन,
संहत अंतर ही जन संपद,
भू आंगन सब का घर आंगन।"

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६५८)

स्वर्ग चेतना का प्रतिबिंबित मानव अब भू पर उन्मुक्त भाव से विचरण करता है। जगत अब ईश्वर से पृथक नहीं माना जाता। अब मानव का मन ऊर्ध्व सोपानों पर निर्भय रोहण करता है। उसका शोभा समन्वित जीवन पद पद पर विचरण करता है। इस युग मानव के विराट वैभव का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि—

"मन के ऊपर जगदात्मा का
प्रतिनिधि अब विकसित भू मानव,

वह सूर्य किरण मणि पात्रों से
पीता स्वर्णिम चित् रस आसव।
शशि अमृत पाणि वीणा उसकी,
सागर मरकत-विगलित अंतर,
गिरि उसके चिन्तन मौन शिखर,
नीलिमा दृष्टि नीरव, भास्वर।"

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६६२)

नव युग चेतना के *अनुरूप ही ज्ञान और भक्ति की अवधारणा* में परिवर्तन हुआ। नवीन धारणा के अनुसार—

"नव आध्यात्मिकता में न भक्ति
केवल अब जप तप व्रत पूजन,
वह ईश्वर तन्मय रह, भू पर
विकसित जन जीवन की साधना।
अब ज्ञान न निष्क्रिय आत्मबोध,
या शास्त्रों का अध्ययन, मनन,
वह जग में प्रभु, प्रभु में जग के
शाश्वत अखंड करता दर्शन।"

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६६३)

इसी काव्य प्रखण्ड में कवि ने संयुक्ता (मेरी) और हिमगिरि के एक महत्वपूर्ण परिसंवाद का संयोजन किया है। एक बार संयुक्ता ने विराट मौन नगपति का गरिमामंडित आनन देखा। वे राजोचित मनुज वेश में नवतृण आसन पर आसीन थे। विस्मय हत संयुक्ता ने कहा है देव ! मैं किस प्रकार आपका पूजन-अर्चन करूँ ? संयुक्ता को नगपति के मंत्री-पार्षदगण सिंह, ऋक्ष, गज, वृष, खग, पशु भी नरतन धारण किए हुए दिखाई दिए। उसने प्रतीक-परिधान धारण किए वृक्ष, लता, खग-मृग को देखा। संयुक्ता ने अनुभव किया कि सर, सरिता, सिन्धु, कानन, पर्वत, रवि, शशि, ग्रह, गगन, पवन, पावक आदि सभी नव मानवता के स्वागत हेतु आए हैं।[१५] संयुक्ता ने देखा कि वन्य पशु-पक्षियों और हिंस्र जीवों के साथ बेन्द्र के किशोर किशोरियाँ मुक्त विहार कर रहे हैं। उसे भूमा के बहुमुखी मूर्त रूप एकही चेतना के पावक कण

---

[१५] लोकायतन, उत्तर स्वप्न (प्रीति), पृ० ६६७-६६८

के प्रतिरूप प्रतीत हुए। विस्मय अवाक् सयुक्ता को देखकर नगपति ने सयत स्वर मे प्रबोधित किया। हिमगिरि की घन मद्र प्रतिध्वनियाँ शिखरो से उठकर अबर मे भर रही थी। हिमाद्रि ने कहा कि मेरे शिखरो का चिद् वैभव जन भू के चरणो पर समर्पित है। प्रिय सुते ! गुणात्मक परिवर्तन की इस वेला मे मेरी मगल-कामना यही है कि—

"यह प्रेम सृष्टि हो प्रेम धर्म,
जन मे प्रतीति समता स्थापित,
मन पाप पुण्य फल प्रति तटस्थ,
जन हो न नरक भय से तापित !
वह पूर्ण दया से भी अतिशय
सिन प्रीति परस्पर, हो अर्पित
हो लोक धर्म सुख निरत प्राण,
उर सृजन शांति रस मे मज्जित !"

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६७१)

हिमाद्रि ने आगे कहा कि मैं शिखरो का अधिपति तुम्हे क्या दीक्षा दूँ ? तुम ऋतु रस स्थित हो। तुम जीवन ईश्वर को पूजो, जीवन ईश्वर वह प्रेम है जो परम अनिर्वचनीय, घट घट वासी और अक्षय रस के समान है। ईश्वर प्रेम का ही पर्याय है। यही युग का जीवनदर्शन है। हिमगिरि ने कहा—

'मैं लाघ विश्व मानस समस्त,
प्राची पश्चिम को अतिक्रम कर
इतिहास, धर्म, सस्कृतियो के
शिखरो पर नवयुग के पग धर—
दे रहा तुम्हे जीवन दर्शन—
यह महत कल्प परिवर्तन क्षण—
निर्माण करो नूतन भविष्य,
भू जीवन हो भगवत दर्पण !

(वही, उत्तर स्वप्न पृ० ६७३)

यह कह कर हिमाद्रि सहसा अदृश्य हो गए। खग, पशु गिरि, वन प्रातर आदि का परिदृश्य भी ओझल हो गया। वस्तुत सयुक्ता को अन्त स्फूर्ति और प्रेरणा प्रदान करने वाला यह सचेतन कल्पना दृश्य था, जिसे सयुक्ता ने अनुभूति स्तर पर देखा। इसके पश्चात दिव्य दैवी चेतनालोक से सयुक्ता

अभिभूत हो गई। उसने मनस् जगत मे भूमा का ऐसा निरवधि प्रागण देखा जिसमे दिशा ज्ञान कालगति मे लय हो चुका था। जहाँ का सचराचर प्रीति-पाश मे बँधकर भू जीवन को शोभा सम्पन्न कर रहा था। सयुक्ता के मनस् जगत मे दैवी चेतना के अवतरण-परिदृश्य का बिम्बाकन कवि ने इस प्रकार किया है—

"नीहार सरोवर मे तिरता,
ज्यो शुक्र रजत जल मे बिम्बित
निर्वसन तैरती सयुक्ता
सित मान्स शोभा मे परिवृत !
× × ×
देखा, उसने मन के दृग से—
वह स्वप्न लोक का था आँगन,
विद्रुम आभा छाई नभ मे
माणिक प्रभ धरा पटल शोभन !
ऊषाएँ परिक्रमा करती,
स्मित अप्सरियाँ करती नर्तन,
उड अन्तरिक्ष मे देव दूत
सित पुष्प वृष्टि करते प्रतिक्षण !"

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६७५)

इसके पश्चात् सयुक्ता को साधनावस्था मे निरन्तर दिव्य अनुभूतियाँ होती रही। सयुक्ता की दैवी प्रेरणा से लोकायतन-केन्द्र के साधको का जीवन भी अभिभूत हुआ। अन्तत उसी ऊर्ध्वोन्मुखी चेतना का प्रसार निखिल विश्व-जीवन मे हो गया। लक्षणा के माध्यम से इस तथ्य का प्रतिपादन कवि ने इन शब्दो मे किया है—

"वह तन मन से प्रभु मे लय हो
छा गई निखिल जग मे गोपन,
रस पूत चेतना जीवन की,
बन कर जन मन मे पुण्य स्तवन !"

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६७८)

पन्त जी के अनुसार एक कवि के कल्पना जगत मे भावी मानवता के मागलिक स्वरूप को 'उत्तर स्वप्न' मे दर्शाया गया है। प्रथम बार जगत् ब्रह्म

मे और ब्रह्म को जगत् मे प्रतिष्ठित किया गया है। यू जीवन मे यह अद्भुत नव सास्कृतिक कल्प है जिसमे युग मानव ऊर्ध्वोन्मुखी दिव्य चेतना से अभिभूत हुआ है। 'लोकायतन' महाकाव्य का समापन पन्त जी ने समर्पण भाव के इस छन्द के साथ किया है—

"जन्म ले चुका अब नव मानव
जड चित् को कर रस सयोजित,
धरा स्वर्ग कल्पना न रह अब
जन जीवन मे होता मूर्तित !
कवि मन के रस सित दर्पण म
देख भविष्य मनुज का आनन,
आओ, म मन के विषाद को,
करे प्रेम के प्रभु को अर्पण !'

(वही, उत्तर स्वप्न, पृ० ६८०)

इस प्रकार 'लोकायतन' महाकाव्य के विराट कलेवर मे पन्त जी ने नव युग चेतना को व्यापक रचनात्मक आधार प्रदान किया है। जहा तक आलोच्य काव्य की शिल्प सरचना का प्रश्न है—कथानक और चरित्र विधान के सम्बन्ध मे प्रस्तुत लेख के आरम्भिक भाग मे विस्तारपूर्वक विचार किया जा चुका है। भाषा-शैली की गरिमा और आभिजात्य तो काव्य मे आद्यन्त द्रष्टव्य है। पत जी भाषा के शिल्पी हैं। उनकी भाषा सर्वत्र भावानुगामिनी रहती है। कोमलकात पदावली, पद लालित्य, व्यजना कौशल, आकर्षक अलकृति, सशक्त बिम्ब योजना सटीक प्रतीक विधान और सम्प्रेषणीयता पन्त जी की रचना-शैली की सामान्य विशेषताएँ हैं और ये लाकायतन मे भी सर्वत्र समुपलब्ध है। 'लोकायतन' की भाषा का वैशिष्ट्य वस्तुत उन स्थलो पर विशेष रूप से द्रष्टव्य है जहाँ दशनशास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली, सश्लिष्ट भाव सवेदनाओ और गूढ वैचारिक मान्यताओ को सफल अभिव्यक्ति हुई है। रूपको के माध्यम से अरविन्द दर्शन की आधारभूत मान्यताओ को व्यजित करने म कवि पूर्ण सफल रहा है। हाँ, छद की दृष्टि से लोकायतन' म वैविध्य का अभाव खटकता है। कवि ने यदि दीर्घमात्रिक छन्दो को भी ग्रहण किया होता तो 'लोकायतन' म महाकाव्योचित छादिक गरिमा आ जाती।

वस्तुत 'लोकायतन' की उपलब्धियो का सन्धान शिल्पगत वैशिष्ट्य मे नही अपितु प्रतिपाद्य की सयोजना म है। 'लोकायतन युग चेतना का काव्य

है। 'लोकायतन' में स्रष्टा ने समकालीन जीवन परिवेश और परिस्थितियो के परिसन्दर्भ मे मानवीय चेतना विकास के जो विभिन्न रूपान्तर अंकित किए हैं तथा युग-सत्य के यथार्थोन्मुख आदर्शवादी रूप का जो चित्रण किया है, उसके कारण वह 'महाकवि' अभिधान का निश्चयत अधिकारी बन गया है। चराचर जगत मे व्याप्त दिव्य दैवी चेतना को मानवता के मगल विधान हेतु जिस साधना-अनुष्ठान का रूप-निदर्शन पन्तजी ने किया है, वह सर्वथा श्लाघनीय है। 'लोकायतन' का कवि युगद्रष्टा और भविष्य द्रष्टा दोनो रूपो मे हमारे सामने आया है। विज्ञान युग की विभीषिका से सन्त्रस्त मानवता को सहज प्रीति-साधना और समष्टिमूलक ऊर्ध्वोन्मुखी भाव-बोध का सम्बल प्रदान कर पन्तजी ने मनीषि कवियो मे स्वय को पक्तिबद्ध कर लिया है। 'लोकायतन' की सिद्धि एक काल्पनिक विचार दर्शन को युगसवेद्य रूप मे प्रस्तुत कर तर्क-सम्मत आधार प्रदान करने मे है। समष्टि रूप मे 'लोकायतन' जीवन-दर्शन की महत् सिद्धियो के कारण हिन्दी महाकाव्य-परम्परा का गौरव ग्रन्थ है। 'लोकायतन' सचमुच महाकाव्य है और उसका रचयिता महाकव ।

'कैकेयी' महाकाव्य
पश्चात्ताप-पूता नारी की मनोव्यथा का पुनर्मूल्यांकन

२०

'कैकेयी' महाकाव्य

पश्चात्ताप-पूता नारी की मनोव्यथा का पुनर्मूल्यांकन

आधुनिक काल की साहित्यिक-सरचना के अनुक्रम मे मनोविज्ञान के प्रवेश ने रचनाकारो मे एक ऐसी अन्तर्दृष्टि का विकास किया है, जिसके फलस्वरूप पौराणिक इतिवृत्तो को बुद्धिग्राह्य रूप मे तथा पौराणिक पात्रो को युग-जीवन की सवेदनाओ के अनुरूप अकित किया गया है। साहित्य की विभिन्न विधाओ मे काव्य और काव्य के नाना रूपो मे आधुनिक हिन्दी महाकाव्य की सर्जना मे रचनाधर्मी दृष्टिकोण की मनोवैज्ञानिकता और तद्विषयक परिवर्तनो की प्रक्रिया स्पष्टत. परिलक्षित होती है। आधुनिक महाकाव्यो के इतिवृत्त-विधान चरित्र-विनियोजन, शिल्प-सगठना, सृजन प्रेरणा, रचनात्मक-सोद्देश्यता और जीवन-दर्शन सम्बन्धी विवेचना, सभी मे मनोवैज्ञानिक सस्पर्श मिलता है। रूप-विधायक तत्त्वो की दृष्टि से वर्तमान युग के अधिकाश महाकाव्य चरित्र-प्रधान हैं और अनेक महाकाव्यकारो ने चरित्र-विश्लेषण मे अपनी मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि के विस्तार का प्रभूत परिचय दिया है। उदाहरणार्थ-महाकाव्य के नायकत्व के सम्बन्ध मे काव्याचार्यों द्वारा निर्दिष्ट गुणो, लक्षणो और योग्यताओ (जैसे—धीरोदात्तता, उच्चकुलीनता आदि) की उपेक्षा करके आधुनिक महाकाव्यो मे पुरा-आख्यानो के कलकित, उपेक्षित और तिरस्कृत पात्रो को महाकाव्योचित गरिमा से मडित करके प्रस्तुत किया गया है। रामकथा की उपेक्षिता उर्मिला के चरित्र को आधार बनाकर स्वर्गीय श्री मैथिलीशरण गुप्त और प० बालकृष्ण शर्मा नवीन द्वारा क्रमश 'साकेत' और 'ऊर्म्मिला' तथा निषाद-पुत्र एकलव्य और सूत पुत्र कर्ण के चरित्र पर डॉ० रामकुमार वर्मा, श्री रामधारीसिंह दिनकर, श्री आनन्दकुमार और प० लक्ष्मीनारायण मिश्र द्वारा क्रमश. 'एकलव्य', 'रश्मिरथी', 'अगराज' और 'सेनापति कर्ण' शीर्षक महाकाव्य रचे

गये। हिरण्यकशिपु हिरण्याक्ष, बलि, अन्धक, बाणासुर आदि दैत्यों तथा रावण, कुम्भकरण आदि राक्षसो के चरित्रमूलक आधार पर श्री हरदयालुसिंह द्वारा 'दैत्यवंश' और 'रावण' नामक महाकाव्यो का प्रणयन हुआ। इसी परम्परा में श्री चाँदमल चन्द्र द्वारा रामकथा की कलकिता कैकेयी के विलक्षण व्यक्तित्व और वात्सल्य-भाव से परिपूर्ण चरित्र को आधारमान बनाकर 'कैकेयी' महाकाव्य की रचना हुई है। परम्परित रामकथा और रामकाव्यो में कैकेयी का चरित्र अत्यन्त कलुषित और तिरस्कृत रूप म अंकित किया गया है। कैकेयी द्वारा वर प्राप्ति के ऐतिहासिक कारणो के अनुसन्धान और नारी मनोविज्ञान की विश्लेषणात्मक अन्तर्दृष्टि के अभाव के कारण रामकाव्य के विधायको की दृष्टि मे वह नितात उपेक्षित और कलंकित बनी रही है। इस दृष्टि से आलोच्य महाकाव्य के प्रणेता श्री चन्द्र जी द्वारा कैकेयी के काव्योद्धार का यह प्रयास सर्वथा श्लाघनीय और अभिनन्दनीय है।

'कैकेयी' महाकाव्य की रचनात्मक सोद्देश्यता को स्पष्ट करते हुए श्री चन्द्र जी ने लिखा है कि—'नारी के प्रति पहले से ही एक विशेष उच्च भावना मेरी रही है। रामायण के नारी पात्रो के अध्ययन के समय कैकेयी की ओर मेरा ध्यान गया। राम वनवास की एक मात्र घटना के अतिरिक्त कैकेयी के चरित्र मे कही कोई कलुष नही दिखायी दिया। अत उस घटना के ऐतिहासिक कारणो की खोज एव नारी मनोविज्ञान का विश्लेषण ही प्रारम्भ मे 'कैकेयी' महाकाव्य की रचना के लिए प्रेरणा बना।[1] श्री चन्द्र जी के उद्धृत मन्तव्य से स्पष्ट है कि ऐतिहासिक अनुसन्धान वृत्ति और मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि लेकर वे 'कैकेयी महाकाव्य के प्रणयन मे प्रवृत्त हुए हैं। 'सत्योपाख्यान'[2] और वाल्मीकि रामायण[3] के साक्ष्य के आधार पर श्री चन्द्र ने यह धारणा बनाई कि—'कैकेयी के पुत्र को राज्याधिकार देने की शर्त पर ही कैकेयी का दशरथ के साथ विवाह हुआ था।'[4] काव्य के एकादश सर्ग मे वरयाचना के अनन्तर यही बात वह राम से कहती है—

---

[1] कैकेयी महाकाव्य, पार्श्व भूमि, पृ० ८

[2] सत्योपाख्यान, अध्याय ८, श्लोक स० १३, १४, १६, २०

[3] पुरा भ्रात पित न स मातर ते समुद्वहन।
मातामहे समा श्रौपीद् राज्य शुल्क मनुत्तमम॥
—वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाड, सर्ग १०७, छद ३

[4] कैकेयी परिपार्श्व, पृ० ७

"होगा ज्ञात न तुम्हें तात कुछ, यह महती बात पुरानी।
ब्याह समय केकय-स्वामी की, शर्त इन्होंने मानी॥
ज्येष्ठा भी पुत्र उन्हें हो, अवसर यदि ऐसा आये।
फिर विवाह जिस अर्थ करें ये, राज्य पुत्र मेरा पाये॥"[५]

कैकेयी की वर प्राप्ति के फलस्वरूप भरत के राज्याधिकारी बनने और राम-वन-गमन की सूचना से आवेशपूरित होकर जब लक्ष्मण भरत के विरुद्ध विद्रोह करने को उद्यत होते हैं, तब भी राम उन से यह रहस्योद्घाटन करते हैं कि—

"कैकय-कन्या-ब्याह-समय,
तुम-हम जन्मे भी न जब।
किया गया अधिकार नियत
अवध राज्य पर उसका तब॥"[६]

इस प्रकार के काव्य सन्दर्भों से प्रमाणित है कि रामकथा के ऐतिहासिक घटना क्रम के अनुसार महाराज दशरथ कैकेयी के पुत्र को राज्य देने के लिए वचनबद्ध थे और कैकेयी ने उस अवसर पर जबकि उसे राम के राज्याभिषेक की तैयारियों से अनभिज्ञ रखा गया उसके पुत्र को ननिहाल भेजकर रहस्यात्मक ढंग से राजमाता के पद से वंचित किया जा रहा था, तो उसने पूर्व प्रतिबद्ध संकल्प की संपूर्ति कराके कोई अनर्थ नहीं किया। अस्तु, वर प्राप्ति के आधार पर कैकेयी के चरित्र की विगर्हणा और भर्त्सना राम के उन रचयिताओं और समीक्षकों द्वारा की गयी है, जो इस ऐतिहासिक तथ्य से अपरिचित रहे हैं कि महाराज दशरथ कैकेय-नरेश से कैकेयी के पुत्र को अपना उत्तराधिकारी बनाने के लिए वचनबद्ध थे और रघुकुल की रीति के अनुसार भरत को राज्य देकर अपने कौलिन्य-गर्व की अभिवृद्धि ही की थी। वचनबद्धता के अतिरिक्त वर प्राप्ति के ही परिसन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि दोनों वरदान कैकेयी ने अपने सारथ्य-कौशल के बल पर महाराज दशरथ के प्राणों की रक्षा करके प्राप्त किये थे। घटना-क्रम इस प्रकार है कि—एक बार शंबासुर के आतंक से संत्रस्त होकर देवराज इन्द्र ने महाराज दशरथ से त्राण के लिए अनुनय-विनय की। शरणागत को अभयदान देने की 'रघुवंशी रीति' के अनुसार महाराज

---

५ वही, सर्ग ११, छन्द ४४, पृ० १०६
६ वही, सर्ग १२, छन्द ५४, पृ० १२५

दशरथ शबासुर से लोहा लेने के लिए कटिबद्ध हो गये, तभी कैकेयी ने उनके साथ युद्धक्षेत्र मे सारथ्य-कर्म करने की अभिलाषा प्रगट की और जब महाराज दशरथ ने कैकेयी की युद्धक्षेत्रीय योग्यता के सम्मुख प्रश्नचिह्न लगाकर उसे साथ न चलने को कहा तो कैकेयी ने स्वाभिमानिनी राज्य-महिषी के समान दर्पोक्त वाणी मे कहा कि—

"न भूलो कि मैं अश्वपति की सुता,
न भूलो अवध-नाथ की वल्लभा।
कि वीरागना आर्य नारी विदित,
भारत खण्ड-गरिमा, जगत दुर्लभा।
समर ज्ञान - सारथ्य -पारगता,
महाभाग ! रणभूमि छाया बनी।
रहूँ साथ ज्यो सूर्य के सग विभा,
महत् चाँद के साथ ही चाँदनी॥"

(सर्ग ३, पृ० २५)

और कैकेयी ने जो कहा, युद्ध क्षेत्र मे वही कर दिखाया। युद्ध-क्षेत्र मे कैकेयी ने अश्व-चालन कला का अद्भुत प्रदर्शन किया। महाराज दशरथ का रथ कभी उरग सा रेंगता था तो कभी हवा मे उडता था। शत्रु के वाहिनी-व्यूह मे रथ को प्रविष्ट कराके पुन चपल दामिनी की भाँति कैकेयी उसे निकाल लाती थी। एक अवसर पर रथ की धुरी टूट गई और चक्का डगमगाने लगा। तभी शबासुर ने महाशक्ति का प्रहार किया। इस अवसर पर कैकेयी ने रथ को भूमि से सटा कर निकाल लिया और महाराज दशरथ महाशक्ति के भयकर प्रहार से बाल-बाल बच गए। विजय के पश्चात् महाराज दशरथ ने प्रसन्न मुद्रा मे कहा कि—

"खिली स्मित नराधिप-अधर-"आज की,
प्रिये ! यह विजय तो तुम्हारी विजय।
बचा प्राण दो बार तुमने लिए,
कहो, दें तुम्हें कौन वरदान द्वय॥"

(सर्ग ३, पृ० २८)

कैकेयी एक माँ थी। माँ की ममता और वात्सल्य भाव के अतिरेक ने ही उसे अपने पुत्र भरत के लिए राज्य-प्राप्ति हेतु प्रेरित किया। काव्य मे अनेक

स्थल इस तथ्य की सपुष्टि करते हैं। मन्थरा की कुमन्त्रणा की पहली प्रतिक्रिया कैकेयी के मन-मस्तिष्क पर भरत के ही सम्बन्ध मे हुई। वह सोचने लगी कि—

"क्या गया कोई रचा षडयन्त्र सचमुच ?
छा रही क्या सत्य ही यो—
भरत के सद्भाग्य पर काली घटाएँ ?
क्या बने स्वामी स्वय विश्वासघाती ?
जानकर भेजा गया भोले भरत को,
क्या किसी ऐसे, अशुभ उद्देश्य से ही ?"

(सर्ग ८, पृ० ६४)

कैकेयी का ममत्व-भाव ही उसे शकालु बनाता है। भरत के अशुभ भविष्य की परिकल्पना मात्र से वह काँप जाती है। कवि के शब्दो मे—

"लाल को मेरे अरे क्या झाँकती ?
छाया असित कोई ?
कही क्या चाहती ग्रसना ?
गई वह काँप ही इस कल्पना से,
वल्लरी ज्यो तीव्र झोंके से पवन के !!" (सर्ग ८, छन्द ४१)

कैकेयी की आशकाओ को निर्मूल नही कहा जा सकता, क्योकि प्रथम तो भरत ननिहाल मे और दूसरे महाराज दशरथ द्वारा परिषद-सचिव को यह कूटनीतिक आदेश था कि केकय-नगर निमन्त्रण देर से पहुँचे तथा कैकेयी तक भी कोई दास-दासी यह सदेश न पहुँचाये—

"भेज दें सबको निमन्त्रण, अमरपति भी आयें।
वृत्त पर केकय नगर को देर से भिजवायें ।।

× × ×

यह रहे पर ध्यान छोटी राज-रानी-पास।
ले न जाये वृत्त कोई क्षुद्र दासी-दास ।।"

(सर्ग ६, पृ० ४८-४९)

राम के वन-गमन के अवसर पर प्रजाजनो के प्रति अगाध निष्ठा और स्वकृत्य के प्रति आक्रोश देखकर कैकेयी के मन मे पुनः यही शका उठती है कि इस सब के कारण कही भरत की क्षेम सकट मे न पड जाय। वह यह सोचने को विवश थी कि—

"किन्तु यही तो भय, जनता का अतुल राम पर प्रेम ।
पड न कही खतरे में जाये, सरल भरत का क्षेम ।।"
(सर्ग १३, पृ० १४०)

राम के वन गमन और महाराज दशरथ के निधन के पश्चात् भरत ने ननिहाल से लौटकर वस्तुस्थिति से अवगत होने के पश्चात् रोष और आवेश मे कैकेयी को महान् अनर्थकारिणी, बैरिन, घातिनी, कुनारि, पिशाचिनी और सघातिनी तक कह डाला। (सर्ग १४, छन्द ३५, पृ० १४७) प्रत्युत्तर में कैकेयी ने भरत को अपने कृत्य का औचित्य बताते हुए कहा कि मैंने केवल तेरे हित-रक्षण हेतु राज्य मांगा है। मैंने कोई पाप नही किया। किन्तु माँ के मन की विवशता को कौन जानता है ? कैकेयी ने कहा कि—

'समय पर वर न यदि दो माँग लेती, विमाता क्या न जाने त्रास देती ।
मुझे चिन्ता नही लवलेश मेरी, अभीप्सित नित मुझे तो कुशल तेरी ।।
× × ×
हृदय यदि पुत्र की ममता सजोई, बनी जो माँ, किया क्या पाप कोई ।
तजे माँ प्राण यदि हो भय सुवन को, समझता काश, कोई मातृ मन को ।।"
(सर्ग १४, पृ० १४८)

उपर्युक्त विवेचन के आलोक मे यह तथ्य प्रमाणित हो जाता है कि कैकेयी ने वात्सल्य भाव के उद्रेक और ममत्व से अनुप्रेरित होकर ही स्वपुत्र हित-सरक्षण हेतु महाराज दशरथ से भरत के लिए राज्य मांगा, जो उत्पन्न परिस्थितियो के परिप्रेक्ष्य मे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से एक माता के लिए सर्वथा स्वाभाविक एव अवश्यम्भावी था। अब प्रश्न यह शेष रहता है कि राम को वनवास दिलाने मे कैकेयी का क्या प्रयोजन था ? राम के शील और सौजन्य तथा भरत के प्रति उनके अतुलनीय अनुराग एव सौमनस्य भाव से सुपरिचित होते हुए भी उन्हे वन भेजने मे क्या कैकेयी की कुटिलता, क्रूरता और कुबुद्धि नहीं प्रगट होती ? क्या दूसरे वर की याचना के कारण कैकेयी का चरित्र कलुषित और कलकित नही होता ? वस्तुत इन्ही प्रश्नचिह्नो के सन्दर्भ मे कैकेयी के कृत्य के औचित्य अनौचित्य पर यहा विमर्श अभीप्सित है।

कैकेयी महाकाव्य के प्रणेता ने राम वन गमन विषयक वरदान का सार्थक्य नानाविध सिद्ध किया है। काव्य के 'अन्तर्द्वन्द्व' शीर्षक अष्टम और नवम सर्गो म कैकेयी के मानसिक सघर्ष की अभिव्यजना म सर्वप्रथम तो मातृत्व भाव का अतिरेक दर्शाया है जो उसे भरत हित म राज्याधिकार प्राप्त करने के

लिए अनुप्रेरित करता है। तदनन्तर कैकेयी के अवचेतन मे सकल्प-विकल्प और आशा-आशका का जो द्वन्द्व आविर्भूत होता है, वह उल्लेखनीय है। कैकेयी सोचती है कि मेरे नाथ मुझे प्राणाधिका मानते है। वे सुरपुर विजित करके उसका राज्य मेरे चरण-तल मे बिछाने के लिये सन्नद्ध रहते थे तो राम के राज्याभिषेक रूपी महत्-आयोजन को मुझसे गोपनीय क्यो रखा ? हो सकता है कि शासन-कार्य मे व्यस्त हो। वह दूसरे ही क्षण सोचती है कि मैं भी कितनी मूर्ख हूँ; ऐसा सवाद सेवक द्वारा कैसे प्रेषित कर सकते थे ? वे तो स्वय ही यह सूचना देकर मुझे चौंकाना चाहते होगे ; अथवा इस कार्य मे मेरी मौन स्वीकृति मानकर उन्होने जनपद और पौर गणों को राज्याभिषेक की तैयारी के लिए कह दिया होगा। शकित मन· कैकेयी पुन सोचने लगी कि कही मेरी असहमति की आशका से हो तो उन्होने मुझे राज्याभिषेक की सूचना से वचित नही रक्खा ? और यह विचार आते ही कैकेयी के नारीत्व-भाव पर आघात लगा। उसका हृदय चीत्कार कर उठा कि—

"पति सदा विश्वास जिनका, मान जिनका,
ध्यान जिनका, प्राणधन, ससार जिनका;
आर्यकुल की नारियाँ इहलोक की हम
सगिनी, अनुगामिनी परलोक मे भी।
फिर करे सन्देह कोई तरह तो,
तन सुलगता, लोट उर पर सांप जाता॥"

(सर्ग ८, पृष्ठ ६७)

कैकेयी के अन्तर्द्वन्द्व ने नवीन दिशा ग्रहण की। वह सोचने लगी कि मैं राम को सौत का सुत नही मानती, फिर आर्य सुत ने अभिषेक की सूचना सबसे पहले मुझे क्यो नही दी ? कैकेयी अन्तत. इस निष्कर्ष पर पहुँची कि—

"भरत को, मुझको व केकयराज को भी,
इस महोत्सव से निपट अज्ञात रखना,
क्या न इनके मन-कपट को प्रगट करता ?"

(सर्ग ८, पृ० ७२)

अत उसने भरत को युवराज बनाने के साथ-साथ राम को वनवास दिलाने का भी निर्णय यह सोच कर कर लिया कि कौन जाने इस द्वेष के कारण गृह कलह की आग भड़क उठे या जन विद्रोह ही विषम स्थिति उत्पन्न कर दे। अस्तु, सुत के हित-रक्षण हेतु कठोर बनना ही पड़ेगा—

"द्वेष की वह वह्नि भीतर और भी क्या,
तब भयकर रूप धारण कर न लेगी,
कौन जाने, गृह कलह की आग भड़के,
या कि जन विद्रोह का तूफान आए,
कौन जाने ईंट से बज ईंट जाये,
या रचा कोई नया षडयन्त्र जाये।
× × ×
चोट खाये वायुभक्षी-भाँति भीषण,
वे बनेंगे, कब डसेंगे कि न जाने।
सुत हिताय कठोर बनना ही पड़ेगा।।"

(सर्ग ८, पृष्ठ ७५)

कैकेयी के अन्तर्द्वन्द्व से स्पष्ट है कि उसने स्वसुत के हित-सरक्षण और राजनीतिक-दूरदर्शिता की भावना से अनुप्रेरित होकर ही राम के लिए वनवास माँगा था।

नवम सर्ग के 'अन्तर्द्वन्द्व' में राम वन-गमन विषयक वरदान के अन्य प्रयोजनों का भी उद्घाटन हुआ है। कैकेयी के स्मृति-पटल पर एक अन्य विचार उभरा कि आज देश की विषम स्थिति है। दक्षिण दिशा के असुर वनवासियों पर घोर अत्याचार कर रहे हैं। वे गुप्त वेश धारण कर लोगों को लूटते और घर जलाते हैं। यज्ञ-ध्वंस करते हुए तपलीन ऋषियों का सिर काटकर रक्त प्रजा-रुधिर का पानकर सर्वत्र आतंक फैला रहे हैं। सीमावर्ती प्रदेश की प्रजा में भयाक्रान्त होने के कारण मनोबल का निरन्तर ह्रास हो रहा है। यह अवसर है कि राम दक्षिण-दिशा-कानन में आकर आसुरी दल शक्तियों को पराजित करें। कैकेयी के मन में एक अन्य विकल्प जन्मा कि क्यों न विश्वामित्र मुनि को कह कर पुन राम को वन गमन करायें यह कार्य पूर्ण कराऊँ? किन्तु उसने सोचा—

"नाथ वैसे तो न भेजेंगे राघव ही
किन्तु क्यों?
मैं ही न क्यों इस कार्य को पूरा करूँ अब?
राम को वन भेजकर
वरदान के मिस।।"

(सर्ग ९, पृ० ८०)

कैकेयी यह सोचकर पुन चिन्तित हो उठी कि दुष्ट हिंस्र पशुओ को मिटाने के लिए क्या राम को अकेले ही भेज देना उचित होगा ? क्या बिना सैन्य और शस्त्रास्त्र-सज्जा के विषम रिपु से जूझने की कल्पना करना नीति युक्त और बुद्धिमत्तापूर्ण है ? किन्तु उसने फिर सोचा कि व्योम पर सहस्रो तारे जो नही कर पाते वह अकेला चन्द्रमा कर देता है। एक ही नाहर सब वनचरो पर राज्य करता है। एक ही सूर्य समस्त प्राणियो का प्राणदाता होता है। फिर राम तो शक्ति सम्पन्न, तेजस्वी, मनस्वी, साहसी और शूरवीर हैं। बाल्यावस्था से ही राम मे युग-पुरुष के लक्षण प्रकट होते रहे हैं। अत उन्हे वन भेजना सर्वथा उचित है। दूसरे ही क्षण कैकेयी के मन मे यह भाव जन्मा कि—

"किन्तु यो वरदान का लेकर सहारा,
राम को यदि विपिन भेजूँ,
गलत समझी क्या न जाऊँगी भला मैं ?
दुनिया कहेगी क्या न जाने ?
कौन समझेगा हृदय की भावना को ?
स्वयम् स्वामी, राम, परिजन भी न जाने,
कल्पना क्या - क्या करेंगे—
राज्य लोलुप, स्वार्थिनी, निठुरा,
न जाने और क्या क्या ॥'

(सर्ग ६, पृ० २०३)

कैकेयी ने सोचा कैसी विषम स्थिति उपस्थित है ? राम को वन न भेजूँ तो कार्य नही होता और वरदान के मिस राम को वन भेजूं तो जग बुरा कहेगा। जो भी हो मुझे लोक कल्याण के लिए यह कठिन कार्य करना ही पडेगा—

"कुछ कहें, कह ले जगत,
अपवाद भी सहना पडे, सभावना यह।
किन्तु मानव मात्र-कल्याणार्थ कोई,
कार्य ऐसा कठिन करना ही पडेगा,
वज्र सा करके कलेजा ॥"

(सर्ग ६, पृ० ८३)

और अन्तत कैकेयी ने दृढ-प्रतिज्ञ-भाव से माता के कर्त्तव्य की सपूर्ति, लोकमगल की कामना और राष्ट्र-हित-हेतु स्नेह को कर्त्तव्य पर बलिदान करके राम को वन भेजने का निर्णय ले ही लिया—

"उचित निश्चित, कुलिश बनकर,
अब उपक्रम राम को वन भेजने का ही करूँ,
यों पूर्ण हो कर्त्तव्य माँ का,
देश का भी, लोक-मगल-कामना का,
× × ×
शक्ति साहस दो, करूँ भगवान,
स्नेह को कर्त्तव्य पर बलिदान।
साक्ष्य तुम हो, स्वार्थ प्रेरित मम न अन्तर्द्वन्द्व,
विश्व मानवता रहे निर्द्वन्द्व॥"

(सर्ग ६, पृ० ८७)

यही कारण था कि राम के वन-गमन के अवसर पर जहाँ 'मानस' की कैकेयी कठोर और उग्र बनी रहती है वहाँ आलोच्य महाकाव्य की कैकेयी मनस्ताप से द्रवित हो जाती है। किन्तु, भावी सकट की कल्पना से दृढ़ता धारण किये रहती है। कवि के शब्दों में—

"हुई कैकेयी विचलित आखिर,
दृश्य निरख हृदय द्रावी।
पर सोचा-दृढ़ रखना होगा,
मुँह बाये सकट भावी॥"

(सर्ग ११, पृ० ११६)

कैकेयी को अपने इस कृत्य के लिए मर्मान्तक वेदना भी भोगनी पड़ी। वैधव्य की व्यथा, स्वपुत्र द्वारा तिरस्कार, परिजनों की भर्त्सना और पुरजनों का रोष-आक्रोश सभी उसने सहा। कैकेयी के मनस्ताप का अनुमान चित्रकूट की सभा में सबके समक्ष, राम को सम्बोधित करते हुए इस आत्मस्वीकृति से लगाया जा सकता है कि—

"कहाँ परिणाम से अवगत रही तब ?
कहूँ क्या राम ! मैं जड़ रोग की सब।
समझ मैं ने उचित जो कुछ किया अब।
कहाँ इसकी मुझे कुछ कल्पना तब॥

बनी जड स्वार्थिनी, पतिघातिनी मैं ।
हुई हा हन्त ! आप अभागिनी मैं ।"

(सर्ग १४, पृ० १४५)

अथवा

"सोचा जिसमे जग कल्याण,
राष्ट्र-कर्म, माँ का कर्त्तव्य
सिद्ध हुआ मेरा अज्ञान,
सर्वनाश-हित, हा ! भवितव्य ।।"

(सर्ग १५, पृ० १६५)

काव्य का षोडश सर्ग (पश्चाताप) कैकेयी की मर्मान्तिक मनोव्यथा का ही व्यञ्जक है । इस सर्ग मे कवि ने षड्ऋतुओ के माध्यम से कैकेयी के पश्चाताप का करुण स्रोत प्रवाहित किया है । पश्चाताप की व्यथा मे कैकेयी कहती है कि ऐसी घटना कैसे घटित हो गई ? क्यो मैं असमय मे मूर्ख बन गई ? मन्थरा का क्या दोष, ये सारी विडम्बना विधि की कुटिलता या दुर्भाग्य-दोष ही है । अतुल गुणो के धनी, श्री और शौर्य के पुंज, सत्यवादी, देवोपम-स्वामी के प्रति अविश्वास और दैवीय गुणो की विभूति से युक्त जीजी (कौशल्या) का अहित करके मैंने अपने मस्तक पर कलक का वह टीका लगाया है, जिसके कारण आने वाली पीढियाँ भी मुझे अभागी और वशघातिनी ही कहेगी—

"टीका ऐसा सिर पर लगा, मेरे मिटेगा न जो ।
भावी पीढी व्यथित मन रो-रो कहेगी कथा,
ऐसी कोई तरणिकुल मे रानी अभागी रही ।
अज्ञानी सी खुद बन गई जो वश की घातिनी ।।"

(सर्ग १६, पृ० १६७)

कैकेयी को मनस्सताप के कारण चतुर्दिक वातावरण दम घोटने वाला लगता है । सरयू के प्रवाह मे उसे रुदन-स्वर सुनाई देता है । वह 'तिल-तिल दीप समान, मौन मे जलती' रहती है । वर्षा के मिस कैकेयी अपने अश्रु स्रोत को ही प्रवाहित मानती है । शरद कौमुदी उसके तन मन को झुलसाती है । शीत ऋतु के तुषार-पात को देखकर उसे सीता का स्मृति दश व्याकुल कर देता है । वह कहने लगती है कि—

"अपराधिनी मैं बहू ! तुम्हारी भारी ।
कैसा किया अनर्थ, व्यर्थ बन नारी ।।

हिम-शर खर प्रासाद गडे जब तन मे।
तुम कोमल-तन चरण भटकती वन मे॥"

(सर्ग १६, पृ० १७२)

शिशिर-अजिर मे हहराते पतझर की प्रतिक्रिया कैकेयी अपने पीत वर्ण और विवर्ण-वदन मे देखती है। कैकेयी की आकुलता इन शब्दो मे व्यजित हुई है—

"जीर्ण-शीर्ण क्यो प्राण, न मम झड पडते ?
इस पिंजर मे अटक, वृथा फडफडते॥"

(सर्ग १६, पृ० १७३)

बसत को देखकर तो कैकेयी की विषम-वेदना चरम सीमा पर पहुँच जाती है। वह कहती है कि बसन्त की बहार का क्या अर्थ जब मेरे हृदय म भीषण होली जल रही है। कैकेयी की मानसिक व्यथा का चरम निदर्शन निम्नोद्धृत छन्द मे द्रष्टव्य है—

"लषन, जानकी, राम, विपिन के भागी।
भरत, माण्डवी, भवन, विरागी, त्यागी॥
प्रिय स्वामी सुरधाम, व्यथित मन मेरा।
फिर मधुऋतु! क्या काम, अवध मे तेरा।"

(सर्ग १६, पृ० १७५)

कवि ने काव्य के अन्तिम सर्ग मे कैकेयी को राम के वन से आगमन की प्रतीक्षा म अत्यन्त आकुल दर्शाया है। अवधि की परिसमाप्ति पर आशा-आशका और उत्कठा चिन्ता का आवेग कैकेयी के मन मस्तिष्क को आक्रान्त किए रहते हैं। कवि के शब्दो मे—

"अकथनीय कैकेयी की स्थिति,
उत्सुक भी, शकित भी।
आशान्वित उर स्नेह सिंचित,
हुलसित भी, चिंतित भी॥
रह न सके चुप, अति आतुर मन,
कह न सके प्रकटित भी।
स्मरण पूर्व कृति कर विचलित भी,
वत्सलता—पूरित भी॥'

(सर्ग १६, पृ० १८६)

इस प्रकार कंकेयी द्वारा राम-वन-गमन विषयक वरदान के औचित्य और तद् विषयक प्रतिक्रियाओ के प्रत्याकन मे श्री चन्द्र जी ने तर्क और मनोविज्ञान दोनो का आश्रय लिया है। "कंकेयी" महाकाव्य के 'भूमिका' लेखक डॉ० बल्देव प्रसाद मिश्र के शब्दो मे—"कंकेयी की चरित्र विषयक परम्परागत भावना तो यही रही कि उसने नारी-विषयक दुर्बलता ही दिखाई है—त्रियाहठ, सौतियाडाह, 'तीय-अधर-बुद्धि', निज-पर-भाव आदि। वर्तमान युग नारी के श्याम पक्ष पर नहीं, किन्तु उसके उज्ज्वल पक्ष पर अधिक ध्यान देता है। अतएव इस युग के कवियो और चिन्तको ने कंकेयी का राम-वन गमन विषयक कृत्य का अपनी कल्पना के नेत्रो से उज्ज्वल पक्ष—उदात्त कारण—देखने का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार कंकेयी का यह वरदान माँगना उसकी कर्त्तव्य परायणता का, उसकी 'शठे शाठ्यम्' वाली नीतिमत्ता का, उसकी दूरदर्शिता का और उसकी राष्ट्र-हितैषिता का द्योतक है। श्री चन्द्र जी की कंकेयी इन्ही गुणो से युक्त चित्रित की गई है। राम-वन-गमन विषयक वरदान को कंकेयी के केवल क्षुद्र स्वार्थ का परिणाम न बताकर उन्होंने उसे राक्षस-वध-विषयक अथवा यो कहिए कि राष्ट्र-सरक्षण विषयक कंकेयी की दूरदर्शिता का परिचय भी बताया है। उनका विशेष बल इस अपर पक्ष पर ही है। क्षुद्र स्वार्थ भी केवल भरत के विषय मे कर्त्तव्य प्रेरित स्वार्थ है।'[७] डॉ० मिश्र के उद्धृत मन्तव्य से स्पष्ट है कि 'कंकेयी' महाकाव्य के प्रणेता ने राम-वन-गमन विषयक वरदान को कंकेयी की कर्त्तव्यपरायणता, नीतिमत्ता, दूरदर्शिता और राष्ट्र-हितैषिता का द्योतक माना है। आधुनिक युग के कतिपय अन्य महाकाव्यकारो ने भी राम वन-गमन की घटना को अन्य दृष्टियो से व्याख्यायित किया है। स्वर्गीय श्री मैथिलीशरण गुप्त विरचित 'साकेत' महाकाव्य के सुधी-समीक्षक डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना का मत है कि—"राम तो 'साकेत' को छोडकर वन मे इसलिए जाते हैं कि जनसाधारण मे धर्म का प्रचार हो, अधर्म का विनाश हो, सर्वत्र वेद की वाणी गूँजती रहे, आकाश मे यज्ञ-धूम उडता हुआ दिखाई दे, उससे वसुधा हरी भरी बनी रहे, सर्वत्र ज्ञानी-जन तत्वो का चिन्तन करते रहे, ध्यानी जन निर्विघ्न ध्यान मे लीन रहे, यज्ञ की अग्नि मे निर्विघ्न आहुतियाँ पडती रहे और सर्वत्र तपस्त्याग की विजय वृद्धि हो।"[८] 'साकेत' के राम स्पष्ट शब्दो मे यह कहते हैं—

---

७ कंकेयी, भूमिका, पृ० त, थ

८ साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ० ३५१

"मुनियो को दक्षिण देश आज दुर्गम है,
बर्बर कौणप-गण वहाँ उग्र यम सम हैं।
वह भौतिक मद से मत्त यथेच्छाचारी,
मेटूँगा उसकी कुगति-कुमति मैं सारी॥"[९]

इसी सम्बन्ध मे "ऊर्म्मिला" महाकाव्य के रचयिता प० बालकृष्ण नवीन ने लिखा है कि—'मैंने राम वन-गमन को एक विशेष रूप मे देखने और उपस्थित करने का साहस किया है। राम की वन-यात्रा मेरी दृष्टि मे एक महान् अर्थ पूर्ण आर्य-सस्कृति प्रसार-यात्रा थी। 'ऊर्म्मिला' मे लक्ष्मण के मुख से मैंने यह बात कहलवाई है, वह कदाचित पुरातन विचारवादियो को न रुचे, पर, जितना भी मैं इस राम वन-गमन पर विचार करता हूँ उतना ही मैं इस बात पर दृढ होता जाता हूँ कि राम की वन-यात्रा भारतीय सस्कृति प्रसारार्थ एक महान् यज्ञ के रूप मे थी।"[१०] कवि नवीन ने लिखा भी है कि—

"आज विजित करने उस भौतिक, दैहिक, शारीरिक बल को,
राम लखन वन गमन कर रहे, सग ले आत्म-ज्ञान-दल को।
× × ×
आर्य सभ्यता, आर्य ज्ञान औ'—आर्यो की सस्कृत वाणी-
पराऽपरा विद्या का वैभव, वेद-भारती कल्याणी,-
आर्यो की ये सब विभूतियाँ, वन मे प्रसारिता होगी,
जटिल कुटिल अज्ञान भावना-निश्चय पराजिता होगी।
आर्य-सास्कृतिक विजय पताका घन वन मे फहरायेगी,
देखो यह तो ज्ञान ध्वजा अब, कहाँ कहाँ लहरायेगी।
× × ×
यह वन गमन नही है, यह तो-मेरी तीर्थ यात्रा है,
इस प्रवास मे आदर्शो की चिन्मय सम्पुट मात्रा है।"
(ऊर्म्मिला, सर्ग ३, पृ० १९८, २००)

सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त और बालकृष्ण नवीन के प्रबन्ध-काव्यो मे राम-वन-गमन विषयक तर्क-दृष्टि-सम्पन्न अवधारणाओं से प्रगट है कि इस घटना के लिए कैकेयी की स्वार्थ-परता अथवा सरस्वती का मथरा की जिह्वा पर बैठकर कैकेयी की बुद्धि को भ्रमित करना आदि विकल्प रामकथा की

---

९ साकेत (सस्करण स० २०१५), सर्ग ६, पृ० २३६

१० ऊर्म्मिला—श्री लक्ष्मणचरणार्पणमस्तु, पृ० छ

गतानुगतिक तर्क शून्य कल्पना-दृष्टि का ही प्रतिफलन है। "रामचरित-मानस" मे गोस्वामी तुलसीदास ने यही माना है कि मथरा के गूढ कपटपूर्ण वचनो को सुनकर स्त्री बुद्धि वाली रानी सुर-माया-बस वैरिन को सुहृद जान कर उस पर विश्वास कर लिया और उसके कहने पर कुएँ मे कूदने तथा पुत्र और पति को त्यागने के लिए सन्नद्ध हो गई—

"गूढ कपट प्रिय बचन सुनि, तीय अधर-बुधि रानि।
सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि॥
× × ×
परउँ कूप तुअ बचन पर सकउँ पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुखु देखि बड कस न करब हित लागि।"[११]

किन्तु मानसकार का उपर्युक्त दृष्टिकोण विज्ञान-युग के बुद्धिवादी पाठक को सहज स्वीकार्य नही हो सकता, क्योकि वही कैकेयी जो राजनीति विशारद होने के कारण केवल प्रशासनिक कार्यों मे ही महाराज दशरथ की परामर्शदात्री नही थी अपितु युद्ध-सचालन मे भी सहायिका थी, वह तुच्छ दासी की मन्त्रणा पर पुत्र और पति को त्यागने तथा कुएँ मे गिरने तक को तैयार हो गई। निश्चय ही कैकेयी की वर-याचना अधिक अर्थवत्तापूर्ण एवं महत् प्रयोजन की सिद्धि हेतु की गई थी, और यह सन्तोष का विषय है कि हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यकारो ने, विशेष रूप से "कैकेयी" महाकाव्य के रचयिता श्री चन्द्रजी ने वर याचना विषयक घटनाक्रम के ऐतिहासिक आयामो का सधान करते हुए उसे मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य मे चित्रित किया है। डॉ० राम कुमार वर्मा के इस मत से मैं सहमत हूँ कि—"कैकेयी के मनोविज्ञान को चन्द्रजी ने वात्सल्य और तर्क दोनो की भावभूमि पर प्रतिष्ठित किया है।"[१२] इसी सन्दर्भ मे सुश्री महादेवी वर्मा का यह कथन कितना सटीक है कि—"कैकेयी रामायण की ऐसी पात्री है, जिसके बिना रामकथा मे न गति रहती है न मार्मिकता, परन्तु वह युग-युगान्तर से कवियो और पाठको की घृणा का भार वहन करती आई है। प्रसन्नता की बात है कि चन्द्रजी ने उसे पुरातन युगों से आरोपित व्यक्तित्व से भिन्न और गरिमापूर्ण व्यक्तित्व ही नही दिया, सम्पूर्ण

---

११ रामचरित मानस, अयोध्याकाड, दोहा स० १६ और २१

१२ कैकेयी, नवीन परिप्रेक्ष्य मे—आवरण पृष्ठ से उद्धृत।

कथा को नवीन परिप्रेक्ष्य मे रखकर देखा है।"[11] आलोच्य काव्य के मुख-पृष्ठाकन मे कवि ने कैकेयी के सम्बन्ध मे एक छन्द रचकर प्रस्तुत किया है कि—

"जग ने जिसका नित विषमय पाषाणी रूप निहारा।
बहती उस पत्थर के नीचे, पर विमल सुधा की धारा॥"[12]

और यह सच है कि विश्व अद्यावधि भी कैकेयी के विषममय पाषाणी रूप को ही देख रहा था, किन्तु कवि श्री चन्द्रजी ने कैकेयी के चरित्र मे विमल-सुधासिंचित मातृत्व और उसकी कर्त्तव्य परायणता, दूरदर्शिता, नीतिमत्ता और राष्ट्र कल्याणी मनोभावना को दर्शाया है। इस प्रकार "कैकेयी" महाकाव्य की रचना द्वारा कविवर श्री चन्द्र ने युग युगान्तर से उपेक्षित, तिरस्कृत एव पश्चात्ताप पूता नारी के चरित्र का ही इतिहास एव मनोविज्ञान की समन्वित भूमिका पर पुनर्मूल्याकन नही किया है अपितु रामकाव्यो की परम्परा मे भी गौरवान्वित अभिवृद्धि की है। इस दृष्टि से स्वातन्त्र्योत्तरकालीन हिन्दी महाकाव्यो के सरचना-क्रम मे 'कैकेयी' का प्रणयन सर्वथा अभिनन्दनीय है।

---

[11] वही, आवरण पृष्ठ

[12] कैकेयी महाकाव्य, मुखपृष्ठ का पृष्ठाकन।

लेखक-परिचय

नाम— देवी प्रसाद गु[illegible]

जन्म— ११ अगस्त [illegible]

शिक्षा— एम ए [illegible] डी

व्यवसाय— गत बारह वर्ष [illegible] शिक्षा विभाग राजस्थान [illegible] के महाविद्यालयों [illegible]

सम्प्रति— प्राध्यापक [illegible] हिन्दी विभाग, [illegible] बीकानेर (राजस्थान

प्रकाशित लेख—देश की उच्च [illegible] साहित्यिक एव शोध पत्रिकाओं मे [illegible] लेख प्रकाशित। विशे[illegible] रूप से आलोच[illegible] कल्पना जन-भारती, राजस्थान भारती, [illegible] वीणा, मधुमती, साहित्य-सदेश, [illegible] सवाद, समीक्षालोक, साहित्य [illegible], समिति वाणी, शेफालिका [illegible], विधा, वातायन, तुलसी दल, [illegible], ससार, नवराष्ट्र, लोक-वाणी, [illegible], प्रहर, मरुधरा आदि मे।

प्रकाशित पुस्तकें-

१. हिन्दी महाकाव्य : सिद्धान्त और मूल्यांकन २५)
२. हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य ३५)
३. आधुनिक प्रतिनिधि हिन्दी महाकाव्य २०)
४. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य (प्रथमार्द्ध) ३५)
५ साहित्य: सिद्धात और समालोचना १६)
६ हिन्दी व्याकरण एव रचना बोध ४)
७ हिन्दी भाषा ज्ञान एव निबध रचना ४)
८. हिन्दी गद्य-पद्य गरिमा (स०)
९. हिन्दी काव्यधारा (स०)
१०. आदर्श कहानिया (स०)
११. श्रेष्ठ कहानिया (स०)

शीघ्र प्रकाश्य — स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य (द्वितीयार्द्ध)